44

संस्कृत साहित्य
का
संक्षिप्त इतिहास

(काव्य, नाटक, अलङ्कार, कोष, छन्द आदि)

लेखक—

० सीताराम जयराम जोशी, एम० ए०,

साहित्य शास्त्राचार्य

प्रोफेसर, हिन्दू विश्वविद्यालय

तथा

० विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज एम० ए०,

काव्यतीर्थ।

प्रोफेसर, हिन्दू विश्वविद्यालय

१९३३

प्रकाशक
परमानन्द खत्री एम० ए०
लक्ष्मी बुकडिपो,
कलकत्ता

प्रथम संस्करण

१००० प्रति
मूल्य—३॥) सजिल्द ४)

मुद्रक
परमानन्द खत्री एम० ए०
भारत-जीवन प्रेस,
काशी

प्राक्कथन।

इस संसार में आनन्द के अनेक विषय तथा अवसर मनुष्य जीवन में उपस्थित हुआ करते हैं। उन आनन्दों के तारतम्य का विचार तात्विक दृष्टि से करना ज़रा कठिन काम है। वह जो कुछ हो, किन्तु अपने छात्रों के अभ्युदयको देखकर जो आनन्द अध्यापक के हृदय में जागृत होता है वह निःसन्देह अपूर्व तथा सबसे विलक्षण होता है। सौभाग्य से ऐसाही अवसर आज मेरे लिए आया हुआ है। मेरे दो अध्यवसायी छात्रों की उत्तम कृति मेरे समक्ष आज उपस्थित है। पण्डित सीताराम जोशी तथा पण्डित विश्वनाथ शास्त्री ने इस 'संस्कृत साहित्यका संक्षिप्त इतिहास' को कितने घोर तथा अविरत परिश्रम से तैयार किया है यह विद्वज्जन ग्रन्थावलोकन से ही जान लेंगे। 'विद्वानेव विजानाति विद्वज्जन-परिश्रमम्।'

संसार का कोई भी कार्य इसीलिए महत्त्व पूर्ण नहीं कहा जा सकता कि उससे उत्तम कार्य तदन्य हो ही नहीं सकता। यह कब संभव है? कितनी भी योग्यता सम्पादन करिए, कितनी भी सावधानता रखिए, तथापि यही कृति सबसे उत्तम हुई है यह कदापि नहीं कहा जा सकता। अतः ग्रन्थादि के महत्व जाँचनेकी यह कसौटी नहीं हो सकती। जो कार्य किसी ने न किया हो या करने पर भी उपादेय न बनासका हो, उस कार्य का सम्पादन ही महत्व का कारण होता है। यह प्रस्तुत ग्रन्थ भी उसी कोटिका है।

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि संस्कृत-साहित्य विद्यावधू ने इस पवित्र भारत भूमि में अपना कैसा कैसा चमत्कार भिन्न भिन्न समयों पर दिखाया है। कहीं पर विलास का विकाश हृदय को उन्मत्तकर रहा है, कहीं सौन्दर्य का सौरभ अन्तरात्माको मस्त बना रहा है, कहीं हास

की कोमल लहरी मानसतल को अद्भुत तरह से तरङ्गित कर रही है। पर यह सब अब अतीतकाल की सम्पत्ति बन चुकी है। इन अद्भुत नाटकीय दृश्यों पर इस समय पर्दा गिर चुका है। दूर हटते जाने वाले संगीतध्वनि के अनुरणन की तरह इसकी अनुभूति औत्सुक्य का कारण बन रही है। क्या ऐसा कोई उपाय नहीं कि वह 'अतीत' पुनः 'वर्तमान' सा हो जाय? उस साहित्य-साम्राज्य के सुखों की स्मृति इतनी बलवती हो उठे कि हम लोग अपने को उसी काल में पावें? है, अवश्य ऐसा उपाय है। यह पुस्तक उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए लिखी गई है।

संस्कृत साहित्य की चर्चा भारतवर्ष में अभी भी कम नहीं है। किन्तु इसका सुसम्बद्ध इतिहास अभी तक सुदुर्लभ है। भारतीय भाषाओं में जो ग्रन्थ इस विषय पर लिखे गए हैं, उनकी अल्पसंख्या तथा विषय-फल्गुता उनको नहीं के तुल्य बनाए हुई है। हिन्दी में ईश्वरानुग्रह से अब कुछ लोग गंभीर विषयों पर भी कलम चलाने लगे हैं किन्तु संस्कृत विषय पर अभी भी वह बहुव्यापिनी रुचि जागृत नहीं हो रही है। अंग्रेजी में पुस्तकें है किन्तु अधिक श्रेय जर्मनविद्वज्जन का है। Dr. Winternitz की Geschichte der Indischen Literatur के जोड़ की पुस्तक मुझे अभी तक किसी अन्यभाषा में नहीं दिखाई पड़ी।

ऐसी स्थिति में हमारे इन दोनों महानुभावों का यह ग्रन्थ सर्वथा अभिनंदनीय है। यह एक बड़े भारी अभाव को दूर कर रहा है और आशा है कि इससे पण्डितमण्डल तथा छात्रसमुदाय बहुत ही उपकृत होगा।

बटुकनाथ शर्मा,

एम. ए. साहित्याचार्य,

प्रोफेसर, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी।

भूमिका ।

हिन्दी संसार में संस्कृत साहित्य के इतिहासकी कमी प्रायः सभी संस्कृत व हिन्दी विद्वानों को सदैव खटकती रही है । हमलोगों को भी प्राचीन पद्धति से संस्कृत विद्या का अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त होने के कारण अथवा अन्य किसी प्राक्तन संस्कार से बी. ए. तथा एम्. ए. कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों में निर्धारित पाश्चात्य विद्वानों द्वारा लिखित इस विषय की ऐतिहासिक पुस्तकों को पढ़ कर और उनमें अपने प्राचीनतम ग्रन्थ तथा ग्रन्थकारों को खीच तान कर ईसवी सदी के आस पास लाने का प्रयत्न देख कर, विद्यार्थी अवस्था में ही ऐसे एक इतिहास की न्यूनता का अनुभव हुवा जिसमें उनका निष्पक्षपात अतएव यथार्थ वर्णन हो । सर भाण्डारकर प्रभृति भारतीय विद्वानों ने अनेक विषयों पर विशेष प्रमाणों के साथ लेख लिख कर इस विषय पर बहुत कुछ प्रकाश डाला था, जो कार्य अभी भी प्रचलित है। किन्तु वे लेख संकलित ऐतिहासिक पुस्तक के रूप में नहीं थे तथा उनकी भाषा भी हिन्दी न थी। एम्. ए. की डिग्री प्राप्त करने के अनन्तर हमलोगों ने हिन्दी भाषा में संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखने का स्वतन्त्र प्रयत्न करने की भी चेष्टा की परन्तु इस कार्य को चिरकालापेक्षी तथा अत्यन्त बृहत् समझ कर ही हमलोगों की हिम्मत टूट सी जाती थी । अतएव यह कार्य यथोचित उत्साह के साथ आगे न बढ़ सका ।

सन् १९२८.में हमलोगों में से अन्यतर को हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्य .विद्याविभाग (**College of Oriental Learning**) में संस्कृत साहित्य का इतिहास पढ़ाने का स्थान मिलने से हम दोनों का संबंध हुआ ।यह संबंध सजातीयता के कारण अल्प काल ही में मित्रता के रूप में परिणत हुवा जिससे हम लोगों को आपस में अपने हार्दिक विचारों को प्रकट करने में किसी प्रकार का संकोच न होता था । इति-

हास के अध्यापक को व्याकरण, न्याय, मीमांसा, वेदान्त, सांख्ययोग, जैनन्याय, धर्मशास्त्र, ज्यौतिष, साहित्य आदि शास्त्रों का इतिहास पढ़ाने के लिए हिन्दी वा संस्कृत में कोई समुचित पुस्तक न होने के कारण उन २ विषयों के अध्यापन में छात्रों को लेख लिखाने पड़ते थे जिसमें उनको तथा विद्यार्थियों को भी बड़ी ही असुविधा होती थी।

ईश्वर की लीला अपरम्पार है। वह सर्वशक्तिमान् बड़ी ही खूबी से संयोग वा वियोग कराकर मनुष्यमात्र की हार्दिक दृढ़ भावनाओं को पूर्ण कराता रहता है। निश्चय ही हम लोगों का भी संयोग उसीकी प्रेरणासे हुआ। सन् १९३० में एक दिन कालेज से आते समय मार्ग में ही इतिहास विषय पर परामर्श होते होते यह निश्चय हुवा कि यह कार्य बहुत बड़ा है और अकेलेसे साध्य नहीं है अतः हम दोनों मिलकर ही इस कार्यको करें जिससे शीघ्रातिशीघ्र संस्कृत साहित्य के इतिहास की एक छोटी पुस्तक तय्यार हो जिससे विद्यार्थिओं का कष्ट दूर होकर उन्हें इस विषय में सुगमता हो। तदनुसार हम लोग इस कार्य में प्रवृत्त हुवे। संस्कृत साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास ठीक ठीक लिखना असंभव-प्राय समझ कर ही हम लोगों ने इस पुस्तक का नाम "संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास" रक्खा है। संस्कृत साहित्यके अन्तर्भूत वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, काव्य, नाटक आदि सभी विषयों का इतिहास एकत्र एक ही पुस्तक में संक्षिप्त रूपसे लिखने पर भी उसका परिमाण प्रमाणसे अधिक होता जान कर हम लोगों ने इस पुस्तक को तीन भागों में निकालने का विचार किया है। प्रथम भाग में वेद, उपवेद (आयुर्वेद तथा गान्धर्व वेद) तथा व्याकरण के अतिरिक्त वेदाङ्गों का ज्यौतिष और धर्मशास्त्र के साथ इतिहास रहेगा। व्याकरण शास्त्र की गणना दर्शनों में भी होने के कारण इसका इतिहास अन्यदर्शनों के इतिहास के साथ तृतीय भाग में देने का निश्चय किया है। द्वितीय भाग में संस्कृत साहित्य के अन्तर्भूत काव्य, नाटक, अलंकार, कोश और छन्द का

इतिहास, रामायण, महाभारत तथा पुराणों के संक्षिप्त वर्णन के साथ दिया गया है, जो पाठकों के करकमलों में उपस्थित है।

विद्यार्थिगण संस्कृत भाषा का अध्ययन कर ही वैदिक तथा दार्शनिक विषयों में प्रवृत्त होते हैं। संस्कृत भाषा परिज्ञान के लिए संस्कृत काव्य नाटकों का अध्ययन आवश्यक है। यह अध्ययन इतिहास के साथ होने से अधिक परिपुष्ट होता है। सर्वसाधारण संस्कृत छात्रों को अपने २ विषय के इतिहास के साथ साहित्य शास्त्र का भी इतिहास जानना आवश्यक समझ कर ही अधिकारियों ने इस इतिहास को प्राथमिक परीक्षाओं में निर्धारित किया है। जिस प्रकार वैदिक इतिहास हिन्दी तथा संस्कृत में उपलब्ध है वैसा साहित्य शास्त्र का इतिहास विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुरूप अभी तक नहीं लिखा गया था। इसीलिए अन्य दो भागों को छोड़ कर सर्वप्रथम द्वितीय भाग ही प्रकाशित किया जा रहा है।

इस द्वितीय भागमें संस्कृत भाषा का इतिहास पहिले संक्षेप में देकर संस्कृत साहित्य तथा इतिहास का परिचय कराते हुए क्रमसे रामायण, महाभारत व पुराण, महाकाव्य, खण्ड काव्य, स्तोत्र काव्य, सुभाषित, कथा व आख्यायिका, गद्य काव्य, चम्पू काव्य, नाटक, अलंकार-शास्त्र, कोष और छन्दःशास्त्र इन प्रकरणों में तत्तद्विषयों के सामान्य परिचय के साथ ग्रन्थकार और ग्रन्थों का इतिहास दिया गया है। अन्त में 'क' 'ख' 'ग' और 'घ' चार परिशिष्ट भी दिए हैं। 'क' में इक्ष्वाकु की वंशावलि, अनेक पुराण तथा रामायण से तुलना कर लिखी गई है। 'ख' में संस्कृत साहित्य से संबंध रखने वाला भारतीय प्राचीन राजकीय इतिहास है। 'ग' में संक्षेप में भारतीय प्राचीन भूगोल आधुनिक परि-वर्तित नामों के साथ दिया गया है। 'घ' में इस पुस्तक में वर्णित ग्रन्थ-कार व ग्रन्थों की समयनिर्देश के साथ कालक्रमानुसार सूची और अन्त में अकारादि क्रम से ग्रन्थगत सम्पूर्ण नामों की सूची भी दी गई है।

यद्यपि इन परिशिष्टों के कारण यह भाग कुछ विशेष विस्तृत हो गया है तथापि संस्कृत विद्यार्थियों की उपयोगिता की ओर लक्षकर हम लोग इन परिशिष्टों को यहां रखना अत्यन्त आवश्यक समझते हैं। संस्कृत छात्र प्रायः भूगोल तथा राजकीय इतिहास से सदैव अपरिचित ही रहते हैं और इसीलिए उनको संस्कृत साहित्य के इतिहास का यथार्थ ज्ञान होना कठिन हो जाता है। हिन्दी में प्राचीन भारतीय इतिहास पर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं परन्तु उनमें संस्कृत साहित्य का संबंध बहुत कम दिखलाया गया है। इसलिये ये इतिहास संस्कृत छात्रों के लिए उतने उपयोगी तथा रोचक नहीं हो सकते। अतएव परिशिष्ट 'ख' में इन विद्यार्थियों के लाभ के लिए संस्कृत साहित्य के इतिहास से संबंध दिखाते हुवे संक्षेप में भारतीय प्राचीन राजकीय इतिहास दिया गया है। प्रायः यह देखने में आया है कि संस्कृत साहित्य तथा राजकीय इतिहास में विद्यमान अनेक प्राचीन भौगोलिक संज्ञाओं के आधुनिक परिवर्तित नामों को न जानने से संस्कृत के छात्रों को उनका ठीक ठीक परिज्ञान नहीं होता। इसी त्रुटिको दूर करने की चेष्टा परिशिष्ट 'ग' में की गई है। परिशिष्ट 'घ' में कालक्रमानुसार दी हुई ग्रन्थकार, ग्रन्थ और उनके समय की सूची विद्यार्थियों के लिए इतिहास परिशीलन में अत्यन्त उपयोगी हो सकती है।

हम लोग यह स्वीकार करने में तनिक भी नहीं हिचकते कि यदि हम लोगों को जैसी सहायता मिली है वैसी न मिलती तो यह कार्य कदापि न हो सकता। सर्वप्रथम महामना श्रीमान् पं० मदनमोहन मालवीय, वाइस चान्सलर, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी को हम लोग धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति के कुछ स्थलों को स्वयं पढ़ तथा महत्वपूर्ण और उपयुक्त सूचनाएँ देकर हम लोगों को अनुगृहीत किया है। गुरुवर आचार्य आनन्दशंकर बापू-भाई ध्रुव प्रो- वाइस चान्सलर, हिंदू विश्वविद्यालय, काशी को हम

लोग जितना धन्यवाद दें उतना थोड़ा ही है। आप ही के ज्ञान-समुद्र के कुछ सीकरों को प्राप्त कर हम लोग आज इस योग्य हुवे हैं और आप ही ने बार बार इस कार्य के लिए प्रोत्साहन तथा उपदेश देकर हम लोगों को स्थिरता से यह कार्य करने में कटिबद्ध किया है। इसीलिए आप को यह द्वितीय भाग समर्पण कर हम लोग अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। महामहोपाध्याय पं० प्रमथनाथ जी तर्कभूषण प्रिंसिपल, संस्कृत कालेज, हिंदू विश्वविद्यालय ने समय समय पर इस कार्य में अपनी सहानुभूति प्रकट कर तथा उपदेश देकर हम लोगों का अत्यन्त उपकार किया है, अतः आपको भी धन्यवाद हैं। श्रीमान् पण्डितवर विविध-शास्त्र-पारंगत बालकृष्ण मिश्र जी को भी अनेक धन्यवाद हैं। हम कह सकते हैं कि इस पुस्तक को शीघ्र लिखने के लिये प्रोत्साहित करने में आप ही प्रधान हैं। इतना ही नहीं किंतु आपने अपना बहुमूल्य समय खर्च कर इस पुस्तक के अनेक प्रकरणों को अक्षरशः पढ़ तथा महत्वयुक्त और समुचित परामर्श देकर हम लोगों को कृतार्थ किया है। श्रीमान् पं० बटुकनाथ जी एम. ए. साहित्याचार्य, संस्कृत प्रोफेसर हिंदू विश्व-विद्यालय को केवल धन्यवाद देने में हृदय संकुचित होता है। यह आप ही की सहायता है जिसके बिना यह पुस्तक कदापि इस प्रकार लिखी नहीं जा सकती थी। केवल उपदेश से ही नहीं, केवल त्रुटियां दिखा कर ही नहीं किंतु स्वयं कष्ट उठा कर अपनी पुस्तकों की भी सहायता कर आपने हम लोगों को जीवन भर के लिये ऋणी बना लिया है। संक्षेप में यह कहना अनुचित न होगा कि इस पुस्तक में जो कुछ सुन्दरता है उसके कारण आप ही हैं। दुःख है कि हमारे पास धन्यवाद से बढ़ कर और कोई वस्तु आप को देने योग्य नहीं है। अतः आप को अगणित धन्यवाद देकर ही हम सन्तोष मानते हैं। पं० गंगाशंकर मिश्र, एम्. ए. लायब्रेरियन हिंदू विश्वविद्यालय को तथा संस्कृत कालेज, हिंदू विश्वविद्यालय के लायब्रेरियन को भी धन्यवाद

है जिन्होंने हम लोगों को आवश्यकतानुसार पुस्तकें देकर इस कार्य में सहायता की। पं० बलदेव उपाध्याय एम्. ए. साहित्य शास्त्री तथा पं० गंगाधर शास्त्री भारद्वाज, व्याकरण-साहित्याचार्य को भी हम सदुपदेश तथा पुस्तकों की सहायता के लिए अनेक धन्यवाद देते हैं। प्रियवर बाबू परमानंदजी खत्री एम्. ए. को हम लोग धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इस पुस्तक की उपयोगिता समझ इसे शीघ्र प्रकाशित करने का प्रबन्ध किया है। अन्त में, इस पुस्तक के लिखने में हम लोगों ने साहित्य ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक प्राच्य तथा पाश्चात्य पुस्तकों से बहुत कुछ लाभ उठाया है इसलिये उनके रचयिताओं को भी धन्यवाद देना हमारा कर्तव्य है।

इस पुस्तक के लिखने तथा प्रकाशनमें यथाशक्तिशीघ्रता करनी पड़ी है, जिस कारण से इसमें अनेक त्रुटियां अवश्य ही रही होंगी। इसलिये पाठक महोदयों से सविनय प्रार्थना है कि इसमें हम लोगों से वा प्रेस वालों से जो कुछ त्रुटियां वा गलतियां हुई हों उनको कण्टकी वृक्ष के कण्टक समझ ध्यान में न लाकर विषयरूपी पुष्परस को भ्रमर के सदृश पान कर हमें कृतार्थ करें। क्योंकि—

'गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥१॥

॥ इति शम् ॥

समर्पण

आचार्यवर्य श्री ६ गुरुवर पण्डित

आनन्द शङ्कर बापूभाई ध्रुव महोदय,

प्रिंसिपल तथा प्रोवाइस चांसलर,

हिंदूविश्वविद्यालय

काशी

के

करकमलों में उनके आज्ञाकारी शिष्यों द्वारा

यह स्वरचित पुस्तक सादर समर्पित है ।

विषयानुक्रमणिका।

प्रकरण १

विषय प्रवेश

प्रकरण २

रामायण महाभारत और पुराण।

प्रकरण ३

काव्य

महाकाव्य

प्रकरण—४

खण्ड-काव्य।

प्रकरण—५

स्तोत्र-काव्य।

प्रकरण ६

सुभाषित काव्य।

प्रकरण ७

गद्य काव्य।

प्रकरण ८

कथा व आख्यायिका ।

प्रकरण ९

चम्पूकाव्य ।

प्रकरण १०

नाटक ।

प्रकरण ११

अलंकार शास्त्र ।

प्रकरण १२
कोष

प्रकरण १३
छन्दः शास्त्र

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

प्रकरण १

विषयप्रवेश

संस्कृत भाषा

संस्कृत भाषा का महत्व – संस्कृत शब्द का अर्थ—इसका भाषाके लिये प्रयोग—आर्यों की भाषा—उसकी भिन्न अवस्थाएँ—(इन्डोजर्मानिक) आर्य भाषा, वैदिक तथा पीछे की भाषा—इसके लिये संस्कृत शब्द का प्रयोग—संस्कृत का संस्कृतत्व—इसका प्राचीन तथा अर्वाचीन भाषाओं से भेद—वैदिक भाषा, उसका वैलक्षण्य, वैशिष्ट्य आदि—पीछे की भाषाओं का वर्णन, उनकी उत्पत्ति के प्रश्न, उनका विभाग आदि— संस्कृत भाषा का वैशिष्ट्य, आर्येतर भाषाओं से, आर्य भाषाओं से तथा प्राचीन अर्वाचीन भाषाओं से—संस्कृत भाषा की विचार प्रगटन में विशेष योग्यता।

संस्कृत साहित्येतिहास के यथार्थ ज्ञान के लिये संस्कृत भाषा, संस्कृत साहित्य और संस्कृत साहित्य से सम्बन्ध

रखनेवाले भारतीय भूगोल और राजकीय इतिहास का भी साधारण परिज्ञान आवश्यक है। इसलिये इस प्रकरण में इन विषयों का संक्षेप में परिचय कराने की चेष्टा की गई है।

संसार की समग्र परिष्कृत तथा उपलब्ध भाषाओं में संस्कृत भाषा सबसे प्राचीन है। हिन्दुओंके वेद, शास्त्र, पुराण आदि प्राचीन धर्म ग्रन्थ तथा अन्य विषयों के प्राचीन ग्रन्थ भी इसी भाषामें लिखे गये हैं। इसको सुरभारती अथवा देववाणी[1] कहते हैं। जिस प्रकार यूरप महाद्वीप में प्रचलित भाषाएं लेटिन ग्रीक आदि प्राचीन भाषाओं से निकली हैं उसी प्रकार भारतवर्ष की आधुनिक प्रायः सर्व भाषाओं का उद्गम इसी संस्कृत भाषा से हुआ है। इस भाषा का प्राचीन स्वरूप पाश्चात्यों की प्राचीनतम भाषाओं से और पारसीकों की जेन्द अवेस्ता[2] (Zend Avesta) की भाषा से बहुत कुछ सादृश्य रखता है। पाश्चात्यों ने यही देखकर तुलनात्मक शब्दव्युत्पत्तिशास्त्र (Comparative Philology.) और तुलनात्मक पुराण शास्त्र (Comparative Mythology.) इन दो नवीन शास्त्रों (Sciences) की नींव डाली है। इसी सादृश्य के ज्ञान से ही मनुष्यमात्र के प्राचीन-तम इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ा है। प्राच्य आर्य जातिविषयक

---

१ संस्कृतं नाम दैवीवागन्वाख्याता महर्षिभिः। काव्यादर्श।

२ यह पारसीकों का प्रसिद्ध प्राचीन धर्मग्रन्थ है।

संशोधन (Indo Aryan researches) में संस्कृत भाषा के प्राचीनतम ग्रन्थ, इसके व्याकरण का सूक्ष्म निरीक्षण और इसके स्वर पद्धति का ज्ञान अत्यन्त महत्व का है।

संस्कृत शब्द 'सम्' पूर्वक 'कृ' धातुको 'क' प्रत्यय जोड़ने से (सम्+स्+कृ+क्त) बनताहै। 'सम्' और 'परि' उपसर्गों से युक्त 'कृ' धातु का अर्थ जब 'भूषण' तथा 'संघात' रहता है तभी उस धातु को सुडागम होता है ऐसा पाणिनि व्याकरण[1] का नियम है। इसलिये संस्कृत भाषा से सुसंहत और परिष्कृत भाषा का ही बोध होता है।

भाषा विज्ञान वादियों (Philologists) के मतानुसार संसार की सर्व भाषाएं अनेक विभागों[2] में विभक्त हैं। इनमें आर्य भाषा (Indo-Germanic) और सेमेटिक (Semitic) प्रधान हैं। आर्य भाषा (Indo-Germanic) संसार की प्राचीनतम संस्कृत, लेटिन, ग्रीक आदि भाषाओं की मूल भाषा मानी गई है। इसकी पश्चिमी और पूर्वीय दो शाखाएं

---

१ संपरिभ्यां करोतौ भूषणे। समवाये च। अष्टाध्यायी ६। १। १३७—१३८

२ डा० गुणेने संसार की सब भाषाओं को चार विभागों में विभक्त किया है। इनके अंग्रेजी नाम ऐसे हैं। 1 Agglutinative; 2 Agglutinative inflectional 3 Root or isolating languages, 4 Inflectional. आर्य भाषा अन्तिम विभाग में समाविष्ट है।

हैं। पश्चिमी शाखा के अन्तर्गत युरोप की प्रायः सभी आधुनिक भाषाएं (Indo-European) हैं और पूर्वीय शाखा में भारतवर्ष की भाषाएं और पारसीकों की पहलवी और अवेस्ता की भाषा गृहीत हैं। यही पूर्वीय भाषा इण्डोआर्यन (Indo-Aryan) भाषा कहाती है। भारतवर्ष की प्राचीन और प्रधान आर्य भाषा जो वैदिक संस्कृत के नाम से प्रसिद्ध है, इसी इण्डोआर्यन् भाषा की एक प्राचीनतम शाखा है। यही भाषा वेद ग्रन्थों की भाषा है। इन वेद ग्रन्थों में चारो वेदों की संहिताएं, उनके ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदादि ग्रन्थों का अन्तर्भाव है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य संस्कृत ग्रन्थों की भाषा लौकिक संस्कृत कहाती है।

आर्यों के प्राचीन ग्रन्थों में इस भाषा के लिये 'संस्कृत' शब्द का प्रयोग बहुत कम मिलता है। इस के लिये 'संस्कृत' शब्द का प्रयोग पहिले पहिल रामायण[1] में है। यास्क[2] और पाणिनि[3] के ग्रन्थों को देखने से यह स्पष्ट प्रतीति

---

१ अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।

सुन्दरकाण्ड ५ म अध्याय श्लो० १७-१८

२ भाषायामन्वध्यायञ्च। निरुक्त १।४

३ भाषायां सदवसश्रुवः। अष्टाध्यायी ३।२।१०८

होती है कि उनके समय में लोक व्यवहार में यही भाषा प्रचलित थी। किन्तु उसे संस्कृत न कह कर केवल 'भाषा' कहते थे। जब इस भाषा का सर्वसाधारण में बोलचाल का प्रयोग धीरे २ कम होकर इसके स्थान में पाली और प्राकृत भाषाएं रूढ़ हुईं तब अच्छे २ विद्वानों ने इसका अन्य भाषाओं से भेद दिखाने के लिये इसको व्यास वाल्मीकि आदि महर्षि द्वारा प्रयुक्त तथा पाणिनि कुमारदास आदि विद्वानों द्वारा परिष्कृत देख कर संस्कृत[1] भाषा कहना प्रारम्भ किया।

इस भाषा की संस्कृत संज्ञा यथार्थ है। वैदिक काल से प्रारम्भ कर पाणिनि के काल तक अनेक शतक बीत चुके थे। इस बीच में इस भाषा में जो कुछ परिवर्तन हुवा है वह काल की दृष्टि से बहुत स्वल्प है। पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि इन मुनियों की व्याकरण निर्मिति के बाद तो इस में परिवर्तन हुवा ही नहीं यह कहना अत्युक्ति की कोटि में नहीं आ सकता। संसार की अन्य भाषाएं देखी जांय तो ऐसी कोई भी भाषा न मिलेगी जो एक दो शतक के बाद भी ज्यों की त्यों रही हो। इसका प्रधान कारण यही है कि संस्कृत भाषा का सर्वाङ्गीणत्व और व्याकरण के नियमों से सुसंस्कृतत्व अन्य किसी भाषा में नहीं है।

यद्यपि संस्कृत शब्द प्रथम लौकिक संस्कृत भाषा के लिये ही रूढ़ हुवा तथापि वैदिक संस्कृत भाषा लौकिक संस्कृत का

---

१ संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः। काव्यादर्श।

ही पूर्वरूप होने के कारण उसका भी उल्लेख वैदिक संस्कृत के नाम से ही होने लगा। यद्यपि वैदिक ग्रन्थों से संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, आदि ग्रन्थ गृहीत हैं तथापि संहिता की भाषा से इनकी भाषा में कुछ अन्तर है। संहिताओं में भी ऋक्संहिता सब से प्राचीन है। इस में भी आदि से अन्त तक एक ही प्रकारकी भाषा नहीं है। इसके मन्त्रों के प्राचीन तथा अर्वाचीन प्रत्यय, शब्द आदि के प्रयोगों से उनकी प्राचीनता तथा अर्वाचीनता स्पष्ट हो जाती है। ऋक् संहिता की भाषा का वैलक्षण्य दिखाने के लिये नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं:—

(१) सुबन्त शब्दों के प्रयोगों में (क) अकारान्त संज्ञाओं का प्रथमा बहुवचन 'असस्'[1] और 'अस्' इन दो प्रत्ययों से बनता है। जैसे—ब्राह्मणासः वा ब्राह्मणाः, तृतीया बहुवचन में देवेभिः[2] वा देवैः ऐसे दोनों प्रयोग होते हैं।

(ख) प्रथमा और सम्बोधन का द्विवचन 'आ' प्रत्यय से और इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों का तृतीया एकवचन का रूप 'ई' से बनता है। सप्तमी एक वचन के 'ङि' प्रत्यय का लोप होता है। जैसे—(अश्विनौ) अश्विना, सुष्टुती; (सुष्टुत्या) और परमे व्योमन् (व्योम्नि व्योमनि)।

---

१. आजसे रसुक् ७।१।५०

२. बहुलं छन्दसि ७।१।१०

२. युष्मद्[1] और अस्मद् शब्द के सप्तमी और चतुर्थी के बहुवचन के रूप युष्मे और अस्मे होते हैं जैसे—'न युष्मे (युष्मासु) वाजबन्धवः,' 'अस्मे (अस्मभ्यम्) इन्द्रा बृहस्पती'।

३. तिङन्त शब्दों के परस्मैपदी उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप 'मसि'[2] प्रत्यय से बनता है जैसे 'नमोभरंत एमसि' (इमः) और प्रथम पुरुष बहुवचन 'रे[3]' वा 'रते' प्रत्यय से बनता है जैसे—धेनवो दुह्रे। घृतं दुह्रते (दुदुहिरे)।

४ लोट् लकार के मध्यम पुरुष बहुवचन के प्रत्यय त[4], तन, थन और तात् हैं। जैसे श्रृणोत (श्रृणुत) ग्रावाणः, सुनोतन (सुनुत), यतिष्ठन, कृणुतात्।

५ लेट् लकार के अनेक प्रकार मिलते हैं। जैसे प्रणआयूंषि तारिषत, सुपेशसस्करति, पताति[5] दिद्युत्, इत्यादि।

६. तुमुन् 'प्रत्यय के अर्थ में 'से' 'ध्यै' आदि अनेक प्रत्यय

---

१. सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः ७।१।३९

२. इदन्तो मसि ७।१।४६

३. बहुलं छन्दसि ७।१।८

४. तप्तनप्तनथनाश्च ७।१।४५

५. सिब्बहुलं लेटि ३।१।३४

६. तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः ३।४।९ प्रयैरोहिष्यै अव्यथिष्यै ३।४।१० ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ३।४।१२

मिलते हैं। जैसे वक्षे (वोढुं) रायः। जीवसे (जीवितुं धाः। जठरं पृणध्यै (पूरयितुं) वायवे पिबध्यै (पातुं) दातवाउ (दातुं) कर्तवे (कर्तुं) इत्यादि।

उपर्युक्त उदाहरण संहिता ग्रन्थों में बार बार मिलते हैं। इनके व्यतिरिक्त अन्य बहुत से प्रयोग हैं जिनका विशेष विवरण सिद्धान्त कौमुदी की वैदिकी प्रक्रिया, वेदभाष्य प्रातिशाख्य आदि में है।

इन प्रयोगों में से बहुत से प्रयोग ब्राह्मण, आरण्यक आदि वैदिक ग्रन्थों में नहीं मिलते। उच्चारण सौकर्य और स्वर भेद के नियमानुसार इनकी भाषा में बहुत कुछ परिवर्तन अवगत होता है। ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मणों को देखने से मालुम हो सकता है कि इनकी भाषा संहिता काल की भाषा के बाद की अवस्था की हैं। इनके तिङन्त और सुबन्त शब्द लौकिक संस्कृत के अधिक सदृश हैं। इनमें लेट् लकार का प्रयोग कहीं नहीं मिलता और तुमुन् प्रत्यय के केवल दो तीन प्रकार के ही रूप मिलते हैं। इनकी भाषा से लौकिक संस्कृत का भेद दिखाने के लिये कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। जैसे पृथिव्यै (पृथिव्याः) राजास्याः। सविता वै प्रसवानामीशे (ईष्टे)। अज्ञत (अजनिषत) वा अस्य दन्ताः इत्यादि।

वैदिक ग्रन्थों की भाषा के उपर्युक्त प्रत्यय रूपादि धीरे २ लुप्त होकर पाणिनि के नियमानुसार लौकिक संस्कृत भाषा में उनके रूप किस प्रकार परिणत हुवे यह यास्क के

निरुक्त ग्रन्थ तथा अनेक सूत्र ग्रन्थों को देखने से अवगत हो सकता है। यास्क के निरुक्त ग्रन्थ में 'उपदेशाय ग्लायन्तः' 'शिशिक्ष राज्येन' इत्यादि अनेक आर्ष प्रयोग मिलते हैं। ऐसे ऐसे प्रयोग रामायण महाभारतादि ग्रन्थों में भी कहीं २ विद्यमान हैं। पाणिनि के अष्टाध्यायी की निर्माण समय में यह भाषा जिस स्थितिमें थी उसमें भी कुछ परिवर्तन[1] कई शतकों तक होता रहा यह बात कात्यायन के वार्तिक और पतञ्जलि के महाभाष्य को देखने से विदित होती है। महाभाष्य के बाद में इस भाषा में किसी प्रकार का परिवर्तन न हुआ इसलिए इस भाषा का संस्कृतत्व इसी समयसे उपपन्न हो सकता है।

पहिले कहा जा चुका है कि यास्क और पाणिनि के समय व्यवहार में बोलचाल की भाषा संस्कृत ही थी किन्तु पतञ्जलि के समय में यह भाषा सर्व साधारण की बोलचाल की भाषा न रह कर केवल शिष्ट[2] और विद्वानों के ही व्यवहार में थी ऐसा पतञ्जलि के भाष्य से ज्ञात है। यह शिष्ट

---

१ 'यवनाल्लिप्याम्' इस वार्तिकसे ज्ञात होता है कि पाणिनिके समय में यवनानी शब्द यवन की स्त्री के लिये प्रयुक्त होता था परन्तु वार्तिक कालमें यह शब्द लिपि के लिये रूढ़ हुआ इत्यादि।

२ तस्मिन्नार्यावर्ते निवासे ये ब्राह्मणाः कुम्भीधान्याः अलोलुपाः अगृह्यमाणकारणाः किञ्चिदन्तरेण कस्याश्चिद्विद्यायाः पारङ्गताः तत्र भवन्तः शिष्टाः। महाभाष्य में पृषोदरादीनियथोपदिष्टम् ४—३—१०९ सूत्रका व्याख्यान।

शब्द केवल ब्राह्मणों के लिये ही रूढ़ था किन्तु सुशिक्षि ब्राह्मणेतर जन भी संस्कृत भाषा का व्यवहार करते थे। क्योंकि महाभाष्य में किसी वैयाकरण और अश्वपरि चारक का सूत शब्द पर संस्कृत में शास्त्रार्थ होने का वर्णन है। शिष्टोंके अतिरिक्त सर्वसाधारण जनता की भाषा उस समय की संस्कृतेतर प्राकृत थी।

ई० पू० षष्ठ शतक में भारतवर्ष के पूर्वीय प्रान्तों में जैन तथा बौद्ध धर्मों के प्रधान प्रवर्तक वर्द्धमान महावीर और गौतमबुद्ध अपने २ धर्म का उपदेश उस समय की सर्वसा धारण की प्राकृत भाषाओं में करते थे यह बात इतिहास से ज्ञात है। भद्र बाहु[1] विरचित "महावीर का चरित्र" ई० पू० ३५० का माना जाता है। इसकी भाषा जैन प्राकृत अथवा अर्ध मागधी है। इसी समय के बौद्धों के त्रिपिटक ग्रन्थ माने गये हैं। इनकी भाषा मागधी है जो पीछे पाली के नाम से प्रसिद्ध हुई। ई०पू० तृतीय शतकके मौर्यसम्राट अशोकवर्द्धनके निर्मित जो शिला लेख भारतवर्षके अनेक प्रान्तोंमें हैं, उनकी भाषा उस समय की प्राकृत भाषा मानी जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि महाभाष्यकार के कई शतक पूर्व से ही सर्वसाधारण जनता की भाषाएं भिन्न २ प्रकार की प्राकृत थीं।

पाली और प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में

---

1 केम्ब्रिज हिस्टरी आफ् इण्डिया पृ० १६४।१६५।

विद्वानों में मतभेद है। कुछ आधुनिक विद्वान्[1] पाणिनि और यास्क कालीन संस्कृत भाषा से पाली, कात्यायन पतञ्जलि कालीन संस्कृत भाषा से प्राकृत और प्राकृत से प्राकृत के अनेक भेद कालक्रम से हुवे ऐसा मानते हैं। अन्य विद्वान् पाली और प्राकृत भाषाओं के कुछ शब्दों को और प्रत्ययों को लौकिक संस्कृत में कहीं भी प्रयुक्त न देख कर और उनका प्रयोग वैदिक ग्रन्थों में देख कर अनुमान करते हैं कि पाली और प्राकृत भाषाएं लौकिक संस्कृत से परिणत न हो कर वैदिक काल की प्राकृत भाषाओं के ही सिलसिले हैं।

पाली भाषा में विद्यमान बौद्ध ग्रंथ,बौद्ध धर्म के भारतवर्ष के बाहर विशेष प्रसार होने के कारण, सीलोन सियाम और ब्रह्म देश में विशेषता से मिलते हैं। अशोक वर्द्धन के समय के शिलालेखों की भाषाएं भिन्न २ प्रकार की प्राकृत भाषाएं हैं। इन शिला लेखों की भाषाओं को पीछे के प्राकृतों का पूर्वरूप मानना अनुचित न होगा। इसी समय से प्राकृत भाषा का प्रचार भारत वर्ष में सर्वत्र होने लगा और इसी भाषा में अनेक ग्रंथ[2] भी रचे जाने लगे। महाकवियों के नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत भाषाओं से अनुमान होता है कि ईसा के पूर्व ही प्रान्त भेद से प्राकृत के अनेक भेद हो

---

१ सर रामकृष्ण गोपाल भण्डारकरका विल्सन फाइलालाजिकल लेक्चर्स १, २ और ३।

२ हाल की सत्तसई और प्राचीन कवियोंके नाटक-(भास कालिदास !)

गये थे। 'वररुचि' ने अपने 'प्राकृत प्रकाश' में प्राकृत
चार भेद (१) शौरसेनी (२) मागधी (३) पैशाची औ
(४) महाराष्ट्री बताये हैं। 'हेमचन्द्र' ने अपने 'हैमव्याकरण'
छः भेद–शौरसेनी, मागधी, पैशाची, प्राकृत (महाराष्ट्री
चूलिका पैशाची और अपभ्रंश माने हैं। हेमचन्द्र के बा
'त्रिविक्रम' ने अपनी 'प्राकृतसूत्रवृत्ति' में और 'लक्ष्मीधर' ने 'प
भाषाचन्द्रिका' में इन्हीं छ भेदों का प्रतिपादन किया है
'मार्कण्डेय' ने अपने 'प्राकृतसर्वस्व' में प्राकृत के भाष
विभाषा, अपभ्रंश और पैशाची ये चार प्रधान भेद मान
उनके १६ अवान्तर भेद माने हैं। वे (१) महाराष्ट्री (२) शौ
सेनी (३) प्राची (४) आवन्ती (५) मागधी (६) शाकारी (७
चाण्डाली (८) शाबरी (९) आभीरिका (१०) टाक्की (११
नागर (१२) व्राचड (१३) उपनागर (१४) कैकय (१५) शौ
सेन और (१६) पाञ्चाल हैं। इनमें प्रथम पांच 'भाषा' प्राकृ
के, छ से दस तक 'विभाषा' प्राकृत के, ग्यारह से तेरह त
'अपभ्रंश' के और चौदह से सोलह तक 'पैशाची' प्राकृत के भे
माने गये हैं। इन्हीं प्राकृत भाषाओं से रूपान्तर होते २ वर्त
मान समय की भारत वर्ष की प्रायः सभी हिन्दी, बङ्गाली
मराठी आदि भाषाएं बनी हैं।

वैदिक काल से प्रारम्भ कर आधुनिक समय तक वे
संस्कृत भाषा के इतिहास का निरीक्षण करने से मालुम है
सकता है कि किस प्रकार काल भेद से भाषा का विकास औ

परिवर्तन होता है। कई संस्कृतभाषाकोविदों ने संस्कृत भाषा के इतिहास को तीन कालखण्डों में विभक्त किया है। चिन्तामण विनायक वैद्य ने (१) श्रुति काल, (२) स्मृति काल और (३) भाष्यकाल ये तीन काल खंड माने हैं। सर् भांडारकर महाशय ने भाषा की सरणि को प्राधान्य देकर (१) संहिताकाल (Vedic variety of sanskrit) (२) मध्य संस्कृत काल (Middle sanskrit) (३) लौकिक संस्कृत (Classical sanskrit) माने हैं इस लौकिक संस्कृत काल की पुनः तीन अवस्थाएं मानी हैं। यहां पर पाठकों के सुभीते के लिये संस्कृत भाषा के इतिहास को (१) संहिता काल (२) ब्राह्मण काल (३) स्मृति काल (४) भाष्यकाल इन चार भागों में लिख कर उसका परिचय कराया जाता है।

(१) वेदों की संहिताओं में, विशेष कर ऋक् संहिता में जो भाषा है उसके लिये एक स्वतन्त्रकाल मान लिया गया है, जिसको संहिता काल कहते हैं। इस काल में अनेक प्राचीन ऋषियों के कुल के मन्त्रद्रष्टा ऋषियों से अनेक शतकों तक जो मन्त्र दृष्ट किये गये थे वे सब मन्त्र, बाद में शाकल बाष्कल आदि संहिताकारों से संहिता ग्रन्थों में एकत्रित किये गये। ऋक् संहिता की रचना के पूर्व ही अन्य तीन वेदों की संहिताओं के मन्त्र भी तत्तद् ऋषियों से दृष्ट थे। इसलिये उन मन्त्रों की भाषा का भी इसी काल में अन्तर्भाव है।

(२) संहिता काल के बाद ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदादि ग्रन्थों की भाषा का काल ब्राह्मणकाल है। इस काल की भाषा संहिता काल से बहुत पीछे की है और पाणिनि के अष्टाध्यायी के नियम प्रायः इस भाषा के अनुकूल हैं। इस कालकी तथा संहिता कालके भाषा की विशेषता यह है कि इन कालों में वाक्यों की रचना सरल संक्षिप्त और क्रिया बाहुल्य से युक्त हुआ करती थी। संहिता काल और ब्राह्मण काल इन दोनों का अन्तर्भाव श्रुतिकाल में हो सकता है।

(३) श्रुतिकाल के बाद से महाभाष्यकार पतञ्जलि के समय तक का काल स्मृतिकाल कहाता है। इस काल का आरम्भ यास्क और पाणिनि के समय से माना गया है। अनेक सूत्र ग्रन्थ तथा रामायण महाभारतादि की भाषा इस काल की भाषा है। इस भाषा का वैशिष्ट्य यह है कि श्रुति काल के सदृश यह भाषा भी सरल और दीर्घ समास रहित थी। किन्तु श्रुतिकाल का आर्ष प्रयोग और क्रिया बाहुल्य धीरे २ कम हो गया था।

(४) यद्यपि भाष्य रचना यास्काचार्य के निरुक्त से आरम्भ हुई है तो भी भाषा की दृष्टि से भाष्य काल का आरम्भ पतञ्जलिके महाभाष्यके बादसे मानना उचित है। इस काल में अनेक दर्शनों के सूत्र ग्रन्थों पर भाष्य लिखे गये हैं। इस काल की भाषा का वैशिष्ट्य यह है कि धीरे २ वाक्य

१ भांडार कर के फाइलालाजिकल लेक्चर्स नं १।

रचना दीर्घ होती जाती थी और समासों का विन्यास अधिक होने लगा था। पतञ्जलि के महाभाष्य के बाद यद्यपि संस्कृत व्याकरण के नियमों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुवा तथापि भाषा शैली अवश्य बदलती गई। ई० ६०० के प्रारम्भ में इन समासों की रचना अत्यन्त बढ़ गई थी जैसा कि सुबन्धु तथा बाण भट्ट के ग्रन्थोंसे अवगत होता है। ई० १२०० के बाद की नैयायिकों की भाषा तो अत्यन्तही क्लिष्ट हो गई है। तथापि इस काल के अनेक विद्वान् और कवियों की भाषा प्रसाद और माधुर्यगुणयुक्त और दीर्घ समास रहित भी है।

उपरिनिर्दिष्ट काल खण्डों का विभाग विषय प्रतिपादन सौकर्य के लिये मान लिया जा सकता है। किन्तु ये खण्ड परस्पर निरपेक्ष कदापि सिद्ध नहीं हो सकते हैं। क्योंकि एक काल खण्ड का वैशिष्ट्य अन्य काल खण्डों में नहीं ही है यह कहना ठीक नहीं है।

कुछ पाश्चात्य विद्वान्[1] ग्रीक और लेटिन के समान भारत वर्ष की संस्कृत भाषा को भी मृत भाषा कहते हैं। परन्तु यह उनका कथन ठीक नहीं है। भारत वर्ष में हिन्दुओं की धार्मिक विधियों में, नित्य नैमित्तिक कर्मों में, पण्डितोंकी सभाओं में, शास्त्रार्थ के समय अभी भी इसी भाषा के द्वारा व्यवहार होता है। पण्डित वर्ग में अभी भी संस्कृत के मासिक और साप्ताहिक पत्र प्रचलित हैं। संस्कृत नाटकों के प्रयोग रंग-

---

१ मेक्डोनेल महाशय का इतिहास-प्रथम अध्याय।

भूमि पर आजकल भी होते हैं और उनको देखने के लि
विद्यालय के स्त्री, पुरुष, विद्यार्थी और सामान्य संस्कृतज्ञ भ
बड़ी खुशी से जाते हैं और उससे आनन्द प्राप्त करते हैं
मन्दिरों में नित्यशः पुराण, रामायण और महाभारत ग्रन्थ
की कथाएं बांची जाती हैं जिनको सुनने के लिये सैकड़ों स्त्र
पुरुष एकत्रित होते हैं। भारतवर्ष की अशिक्षित स्त्रियां औ
स्कूल कालेज के लड़के भी देवताओं के संस्कृत स्तोत्रों क
पाठ किया करते हैं। द्विज मात्र के लिये वेद की ऋचा क
पढ़ना और जपना अभी भी आवश्यक माना जाता है। इस
प्रकार हिन्दुओं के सम्पूर्ण धार्मिक कृत्यों में संस्कृतभा
का प्राधान्य रहने के कारण इस भाषा की शिक्षा सर्व साधार
में प्रचलित करने के लिये अभी भी उद्योग हो रहा है। ऐसी
अवस्था में इस भाषा की ग्रीक और लेटिन भाषाओं से तुलन
कर उसे मृत भाषा कहना नितान्त भूल है।

संसार में प्रचलित समस्त भाषाओं में संस्कृत भाषा से
तुलना करने योग्य अन्य कोई भी भाषा नहीं दीख पड़ती है
संसार के सभी विद्वानों ने इस भाषा के पाणिनि व्याकरण
की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से की है। इसकी स्वरपद्धति, धातु
बाहुल्य, प्रत्ययबाहुल्य, समासरचना, उपसर्गों का प्रयोग
आदि अनेक विषय अन्य किसी भाषा के व्याकरण में इतनी
पूर्णता से और इतने संक्षेप में प्रतिपादित नहीं हैं। इस
भाषामें पर्याय शब्दों की और नानार्थक शब्दों की संख्या बहु

अधिक है। इसके धातुबाहुल्य तथा प्रत्ययबाहुल्य के कारण यथेप्सित शब्दों की रचना कर हार्दिक भावों को प्रकट करने में कभी भी दिक्कत नहीं पड़ सकती। इतर भाषाओं में ये बातें नहीं दीखतीं। अंग्रेजी में ही यदि देखा जाय तो पिता Father और माता Mother के लिये दूसरे कोई पर्याय शब्द ही नहीं हैं। 'कर्तव्य' इस संस्कृत के एक शब्द के लिये It is to be done. इस पूर्ण वाक्य की योजना करनी पड़ती है। अंग्रेजी में ऐसा कोई शब्द नहीं है जिसके लिये संस्कृत में ठीक पर्याय मिल या बन न सके। इस भाषा का अनेक, वाक्यों का भाव समासरचना के द्वारा संक्षेप में व्यक्त करने का सुभीता अन्य भाषाओं में कम है। यदि अन्य भाषाओं में कर्ता और कर्म के स्थान का विपर्यय कर दिया जाय तो अर्थ बदल जाता है परन्तु संस्कृत भाषा की वाक्य रचना में शब्दों को स्थानसापेक्षत्व नहीं है। उदाहरण के लिये "The father beats the son." इस वाक्य में यदि father के स्थान में son रक्खा जाय तो उलटा ही अर्थ हो जायगा। परन्तु 'पिता पुत्रं ताड़यति' इस वाक्य में किसी शब्द को कहीं भी रखने पर वही अर्थ होगा। जैसे—'पुत्रं पिता ताड़यति' 'ताड़यतिपुत्रं पिता' 'पुत्रं ताड़यति पिता' इत्यादि में अर्थ नहीं बदलता। इसके पर्यायशब्दों का बाहुल्य समास रचना तथा कारक की सुगमता के कारण छन्द बनाने में जैसा सुभीता है वैसा अन्य भाषाओं में नहीं है। आर्येतर

भाषाओं में, संस्कृतेतर आर्य भाषाओं में, भारतवर्ष के प्राचीन प्राकृत आदि तथा अर्वाचीन हिन्दी, बङ्गला, मराठी गुजराती आदि भाषाओं में भी विचार प्रगटन के ये सुभीते नहीं हैं।

संस्कृतसाहित्य

साहित्य शब्द के अर्थ—विस्तृत अर्थ में 'संस्कृतसाहित्य' शब्द का प्रयोग और उस प्रयोग का अभिप्राय—संस्कृत साहित्य की इयत्ता और ईदृक्ता—उसके विषय विभागों का संक्षिप्त दिग्दर्शन—साहित्य शब्द का संकुचित अर्थ, उसका प्रयोग और अभिप्राय—इससे द्योतित विषय और उसका संक्षिप्त दिग्दर्शन।

संस्कृत भाषा का परिचय होने के बाद संस्कृत साहित्य के विषय में भी कुछ कहना आवश्यक है। साहित्य शब्द सहित शब्द से भाव के अर्थ में 'ष्यञ्'[1] प्रत्यय जोड़ने से बनता है। इसके दो प्रकार के अर्थ हैं। व्यापक और संकुचित। व्यापक अर्थ में इसका प्रयोग हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं में होता है। वहां इस शब्द से भाषा गत समस्त ग्रन्थ रचना अभिप्रेत है। परन्तु संस्कृत में यह शब्द केवल काव्य नाटक आदि ही के लिये रूढ़ है।

यद्यपि व्यवहार में साहित्य शब्द का अर्थ किसी वस्तु का

---

१ साहितस्य भावः साहित्यम्। गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५-१-२४ अष्टाध्यायी

साथ रहना है तथापि इसका जब वाङ्मय में प्रयोग होता है तब उसका अर्थ, शब्द और अर्थ का सहभाव ही होता है। शब्द और अर्थका साहचर्य्य नित्य रहने के कारण कोई भी शब्द बिना किसी अर्थ के प्रयुक्त नहीं हो सकता। ऐसी अवस्था में शब्द और अर्थ के सहभावका विशिष्ट रूप से उल्लेख करने का यही प्रयोजन है कि यद्यपि शब्द के साथ अर्थ नित्य विद्यमान है तो भी वाक्य में जब अनेक शब्द प्रयुक्त होते हैं तब उनका नित्य अर्थ उनके साथ रहने पर भी आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि आदिके अभाव में उस वाक्य का शाब्दबोध होना असम्भव हो जाता है। इसलिये शब्द और अर्थ का सहभाव आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि आदि के साथ ही साहित्य शब्द से बोधित है। हिन्दी भाषा में इस शब्द का प्रयोग इसी विस्तृत अर्थ में है। 'हिन्दी साहित्य' कहने से हिन्दी भाषा की समग्र ग्रन्थ रचना का बोध होता है। हिन्दी में 'साहित्य' शब्द अंग्रेजी के Literature शब्द के सदृश अर्थ में प्रयुक्त है। 'संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' इस नामकरण में 'साहित्य' शब्दका इसी विस्तृत अर्थ में प्रयोग किया गया है। क्योंकि यहां पर संस्कृत साहित्य से केवल काव्य नाटक अलंकार ही अभिप्रेत नहीं हैं किन्तु संस्कृत वाङ्मय के प्रायः सभी विषय के ग्रन्थ गृहीत हैं।

संस्कृत साहित्य में चारों वेद, (ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम-वेद और अथर्ववेद की संहिताएं) ब्राह्मण, आरण्यक उप-

निषदादि ग्रन्थ, चार उपवेद[1] (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र) छः वेदांग-शिक्षा, कल्प (श्रौत और स्मार्त सूत्रग्रन्थ) व्याकरण, निरुक्त छन्द, ज्योतिष, स्मृति और धर्म-निबन्ध, इतिहासपुराण, काव्य, नाटक, अलंकार, कोष, पूर्व और उत्तर मीमांसा, सांख्ययोग, न्यायवैशेषिक-बौद्ध जैन-न्याय, इत्यादि सभी विषय आते हैं। संस्कृत साहित्य का क्षेत्र और विषय बाहुल्य अन्य किसी प्राचीन अथवा अर्वाचीन भाषा के साहित्य से कम नहीं है। संस्कृत साहित्य का विषय-प्रतिपादन प्रौढ़ सर्वगामी और धर्माधिष्ठित है। प्राचीन काल से ही संस्कृत भाषा की वृद्धि में अनेक बाह्य तथा आभ्यन्तर रुकावटें आने पर भी इसका साहित्य इतनी उन्नत अवस्था को प्राप्त हुआ है कि इसके विषयों का केवल स्वरूप ज्ञान ही संसार के किसी साहित्य से तुलना करने योग्य है। संशोधक विद्वान् (Research Scholars) डेढ़ सौ वर्ष से भी अधिक समय से संस्कृत साहित्य सागर की थाह लगाने की अप्रतिहत चेष्टा कर रहे हैं परन्तु अभी तक उसकी गम्भीरता का पता नहीं लगा है। संस्कृत साहित्यका प्रारम्भ कब हुआ यह अभी तक अनिश्चित ही है। तो भी यह निश्चित है कि संसार के सभी प्राचीन साहित्यों से संस्कृत साहित्य प्राचीन-तर है।

संस्कृत में 'साहित्य' शब्द से काव्य नाटक और अलङ्कार

---

1 प्रस्थानभेद—मधुसूदनसरस्वती विरचित।

के ग्रन्थ ही द्योतित हैं। भर्तृहरि ने अपने नीति शतक के "साहित्यसंगीतकलाविहीनः" इत्यादि श्लोक में साहित्य शब्दका इसी संकुचित अर्थ में ही प्रयोग किया है। राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में साहित्य विद्या का लक्षण 'शब्दार्थ योर्यथावत्सहभावेन विद्या साहित्यविद्या' ऐसा किया है। यहां यथावत्सहभाव[1] से शब्द के अनुरूप अर्थ और अर्थ के अनुरूप शब्द होना चाहिये यह बात बताई है। यह बात काव्यके व्यतिरिक्त अन्यत्र सम्भव नहीं है। भामह का काव्य का लक्षण "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्" इसी अर्थका द्योतक है। विल्हण ने अपने विक्रमाङ्कदेवचरित को 'साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं कर्णामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः' इस उक्ति में साहित्य शब्द का प्रयोग काव्य नाटक और अलङ्कारकेलिये किया है। राजशेखरने इस साहित्य विद्याको पांचवीं[2] विद्या मानकर इसको आन्वीक्षिकी, त्रयी (वेदत्रयी), वार्ता और दण्डनीति इन चार विद्याओंका निचोड़ कहा है। इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थकारों से लेकर आधुनिक समय तक संस्कृत में साहित्य शब्द का काव्य नाटक और अलङ्कार इसी संकुचित अर्थ में प्रयोग होता है।

---

१ (न च काव्ये शास्त्रादिवदर्थप्रतीत्यर्थं शब्दमात्रं प्रयुज्यते। सहितयोः शब्दार्थयोस्तत्रप्रयोगात्। साहित्यं तुल्यकक्षत्वेनान्यूनानतिरिक्तत्वम्।

व्यक्तिविवेक टीका पृ० ३६

२ 'पञ्चमी साहित्यविद्येति यायावरीयः। सा हि चतसृणां विद्यानामपि निष्यन्दः'। काव्यमीमांसा पृ० ४

काव्य के 'दृश्य' और 'श्रव्य' ये दो प्रधान भेद हैं। दृश्य काव्य अभिनय का विषय रहने से और अभिनय में पात्रों को अपना रूप बदल कर नायकादि के रूपमें उपस्थित होना आवश्यक रहने के कारण इसको रूपक कहते हैं। इस रूपक के नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क वीथी, और प्रहसन ये दस भेद हैं। हिन्दी में 'रूपक' के लिये 'नाटक' शब्द रूढ़ रहने के कारण काव्य, नाटक और अलङ्कार इसमें 'नाटक' शब्द रूपक के लिये ही प्रयुक्त है। नाटिका त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश, और भाणिका ये अठारह उपरूपक हैं। इस प्रकार संस्कृत में साहित्यदर्पणकार ने दृश्यकाव्य के २८ भेद बताए हैं।

श्रव्यकाव्य के पद्य, गद्य और मिश्र (चम्पू) ये तीन भेद हैं। पद्यकाव्य के साहित्य दर्पण में महाकाव्य, खण्डकाव्य और कोषकाव्य ये प्रधान तीन भेद बताकर स्तोत्र और सुभाषित का कोष में अन्तर्भाव किया है।

साहित्यदर्पण में गद्य के वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय, चूर्णक और मुक्तक ये चार[1] प्रकार बता कर गद्य काव्य के कथा और आख्यायिका ये दो भेद दिए हैं।

---

१ वामन ने 'काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति' में 'मुक्तक' नामका गद्य का चौथा भेद न मान कर केवल तीन ही भेद माने हैं।

मिश्र अथवा गद्य पद्यात्मक काव्य के चम्पू, विरुद और करम्भक ये तीन भेद हैं।

दृश्य और श्रव्य काव्यों के भेदों के लक्षण आदि विषय उन २ प्रकरणों के आदि में दिये गए हैं।

इतिहास।

इतिहास का स्वरूपमहत्व और उससे लाभ—भारत में ऐतिहासिक ग्रन्थोंकी न्यूनता—भारतीय राजकीय इतिहास से साहित्येतिहासका घनिष्ठ सम्बन्ध—दोनों की परस्पर सापेक्षता—भारतीय राजकीय इतिहासके लिये भारतीय भौगोलिक ज्ञान की आवश्यकता—इतिहास की सामग्री—इतिहास लिखने में इससे लाभ।

संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य के साधारण परिचय के अनन्तर इतिहास के विषय में भी कुछ कहना क्रमप्राप्त है।

इतिहास शब्द इति+ह+आस, इन तीन शब्दों के समुच्चय से बना है। 'अस्' धातु का, 'भू' भाव के बिना मूलधातु में ही स्वतन्त्र रीति से लिट् लकार का 'णल्' प्रत्यय होकर 'आस' यह रूप बना है। ऐसा प्रयोग वैदिक ग्रन्थों में ही मिलता है। 'ह' अव्यय निश्चयार्थ में प्रयुक्त है। 'इति' शब्द का अर्थ 'इत्थं' है। इसलिए इतिहास शब्द का 'इत्थं निश्चयेन बभूव' अर्थात् 'यह बात अवश्य हुई थी' ऐसा अर्थ होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों [1] में प्रत्येक इतिहास वर्णन में

---

१ हरिश्चन्द्रो ह वैधसऐक्ष्वाकोराजाऽपुत्र आस। ऐतरेय ब्राह्मण ३३ अध्याय।

"इति ह आस" इन शब्दों का प्रयोग है।

इतिहास शब्द में वैदिक कालके 'आस' रूपका प्रयो
इतिहास की प्राचीनता द्योतित करता है। संसार के साहि
में सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋक्संहिता है। इसमें इतिहास यु
मन्त्र[1] हैं। छान्दोग्य उपनिषद[2] के सप्तम अध्याय के प्रारम्भ
ऐसी कथा है कि नारद मुनि सनत्कुमार के पास ब्रह्मवि
पढ़ने के लिये जब गये थे तब उनसे पूछा गया था कि उन्हों
कौन २ सी विद्याएं सीखी थीं। उसके उत्तर में नारदमुनि
चारों वेदों के बाद इतिहास पुराण नामक पञ्चम वेद का
उल्लेख किया था। राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा
चार[3]उपवेदों में एक इतिहास वेद भी माना है। यास्क
निरुक्त ग्रन्थ में ऋचाओं के विशदीकरण में ब्राह्मण ग्रन्थ त
प्राचीन आचार्यों की कथाओं को 'इतिहासमाचक्षते' ऐ
कहकर उद्धृत किया है। वेदों की ऋचाओं का अर्थ करते
अन्य आचार्यों के मतों के साथ ऐतिहासिकों के मत का

---

१ त्रितंकूपेऽवहितमेतत् सूक्तं प्रतिबभौ। तत्र ब्रह्मेतिहासमि
ऋङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति।

निरुक्त अ० ४ ख० ६।

२ ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदं आथर्वणमितिहासपुरा
पञ्चमं वेदानां वेदम्।

३ इतिहासवेदधनुर्वेदौ गान्धर्वायुर्वेदावपिचोपवेदाः।

काव्यमीमांसा -- २ अध्याय

उल्लेख निरुक्तकार ने किया है । इससे यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष में इतिहास का पठन पाठन प्राचीन काल से ही प्रचलित है । इतना ही नहीं किन्तु वेदों का अध्ययन दृढ़ होने के लिये इतिहास पुराण के अध्ययन की आवश्यकता बताई गई है और विना इतिहास पुराण के पढ़े, वेद पढ़ने वालों को अल्पश्रुत कहा है और यह भी बताया है कि इतिहास पुराण न पढ़े हुये लोगों से वेद भयभीत[1] रहता है ।

सम्प्रति भारतवर्ष के प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में रामायण और महाभारत की ही गणना होती है। इनमें तथा इनके रचनाकाल के पूर्व के प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में भी जहां कहीं इतिहास है वहां भूतपूर्व वृत्तान्त कथन ही है। कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र[2] में इतिहास वेद की गणना अथर्ववेद के साथ कर, राजा की दिनचर्या में इसका श्रवण आवश्यक बताते हुवे, इसमें पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र का अन्तर्भाव किया है। प्राचीनकाल से ही इतिहास पुराण का उल्लेख साथ २ किया हुआ देखकर राज-

---

१ इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् । बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरेदिति । महाभारत व पुराण ।

२ अथर्ववेदइतिहासवेदौ च वेदाः । १ प्रकरण । विद्यासमुद्देशः । पश्चिमं (अहर्भागं) इतिहासश्रवणे । पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रञ्चेतीतिहासः । २ प्रकरण — वृद्धसंयोगः ।

शेखर[1] ने इतिहास का लक्षण 'पुराणप्रविभेदएवतिहा
ऐसा किया है और इतिहास के परिक्रिया और पुराकल्प
दो भेद माने हैं। जिस इतिहास में एक नायक होता है उस
परिक्रिया और जिसमें एक से अधिक नायक होते हैं उस
पुराकल्प कहते हैं।

'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते' इस उक्ति
अनुसार इतिहास का क्या प्रयोजन है यह कहना आवश्यक
परमेश्वर ने मनुष्य मात्र को एक विलक्षण मनोवृत्ति दी
जिसको जिज्ञासा कहते हैं। हर एक मनुष्य में सदैव अ
वस्तुको जानने की स्वाभाविक इच्छा रहती है। अपने पू
कौन थे ? वे कहां रहते थे ? क्या करते थे ? उनका रहन स
कैसा था ? वे किस राज्य में थे ? इत्यादि बातें जानने
मनुष्य सदैव प्रयत्न करता रहता है। ऐसी जिज्ञासा यदि मनु
में न होती तो खगोल के अनेक ग्रह और उपग्रहों की ग
और स्थितिको जानकर ज्योतिषशास्त्र निर्माण करने
अवसर ही न आता। उत्तर और दक्षिण ध्रुव के बर्फ
जाकर ध्वजारोपण करना, हिमालय के गौरीशंकर. कांचनगं
और धौलागिरि के अत्युन्नत शिखरों पर पहुंचने का प्र
करना आदि कार्य जिज्ञासा प्रेरित ही हैं। इस प्रकार जिज्ञा
मनुष्य मात्र में प्रायशः उत्कटरूप से रहती है। यही जिज्ञा

---

1 पुराण प्रविभेद एवेतिहासः। परिक्रिया पुराकल्प इतिहास
द्विधा। स्यादेकनायका पूर्वा द्वितीया बहुनायका। काव्य मीमांसा २उद्द

तिहास का भी कारण है। इतिहास से केवल जिज्ञासा तृप्ति नहीं होती किन्तु उससे और भी अनेक लाभ हैं।

(१) इतिहास पढ़ने से सज्जन और दुर्जन के चरित्रों का न होकर सज्जनों की सद्गति और दुर्जनों को दुर्गति होती ऐसा दृढ़ विश्वास हो जाता है। यद्यपि यह देखा जाता है सज्जनों को सदैव कष्ट भोगना पड़ता है और दुर्जनों को ष्टता के कारण थोड़े समय तक सुख प्राप्ति का आभास ता है तथापि सज्जनों को कष्ट में भी जितना मानसिक-माधान और सुख रहता है उसका शततमांश दुर्जनों को वृद्धावस्था में भी नहीं प्राप्त होता, अन्त में सज्जनों को य और दुर्जनों का पराजय होता ही है। ऐसे २ चरित्र यदि गों के सम्मुख न रहते तो मनुष्य मात्र की उन्नति असम्भव होती। मनुष्य सदैव अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही रहता र उसे नीति धर्म आदि के उपदेश का कभी भी अवसर आता। किसी विद्वान् का यह कहना कि 'इतिहास प्रत्यक्ष दाहरणों द्वारा किया हुआ उपदेश है' यथार्थ है।

(२) इतिहास पढ़ने से चित्त उन्नत अवस्था को प्राप्त होता और उसे विलक्षण आनन्द मिलता है। मनुष्य स्वभाव नुकरणशील रहने से मनुष्य अच्छी संगति से अच्छा और री से बुरा होता है। इतिहास में प्रायः शूर वीर और त्साही राजाओं का गुण वर्णन रहता है और दुष्टों की निन्दा र तिरस्कृति रहती है। इतिहास पढ़ने से अनुकरणशील

मनुष्य में अच्छा बनने की इच्छा और बुरे कर्मों से घृणा उत्पन्न होती है, जिससे मनुष्य अच्छे २ कार्य करता है और उसका मन सदैव उदात्त व प्रफुल्लित रहता है।

(३) इतिहास से मनोरंजन होता है। इतिहास और उपन्यास की मनोरंजकता में बड़ा अन्तर है। उपन्यास कल्पित है यह ज्ञात रहने से उसके द्वारा जो चित्त पर प्रभाव पड़ता है वह चिरस्थायी नहीं होता। कल्पित, शृंगारवर्णनात्मक नीति रहित उपन्यासों से जो मनोरंजन होता है उससे हानि ही होती हैं। किन्तु इतिहास जनित मनोरंजन से मानसिक उन्नति ही होती है।

(४) इतिहास का परम प्रयोजन राजनीति का परिज्ञान है। प्राचीन इतिहासों को पढ़कर ही राजा लोग अपने पूर्ववर्ती राजाओं की प्रमादजनित आपत्तियों को समझते हैं और स्वयं वैसे प्रमादों से बचते रहते हैं जिसमें वैसी आपत्तियों का उन्हें सामना न करना पड़े। राजशासन में जो उत्तरोत्तर सुधार होते हैं वे प्राचीन इतिहास के ज्ञानमूलक ही हैं।

(५) इतिहास से बुद्धिकी बृद्धि होती है। इतिहास में राजाओं के नाम, समय, शासन की अनेक घटनाएं, देश तथा स्थानों के नाम आदि स्मरण रखने का प्रयत्न करने से स्मरणशक्ति बढ़ती है और उससे मनुष्य बहुश्रुत होता है।

यद्यपि भारतवर्ष में इतिहास विषय प्राचीनकाल से और प्रचलित है तो भी इस विषय के ग्रन्थों की यहां कमी

से ही है। जो कुछ थोड़े प्राचीन ग्रन्थ हैं उनमें भी इतिहास के
ान अंग–समय और स्थल-का यथोचित निर्देश नहीं है।
पि वैदिक काल से इतिहास का उल्लेख स्थान २ पर उन
ल के ग्रन्थों में पाया जाता है तथापि इस विषय के स्वतंत्र
चीन ग्रन्थ रामायण और महाभारत ही विद्यमान हैं। इनमें
पि प्राचीन काल की ऐतिहासिक घटनाएं वर्णित हैं
थापि इन घटनाओं का ठीक २ समय निर्देश इनमें न रहने
कारण इनको ऐतिहासिक ग्रन्थ न कहकर उपदेशक ग्रन्थ
ना ही अधिक इष्ट होगा। इन्हीं ग्रन्थों के सदृश पाश्चात्यों
इलियड (Iliad) और ओडेसी (Odessey) नामक
चीन ग्रन्थ ग्रीक भाषा में हैं। परन्तु ग्रीस देश में इन ग्रन्थों
वाद जैसे समय निर्धारण के साथ ऐतिहासिक अनेक ग्रन्थ
खे गये हैं वैसे भारतवर्ष में नहीं हैं। इसके विद्वानों ने
नेक कारण[1] बताये हैं।

(१) भारतवर्ष में निवृत्ति मार्ग का प्राधान्य होने के
रण और ऐतिहासिक ग्रन्थों का विषय प्रवृत्तिपरक होने से
द्वान् लोग इस तरह के ग्रन्थ लिखने में स्वाभाविकता से ही
वृत्त न हुवे।

(२) भारतवर्ष की शस्यश्यामला भूमि पर निवास करने
लों को अन्नवस्त्र आदि नैसर्गिक वस्तुओंकी कमी न होने
उदर निर्वाह के लिये परदेशगमन, युद्ध आदि पाश्चात्यों

---

१ मेक्डोनल की हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पृ० ११।

के सदृश साहस के कार्य करने का अवसर ही नहीं प्राप्त
इस लिये भावी जनता के उपयोग के लिये इस प्रका
इतिहास लिखने का कोई प्रयोजन ही न था।

वैद्य[1] महाशय के मत से विक्रम संवत् और शालि
शक के आरम्भ के पूर्व में भारतवर्ष में कोई सर्वमान्य संव
प्रचलित न था। यद्यपि इनके पूर्व में महावीर और गौत
के संवत् प्रचलित थे तो भी उनको नास्तिकों के चलाये
समझ कर आस्तिकों ने उनका ग्रहण ही न किया। युधि
संवत् जो कि तीन हजार वर्ष से अधिक प्राचीनका
माना गया है, वह भी आर्यभट के समय (ई० ४७६) प्र
नहीं था। ऐसी अवस्था में प्राचीन ऐतिहासिक ग्र
समय निर्देश न होना स्वाभाविक[2] ही है।

शालिवाहन शक और विक्रम संवत् के भारतवर्ष में
तरह रूढ़ होने के वाद ई० ११श शतक के 'राजतरं
नामक काश्मीर के इतिहास में समय निर्देश स्पष्ट किया
है। राजतरंगिणी के पूर्व तथा पश्चाद्वर्ति कुछ काव्यों[3] में
अपने आश्रयदाता राजाओं का इतिहास दिया है।

हरएक राष्ट्र का इतिहास कई प्रकार से लिखा जा स
है। जैसे राजकीय सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक इत्यादि

---

१ वैद्य की हिस्ट्री आफ् संस्कृत लिटरेचर पृ० २-३।

२ यह बात सर्व सम्मत नहीं है।

३ हर्षचरित विक्रमाङ्कदेवचरित, वेमभूपालचरित आदि।

ाजकीय इतिहास में राजाओं का शासन, राजा प्रजाका
ानिष्ट सम्बन्ध आदि विषय प्रधान रहते हैं। सामाजिक
तिहास में समाज का स्वरूप, रीति रसम, उसकी उन्नति,
ा अवनति, सामाजिक बन्धन, भिन्न २ समाजों का एक
सरे पर प्रभाव आदि विषय होते हैं। साहित्यिक इतिहास
भाषा साहित्य के वैभव का प्राचीनकाल से वर्तमानकाल
क के उतार चढ़ाव का वर्णन, वैभव के कारणीभूत ग्रन्थ
ौर उन ग्रन्थकर्ताओं का चरित्र तथा समयनिर्देश आदि
ाषय रहते हैं। धार्मिक इतिहास में धर्मसम्बन्धि विषय
हता है। ये सब इतिहास परस्पर निरपेक्ष नहीं है। राज-
ीय इतिहास में राजाओं को, शासन सौकर्य के लिये, विद्वान्
न्त्री अथवा किसी बुद्धिमान् पुरुष के साहाय्य की आवश्य-
ता अनिवार्य होने के कारण राजा के वर्णन के साथ उन
िद्वानों का भी वर्णन होता ही है। राज्य में शिक्षाप्रबन्ध
हने के कारण साहित्यिक उन्नति भी राजकीय इतिहास की
ङ्गभूत हो जाती है। राजा और प्रजा का नियत सम्बन्ध
ाने से राजकीय इतिहास का सामाजिक इतिहास से
सम्बन्ध रहना भी स्वाभाविक है। इसी प्रकार राजकीय
तिहास से धार्मिक इतिहास भी सम्बद्ध है। साहित्यिक
तिहास में यद्यपि साहित्य का ही विषय प्रधान है तथापि
स साहित्य की अभिवृद्धि या अवनति, राजा और समाज
ी कृतियों पर तथा उनके धार्मिक विचारों पर निर्भर रहने

के कारण उसमें राजकीय, सामाजिक तथा धार्मिक इति
का विशिष्ट अंश उद्धृत करना आवश्यक होता है। राज
सामाजिक तथा धार्मिक आदि इतिहासों के ग्रन्थ साहि
हो अंगभूत होने से वे साहित्यिक इतिहास के अन्तर्भूत
हैं। इस प्रकार यद्यपि ये सब इतिहास परस्पर सम्ब
तथापि साहित्यिक इतिहास के साथ राजकीय इतिहास
घनिष्ट सम्बन्ध है। इसलिये पाठकों को संस्कृत साहि
इतिहास का पूर्ण परिचय होने के लिये भारतीय इतिहास
ज्ञान भी आवश्यक समझ कर भारत के प्राचीन राज
इतिहास का संक्षिप्त दिग्दर्शन[1] इस पुस्तक के परिशि
किया गया है। राजकीय इतिहासज्ञान के लिये भूगोल
परिज्ञान आवश्यक होने से भारतीय भूगोल[2] का भी सं
विवरण परिशिष्ट में दिया गया है।

प्राचीन काल में इतिहास लिखने के लिये इतनी सा
उपलब्ध नहीं थी जितनी सम्प्रति उपलब्ध है। इस बी
सदी में रेल, पोत, वायुयान, तारायन्त्र, छापाखाना, बेता
तार आदि अनेक सुभीतों से संसार भरकी स्थिति को ज
शिक्षित व्यक्तियों के लिये एक मामूली बात है। प्रा
वस्तुओं का संशोधन, अनेक भाषाओं का ज्ञान और उस
द्वारा प्राचीन शिलालेख और ताम्रपत्रों की लिपि का

१ परिशिष्ट ख

२ परिशिष्ट ग

प्राचीन और अर्वाचीन सिक्कों की उपलब्धि, अनेक भाषाओं में लिखित इतिहास के लेखों का सर्वसाधारण भाषा में अनुवाद, प्राचीन ग्रन्थों की खोज और उनका संग्रह, इस कार्यके लिये सवेतन विद्वानों की नियुक्ति आदि सामग्री विशेष से इतिहास का संशोधन बहुत ही तीव्र गति से आगे बढ़ता जा रहा है। ई० ११वीं सदी में कल्हण ने अपने 'राज-तरङ्गिणी' नामक ग्रन्थ को तयार करने के लिये यद्यपि शिला-लेख ताम्रपत्र आदि का उपयोग किया था तथापि उसका क्षेत्र काश्मीर देश ही परिमित रहने से वह उस कार्य में यथा कथञ्चित् समर्थ हो सका। यदि वह काश्मीर के बाहर के प्रदेशों का भी वर्णन करना चाहता तो आधुनिक साधनों के अभाव में उसके लिये वह कार्य अशक्यप्राय ही होता। आज जिस प्रकार अनेक पाश्चात्य विद्वान् स्वदेश में ही रहकर भारतवर्ष की अनेक प्राचीन सामग्री के आधारपर भारतवर्ष का इतिहास लिखने में समर्थ हो रहे हैं यह बात उनके लिये एक दो शतक पूर्व में असम्भव थी।

भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास लिखने में भारी त्रुटि यह है कि यहां के प्राचीन ग्रन्थकारों ने अपने २ चरित्र और समय के विषय में अपने ग्रन्थों में बहुत ही कम लिखा है। उनके समकालिक भी उनके सम्बन्ध में प्रायः तटस्थ ही हैं। ऐसी अवस्था में भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास लिखने के लियेकेवल निम्न लिखित सामग्री का ही उपयोग करना प्राप्त है।

१ प्राचीन परम्परा (Tradition),

परम्परा से यहां विशेष कर संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थों के ऐतिहासिक उल्लेख ही गृहीत हैं। जैसे—कथासरित्सागर, गौडवहो सत्तसई इत्यादि।

२ विदेशी यात्रियों द्वारा उनकी भाषा में लिखित प्रवास वर्णन जिनका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध है। मेगेस्थनीज, फाहिअन आदि।

३ प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र सिक्के आदि।

४ इतिहास के ढङ्ग पर लिखे हुवे संस्कृत ग्रन्थ। जैसे राजतरङ्गिणी, हर्षचरित आदि।

इस सामग्री के द्वारा ऐतिहासिकों ने जो भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास लिखा है वह ई० पू० ६०० से पहिले का है। इस सामग्री से ई० पू० ६०० से प्राचीनकाल के अर्थात् बुद्ध पूर्वकाल के इतिहास पर काल निर्धारण के विषय में बहुत कम प्रकाश पड़ा है। गौतमबुद्ध और वर्धमान महावीर के चरित्र और समय के विषय में बौद्ध और जैन ग्रन्थों के द्वारा बहुत कुछ ज्ञान हुआ है। ये दोनों ई० पू० छठे शतक में विद्यमान थे। इन दोनों के समय से प्रारम्भ कर सिकन्दर बादशाह के आक्रमण काल (ई० पू० ३२७) तक का इतिहास केवल पुराण, बौद्धों के जातक ग्रन्थ आदिमें निर्दिष्ट वंश परम्पराओं के आधार पर ही रचा गया है।

सिकन्दर के आक्रमण के बाद के भारत सम्राट् मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त का इतिहास; पुराण, मुद्राराक्षस और मेगेस्थनीज् के लेखों से स्थिर हुआ। चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोकवर्द्धन का इतिहास शिलालेखों से निश्चित हुवा। इन शिलालेखों से अशोकवर्द्धन का समय और पुराणों में वर्णित इस काल के इतिहास की प्रामाणिकता सिद्ध हुई। तभी से पुराणों के आधार पर शैशुनाग, मौर्य, शुंग, काण्व, आन्ध्र तथा गुप्त वंशों का इतिहास सुलभता से लिखा गया। इस इतिहास के पुष्टीकरण में अनेक शिलालेख, सिक्के, और विदेशी यात्रियों के लेख भी सहायक हुवे। हर्षकाल का इतिहास बाणभट्ट के हर्षचरित तथा चीन यात्री हुएन्तसेङ्ग के प्रवास वर्णन से उपलब्ध हुवा। हर्ष पश्चात् काल के इतिहास निर्धारण में कल्हण की राजतरङ्गिणी से और उस समय के अनेक कवियों के काव्यों में वर्णित राजाओं के चरित्रों से तथा ताम्रपत्रों से भी बड़ी सहायता मिली है। मुसल्मान, महाराष्ट्र और अंग्रेजों के समय का इतिहास देशी और विदेशी ऐतिहासिकों ठीक २ लिख रक्खा था जो आजकल सर्वत्र उपलब्ध है।

बुद्ध पूर्वकाल से प्रारम्भकर मुसल्मानों के शासन के प्रारम्भकाल तक का इतिहास, जैसा ऐतिहासिकों ने उपर्युक्त सामग्री की सहायता से लिखा है उसी का संक्षिप्त रूप कुछ विशेषता से परिशिष्ट में वर्णित है।

संस्कृतसाहित्येतिहास

साहित्यानुशीलनके दो प्रकार—ऐतिहासिक-आलोचनात्मक - ऐति
सिक प्रकार का प्रयोजनीयत्व और उससे लाभ—इतिहास का साहित्य
प्रभाव—संस्कृत साहित्य के इतिहास की विशेष आवश्यकता - अ
प्रधान ग्रन्थ और उनका अनुपादेयत्व—प्रस्तुत ग्रन्थ।

संस्कृत भाषा, संस्कृत साहित्य और इतिहास विष
साधारण परिज्ञान के पश्चात् संस्कृतसाहित्येतिहास के वि
में भी कुछ लिखना आवश्यक है। यहां, जैसे पहिले कहा
चुका है, संस्कृत साहित्य शब्द विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त
इसलिये संस्कृतसाहित्येतिहास के अन्तर्गत वैदिक ग्रन्थों
लेकर काव्यनाटकादि सभी विषयों का इतिहास
सकता है।

संस्कृतसाहित्येतिहास का प्रधान विषय संस्कृतसा
के उपलब्ध ग्रन्थों का और ग्रन्थकारों का कालक्रम से परि
कराना और उनके विषयों की परस्पर तुलना कर उन
विकास अथवा ह्रास का परिस्थिति के अनुसार प्रतिपा
करना ही है।

साहित्य के किसी ग्रन्थ का अनुशीलन दो प्रकार से
सकता है। १ उस ग्रन्थ के विषय के परिज्ञान की दृष्टि
जिसको अन्तरङ्गानुशीलन भी कहते हैं। २ उस ग्रन्थ
ग्रन्थकार के समय योग्यता और चरित्रानुशीलन की

में—जिसको बहिरङ्गानुशीलन कह सकते हैं । परन्तु ग्रन्थ विषयक सम्पूर्ण परिज्ञान के लिये दोनों प्रकार आवश्यक हैं । सम्पूर्ण साहित्य के अनुशीलन में भी ये दो अङ्ग रहते हैं। प्रारम्भावस्था से वर्तमान समय तक तत्तत् ग्रन्थों के विषय प्रतिपादन में ग्रन्थकारों को क्यों और किस प्रकार| परिवर्तन करना पड़ा अर्थात् प्राचीन आचार्य्यों से लेकर उस ग्रन्थकार के समय तक के उस विषय के ग्रन्थों के विषय प्रतिपादन में गुणदोष विवरण करना और स्वमत के अनुसार उस विषय के सिद्धान्त स्थापित करना यही उस साहित्य का अन्तरङ्ग वा आलोचनात्मक अनुशीलन है। इस प्रकार का अनुशीलन प्रायः संस्कृतके सभी दार्शनिक तथा आलङ्कारिक ग्रन्थोंमें पाया जाता है। दूसरा प्रकार बहिरङ्ग वा ऐतिहासिक अनुशीलन है। इसमें ग्रन्थों के विषय प्रतिपादन में परिवर्तन की आवश्यकता का विचार अप्रस्तुत रहता है। इसका प्रधान क्षेत्र उस विषय के समग्र ग्रन्थों के विषय प्रतिपादन में जो परिवर्तन क्रमशः दीख पड़ते हैं उनका, तत्तत् ग्रन्थ, और ग्रन्थकार के समय और चरित्र के साथ २ दिग्दर्शन करना ही है। आलोचनात्मक अनुशीलन से उस विषय का पूर्ण ज्ञान होकर प्राचीन मतों का समर्थन वा खण्डन करने की शक्ति बढ़ती है। ऐतिहासिक अनुशीलन का भी अत्यन्त प्रयोजनीयत्व है।

संस्कृत साहित्य वृक्ष हजारों वर्षों से भारतवर्षवाटिका में अनेक विद्वान् मालाकारों के बुद्धि जल से प्रतिदिन

सिञ्चित होकर पुष्पित और फलित होता चला आ रहा
इस वृक्ष की जड़ वेद, तथा उपवेद और वेदाङ्ग, शा
पुराण, इतिहास धर्मशास्त्र और अनेक दर्शन, पत्तियां
और छन्द, पुष्प काव्यनाटकादि मनोरंजक ग्रन्थ और
अभ्युदय और निःश्रेयस हैं। इस साहित्य वृक्ष का
रोपण से प्रारम्भकर आजतक के इस विशालरूप का
करना ही इसका इतिहास है। किसी वृक्ष को बीजा
से लेकर फलितावस्था तक जिस किसी ने देखा होगा अ
उसका वर्णन सुना होगा वही उसका यथार्थ ज्ञाता हो स
है। इस प्रकार संस्कृतसाहित्य के अनुशीलन के साथ उ
इतिहास जानने वाला ही संस्कृतसाहित्य का यथार्थ
हो सकता है। अनेक वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, पुराण, इति
काव्यनाटक आदि का पौर्वापर्य सम्बन्ध, परस्पर प्र
प्रत्येक शास्त्र वा काव्य में आरम्भ से लेकर अन्त तक का
रचना प्रकार और उनका परस्पर साम्य और वैषम्य
विषय जो उन ग्रन्थों के यथार्थ ज्ञान के लिये अत्यावश्य
उनका परिज्ञान इतिहास के अवलोकन से ही हो सकता
उदाहरणार्थ—व्याकरण में महाभाष्य वा सिद्धान्त कौमुदी
पूर्व उस प्रकार के व्याकरण के ग्रन्थ थे वा नहीं, यह ज
विदित नहीं है तबतक उनके रचयिताओं के बुद्धि कौशल
ठीक २ अनुमान नहीं हो सकता है। व्याड़ी का लक्ष सं
लुप्त होता जा रहा था उस समय भगवान् पतञ्जलि ने

भाष्य की रचना की अथवा रूपमाला व प्रक्रिया कौमुदी के निर्मिति के बाद ही सिद्धान्त कौमुदी के सदृश निर्दोष ग्रन्थ परिणत हुआ, यह बात इतिहास के द्वारा जानकर बुद्धिमान् मनुष्य अपने बुद्धि बल से ऐसे प्रभावशाली ग्रन्थों का निर्माण कर सकता है, ऐसी धारणा और आत्मविश्वास प्रत्येक मनुष्य के हृदय में उत्पन्न हो जाता है। ग्रन्थों की संगति लगाने में भी उन ग्रन्थों का ऐतिहासिक अनुशीलन अत्यन्त उपयोगी है। इसके अभाव में ग्रन्थों की ठीक २ संगति लगाना कठिन ही है। उदाहरण के लिये—न्यायभाष्य पर उद्योतकर आचार्य ने न्यायवार्तिक की जो रचना की उसके वचनों की ठीक २ संगति उसी विद्वान् को लग सकती है जिसने न्याय भाष्य का बौद्ध आचार्य दिङ्नाग विरचित प्रमाणसमुच्चय वा न्यायप्रवेश नामक खण्डनात्मक ग्रन्थ अच्छी तरह से अवगत किया है। क्योंकि वार्तिक में इसी दिङ्नागाचार्य के न्यायभाष्य पर किये हुवे आक्षेपों का सशास्त्र खण्डन है। साहित्य के ऐतिहासिक अनुशीलन से साहित्यिक ग्रन्थों के निर्माण समय, देश की परिस्थिति, राजाओं का आश्रय, ग्रन्थकारों की मानसिक परिस्थिति, उनके चरित्र का उनके ग्रन्थों पर प्रभाव, साहित्य के विषयों में स्थित्यन्तर के अनेक कारण, भाषाभेद, लिपिभेद, पठनपाठनप्रणाली आदि विषय ज्ञात होते हैं।

इतिहास का साहित्य पर बड़ा ही प्रभाव पड़ता है।

युग भेद से धर्म शास्त्र के विषय बदलते रहते हैं। भाषा-
से ग्रंथ निर्मिति, अनेक प्रकार की हो जाती है। यदि
यागादिका अत्यन्त दुरुपयोग न किया गया होता तो लि
और जैन मत शायद ही उत्पन्न होते। बौद्धों का प्राबल्य
हुआ होता तो शङ्कराचार्य का अद्वैत मत कभी भी निर्मा
न होता। यदि इस अद्वैत मत का दुरुपयोग न होता तो रा
नुज और माध्वसम्प्रदाय प्रवृत्त न होते। यदि भारतवर्ष
मुसलमानों का शासन न होता तो भक्तिमार्ग के तुलसीदास
रामदास, चैतन्य, कबीर आदि के पन्थ व ग्रन्थ निर्माण
होते। इसी प्रकार प्रत्येक दर्शन में काल क्रम से जो विभा
भेद होता गया है जैसे न्याय में नव्य और प्राचीन, सांख्य
में सेश्वर तथा निरीश्वर, मीमांसा में भाट्ट तथा प्राभाकर
मत, वह इतिहासमूलक ही है। इन सब विषयों का परस्प
गत सम्बन्ध जानने के लिये उनका ऐतिहासिक अनुशीलन
अपरिहार्य है।

यदि संस्कृत साहित्य के ऐतिहासिक अनुशीलन के
संस्कृत साहित्य के इतिहास की पुस्तकें होतीं तो सम
उस मार्ग में बहुत उन्नति हुई होती। भारतवर्ष में पाश्चा
के आवागमन के पूर्व संस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक दृ
अनुशीलन करने में भारतीय विद्वानों की प्रवृत्ति ही नहीं थ
ऐसी प्रवृत्ति पाश्चात्यों के संसर्ग से ही हुई, इतना ही नहीं, कि
पाश्चात्यों ने ही संस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशील

र पहिले पहिल संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखना प्रार-म्भ किया। आज भी जर्मन अंग्रेजी आदि पाश्चात्य भाषाओं में लिखे हुए अनेक ग्रन्थ हैं, किन्तु पाश्चात्यों की भाषाओं को न जानने वाले संस्कृत साहित्य के बहुसंख्यक विद्वान् तथा आओं का इन ग्रन्थों से कोई लाभ नहीं होता है। यह देख कर भारतीय विद्वानों ने अपनी २ मातृभाषा में संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखने का प्रयत्न प्रारम्भ किया है। परन्तु अभी तक इस मार्ग में उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिली है, क्योंकि भारतीय भाषाओं में लिखे हुवे संकृतसाहित्येति-हास के बहुतांश ग्रन्थ पाश्चात्य ग्रन्थों के अनुवाद रूप ही हैं। सर् भाण्डारकर, राजेन्द्रलाल मित्र, लो० तिलक, शंकर बाल-कृष्ण दीक्षित आदि विद्वानों ने स्वतन्त्र रूप से स्वयं संस्कृत साहित्य का अध्ययन कर संस्कृत साहित्य के कुछ विषयों पर स्वतंत्र इतिहास लिखा है किन्तु वह भी अंग्रेजी में ही लिखा गया है और वह संस्कृत साहित्यके इतिहासका एक अंश मात्र है। इन विद्वानोंने अपने २ ग्रन्थोंमें पाश्चात्यों के इतिहासोंका उन २ अंशोंमें खण्डन करनेका श्लाघ्य प्रयत्न किया है। संस्कृत साहित्यके इतिहास के सम्बन्ध में पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानोंके मतोंका अनुशीलन कर, संस्कृत साहित्यसे परिचय रखते हुवे उसका इतिहास हिन्दी में लिखने का अभी तक प्रयत्न नहीं किया गया है जिसकी इस समय अत्यन्त आवश्यकता है।

पाश्चात्य विद्वानोंके, ग्रीक सभ्यता तथा साहित्यको
अपनी कल्पना में सब से प्राचीनतम गृहीत कर लेनेके
उनकी दृष्टि में भारतीय साहित्य ज्यादे से ज्यादे उसका
कालिक अथवा उससे कुछ थोड़ा पूर्ववर्ती हो सकता
किन्तु भारत में वेदों का अपौरुषेयत्व तथा अनादित्व
रामायण व महाभारत में क्रम से त्रेता तथा द्वापर युगों
कथानक होने के कारण इन ग्रन्थों की प्राचीनतमता
विद्वानों के हृदय पर अपना पूर्ण अधिकार जमा चुकी
ऐसी अवस्था में दोनों मतों का पूर्ण परिशीलन कर ही
मनुष्य संस्कृत साहित्य का यथार्थ इतिहास लिखने में स
हो सकता है।

संस्कृत साहित्य के सम्पूर्ण विषयों का इतिहास सब
पहिले जर्मन् विद्वान् वेबर ने जर्मन् भाषा में लिखा था
का अंग्रेजी अनुवाद ई० १८५२ में हुआ। ई० १८५९
मेक्समूलर ने भारत के प्राचीन साहित्य का इतिहास अंग्रेजी
में लिखा जिस में केवल वेद और वेदाङ्ग के ही विषय
पाश्चात्य संशोधन के अनुसार ई० अष्टादश शतक से
एकोनविंशति शतक तक के निर्णीत सिद्धान्तों को एकत्र
कर मेकडोनेल महाशय ने संस्कृत साहित्य का इतिहास
लिखा। वेबर और मेक्डोनेल महाशयों के इतिहासों में
मैक्समूलर के इतिहास में भी वैदिक विषय विस्तार पूर्वक
लिखा गया है। मेक्डोनेल के इतिहास में रामायण, महाभारत

और प्राचीन काव्यों का इतिहास भी कुछ विस्तार से दिया
। परन्तु इन तीनों में दर्शनों का इतिहास बहुत ही कम है।
कीथ महाशय ने काव्य और अलङ्कार का इतिहास लिखते
थे उसी ग्रन्थ में नाटकों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के
सभी विषयों का संक्षेप में इतिहास दिया है। इस ग्रन्थ के
पूर्व में ही एक स्वतन्त्र ग्रन्थ नाटकों के इतिहास पर कीथ द्वारा
लिखा गया है। हेरिटेज् आफ इंडिया सीरीज् में इसके लिखे
काव्य, सांख्य-योग, पूर्व मीमांसा, न्याय वैशेषिक, बौद्ध न्याय
आदि विषय के स्वतन्त्र इतिहास ग्रन्थ विद्यमान हैं। केवल
दर्शनों का इतिहास पहिले पहिल मैक्समूलर ने लिखा था।
किन्तु दर्शनों का ठीक २ अध्ययन कर उनका समुचित इतिहास
हाल में भारतीय विद्वान् राधाकृष्ण और दासगुप्त आदि ने
लिखा है। व्याकरण पर वेल्वलकर महाशय की पुस्तक अच्छी
लिखी गई है। न्याय वैशेषिक पर सतीशचन्द्र विद्याभूषण
और गोपीनाथ कविराज के लेख प्रशंसनीय हैं। सांख्य पर
गार्वे महाशय ने और योग पर दास गुप्त ने स्वतन्त्र लिखने
का प्रयत्न किया है। किन्तु पूर्व और उत्तर मीमांसा पर
अभी कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं लिखा गया है। हाल ही
में धर्म शास्त्र का इतिहास काणे महाशय ने लिखा है। इन
सब इतिहासों का विषय एकत्रित कर विण्टर्निटस् महाशय ने
जर्मन भाषा में सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का इतिहास तीन
विभागों में निकाला है। इन तीन विभागों का अंग्रेजी अनु-

वाद होकर प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है। विण्टर्
के सदृश सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का इतिहास हिन्दी
में लिखने का प्रयत्न अभी तक नहीं किया गया है।
हिन्दी में संस्कृत साहित्य के इतिहास पर कुछ ग्रन्थ
गये हैं तथापि वे सन्तोषजनक नहीं हैं।

संस्कृत साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास सप्रमाण
सन्तोषजनक लिखना अत्यन्त कठिन कार्य है। तथापि
जनोंकी आज्ञा से हम लोग इस कार्य में प्रवृत्त हुये हैं।
हम लोगों को कहां तक सफलता मिली है इसका नि
विद्वान् पाठक ही कर सकते हैं।

प्रकरण २

रामायण—महाभारत और पुराण

इतिहास पुराण की उत्पत्ति—वैदिक उदाहरण—इतिहास पुराण की चीनता—विकास—इतिहास के दो भेद—परिक्रिया और पुराकल्प।

हर एक हिन्दू सन्तान रामायण, महाभारत और पुराण न तीन शब्दों से अच्छी तरह परिचित है। रामायण में राम-न्द्र की कथा, महाभारत में कौरवपांडवों की कथा और ुराणों में अनेक भिन्न कथाएं वा आख्यान हैं यह भी उनको वेदित है। रामायण और महाभारत इतिहास ग्रन्थ माने ाते हैं। इनमें भी प्रधान कथा के अतिरिक्त अनेक आख्यान । महाभारत में इन आख्यानों की संख्या रामायण से अधिक । आख्यान, इतिहास और पुराण ये शब्द वेदों के ब्राह्मण न्थों में मिलते हैं। वहां ये शब्द प्रायः एक दूसरेके पर्यायही हैं।

इन आख्यानों का मूल स्वरूप ऋक संहिता के सम्वादा-मक मन्त्र हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १६४ वे सूक्त के

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य ाभिः। पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः

परमं व्योम ॥३४॥ इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अ
भुवनस्य नाभिः। अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं
परमं व्योम, ॥ ३५ ॥ इस मंत्रमें संवाद है। सप्तममण्डल
व ३३ वे सूक्तोंमें और दशम मण्डलके १०म,८६ और ६६
में यमयमी, वृषाकपी और पुरूरवा उर्वशी सवा
इनके अतिरिक्त और भी अनेक संवादात्मक सूक्त ऋ
विद्यमान हैं। जर्मन विद्वान् ओल्डन वर्ग १ (Oldenb
तथा अन्य पाश्चात्य विद्वान् भी आख्यानोंका मूल इन्हीं सं
त्मक मन्त्रोंको ही मानते हैं।

अनन्तर के सूत्र ग्रन्थों से मालूम पड़ता है कि इस वे
के आख्यान, इतिहास और पुराण, श्रौत और गृह्य
धार्मिक विधियों के अङ्गभूत थे। महाभारत में तो इन
आख्यानों के अनुकरण में एक पूरा अध्याय ही है जो 'सु
ध्याय'[२] के नाम से प्रसिद्ध है। छान्दोग्य उपनिषद्[३] के
अध्याय में सनत्कुमार से नारद मुनि ने कहा है कि 'इति
पुराण नामक पञ्चम वेद को मैं जानता हूं।' इससे मा

---

१ कीथ का संस्कृत ड्रामा पृ. १५-२३

२ महाभारत आस्तिक कथा।

३ सहोवाच ऋग्वेदंभगवोऽध्येमि, यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतु
तिहासपुराणं पञ्चमंवेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्य
यनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेव
विदृशंमेतद्भगवोऽध्येमि। छान्दोग्य उपनिषद् ७ अ०।

ता है कि वैदिक काल में भी इतिहास पुराण पढ़ने पढ़ाने
ी प्रथा थी अतएव वे उस समय विद्यमान थे। परन्तु उन
ा क्या रूप था यह कहना अवश्य कठिन है। ब्राह्मण ग्रन्थोंके
ाख्यान, इतिहास, पुराणोंसे अनुमान होता है कि उस
मय वृद्ध लोग कथा के रूप में युवकों को इनका परिचय
राते थे और इन कथाओं का प्रधान उद्देश वेदों में जो
ंक्षिप्त कथाएँ हैं उनकी स्पष्ट प्रतीति करा देना ही था। इसी-
लिये नारदमुनि ने इतिहास पुराण को पञ्चम वेद कहा है।
हाभारत का 'इतिहास[1]पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरेदिति' यह वचन भी इसी-
लिये सार्थक मालूम होता है।

ये आख्यान वा कथाएँ धीरे २ इतनी बढ़ती गईं कि गौतम
बुद्ध के बहुत पहिले ही गद्य पद्यात्मक कथाओं का एक बड़ा
ारी संग्रह हो चुका था। इस संग्रहमें आख्यान, पुराण,इति
ास और गाथाओं का समावेश[2] था। इन्हीं कथाओंसे रामा-
ण, महाभारत, जैन तथा बौद्धोंके पुराण और जातक ग्रन्थ भरे
े हैं। गाथाओं का एक भिन्न प्रकार है जिस को 'नाराशंस'[3]
ाथा कहते हैं। इस में वीरों की स्तुति रहती है। ऋग्वेद की
ान स्तुतियाँ और अथर्ववेद के 'कुन्ताप सूक्तों' की चाल पर

---

१ महाभारत।

२ विण्टर्निट्स् के संस्कृत इतिहास का अनुवाद भाग १ला पृ० ३१४।

३ ऋग्वेद १ मण्डल १२६ सूक्त।

ही 'नाराशंस' गाथा की रचना हुई है। इसी 'नाराशंस'
की प्रणाली का विकास रामायण महाभारतादि ग्रन्थों
ऐसा विद्वान्[1] मानते हैं।

संस्कृत साहित्य में रामायण और महाभारत ग्रन्थ
लिये 'परिक्रिया' और 'पुराकल्प' ये दो पारिभाषिक
रूढ़ हैं। परिक्रिया और पुराकल्प ये इतिहास के दो भेद
गये हैं। जो इतिहास एक नायक के विषय में हो उस
'परिक्रिया'[2] और जिस में एक से अधिक नायक होते हैं
को पुराकल्प कहते हैं। रामायण और महाभारत में प्रा
पौराणिक कथाओं का केवल विस्तृत रूप ही नहीं है
इन में काव्य का कौशल, धर्मशास्त्र, राजनीति के उपदेश आ
अनेक विषय हैं। इन प्राचीन ग्रन्थों का प्रधान विषय, प्रा
समय के इतिहासों का ऐसा निरूपण है जिस के द्वारा
अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थों की प्राप्ति के उपाय सा
अथवा परम्परया दिखाये गये हैं।

---

१ विन्टर्निट्स् के संस्कृत इतिहास का अंग्रेजी अनुवाद भाग
पृ० ३१४।

२ परिक्रिया पुराकल्प इतिहास गतिर्द्विधा। स्यादेकनायका
द्वितीया बहुनायका। काव्य मीमांसा अध्याय २।

रामायण

रामायण का महत्व—स्वरूप—रचयिता वाल्मीकि का चरित्र—समय
र्धारण—महाभारत से रामायण की प्राचीनता—रामायण का पीछे
साहित्य पर प्रभाव—टीकाएँ ।

संस्कृत साहित्य में रामायण के सदृश लोकप्रिय ग्रन्थ
सरे कम हैं। नीति की दृष्टि से इसके समान दूसरा ग्रंथ
संसार के साहित्य में नहीं है। पिता पुत्र धर्म, भ्रातृ धर्म,
तिपत्नी धर्म, स्वामि भृत्य धर्म और अन्य कौटुम्बिक धर्मों
ा यह ग्रन्थ आदर्श है। यही कारण है कि भारतवर्ष के
ाबाल वृद्ध रामायण की कथा से अत्यन्त प्रेम रखते हैं।
ंस्कृत साहित्य में इस ग्रन्थ का स्थान बहुत उच्च है। यह
तिहासिक ग्रन्थ होने पर भी प्रसिद्ध महाकवियों का आदर्श
ूत आदि काव्य है।

इस आदि काव्य को चतुर्विंशति साहस्री कहते हैं अर्थात्
समें २४००० श्लोक हैं और सात काण्ड हैं। जैसे—बालकाण्ड,
योध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दरकाण्ड,
द्धकाण्ड और उत्तर काण्ड। इन काण्डों में क्रम से रामचन्द्र का
न्म, बाल्यावस्था, अयोध्या में निवास, विश्वामित्र के साथ
ज्ञ रक्षण के लिये गमन, मिथिला में जाकर सीता स्वयम्वर
सम्मिलित होना, परशुराम तेजो भंग, राज्याभिषेक की
यारी, वनवास, गुहमैत्री, चित्रकूट निवास, पञ्चवटी आग-
न, हेममृग छल, रावण द्वारा सीता हरण व जटायु वध,

सीता की खोज, किष्किन्धा में सुग्रीव व हनुमान से
बालिवध, सुग्रीव राज्याभिषेक, सीता की खोज में वान
प्रयाण, हनुमान् का समुद्रोल्लंघन, सीता मिलन, लंका
लंका के प्रति वानरादि सेना के साथ प्रयाण, सेतु
राक्षस हनन, रावण वध, विभीषण राज्याभिषेक, श्री
सीता शुद्धि, पुष्पक विमान पर सब के साथ अयो
आगमन, राज्याभिषेक, सीता परित्याग, लवकुशोत्पत्ति
कुशों से रामायण श्रवण आदि कथानक वर्णित है।

यद्यपि वाल्मीकि रामायण का प्रचार सम्पूर्ण भारत
है तथापि सब प्रान्तों में रामायण का पाठ एक ही प्रक
नहीं है। पाठभेद के अनुसार रामायण के तीन प्रकार
जाते हैं। (क) पश्चिम आर्यावर्त में उपलब्ध (ख) वङ्गीय
(ग) बम्बई प्रान्त में उपलब्ध। इन तीनों का वैशिष्ट्य
कि इनमें लगभग तृतीयांश श्लोक संख्या प्रायः एक दू
भिन्न है।

करीब ८००० श्लोक जो (क) में है वे अन्य दो प्रति
अक्षरशः नहीं मिलते। (ख) के करीब इतने ही श्लोक (क)
(ग) में तथा (ग) प्रति के करीब इतने ही श्लोक (क)
(ख) में अक्षरशः एक नहीं हैं।

इसका प्रधान कारण यही प्रतीत होता है कि बहुत
तक स्तुतिपाठकगण रामायण को कण्ठस्थ ही सुनाते
और ग्रन्थ लिखने के समय प्रान्त भेद से स्तुति पाठकाय

पाठों में प्रक्षेप होकर ये तीन प्रकार हुवे[1]। ये तीनों प्रतियाँ करीब १००० वर्ष के पहिले भी विद्यमान थीं यह बात क्षेमेन्द्र की रामायण मञ्जरी और भोजराज के रामायण चम्पू से तुलना करने पर विदित होती[1] है।

यद्यपि मेक्डोनल् आदि ने रामायण के उपर्युक्त तीन प्रकार दिखाये हैं तो भी इनमें इतना भेद नहीं है। प्रायः स्मार्त, वैष्णव तथा रामानुज सम्प्रदायों के साम्प्रदायिक पाठ भेदों से ही यह भेद अवगत होता है[2]।

पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि रामायण के बालकाण्ड और उत्तर काण्ड मूल ग्रन्थ में नहीं थे और बाद में जोड़ दिये गये हैं। क्योंकि युद्ध काण्ड के अन्त में काव्य की समाप्ति के सम्पूर्ण लक्षण मिलते हैं और बालकाण्ड की भाषा अन्य काण्डों की भाषा से भिन्न है। प्रो० याकोबी ने रामायण का सूक्ष्म अध्ययन कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मूल रामायण में अयोध्या काण्ड से युद्ध काण्ड तक पांच

---

१ मेक्डोनल का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ३०३

२ जिस प्रकार वाल्मीकि से लव और कुश ने रामायण सीखकर कण्ठस्थ की थी, बहुत सम्भव है कि वही कण्ठस्थ करने की प्रणाली चिरकाल तक प्रचलित रही हो। किन्तु [illegible] ऐसी प्रसिद्धि है कि इसमें २४००० श्लोक हैं और प्रत्येक हजार [illegible] का प्रथम अक्षर गायत्री के क्रम से एक २ अक्षर से प्रारम्भ होता है अर्थात् २४००० श्लोकों में गायत्री के २४ अक्षर आ जाते हैं।

ही काण्ड थे और बालकाण्ड में कई वचन ऐसे हैं जो
अनन्तर के पांच काण्डों के वचनों से सम्मत नहीं हैं
बालकाण्ड के प्रथम और तृतीय सर्ग में सूचियां हैं जिन
एक में बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड का निर्देश नहीं
मूल के पांच काण्डों में भी अनेक सर्ग प्रक्षिप्त हैं जिन
परिज्ञान सूक्ष्म निरीक्षक को सहज ही में हो सकता
किन्तु उत्तर काण्ड के विषय में वैद्य महाशय ने कहा है
उसमें वर्णित एक श्लोक पाली भाषा में परिणत होकर द
जातक में आया है। इस जातक का समय ई० पू० ३ य
माना गया है। इसलिये उत्तरकाण्ड इस समय से
प्राचीन है ऐसा मानना आवश्यक होता है। उत्तरकाण्
सरल वर्णन वाल्मीकि के अतिरिक्त और कोई कर सका
इसकी सम्भावना नहीं हो सकती है। युद्ध काण्ड के अ
रामायण समाप्ति के जो लक्षण मिलते हैं उसका कारण
है कि वाल्मीकि ने लवकुश को वहीं तक रामायण सिखा
और आगे का अंश, जिसमें उनका भी वर्णन था, उ
सिखाना अप्रयोजक समझा था। इसीलिये रचयिता ने
काण्ड के अन्त में समाप्ति सूचक कुछ चिन्ह रक्खे
साम्प्रदायिक पाठक्रम में भी उत्तर काण्ड का उपयोग
कम होने के कारण एक प्रकार से रामायण की समाप्ति

१ चिं० वि० वैद्य का 'संस्कृत वाङ्मायाचा त्रोटक इतिहास'
रामायण प्रकरण।

काण्ड के बाद ही हो जाती है। यही बात अध्यात्म रामायण में भी विद्यमान है। बालकाण्ड के विषय में विद्वानों में अभी मतभेद है।

रामायण के रचयिता महाकवि वाल्मीकि थे। इनका नाम प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। ये ही योगवासिष्ठ के रचयिता माने जाते हैं। ये ब्राह्मण थे। इनके सम्बन्ध में एक दन्त कथा है कि ये पहिले पथिकों को लूट कर अपने अन्ध माता पिता का भरण पोषण करते थे और अन्त में नारदमुनि के उपदेश से राम नाम जपने में इतने लीन हो गये की उनके शरीर पर वल्मीक[1] जम गया। इसीसे इनका नाम वाल्मीकि ऋषि हो गया। महाभारत में भी वाल्मीकि को ब्राह्मणों की हत्या करने वाला कहा है। इससे इस दन्त कथा में कुछ तथ्य भासता है। वाल्मीकि वैदिक ऋषि थे और महाभारत में इनका उल्लेख वशिष्ठादि प्राचीन ऋषियों के साथ मिलने से, कहा जा सकता है कि ये रामचन्द्र के समकालिक थे। रामायण की कथा से भी यही बात सिद्ध होती है। महाभारत के नायक कौरव पाण्डव इनके बहुत बाद के हैं। रामचन्द्र जी ने सीता को जब जंगल में त्याग दिया था तब वाल्मीकि ने ही सीता का पालन पोषण व उसके नवजात लवकुश बालकों का रक्षण, उपनयन और उनको रामायण का अध्यापन किया था। वाल्मीकि आदि कवि कहलाते हैं।

---

१ बिवँटिओं द्वारा एकत्रित मिट्टी का ढेर।

ऋक् संहिता[1] में जो राम शब्द आया है वह वैद्य महा
के मत से रामचन्द्र का नाम है। यदि यह ठीक हो तो इ
यह अनुमान हो सकता है कि दशम मण्डल की रचना
के पूर्व में रामचन्द्र राजा माने जाते थे। पाश्चात्यों के मतानु
दशम मण्डल का रचनाकाल कम से कम ई० पू० १५००
माना जाता है। ज्योतिष शास्त्र के प्रमाण के अनुसार शत
ब्राह्मण का काल ई० पू० २५०० है। इस अन्दाज से ऋग्वे
अर्वाचीन मण्डलों का रचना काल ई० पू० ४००० वर्ष
लो० तिलक और अन्य ज्योतिर्विद मानते हैं। जर्मन वि
याकोवी भी इसमें सहमत हैं। इस प्रकार वाल्मीकि
समय पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार ई० पू० १५००
अन्य मत के अनुसार ई० पू० ३००० या ४००० वर्ष से भी
मान लिया जा सकता है।

कतिपय विद्वानोंने वर्तमान वाल्मीकि रामायण में
कुछ प्रक्षेप माना है। 'यथाहि चौरस्तथाहि बुद्धः' ऐसे
रामायण के वचन अत्यन्त अर्वाचीन माने जाते हैं।
प्रक्षिप्त भाग को-जो अधिकांश रामायण के प्रथम और स
काण्ड में विद्यमान है—छोड़कर बाकी का रामायण का
कम से कम ई० पू० ५०० या ६०० से प्राचीन माना जाता है
इसमें मगध की राजधानी का नाम पाटली पुत्र उल्लिखि

---

१ प्रतद्दुःशी में पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु। मण्डल ९३।१४

होकर राजगृह है। इतिहास में यह सिद्ध किया गया है कि नूतन राजगृह और पाटलीपुत्र ई० पू० षष्ठ शतक में शिशुनाग वंश के बिम्बिसार और अजातशत्रु के समय में स्थापित[1] किये गये थे। बौद्धों के जातक ग्रन्थों में एक ग्रन्थ 'दशरथ जातक' है जिसमें रामायण की कथा मिलती है। बौद्धों के समय अयोध्या नगरी का नाश हो चुका था और उसके पास ही साकेत नाम का दूसरा नगर स्थापित हुआ था। रामायण में कहीं साकेत का नाम नहीं है और उसमें वर्णित अयोध्या नगरी अत्यन्त उन्नत अवस्था में दिखाई गई है। ई० पू० ४०० या ५०० वर्ष के लगभग का दक्षिण भारत का इतिहास बहुत कुछ ज्ञात है। परन्तु रामायण में वर्णित दक्षिण भारत की परिस्थिति इस काल से अत्यन्त भिन्न प्रतीत होती है। इतना ही नहीं किन्तु महाभारत में वर्णित परिस्थिति से भी बहुत प्राचीन मालूम होती है। महाभारत के समय दक्षिण में बड़े २ समृद्ध राज्य हो चुके थे। किन्तु रामचन्द्र की दक्षिण यात्रा के समय दक्षिण में राक्षसों तथा वानरों का ही साम्राज्य दीख पड़ता है। इससे यह सिद्ध होता है कि वाल्मीकि ने जो रामायण लवकुश को पढ़ाई थी वह बहुत प्राचीन रही होगी और उसकी भाषा वेद, ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा के सदृश रही होगी। वर्तमान रामायण की भाषा में यद्यपि अनेक आर्ष प्रयोग विद्यमान हैं तो भी वह वैदिक

१ स्मिथ का भारत का प्राचीन इतिहास ४र्थ मुद्रण पृ० ५१

काल की भाषा नहीं कही जा सकती। सम्भव है कि
अन्य भाग जो प्रक्षिप्त माना जाता है वह भी ई० पू०
से अर्वाचीन न हो। क्योंकि ई० १ म व २ य शतक में
घोष ने जो काव्य लिखे हैं उनसे यह बात स्पष्ट है कि
समय वर्तमान सम्पूर्ण रामायण अश्वघोष को ज्ञात
अश्वघोष के बाद एक या दो शतक के भीतर ही भार
बाहर भी रामायण की प्रसिद्धि हुई थी और इसका अ
अन्य भाषाओं में हो चुका था। चाणक्य के अर्थशास्त्र में
रामायण की चर्चा है परन्तु बहुत सम्भव है कि यह
प्राचीन रामायण की ही हो।

महाभारत में कई स्थलों पर वाल्मीकि और उनके
चित रामायण का उल्लेख मिलता है और वाल्मीकि राम
का एक श्लोक भी महाभारत में है। महाभारत का राम
ख्यान वाल्मीकि रामायण के ही आधार पर रचा गया
इसलिये महाभारत काल में वाल्मीकि की प्राचीनता निःस
सिद्ध हो चुकी थी। यह माना गया है कि वाल्मीकि
के पूर्व लौकिक अनुष्टुप् छन्द नहीं था और इन्होंने 'मानि
इत्यादि श्लोक की रचना कर सर्व प्रथम लौकिक अनु
छन्द को रूढ़ किया। 'मानिषाद' इत्यादि श्लोक के अनु

---

१ मानिषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौंचमिथुना
मवधीः काम मोहितम्॥ रामायण बाल-काण्ड २ सर्ग श्लो० १५

न्द से तथा वैदिक अनुष्टुप् छन्द से बहुत कुछ सादृश्य है। सके इसकी प्राचीनता झलक पड़ती है। महाभारत में भी नुष्टुप् छन्द है जो कि लौकिक अनुष्टुप् छन्द के अधिक दृश है। इस दृष्टि से भी रामायण महाभारत के पूर्व ही की तीत होती है।

रामायण एक उत्तम काव्य है। संस्कृत के महाकाव्यों की चना इसी ग्रन्थ के अनुसार की गई है। अलङ्कार शास्त्र में महाकाव्य का लक्षण बताया है वह इसी ग्रन्थ को सामने खकर किया गया है। रामायण के सर्ग, सर्गों के अन्त में न्न २ छन्द, नदी, पर्वत, ऋतु आदि का आलङ्कारिक वर्णन त्यादि जो गुण हैं वे ही अलङ्कार शास्त्रों में महाकाव्य के लये आवश्यक माने गये हैं। रामायण का कथानक अत्यन्त दात्त होने के कारण बाद के प्रसिद्ध २ अनेक महाकवियों ने पने २ महाकाव्य तथा नाटकों का कथानक इसी ग्रन्थ से लिया है। कालिदास के रघुवंश में वर्णित इक्ष्वाकु वंश की शावलि वाल्मीकि की वर्तमान रामायण की वंशावलि से हीं मिलती है। इसलिये कुछ विद्वानों का मत है कि कालिदास ने अपने ग्रन्थमें पुराणों को देखकर वंशावलि दी है। रन्तु पुराणों की वंशावलि से कालिदास के रघुवंशकी वंशावलि र्ण रूप से नहीं मिलती[1]। इसलिये अनुमान किया जा सकता

[1] परिशिष्ट (क) में अनेक पुराणों की वंशावलियां रामायण की शावलि के साथ दी हैं।

है कि कालिदास के समय रामायण में दी हुई वंशावलि वर्त-
मान रामायण की वंशावलि से भिन्न होगी। संस्कृत
महाकवियों ने ही नहीं, किन्तु भारतीय अन्य भाषाओं
हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला आदि के श्रेष्ठ कवि तथा
सन्तों ने अपने २ ग्रन्थों में प्रायः इसी ग्रन्थ का अनु-
किया है।

रामायण आदि काव्य है और उसके रचयिता वाल्मीकि
आदि कवि कहलाते हैं। रामायण में कुछ उपाख्यान हैं।
उपाख्यान प्रायः बालकाण्ड ही में विशेष हैं। इनमें
'गङ्गावतरण' 'विश्वामित्र का ब्रह्मर्षि होना' आदि
इस काव्य के नायक नायिका आदर्श हैं और इस प्रकार
उदात्त नायक नायिका संसार के किसी काव्य में नहीं
इसके अयोध्या काण्ड का वर्णन सबसे श्रेष्ठ है। इसमें
अलङ्कार, उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा हैं। इनके अतिरिक्त
अलङ्कार भी हैं। इसमें श्लेषालङ्कार केवल एक ही स्थल
मिलता है ऐसा वैद्य महाशय[1] का मत है। यह ग्रन्थ
मनोहर तथा रोचक काव्य है।

वाल्मीकि रामायण पर ३० टीकाएँ लिखी गई हैं
आफ्रेक्त की सूची से ज्ञात होता है। इनमें कतक
टीका सबसे प्राचीन है और गोविन्द राजकी शृङ्गार

१ चिं० वि० वैद्य का "संस्कृत वाङ्मयाचा त्रोटक इतिहास"
रामायण प्रकरण।

क टीका, रामभूप की (नागेश की) टीका, रामानन्द तीर्थ रामायण कूट टीका, विश्वनाथ की वाल्मीकि तात्पर्य णी और वरदराज की विवेक तिलक नाम की टीकाएं द्ध हैं।

महाभारत

महाभारत का महत्व—स्वरूप—रचयिता व्यास का चरित्र—समय रिण—महाभारतस्थ विषयों का विवरण तथा वैशिष्ट्य—महाभारत पीछे के साहित्य पर प्रभाव—टीकाएँ।

भारतवर्ष में महाभारत प्राचीन इतिहास का एक प्रधान थ माना गया है। यहां पर यह आज कल की ऐतिहासिक तर्कों की दृष्टि से नहीं देखा जाता किन्तु हिन्दू जनता को धर्म ग्रन्थ मानती है। जिस प्रकार रामायण की कथा न्दू आबाल वृद्ध में प्रसिद्ध है उसी प्रकार इसकी भी सिद्धि है। इस श्रद्धाहीन काल में भी हजारों हिन्दू स्त्री ष, मन्दिरों और कथालयों में इसका कथानक सुनने जाते इसमें का भगवद्गीता ग्रन्थ संसार के लिये एक रत्न है। ा कोई विषय नहीं है जो महाभारत में न[1] हो। इसकी नी प्रतिष्ठा है कि इसको पञ्चम वेद मानते हैं। पाश्चात्यों इसको इतिहास, आख्यान और पुराणों का प्राचीनतम ान निदर्शक माना है।

१ यदि हास्तितदन्यत्र यन्नेहास्तिन तत्क्वचित्। महाभारत।

महाभारत पहिले इतिहास के रूप में निर्मा[illegible]
जिसका नाम 'जय'[1] माना जाता है। महाभारत के म[illegible]
'नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सर[illegible]
ततो जय मुदीरयेत्' में 'जय शब्द' का प्रयोग इसी [illegible]
भारत युद्ध में पाण्डवों का विजय वर्णन ही इस[illegible]
हेतु होने से इसको 'जय' कहा होगा। पाश्चात्य
महाभारत में कूट श्लोकों के विषय में जो वचन[illegible]
उसीको लेकर 'जय' ग्रन्थ की श्लोक संख्या ८८०० [illegible]
किन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि आगे यह भी क[illegible]
वेदव्यास ने तीन वर्ष तक रात दिन परिश्रम कर [illegible]
तयार किया था। ऐसी अवस्था में उस ग्रन्थ [illegible]
संख्या इतनी कम नहीं हो सकती। वैशम्पायन ने [illegible]

---

१ नीलकंठ महाभारत की टीका के आरम्भ में '[illegible]
श्लोक के व्याख्यान में 'जय' शब्द की इस तरह व्याख्या करते [illegible]

जयो नाम इतिहासोऽयमिति वक्ष्यमाणत्वात् जयसंज्ञं भारताख्यमि[illegible]
अष्टादशपुराणानि रामस्य चरितं तथा कार्त्स्न्यं वेदं पञ्चमंच यन्महा[illegible]
तथैवविष्णुधर्माश्च शिवधर्माश्चशाश्वताः जयेति नामतेषाञ्च प्रवदन्ति[illegible]
इति भविष्यवचनात् पुराणादिकंवा।
चतुर्णां पुरुषार्थानामपि हेतौ जयोऽस्त्रियाम्। इतिकोशात्
अन्यं वासवंपुरुषार्थप्रतिपादकं ग्रन्थं शारीरकसूत्रभाष्यादिरूपम्।

२ अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानिच।
अहं वेद्मि शुकोवेत्ति सञ्जयोवेत्तिवानवा॥ महाभारत।

को पढ़ा था तब इसको पुराण का स्वरूप आ गया था।
पायन ने इस ग्रन्थ को जनमेजय को पढ़ाया था और तभी
सकी संज्ञा भारत हुई। इसमें उपाख्यानों का समावेश
किया गया था और इसकी श्लोक संख्या २४०००[1] थी।
महाभारत का मूल ग्रन्थ है। वैशम्पायन से प्रचलित
ग्रन्थ का रोमहर्षण के पुत्र सौती ने अध्ययन कर आ-
ान तथा उपाख्यानों से इसे खूब बढ़ाया और १८ पर्वों का
ग्रन्थ हरिवंश के साथ लक्ष ग्रन्थ तयार हुआ। इसी का
भारत नाम पड़ा। महाभारत को प्राचीन समय से ही
ति अथवा धर्म ग्रन्थ मानते हैं। इस तरह इस महाभारत
तीन प्रकार वा भेद हैं जो महाभारत की भाषा से भी
गत हो सकते हैं।

महाभारत के दो प्रकार के पाठभेद वर्तमान समय में
लते हैं। उत्तरीय भारत में प्रचलित महाभारत के पाठ से
क्षिण भारत के महाभारत का पाठ कुछ भिन्न है।

यह लक्ष श्लोकात्मक ग्रन्थ, यद्यपि सौति ने शौनक को
ाया था तो भी महर्षिव्यास विरचित ही माना जाता है।
स को ही प्रायः वेदव्यास कहते हैं। क्योंकि इन्होंने समस्त
ों को चार विभागों में विभक्त कर सुमन्तु, जैमिनि, वैश-
ायन और पैल, इन चार शिष्यों को क्रम से अथर्व, साम,

---

१ चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यते बुधैः। ॥ महाभारत।

यजुः और ऋग्वेद पढ़ाये थे। ये ही वेदव्यास १८ पु
के भी रचयिता माने गये हैं। ये पाराशर ऋषि और स
के पुत्र थे। भारत की परम्परा में ये चिरजीवी[1] मा
हैं। भारतीय युद्ध के समय इनका अस्तित्व महाभारत
सिद्ध है। इन्हीं को कृष्णद्वैपायन भी कहते हैं। गं
द्वारा महाभारत का युद्ध काल किसी के मत से ई० पू० इ
या १५०० और किसी के मत से ई० पू० ३००० भी है[2]। प्रथ
मानने वाले प्रसिद्ध ज्योतिषी शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित
के मत से यह समय ऋग्वेदाङ्ग ज्योतिष का रचना
द्वितीय समय मानने वाले प्रसिद्ध ऐतिहासिक चि
राव वैद्य हैं। इनके मत से यह काल वैदिक संहि
रचना काल है। वैद्य महाशय के मत से वेद विभाज
महाभारत के रचयिता एक ही हैं। अतएव वेदव्या
समय बहुत प्राचीन है।

'जय' ग्रन्थ का निर्माण काल भारतीय युद्ध ही
मानना आवश्यक है। क्योंकि महाभारत से मालूम
कि धृतराष्ट्र के अन्धे होने के कारण, वेदव्यास की प्रार्थ
उनकी कृपा से संजय को दिव्य दृष्टि प्राप्त कराई गई थी
के द्वारा संजय उस महायुद्ध का इतिवृत्त धृतराष्ट्र को

---

१ अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमाँश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

२ वैद्य का 'संस्कृत वाङ्मयाचा त्रोटक इतिहास' पृ० ७५।

था। यही 'जय' नाम का इतिहास है जो धृतराष्ट्र के बाद भी वृद्ध परम्परा से लोक में सुनाया जाता था। बहुत सम्भव है कि इसके बाद वैशम्पायन ने व्यास जी के पास जा कर इस 'जय' ग्रन्थ को बढ़ाकर भारत के रूप में लोक प्रसिद्ध किया हो[1]। इसलिये जय और भारत दोनों अत्यन्त प्राचीन हैं इस में कोई सन्देह नहीं है।

महाभारत के समय के विषय में विद्वानों में अनेक मत प्रचलित हैं। परन्तु इस विषय में सब का ऐकमत्य है कि ई० ३ य और ४ र्थ शतक में यह लक्ष ग्रन्थ, जैसा आज हमारे सामने है, प्रसिद्ध था। क्योंकि ई० ४४२ के एक शिला लेख में इस ग्रन्थ का 'शत साहस्र्यां संहितायां वेदव्यासेनोक्तम्' ऐसा स्पष्ट निर्देश मिलता है। पूर्व में कहा जा चुका है कि रामायण और महाभारत जिस रूप में आज हैं उसी रूप में ई० २ य शतक के आरम्भ में वर्तमान अश्वघोष को ज्ञात थे। यह बात अश्वघोष विरचित काव्यों से स्पष्ट है। आश्वलायन के गृह्य सूत्र में प्राचीन आचार्यों के नाम निर्देशन[2] में भारताचार्य और महाभारताचार्य ऐसे दो भिन्न आचार्यों का नाम निर्देश मिलता है। आश्वलायन का समय पाश्चात्य विद्वानों[3] के मतानुसार

---

१ चिं० वि० वैद्य का 'महाभारत ए क्रिटिसिज्म' महाभारत प्रकरण।

२ सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्याः। आश्वलायन गृह्य सूत्र ३ अध्याय ३ खण्ड।

३ बुहलर (S. B. E. Vol 14) भूमिका।

ई० पू० ४ र्थ वा ५ म शतक है। वौधायन के गृह्य
भगवद्गीता का एक श्लोक[1] उपलब्ध है। इसी सूत्र में
सहस्र नाम का उल्लेख और महाभारत के ययाति उ
का एक श्लोक भी है। इसलिये यह स्पष्ट है कि ई०
वा ५ म शतक के आश्वलायन और वौधायन को भारत,
भारत और इनके दो रचयिता पृथक् २ ज्ञात थे। लो०
ने अपने 'गीता रहस्य' में महाभारत का काल निर्णय
समय गणित के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया
उपलब्ध महाभारत का रचना काल ई० पू० ५०० से
प्राचीन नहीं मानना चाहिये।

महाभारत में आदि, सभा, वन, विराट्, उद्योग,
द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशास
मेध, आश्रमवासाख्य, मौशल, महाप्रास्थानिक,
स्वर्गारोहण ये अठारह पर्व हैं। आदि पर्व में चन्द्र
कौरव पाण्डवों की उत्पत्ति, सभा पर्व में द्यूतक्रीड़ा, वन
पाण्डवों का वनवास, विराट् पर्व में अज्ञातवास, उद्योग
में श्रीकृष्ण का दूत बनकर कौरवों की सभा में जाना
भीष्म पर्व में अर्जुन को भगवद्गीता का उपदेश, यु
आरम्भ और भीष्म पितामह का युद्ध और शरशय्या
स्थित होना, द्रोणपर्व में अभिमन्यु तथा द्रोणाचार्य का

[1] पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। गीता
बौधायन गृह्यसूत्र

र वध, कर्ण पर्व में कर्णयुद्ध और वध, शल्य पर्व में शल्य
और वध, सौप्तिक पर्व मे धृष्टद्युम्न समेत पाण्डवों के
ों का निद्रावस्था में अश्वत्थामा द्वारा वध; स्त्री पर्व में
यों का वधस्थान पर विलाप, शान्ति पर्व में भीष्म पितामह
युधिष्ठिर को मोक्ष धर्म का उपदेश, अनुशासनपर्व में
क प्रकार के धर्म तथा कथाएँ, अश्वमेध पर्व में युधिष्ठिर
अश्वमेध यज्ञ करना, आश्रमवासाख्य पर्व में धृतराष्ट्र
धारी आदि का वानप्रस्थ आश्रम प्रवेश, मौशल पर्व में
दववंश का नाश, महाप्रास्थानिक पर्व में, पाण्डवों की
न्तिम यात्रा और स्वर्गारोहण पर्व में पाण्डवों का स्वर्ग
जाना वर्णित है।

रामायण और महाभारत इन दोनों ही प्राचीन ग्रन्थों में
ान कथा के साथ अन्य कथाएं भी हैं। रामायण में ऐसी
थाएँ प्रधान कथा की अङ्गभूत हैं। परन्तु महाभारत में इन
थाओं की संख्या बहुत अधिक है। महाभारत के मुख्य २
ाख्यानों में से कुछ ये हैं।

शकुन्तलोपाख्यान ÷ यह महाभारत के आदि पर्व में
कालिदास ने इसी की छाया पर अपने प्रसिद्ध शाकुन्तल
टक की रचना की है।

मत्स्योपाख्यान ÷ वन पर्व में युधिष्ठिर के समाधान के
ये ऋषियों ने अनेक कथाएँ कही हैं। जिनमें यह भी एक
इसमें प्रलयकाल में मत्स्य द्वारा मनु के बचाये जाने कि

कथा है। इसमें मत्स्यावतार ब्रह्मा का माना गया है औ
को सृष्टिकर्ता कहा है।

रामोपाख्यान ÷ वन पर्व में ही यह उपाख्यान है,
वाल्मीकि रामायण की कथा संक्षेप में कही गई है। वा
रामायण के बालकाण्ड की गङ्गावतरण की कथा
इसमें उल्लेख है।

राजा शिबि की कथा ÷ इसी पर्व में उशीनर के
शिबि का, अपना प्राण देकर शरणागत कपोत की श्येन
से रक्षा करने की कथा है।

सावित्री उपाख्यान ÷ इसी पर्व में सावित्री का
द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् से, नारद द्वारा उसकी
वर्ष की आयु बताई जाने पर भी विवाह करना, लकड़ि
हुवे जंगल में सत्यवान् का सर्प दंश से मरना; सावि
सत्यवान् के प्राणों के ले जाने वाले यमराज का पीछा
सावित्री की दृढ़ता से प्रसन्न होकर यमराज का सत्य
जीवन के अतिरिक्त अन्य कई वरदान देना; अन्त
सत्यवान् की प्राप्ति आदि कथा है। यह कथा पं
स्त्रियों की कथाओं में सर्व श्रेष्ठ मानी जाती है।

नलोपाख्यान ÷ इसी पर्व में श्री हर्ष कवि
काव्य की आधारभूत नल कथा है। यह कथा बृह
राजा युधिष्ठिर को धीरज दिलाने के लिये कही है।
नल और दमयन्ती का हंस के दौत्य से विवाह; कुछ

नका सुख से रहना; नल का जूवे में अपना राजपाट हार
गल २ दमयन्ती के साथ भटकना; दमयन्ती का अपने
ता के घर जाने का प्रतिषेध; दमयन्ती को अकेली छोड़
ल का भाग जाना और अग्नि में से कर्कोटक सर्प को छुड़ाते
मय उससे दष्ट होने से कृष्ण वर्ण का हो जाना तथा पूर्व-
प बदल कर बाहुक के वेश में रहना, दमयन्ती का विलाप
था अपने पिता भीष्म के यहां जाना; नल का अयोध्या के
जा ऋतुपर्ण के यहां सारथी बनकर रहना; दमयन्ती को
ल का पता लगना; ब्राह्मण द्वारा दो दिन के अन्दर ऋतुपर्ण
ो स्वयंवर में बुलाना; ऋतुपर्ण का आना और नल का
हिचाना जाना और अन्त में नल की विजय आदि कथा है।

इस महाभारत का अत्यन्त महत्व का भाग भीष्मपर्व में
द्ध के समय अर्जुन का मोह दूर करने के लिये भगवान्
ीकृष्ण का उपदेश है जो श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से
सिद्ध है। यह भाग महाभारत के सब से प्राचीन भागों में
ै। इसकी भाषा और छन्दों से इसकी प्राचीनता झलक
पड़ती है। इसमें ७०० श्लोक हैं जो १८ अध्यायों में विभक्त
। महाभारत के स्मृतिग्रन्थ माने जाने में एक कारण
गीता भी है। महाभारत में अन्य भी अनेक गीताएं हैं।
पुराणों में भी गीता ग्रन्थ हैं। परन्तु वे सब श्रीमद्भगवद्गीता
े आधार पर ही रचे गये हैं अतएव अनन्तर के हैं। संसार
के साहित्य में इस ग्रन्थ का सानी दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं

है। ऐसी कोई भाषा न होगी जिसमें इसका अनुवाद न
हुआ हो। इससे यह सिद्ध होता है कि इसके महत्व का
ज्ञान केवल भारतवासियों को ही नहीं है किन्तु संसार के
सर्व धर्मावलम्बियों को है। भारत में जितने दर्शन बने
सब दर्शनों का इस छोटे से ग्रन्थ में अन्तर्भाव है।
प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग का सुन्दर मेल है।
सम्पूर्ण उपासना, कर्म, भक्ति और वैराग्य मार्गों का
इसमें विद्यमान है। वेदान्तियों ने अपना मत स्थिर
लिये ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् और गीता को
माना है। वेदान्त के सभी आचार्यों ने इसपर भाष्य
हैं। भाष्यों के अतिरिक्त इसपर अनेक टीकाएं भी लिखी

महाभारत ग्रन्थ की लक्ष संख्या पूरी करने
उसके परिशिष्ट हरिवंश की भी इसमें गणना करना
श्यक है। इस ग्रन्थ के नाम से ही यह स्पष्ट है
हरि वा कृष्ण के वंश का वर्णन है। यादवों की
विस्तार से वर्णित है। इसमें १६००० श्लोक हैं जो
पर्व, विष्णु पर्व और भविष्य पर्व इन तीन विभागों
विभक्त हैं। हरिवंश पर्व में श्री कृष्ण के पूर्वजों
है। विष्णु पर्व में श्रीकृष्णलीला वर्णित है। भविष्य
में कलियुग का प्रभाव बतलाया गया है। इसके सम्बन्ध
ऐसी प्रख्याति है कि जिसे सन्तान न होती हो
भक्तियुक्त होकर इस हरिवंश का श्रवण करने से

न्तति होती है।

महाभारत के श्रीमद्भगवद्गीता, अनुस्मृति, गजेन्द्र-मोक्ष, भीष्मस्तवराज और विष्णु सहस्र नाम ये पांच रत्न माने गये हैं। ये पांचों भावुकों के नित्य पठन पाठन में रहने के कारण इनका गीता-पञ्चरत्न के नाम से अलग प्रकाशन भी हुआ है।

रामायण की कथा को छोड़कर संस्कृत और प्राकृत साहित्य में पौराणिकी कथा का अवलम्ब कर जितने ग्रन्थ बने हैं उनमें प्रायः महाभारत के ही कथानक मिलते हैं। कवियों ने लोकरुचि के अनुसार उन कथाओं में कुछ परिवर्तन अवश्य किया है। इसमें विदुर, कणिक आदि के अनेक नीतियाँ हैं जिनके आधार पर अनेक नीति ग्रन्थ बने हैं। पितामह भीष्म द्वारा उपदिष्ट अनेक धर्मों के वचन भी पीछे के अनेक स्मृति और धर्म ग्रन्थों में प्रमाण माने गये हैं। प्राचीन सेश्वर सांख्य और योग का विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थ में है। इसकी श्री मद्भगवद्गीता का संसार के साहित्य पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। इस गीता से केवल भारतवासियों ने ही नहीं किन्तु संसार की सभी जातियों ने अपनी २ भाषा में इसके अनुवाद द्वारा, इस ग्रन्थ का मनन कर लाभ उठाया है। महाभारत में बीच २ में गद्य का भाग भी मिलता है। इसकी भाषा और अनुष्टुप् छन्द तीन प्रकार का होने से यह ग्रन्थ तीन व्यक्तियों से रचा

गया है ऐसा वैद्य महाशय कहते हैं। इसमें विशेष
ष्टुप् छन्द ही हैं। सम्पूर्ण महाभारत में केवल कर्ण
एक श्लोक शार्दूल विक्रीड़ित छन्द का है। कर्ण, द्रो
आदि पर्वों में अनेक प्रकार के वृत्त हैं। इतर पर्वों
समवृत्त, वैदिक त्रिष्टुप् से जनित उपजाति आदि
इसके कुछ स्थलों की भाषा वैदिक भाषा से मिलती
है और कहीं २ पर इसकी भाषा पाणिनि के व्याकरण
ही अनुसरण करती है। बड़े २ पाश्चात्य विद्वानों ने
मुंह इस ग्रन्थ की प्रशंसा की है। इसका अनेक भा
भाषान्तर भी हो चुका है।

महाभारत पर २० टीकाएं हैं जिनमें नीलकण्ठ
की भारत भावदीप, अर्जुन मिश्र की भारतार्थ दीपि
नारायण सर्वज्ञ की भारतार्थ प्रकाश ये तीन टीकाएं
और प्रकाशित हैं। इनमें नारायण सर्वज्ञ की टीका
शतक की है।

पुराण

पुराणों का महत्व—लक्षण—उत्पत्ति—स्वरूप—भेद—सं
पुराण व उपपुराणों का विषय—पुराणों का पीछे के साहित्य पर
समय निर्धारण में प्रधान दो मत।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से पुराण भी वेद और
के सदृश धार्मिक ग्रन्थ माने गये हैं। वैदिक ग्रन्थों
इतिहास पुराण का निर्देश साथ २ मिलता है और

ना महत्व माना गया है कि इनको स्थान २ पर पञ्चमवेद
हा है। उपनिषदों से मालूम होता है कि नारदमुनि ने
का अत्यन्त उपयोगी समझ कर वेदों के साथ इनका भी
ध्ययन किया था। प्राचीन ऋषियों के मतानुसार सृष्टि
स्थिति और विनाश, युग मन्वन्तर, सूर्य और चन्द्रवंशीय
जाओं की वंशावलि आदि विषयों पर प्रकाश डालने वाले
राणों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में अन्य कोई ग्रन्थ
हीं है। सम्प्रति हिन्दूसंसार में प्रचलित अनेक धार्मिक
और सामाजिक उत्सव केवल पुराणों के ही अनुसार मनाये
ाते हैं। भारतवर्ष के अनेक तीर्थ स्थानों का महत्व दिखाने
ाले ये ही ग्रन्थ हैं। भारतवासी पुराणों को भी रामायण
और महाभारत के समान आदर की दृष्टि से देखते हैं और
न्दिरों और कथालयों में इनकी भी कथायें श्रोताओं को
नाई जाती हैं। वेद के अनधिकारी स्त्री शूद्रों को वेद
न्थों का ज्ञान कराने के लिये ही इनकी रचना की गई है
ा भारतवर्ष की प्राचीन परम्परा में माना गया है।
न्दुओं के स्मृति और धर्म ग्रन्थों में पुराणों के अनेक
ोक प्रमाण रूप से उद्धृत किये गये हैं।

पुराण शब्द भारतीय धर्म ग्रन्थों[१] में इतिहास शब्द के

---

१ अथर्व वेद ११।७।२४, गौतमधर्मसूत्र ११।१९, आपस्तम्बीय
सूत्र, छान्दोग्यउपनिषद् ७ अध्याय १ कण्डिका, तैत्तिरीयारण्यक,
१० बृहदारण्यकोपनिषद् ४।१।२

साथ पाया जाता है। प्राचीन ग्रन्थों में इतिहास
पञ्चमवेद माने गये हैं। चाणक्य के अर्थ शास्त्र[१] में त्र
के साथ इतिहास वेद की गणना कर इतिहास में इ
पुराण, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अ
का समावेश किया है। इससे अनुमान होता है कि इ
से पुराण कुछ अवश्य भिन्न है। पुराण शब्द से पु
समय की दन्तकथा का भी बोध होता है। को
पुराण में पुराण का लक्षण—'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो
न्तराणि च। वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्च लक्षणम्'
मिलता है। प्राचीन ग्रन्थों में पुराण का प्रायः वंशानु
अर्थ में प्रयोग है। विद्वानों ने मान लिया है कि जैसे
और स्मृति शब्दों का वेद और धर्मशास्त्र इन सू
अर्थों में प्रयोग है वैसे ही पुराण का भी वंशानुकीर्त
अर्थ में ही प्रयोग है। जिस प्रकार प्राचीन काल में एक
और एक स्मृति थी और उनमें से अनेक श्रुतियाँ
स्मृतियां निकली इसी प्रकार पहिले एक ही पुरा
और उसमें से अनेक पुराण निकले[२]। इस प्रकार पुराण
की अत्यन्त प्राचीनता अवगत होती है।

---

१ सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रय स्त्रयी। अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः।
शास्त्र १ म प्रकरण ३ अध्याय। पुराणमितिवृत्तमाख्यायिको
धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रञ्चेतीतिहासः। अर्थशास्त्र २ य प्रकरण।

२ पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ। मत्स्य पुराण ५३ अ

पुराणों में जो प्राचीन आख्यायिकाएं हैं उनका मूल चारों
की संहिताओं में, ब्राह्मणों में और उपनिषदों में भी है।
ककाल के पुराण ग्रन्थों में परिवर्तन होते २ महाभारत
रचना काल के पूर्व में अनेक पुराणग्रन्थ विद्यमान थे
बात गौतम धर्मसूत्र और आपस्तम्बीय धर्मसूत्र में
ये हुवे पुराणों के श्लोकों से विदित होती है। ये श्लोक
मान पुराणों में शब्दपरिवर्तन के साथ मिलते हैं। इन
कों में एक श्लोक ऐसा भी है जो आधुनिक पुराणों में
भी नहीं मिलता है। पाश्चात्यों के मतानुसार गौतम
सूत्र का काल ई० पू० ६०० और आपस्तम्ब धर्म
का काल ई० पू० ५०० मान लिया गया[1] है। महाभारत
र्व पुराणों का अस्तित्व अवश्य था इसमें कोई सन्देह
। कुछ विद्वानों का मत है कि आधुनिक पुराण महा-
त के आधार पर ही रचे गये हैं तथापि उनमें कुछ प्राचीन
भी अवश्य है।

सम्प्रति १८ महा पुराण और १८ उपपुराण विद्यमान
महापुराणों में पुराण के पांचो लक्षण[2] मिलते हैं।
भारत के आरम्भ में सूत ने भृगु ऋषि की वंशावलि
है। इससे यह स्पष्ट है कि पुराणों में केवल राजाओं

---

१ बुहलर् की 'सेक्रेड् बुक् आफ् दी ईस्ट सीरीज्' Vol १४

२ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्च लक्षणम्॥

की ही वंशावलि नहीं किन्तु ऋषियों की भी वंशावलि
रहती थी। इतिहास पुराण का प्रधान उद्देश वेदानधिकारी स्त्री शूद्रों को वेद का ज्ञान प्राप्त कराना है।

मत्स्य, मार्कण्डेय, भागवत, भविष्य, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, ब्राह्म, वामन, वराह, विष्णु, वायु वा शिव, अग्नि, नारद, पद्म, लिङ्ग, गरुड़, कूर्म और स्कन्द ये अठारह पुराण हैं। इस विषय में पाठकों को सरलता से अठारह पुराणों के नाम स्मरण करने के लिये एक श्लोक दिया जाता है, जिसमें क्रम से ही उपर्युक्त १८ पुराणों का नामनिर्देश किया गया है :—

> "मद्वयं भद्वयञ्चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
> अनापत्लिङ्ग कूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते॥"

इन पुराणों में वायु और मत्स्य पुराण सबसे प्राचीन और भविष्य पुराण सबसे अर्वाचीन है। विण्टर्निज़ के मत से विष्णु और मार्कण्डेय पुराण भी प्राचीन हैं। इन पुराणों में कहीं विष्णु की, कहीं शिव की, कहीं ब्रह्मा की और कहीं शक्ति की उपासना वर्णित है। इन सब में १८ पुराणों की नामावलि मिलती है। इसलिये पूर्व पश्चाद्वर्ती पुराणों का ठीक २ पता नहीं लगता। पद्म पुराण में इन १८ पुराणों का सत्व, रज और तम इन तीन गुणों के अनुसार विभाग किया गया है। विष्णु विषयक—विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म और वाराह-सात्विक; ब्रह्म विषयक—ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य,

ब्रह्म—राजस और शिव-विषयक----मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग,
वा शिव, स्कन्द और अग्नि ये तामस पुराण बताये गये हैं।

(१) ब्राह्म वा ब्रह्म पुराण÷पुराणों की नामावलि में
का निर्देश सबसे पहिले है। इसीलिये इसको आदि
ण भी कहते हैं। इस पुराण को पहिले पहिल ब्रह्मा ने
से कहा था। उसी को सूत ने ऋषियों को सुनाया है।
में पूर्वसृष्टि, प्रलय, मन्वन्तर, कल्प आदि का वर्णन
ओण्ड्र वा उत्कल देश का वर्णन है। उसके बाद कृष्ण
त का वर्णन कर अन्त में सांख्य योग से मोक्ष प्राप्ति
संक्षेप में प्रतिपादन है।

(२) पद्म वा पाद्म पुराण÷यह सृष्टि वा आदि
मि, स्वर्ग, पाताल और उत्तर इन पांच खण्डों में विभक्त है।
सी पुस्तक में आदि और सृष्टि इन खण्डों को अलग
छः खण्ड भी किये हैं। सृष्टि खण्ड में सृष्टि वर्णन के
थ अजमेर के समीपस्थ पुष्कर तीर्थ का वर्णन है। भूमि
ड में भूमि के वर्णन के साथ स्त्री और पुत्र को तीर्थ
ा है। ययाति और उसके पुत्र पुरु की कथा भी इसमें
स्वर्ग खण्ड में वैकुण्ठ, भूत, पिशाच, गन्धर्व अप्सरा
दि का वर्णन है। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल की
ा भी इसमें है। पाताल खण्ड में नाग लोक का वर्णन
रावण के नाम के साथ कालिदास के रघुवंश की कथा

है। उत्तर खण्ड में वैष्णव धर्म का प्रतिपादन
आदि मासों का माहात्म्य है।

(३) विष्णु वा वैष्णव पुराण ÷ यह वैष्
मुख्य पुराण है। रामानुजाचार्य ने अपने विशिष्टा
स्थापन करने में इस पुराण को भी आधार माना है
छः भाग हैं। पहिले में विष्णु और लक्ष्मी के प्रादु
वर्णन है। दूसरे में पृथ्वी, सप्तद्वीप और सप्तसि
उल्लेख है। तीसरे में वेद के विभाग वर्णित हैं।
सूर्य और चन्द्रवंश का वर्णन और वंशावलि है।
श्रीकृष्ण लीला है और षष्ठ में चार युगों का और प्र
का वर्णन है। इस पुराण पर सात टीकाएं हैं जिनमें
स्वामी की 'आत्म प्रकाश' टीका प्रसिद्ध है।

(४) वायु अथवा शिव पुराण ÷ इसके चार भाग
प्रथम सृष्टि का वर्णन है और उसके बाद योग के ल
हुए शिव की महिमा वर्णित है। यद्यपि यह शि
कहाता है तो भी इसके एक अध्याय में संगीत
अध्यायों में विष्णु का भी वर्णन है। अन्त में गया
भी जोड़ दिया गया है।

(५) भागवत पुराण ÷ भागवत नाम के दो
विद्यमान हैं। १ श्रीमद्भागवत और २ देवीभागवत
दोनों में महापुराण कौन है यह विषय विवादास्पद है।
यदि विष्णुपरक पुराणों में श्रीमद्भागवत का महापु

अन्तर्भाव किया गया है और देवी भागवत को उपपुराण कहा है। शैवमात्स्यादि पुराणों में देवी भागवत को महा-पुराण मानकर श्रीमद्भागवत को उपपुराण कहा है। उभय प्रतिपोषक विपुल प्रमाणों को देखकर कौन महापुराण है यह कहना अत्यन्त कठिन है। तथापि यदि आधुनिक ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जाय तो कहना पड़ेगा कि देवीभागवत की रचना अन्य महापुराणों से बहुत कुछ मिलती जुलती है। श्रीमद्भागवत की भाषा अन्य पुराणों की भाषा के सदृश सरल नहीं है। "[1]यत्राऽधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्म विस्तरः। वृत्राऽसुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते" इस लक्षण के अनुसार यदि दोनों भागवतों को देखा जाय तो मालुम होगा कि [2]देवीभागवत का ही प्रथम श्लोक गायत्री छन्द में है और गायत्री मन्त्र के अनेक शब्द भी उसमें विद्यमान हैं। किन्तु श्रीमद्भागवत[3] के प्रथम श्लोक में केवल गायत्री मन्त्र के कुछ शब्द हैं। श्रीमद्भागवत में

---

१ हयग्रीव ब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा। गायत्र्या च समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः। (पुराणान्तर वाक्य)

२ ॐ सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि। बुद्धिं या नः प्रचोदयात्॥

३ जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्। तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः॥ तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा। धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥

आरम्भ के अध्यायों ही में कहा है कि अष्टादश पुराण भारतादि रचने के बाद भी वेदव्यास जी की आत्मा न हुई। अतः आत्म सन्तोष के लिये व्यासजी ने श्रीमद्भा- वत की रचना की। यद्यपि ऐसी उक्ति देवीभाग और मार्कण्डेय पुराण में भी है तथापि उनमें अ पुराण न कहकर सप्तदश पुराण का उल्लेख है। इस से अठारहवां महापुराण देवी भागवत होने की पुष्टि है। जर्मन विद्वान् विण्टर्निट्ज़ को, श्रीमद्भागवत महापुराणों में परिगणित करते समय उपर्युक्त तथा अ विषयों पर दृष्टिपात करने का अवसर प्रायः नहीं हुआ होगा।

देवी भागवत — इसमें १२ स्कन्ध और १८००० हैं। प्रथम स्कन्ध में देवी का महोत्कर्ष, मधुकैटभवध, वरदान, शुक्राचार्य जन्म आदि; द्वितीय स्कन्ध में जन्म, पाण्डवोत्पत्ति, यदुकुल नाश, जनमेजय का आदि; तृतीय में भुवनेश्वरी निर्णय, सत्यव्रत कथा, जित वीरसेन युद्ध, देवीमहिमा, काशी में दुर्गावास, रात्र विधि आदि; चतुर्थ में कृष्णावतार प्रश्न, उनके देवदानव-युद्ध-शान्ति, शक्ति स्तव आदि; पञ्चम में श्रेष्ठत्व, महिषोत्पत्ति, देवदानव युद्ध, महिषवध, शुम्भ कथा, धूम्रलोचन—चण्डमुण्डादि वध आदि; षष्ठ में वृ शुनः शेप कथा, हैहय कथा, नारद विवाह, भगवती

सप्तम में सूर्य सोमोत्पत्ति, हरिश्चन्द्र कथा, पार्वती जन्म आदि; अष्टम में वाराह अवतार, मनुवंश आदि; नवम में देवतादि सृष्टि, गङ्गोत्पत्ति आदि; दशम में स्वायम्भू आदि मनु की कथा, महाकाली चरित आदि; एकादश में प्रातः कृत्यादि विधियाँ; द्वादश में गायत्री महिमा आदि विषय हैं।

महापुराणों में दोनों ही भागवतों का मतान्तरों से समावेश होने से श्रीमद्भागवत का भी यहां संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है।

श्रीमद्भागवत ÷ इस में भी १२ स्कन्ध और १८००० श्लोक हैं। प्रथम स्कन्ध में व्यास चिन्ता निरूपण, परीक्षित जन्म व शाप, शुकागमन आदि; द्वितीय में ब्रह्माण्ड जनन, परीक्षित शंका, भागवत सिद्धान्त निरूपण आदि; तृतीय में बन्धसर्ग निरूपण, ब्रह्मोत्पत्ति, जय विजय शाप, हिरण्याक्ष बध आदि; चतुर्थ में दक्षप्रजापति यज्ञ, ध्रुवकथा, पृथु कथा आदि; पञ्चम में ऋषभदेवकथा, भरत कथा, गङ्गावतरण, भूगोल निरूपण आदि; षष्ठ में अजामिलाख्यान, वृत्रासुर वध आदि; सप्तम में हिरण्यकशिपु वध, प्रह्लादचरित आदि; अष्टम में समुद्र मन्थन, वामनावतार, मत्स्यावतार आदि; नवम में शर्याति, नाभाग, अम्बरीष, मान्धात, हरिश्चन्द्रादि चरित, चन्द्रवंश वर्णन आदि; दशम में कृष्ण जन्म, बाललीला, कंसवध आदि; एकादश मे जीवन्मुक्ति निरूपण, यदुकुल विनाश आदि; और द्वादश में भविष्य निरूपण कलिदोषवृद्धि, परी-

क्षित मुक्ति, जनमेजयसर्पसत्र, मार्कण्डेयकथा आदि वि

(६) नारद वा बृहन्नारदीय पुराण ÷ इस में धर्म, श्राद्ध, प्रायश्चित्तादि विधि भी, सृष्टि, विष्णु भक्ति कथा के साथ वर्णित है। अन्त के अध्यायों में च्छेद और मोक्ष प्राप्ति के सम्बन्ध में योग व भ वर्णन है।

(७) मार्कण्डेय पुराण ÷ इस में महाभारत के का बहुत विषय आया है। व्यास के शिष्य जैमिनि ने ण्डेय से महाभारत में जो चार प्रश्न पूछे हैं उन महाभारत में न मिलकर इस में हैं। वृत्रासुर वध, ह वशिष्ठ व विश्वामित्र का कलह आदि कथाएँ भी इस में हैं। अत्यन्त प्रसिद्ध सप्तशती वा दुर्गा पाठ इसमें

(८) अग्नि पुराण ÷ इस में आरम्भ में रामायण भारत और हरिवंश के अनुसार विष्णु के अवतारों का है। वन्नागम, गाणपत्य और सौरउपासना, मृत्यु, योग, अनेक गीताओं का रहस्य, भूगोल, ज्यौतिष, चि अलङ्कार, व्याकरण, छन्द, कोश आदि भी इसमें वर्णि इस पुराण में अमर कोष, पिङ्गल और अन्यतत्व प्रसिद्ध ग्रन्थों के सदृश अनेक श्लोक मिलते हैं।

(९) भविष्य पुराण ÷ इसका सृष्टि वर्णन मनुस्मृ अनुसार है। इसमें षोडश संस्कार, वर्णाश्रमधर्म तथा

तियों के विशेष धर्म भी वर्णित हैं। इसमें नाग-
चमी की नाग पूजा और शाकद्वीप की सूर्य पूजा का भी
लेख है। इसी के एक परिशिष्ट में धार्मिक विधि वर्णित
जिसे भविष्योत्तर पुराण कहते हैं।

(१०) ब्रह्म वैवर्त पुराण ÷ इस पुराण को दक्षिण भारत
ब्रह्मकैवर्त पुराण भी कहते हैं। इसके चार खण्ड हैं।
म ब्रह्मखण्ड में ब्रह्मा की सृष्टि का वर्णन, नारद की अनेक
ाएँ और अन्तिम अध्याय में चिकित्सा भी वर्णित है।
तीय प्रकृतिखण्ड में सांख्य की प्रकृति वा प्रधान का वर्णन
तृतीय गणेश खण्ड में गणेश को विष्णु का अवतार
त कर उसकी अनेक कथाएं दी हैं। चतुर्थ कृष्णजन्म-
ड में श्रीकृष्ण का जन्म वर्णित है।

(११) लिङ्ग वा लैङ्ग पुराण ÷ इसमें लिङ्ग के रूप में
व जी की पूजा तथा अठारह अवतार प्रधानतया वर्णित
इसमें शिव को ही सृष्टिकर्ता कहा है और वेदों का
पत्ति स्थान शिवलिङ्ग माना गया है।

(१२) वाराह अथवा वराह पुराण ÷ इसमें वैष्णवों के
नेक नियम, देव देवी वर्णन, गणेश जन्म, तीर्थ वर्णन,
चिकेतस आख्यान आदि विषय हैं।

(१३) स्कन्द पुराण ÷ यह पुराण सब पुराणों से
ा है। इसकी श्लोक संख्या ८१००० है। परन्तु यह
म्पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इसमें सनत्कुमारीय, सूत,

ब्राह्मी, वैष्णवी, शाङ्करी और सौरी ये छः संहि(इनके ५० खण्ड हैं। इसमें शिव जी की अनेक कथाएं व संसार का वर्णन, योग खण्ड आदि हैं। इसमें माहात्म्य मिलते हैं। पुराणों के पांचों लक्षण इस नहीं मिलते। तीर्थ स्थानों की कथा, काशी खण्ड, उत्कलखण्ड, अर्वुदखण्ड, अवन्ति खण्ड आदि

(१४) वामन पुराण—इसमें पहिले विष्णु अवतार का वर्णन है। आगे अनेक अध्यायों में अन्य अवतार भी बताये हैं। आधे से अधिक भाग पूजा, उमाशिव विवाह, गणेश तथा कार्तिकेय की आदि विषय वर्णित हैं।

(१५) कूर्म पुराण—इसकी ब्राह्मी, भागवत और वैष्णवी ये चार संहिताएँ थीं। परन्तु सम्प्रति ब्राह्मी संहिता ही कूर्म पुराण के नाम से मिलती है ६००० श्लोक हैं। पहिले कूर्म पुराण में १८००० श्लोक अन्य पुराणों में कहा है। इसके प्रारम्भ के सूक्त में कूर्म का वर्णन है। इसमें इन्द्रद्युम्न की कथा, कृष्ण जाम्बव णय, कार्तवीर्य पुत्र आदि की कथाएँ शिव जी की के सम्बन्ध में वर्णित हैं। इसमें अनेक माहात्म्य और भी हैं। इसका विशेष भाग शिव और दुर्गा की उपा विषय में है।

(१६) मत्स्य पुराण÷यह प्राचीन पुराण है। इसमें
ण के पांचों लक्षण मिलते हैं। आरम्भ में मत्स्यावतार
कथा है। इस पुराण की आन्ध्रवंश की वंशावलि प्रामा-
क मानी गई है। इसमें सृष्टि व राजवंश के सविस्तर
न के बाद, ययाति और सावित्री के उपाख्यान और विष्णु
स अवतार, महाभारत और हरिवंश के समान वर्णित
अन्त में अनेक व्रत, प्रयाग, वाराणसी आदि माहात्म्य,
धर्म, देवता, मन्दिर और प्रासादों का निर्माण, दान के
क प्रकार आदि भी कहे हैं। इसमें १८ पुराणों का संक्षेप में
न है।

(१७) गरुड़ पुराण÷पुराणों के पांच लक्षणों में से
ल तीन ही लक्षण इसमें मिलते हैं। इसमें शक्ति और
ायतन पूजाएँ प्रतिपादित हैं। अग्नि पुराण के सदृश इसमें
राजनीति, रामायण, महाभारत और हरिवंश की कथाएँ,
ोतिष, चिकित्सा, छन्द, व्याकरण, रत्नपरीक्षा आदि भी
। इसका उत्तर खण्ड प्रेत-कल्प है जिसमें मृत्यु के बाद
न की अवस्था और गति का विचार है। इसीलिये मरणा-
च में इसका श्रवण करने की प्रथा प्राचीन काल से चली
ई है।

(१८) ब्रह्माण्ड पुराण÷कूर्म पुराण में इसका नाम
यवीय ब्रह्माण्डपुराण कहा गया है। इससे अनुमान हो
कता है कि यह पहिले वायु पुराण का ही अंश था। मत्स्य

पुराण के अनुसार इसमें भविष्यत्कल्प १२२०० श्लो
वर्णित था। परन्तु सम्प्रति इसमें केवल माहात्म्य
और उपाख्यान ही मिलते हैं। इससे मालूम होता है
पुराण लुप्त है। प्रसिद्ध अध्यात्मरामायण इसी पु
एक भाग है।

उपपुराण

अठारह महापुराणों के अतिरिक्त उपपुराणों
निर्देश किसी २ महापुराण में मिलता[1] है। किसी
१८ उपपुराणों के नाम भी मिलते हैं।

इन उपपुराणों का अधिकांश भाग माहात्म्य,
कल्प, आख्यान और उपाख्यानों से भरा हुआ है।
पुराण तो महापुराणों के परिशिष्ट ही हैं। उपपु
प्रधान उद्देश स्थानिक पन्थ और उन पन्थों की
विधि आदि वर्णन करना है।

गरुड़ पुराण[2] के अनुसार अठारह उपपुरा
नाम हैं :-

---

१ मत्स्य पुराण में ४ उपपुराणों के नाम हैं। ब्रह्मवै
केवल उपपुराणों की १८ संख्या ही दी है। कूर्म पुराण में १८
का नाम निर्देश है। गरुण पुराण और देवीभागवत में १
पुराणों के नाम हैं।

२ अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानितु। आद्यं
रोक्तं नारसिंह मथा परम्। तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेणतु

(१) सनत्कुमार (२) नारसिंह (३) स्कान्द (४) शवधर्म (५) आश्चर्य (६) नारदीय (७) कापिल (८) ामन (९) औशनस (१०) ब्रह्माण्ड (११) वारुण (१२) ालिका (१३) माहेश्वर (१४) साम्ब (१५) सौर (१६) राशर (१७) मारीच और (१८) भार्गव।

देवी भागवत[1] के अनुसार उपर्युक्त स्कान्द, वामन, ह्माण्ड, मारीच और भार्गव इनके स्थान में शिव, मानव, ादित्य, भागवत और वासिष्ठ ये नाम मिलते हैं। उपपुराण ौर महापुराणों के नामों के विषय में बड़ा ही मतभेद है जसका यहां स्थानाभाव के कारण विचार नहीं किया ाया है।

इन महापुराण तथा उपपुराणों के व्यतिरिक्त अन्य भी

ातुर्थं शिव धर्माख्यं स्यान्नन्दीश्वर भाषितम्। दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं ारदोक्तमतःपरम्। कापिलं वामनञ्चैव तथैवोशनसेरितम्। ब्रह्माण्डं ारुणञ्चाथ कालिकाह्वय मेव च। माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थ ञ्चयम्। पराशरोक्तमपरं मारीचं भार्गवान्हयम्। गरुड़ पुराण ३२३ अध्याय। श्लो० १७-२०

1 सनत्कुमारं प्रथमं नारसिंहं ततः परम्। नारदीयं शिवञ्चैव दौर्वा-ससमनुत्तमम्। कापिलं मानवञ्चैव तथा चौशनसं स्मृतम्। वारुणं कालिकाख्यं च साम्बं नन्दिकृतं शुभम्। सौरं पाराशरप्रोक्तमादित्य-ञ्चातिविस्तरम्। माहेश्वरं भागवतं वासिष्ठञ्चसविस्तरम्। देवी-भागवत ३ य अध्याय श्लोक १३-१६।

गणेश, मौद्गल, देवी, कल्की आदि अनेक पुराण हैं तथा बौद्धों के भी कुछ पुराण हैं।

संस्कृत साहित्य के वैदिक ग्रन्थों से लेकर आ संस्कृत तथा भारतीय अन्य भाषा के ग्रन्थों पर भी पुरा प्रभाव अच्छी तरह से अवगत होता है। वैदिक और ब्राह्मण के आख्यान व इतिहास, वैदिक पुराणों के निदर्शक हैं। रामायण, महाभारत और पर भी पुराणों का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। तो पुराण ग्रन्थ ही माना जाता है। स्मृति और ध में विद्यमान पुराणों के उद्धृत वचनों से यह स्पष्ट है पर भी पुराणों का बहुत प्रभाव पड़ा था। रामाय महाभारत के साथ, पुराण भी पीछे के कवियों के आध थे। अलङ्कार शास्त्र के कई ग्रन्थ कर्ताओं[1] ने भरत[2] का आधार ग्रन्थ अग्निपुराण माना है। पाश्चा भारतीय विद्वानों ने, पुराणों की वंशावलि का

---

१ महेश्वर का काव्यप्रकाशादर्श—सुकुमारान् राजकुमारा काव्य प्रवृत्तिद्वारा गहने शास्त्रान्तरे प्रवर्तयितुमग्निपुराणादुद्धृत सास्वादकारणमलङ्कारशास्त्रं कारिकाभिः संक्षिप्य भरतमुनि तवान् '।

काव्यरसास्वादनाय: वन्हिपुराणादिदृष्टां साहित्यप्रक्रियां संक्षिप्ताभिः कारिकाभिर्निबन्ध—साहित्यकौमुदी टीका—कृष्णा

२ यह भरत नाट्यशास्त्र के रचयिता भरत मुनि से भिन्न है।

ब कर भारतवर्ष के प्राचीन राजकीयइतिहास पर अनेक
थ लिख डाले हैं।

वैद्य महाशय का मत है कि आधुनिक पुराणों की रचना
य: ई० ३०० से ई० ८०० के बीच में मूल पुराण तथा महा-
रत के आधार पर हुई है। उनका कथन है कि प्राय: सभी
राणों में भविष्य कथन है। जिन पुराणों में जिन वंशों के
जाओं की वंशावलि मिलती है वे पुराण उन वंशों के
ल से अर्वाचीन हैं ऐसा मानना उचित है। 'गुप्ता भोक्ष्यन्ति
दिनीम्।' यह जिस पुराण में होगा,वह पुराण अवश्य ही
वंश के बाद का होगा। प्राय: सभी पुराणों में आन्ध्र-
य राजाओं वर्णन मिलता है। इन राजाओं का अन्त
३०० के करीब होकर गुप्त राजाओं का शासन प्रारम्भ
आ था। ये गुप्त राजा वर्णाश्रम धर्मानुयायी थे, यह बात
क विश्रुत है। इसीलिये विद्वानों का मत है कि पुराणों की
रपि रचना गुप्तों के समय में ही प्रारम्भ हुई और कई
राणों में 'कैलकिल' यवन का उल्लेख मिलने से यह
नाकार्य ई० ८०० के लगभग तक जारी रहा। अन्य विद्वान्
हते हैं कि कुमारिल भट्ट तथा श्रीमच्छङ्कराचार्य को अठा-
ों पुराण और उपपुराण ज्ञात थे। ई० १० म शतक के
न्त के इस्लामधर्मावलम्बी इतिहासज्ञ 'आल्बेरुनी' ने
ष्णु धर्मोत्तर उपपुराण का अच्छी तरह अध्ययन भी किया
। इस मत के अनुसार पुराणों का रचना कार्य कुमारिल-

भट्ट के समय (ई० ७ म शतक) पूर्ण हो चुका था
मानना आवश्यक होता है। ऐसी अवस्था में 'कैलकि
निर्देश प्रक्षिप्त मानना पड़ता है।

पुराणों के विषय में कितना ही बढ़ाकर लिखा
भी पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। यहाँ पर पाठकों
संक्षेप में इस विषय का परिचय करा देने की
की गई है।

प्रकरण ३

काव्य

काव्य का महत्व—काव्य और कवि शब्द के अर्थ—इनका संस्कृत
हित्य में प्रयोग—काव्य का लक्षण—प्रयोजन—उत्पत्ति—विकास—
ीन काव्यों से अर्वाचीन काव्यों का भेद—काव्य के भेद—गद्य
ों से पद्य ग्रन्थों की विशेषता।

परमेश्वर की सृष्टि के अनेक चमत्कारों को देखकर
ुष्य के हृदय में जो कल्पनातरङ्ग उठते हैं उनको मनोहर
ब्दों में व्यक्त करना काव्य ही का कार्य है। संसार की सभी
ुष्य जाति की प्रारम्भावस्था में इस तरह का काव्य अवश्य
था। काव्य में कल्पना प्रधान रहने से इसका साम्राज्य
ुष्यों की वैज्ञानिकावस्था से पूर्व ही विशेषता से रहता
हर एक मनुष्य, स्वभाव से ही आनन्द की खोज में
ता है जो आनन्द श्रीसच्चिदानन्द का एक प्रधान रूप है।
य से मनुष्य मात्र को आनन्द प्राप्त होने के कारण ही
यरस को ब्रह्मास्वादसहोदर कहते हैं। ब्रह्मास्वाद का
न्द किसी किसी को बड़े २ कष्टों के अनन्तर अतीन्द्रिय
से ही मिल सकता है। किन्तु काव्यरस सदैव सब को

अनायास से ही उस विलक्षण आनन्द को देता है। सहृदय मनुष्य मात्र की प्रवृत्ति काव्य की ओर स्व ही रहती है।

कवि की कृति को काव्य कहते हैं (कवेः कर्म का कवि शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मत कोई 'कवृ[1] वर्णे' इस धातु से कवि शब्द को (कवते वर्णयति कविः)। दूसरे कवृ धातु को पाणि पाठ में न देखकर और कब्रृ वर्णे इससे कवरी आदि सिद्ध होते देखकर 'कुङ् शब्दे[2]' इस धातु से कवि व्युत्पन्न करते हैं। निरुक्त कार[3] यास्क ने कवि शब्द मेधावी बताकर 'कविः क्रान्तदर्शनो भवति कवतेर्वा इसको व्युत्पन्न किया है। 'कवते' यह रूप वैदिक क्रिय गत्यर्थक धातुओं में पठित[4] है। 'गत्यर्थाः सर्वे ज्ञाना न्याय से कवि शब्द का क्रान्तदर्शी वा मेधावी माना गया है। वैदिक निघण्टु[4] में मेधावी शब्द के कवि शब्द की गणना है। अमरकोष[5] में कवि और

१ अमरकोष की क्षीरस्वामी की टीका।

२ अमरकोष की रामाश्रमी टीका।

३ निरुक्त १२।१३।१।

४ वैदिक निघण्टु २।१४ और ३।१५।

५ शुक्रोदैत्यगुरुः काव्य उशनाभार्गवः कविः—व्योमादि
२६ धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पंडितः कविः—ब्रह्मवर्ग

ाचार्य के पर्याय हैं और कवि शब्द पण्डित अर्थ में
दिया है। रामायण के रचयिता वाल्मीकि आदिकवि
ाते हैं। इसका कारण यह बताया जाता है कि लौकिक
कृत का पहिला काव्य अनुष्टुप् छन्द में इन्हीं का रचा
ा है। बहुत सम्भव है कि तभी से कवि शब्द छन्द में
ना करने वाले विद्वानों के लिये ही रूढ़ हुआ हो।

अलङ्कार शास्त्र[1] में काव्यपुरुष की कल्पना कर शब्द और
को शरीर तथा रस, रीति, वक्रोक्ति वा ध्वनि को आत्मा
ना है। काव्य के गुण काव्य की आत्मा के गुण, और
ाङ्कार, शब्द और अर्थ रूपी शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाने
े आभूषण बताये गये हैं। काव्य के दोष, शब्द, अर्थ,
क्य और रस इन सब में रहते हैं। जिस प्रकार किसी
ष की कल्पना उसके शरीर के बिना नहीं हो सकती उसी
ार काव्य की कल्पना भी उसके शब्द और अर्थ रूपी
ीर के बिना नहीं हो सकती। इसीलिये सभी आलङ्कारिकों
काव्य के लक्षण में शब्दार्थ का सन्निवेश किया है। भामह
दि प्राचीन आलङ्कारिकों ने शब्द और अर्थ को ही काव्य
ा है। 'शब्दार्थौ[2] सहितौ काव्यम्' अर्थात् शब्द और
र्थ दोनों साथ काव्य कहाते हैं। यह भामहकृत काव्य
ण है। दण्डी[3] ने काव्य का लक्षण बताते हुए कहा है कि

१ राजशेखर की काव्य मीमांसा।

२ काव्यालङ्कार १।१६। ३ काव्यादर्श १।१०।

'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावलिः' अर्थात्
अर्थ से युक्त पदसमूह काव्य शरीर है'। अग्नि
भी काव्य का लक्षण 'इष्टार्थ[1]व्यवच्छिन्नापदावली
स्फुटदलङ्कारं गुणवद्दोषवर्जितम्' अर्थात् अभिमत
से युक्त पद समूह जिसमें गुण हों, दोष न हों और
स्पष्ट प्रतीत होते हों, वह काव्य है, ऐसा किया है।
तो 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्' अर्थात् 'शब्द और अर्थ
है' ऐसा कहा है। वक्रोक्ति जीवितकार ने "शब्दार्थौ
वक्रकविव्यापारशालिनि। बन्धे व्यवस्थितौ काव्यत
दाल्हादकारिणि।" अर्थात् 'काव्य वेत्ताओं को
देने वाले, वक्रोक्ति व्यापार से युक्त निबन्ध के
अर्थ दोनों काव्य कहाते हैं' ऐसा लक्षण दिया है।
दोषौ[3] शब्दार्थौसगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि' अ
रहित, गुण युक्त और अलङ्कार युक्त और कहीं
रहित शब्द और अर्थ काव्य हैं यह मम्मट भट्ट का
हेमचन्द्र ने भी 'अदोषौ[4] सगुणौ सालङ्कारौ च
ऐसा ही लक्षण किया है। वाग्भट ने 'शब्दार्थौ

---

१ अग्नि पुराण ३३६।६-७

२ वक्रोक्ति जीवित—प्रथम उन्मेष।

३ काव्य प्रकाश—प्रथम उल्लास।

४ काव्यानुशासन—पृ० १६

५ " " पृ० १४

णौ प्रायः सालङ्कारौ च काव्यम् ' अर्थात् दोष रहित, गुण और प्रायः अलङ्कार से युक्त शब्द व अर्थ काव्य है' यही ण किया है। विद्यानाथ ने अपने प्रतापरुद्रयशोभूषण 'गुणालङ्कार[1]सहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ काव्यं यविदो विदुः' अर्थात् गुण और अलङ्कार से युक्त, दोष-त शब्द व अर्थ को काव्यवेत्ता काव्य कहते हैं, ऐसा है। अन्तिम तीन लक्षण मम्मट भट्ट के अनुवाद रूप ही विश्वनाथ कविराज ने 'वाक्यं[2] रसात्मकं काव्यम्' र्थात् 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है' ऐसा लक्षण किया जगन्नाथ पण्डितराज ने शब्द ही को प्राधान्य देकर णीयार्थ[3] प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' ऐसा काव्य का ण किया है।

आलङ्कारिकों ने काव्य के अनेक प्रयोजन बताये हैं। इस य में काव्य प्रकाश का "काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे तरक्षतये। सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेश-।" यह श्लोक प्रसिद्ध है। अर्थात् 'यश, धन प्राप्ति, हार ज्ञान, अमङ्गल का नाश, अल्पकाल में अनायास से ानन्द लाभ और कान्ता के सदृश कोमल उपदेश—ये य के प्रयोजन हैं। इन सब प्रयोजनों में 'सद्यः पर निर्वृति'

---

१ प्रतापरुद्रयशोभूषण—प्रारम्भ।

२ साहित्यदर्पण।

३ रस गङ्गाधर पृ० ४

अर्थात् अल्पकाल में अनायास से परमानन्द लाभ है
श्रेष्ठ है। यही काव्य का परम प्रयोजन माना गया है।
तीन प्रकार के होते हैं----प्रभुसम्मित, सुहृत्सम्मित
कान्तासम्मित। प्रभु सम्मित उपदेश आज्ञा के रूप
है। वेद और माता पिता के प्रिय अथवा अप्रिय
इसी कोटि के हैं जिनका पालन करना आवश्यक है
सम्मित उपदेश, रामायण और महाभारतादि
उपदेश के सदृश है जो सदैव हितकर है। कि
अप्रिय का त्याग करने में कोई बाधा नहीं रहती
सम्मित उपदेश में यह वैलक्षण्य है कि वह हितकर
ही है किन्तु सदैव प्रिय ही रहता है। यह उपदेश
रह कर व्यङ्ग्य ही रहता है। काव्य में ही ऐसा व्य
उपदेश विद्यमान रह सकता है। व्यवहार ज्ञान भी
सुगमता से हो सकता है। ये तीन प्रयोजन का
वालों के लिये हैं। काव्य निर्माता को अपने काव्य
कालिदास के सदृश यश, धावक के समान धन
मयूर कवि के सदृश शिवेतरक्षति भी प्राप्त हो सकती
राजशेखर ने अपनी काव्य[1] मीमांसा में काव्य

१ अथातः काव्यं मीमांसिष्यामहे। यथोपदिदेश श्रीकण्ठः
वैकुण्ठादिभ्यश्चतुःषष्टये शिष्येभ्यः। सोऽपि भगवान् स्वयंभूः
जन्मभ्यः स्वान्तेवासिभ्यः। तेषु सारस्वतेयोवृन्दीयसामपि वन्द्यः
पुरुष आसीत्। तञ्च सर्वसमास्नायविदं दिव्येन चक्षुषा भविष्य

वेषय में कहा है कि श्रीकण्ठ अथवा शिव जी ने ब्रह्मा,
णु आदि चौसठ शिष्यों को पहिले पहिल काव्य का
देश दिया। ब्रह्मा ने अपने शिष्यभूत मानसपुत्रों को
का उपदेश किया। उनमें सरस्वती का पुत्र काव्य पुरुष
था जिसको ब्रह्मा ने तीनों लोकों में काव्य विद्या का
र करने के लिये आज्ञा दी। इस प्रकार काव्य पुरुष वा
य की उत्पत्ति प्राचीन भारतीय परम्परा में ब्रह्मा से ही
ो गई है।

संसार के सबसे प्राचीन वेदग्रन्थों में भी काव्य की
क है। उनको देखने से यह सिद्ध होता है कि उस समय
ी काव्य विद्यमान था। ऋग्वेद के उषादेवता के सूक्त
ता के विषय में बहुत अच्छे माने गये हैं। ऋक् संहिता
पमा रूपकादि अलङ्कार सर्वत्र विद्यमान हैं। ऋक् संहिता
दृश छन्दोवद्ध मन्त्र यजुः साम और अथर्व संहिताओं
ी हैं। यद्यपि ये मन्त्र काव्यमय हैं तथापि इन अलौकिक,
प्रधान, अपौरुषेय और प्रभुसम्मित मन्त्रों को काव्य
दृष्टि से देखना उचित नहीं है। ब्राह्मण, निरुक्तादि ग्रन्थों
ालूम होता है कि उस समय के इतिहास मिश्रित[1] मन्त्र
ाओं में और गाथाओं में थे। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इति-

स्व...वःस्वस्तितयवर्तिनीषु प्रजासु हितकाम्यया प्रजापतिः काव्यविद्या
...नायै प्रायुङ्क्त ......काव्यमीमांसा--उपक्रम।

१ तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रं ऋङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति। निरुक्त ४।६

हास की अनेक गाथाएँ हैं। अनेक उपनिषदों में
पुराण को पञ्चम वेद कहकर उनका वेद काल में
प्रतिपादित किया गया है। यदि महाभारत और
आदि रूप इनको मान लिया जाय तो यह कहना
न होगा कि वैदिक काल के इतिहास-पुराण काव्य
महाभारत में विद्यमान अनेक प्राचीन छन्दों के
भी यह बात दृढ़ होती है। ब्राह्मण, आरण्यक,
गद्य वैदिक ग्रन्थों में भी दानस्तुति, नाराशंसगाथा
विशिष्ट राजाओं की स्तुतियाँ उपलब्ध हैं। इन में
काव्य की झलक साफ़ २ दीख पड़ती है। यद्यपि
सूत्र ग्रन्थ काव्य के द्योतक नहीं हैं तथापि उस
'बृहद्देवता' आदि ग्रन्थ पद्यमय ही हैं। रामायण
महाभारत का काव्य बहुत ऊँचे दर्जे का है। रामायण
आदि काव्य ही माना गया है। ये दोनों ग्रन्थ बाद
की रचना के लिये सदैव आदर्श रहे हैं। महाभारत
कहा है कि इसी ग्रन्थ से महाकवियों को स्फूर्ति
इसी के आधार पर वे अपनी २ रचना करेंगे। पाणिनि
के सूत्रों[2] से ज्ञात होता है कि पाणिनि के समय में

१ इतिहासोत्तमादस्माज् जायन्ते कविबुद्धयः। महाभारत
आदि
इदं कविवरैस्सर्वैराख्यानमुपजीव्यते—आदिपर्व २।३८९
२ अधिकृत्यकृते ग्रन्थे ४।३।८७, शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वे
भ्यश्छः ४।३।८८ लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्—वार्त्तिक।

ग्रन्थ रचे जाते थे। आलङ्कारिकों के द्वारा यह बात
त होती है कि स्वयं पाणिनि के ही निर्मित 'पाताल-
य' और 'जाम्बवतीविजय' नाम के दो काव्य[1] थे।
द्र के सुवृत्त तिलक में पाणिनि के उपजाति छन्द की
प्रशंसा है। यद्यपि पाणिनि के दोनों काव्य उपलब्ध
हैं तथापि 'पातालविजय' के कुछ श्लोक[2] कहीं २
ते हैं जिनसे उस काव्य की श्रेष्ठता प्रगट होती है। महा-
य में 'वाररुचं काव्यम्', वासवदत्ता, सुमनोत्तरा, और
थी आदि आख्यायिकाओं के नाम मिलते हैं। वहीं पर
बन्ध' और 'कंसवध' नाम के नाटक भी निर्दिष्ट हैं।
से यह स्पष्ट है कि ई० पू० २ य शतक के बहुत पहिले
च्छे २ काव्य और नाटक निर्माण हो चुके थे।

प्राचीन काव्यों का स्वरूप, उपलब्ध रामायण और महा-
त नामक प्राचीनतम काव्यग्रन्थों से विदित हो सकता
ये दोनों आर्ष काव्य हैं। इनमें कृत्रिमता बहुत ही कम
ऋषियों की वाणी का प्रवाह इन दोनों में अस्खलित है।
पद २ पर स्वाभाविकता झलकती है। कालिदासादि
र्यों के काव्यों में जो प्रत्येक श्लोक में अलङ्कारादिकों का

---

१ रुद्रटकी नेमिसाधूकी टीका २।८ और राजशेखर।

२ निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो मुखं निशायामभिसारिकायाः।
धारानिपातैः सह किन्तु वान्तश्चन्द्रोऽयमित्यार्ततरं ररास॥
पाताल-विजय।

सन्निवेश मिलता है वह इनमें नहीं है। उपलब्ध ग्र
में कालिदास और अश्वघोष के महाकाव्य सर्वो
हैं। इनमें भी उतनी कृत्रिमता नहीं है जितनी
किरातार्जुनीय से प्रारम्भ कर बाद के काव्यों में
है। इनमें शब्दचित्र काव्य तथा छन्दोविज्ञान का
प्रगट करने की चेष्टा की गई है।

पद्य काव्य के साथ २ गद्य काव्य का भी विकास
तथा ब्राह्मण काल से ही होता आया होगा। महा
गद्य भाग से तथा महाभाष्य में उल्लिखित आख्या
से उस समय में गद्यकाव्य का अस्तित्व सिद्ध है
ई० २ य शतक से लेकर सुबन्धु तथा बाणभट्ट
तक के शिला लेखों[1] में भी अच्छे गद्य काव्य की
सुबन्धु की वासवदत्ता में प्रत्येक अक्षर में श्लेष है
स्वयं रचयिता ने ही कहा[2] है। बाणभट्ट ने भी अ
ग्रन्थों में अनेक अलंकारों का न्यास करते हुए अक्ष
मात्राच्युतक, बिन्दुमती, प्रहेलिका आदि शब्दचि
के अनेक प्रकार प्रदर्शित कर गद्य काव्य
उन्नत किया है।

---

१ रुद्रदमनका शिलालेख २ य शतक। हरिषेण के वि
लेख ई० ३५०। नासिक का शिलालेख ई० ३९४। धारवाड़
ई० ६३८।

२ प्रत्यक्षरश्लेषमय प्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम्।

उपर्युक्त पद्य तथा गद्य काव्यों के आधार पर ही आलं-
रिकों ने काव्यों की गुण-दोष-विवेचना की है और उसी
अनुसार बाद के कवियों ने अपने २ काव्य रचे हैं।

काव्य के दृश्य और श्रव्य ये दो प्रधान भेद हैं। दृश्य
य दस रूपकों में गतार्थ होने के कारण उसका विचार
क प्रकरण में किया जायगा। श्रव्य काव्य के पद्य, गद्य
र मिश्र ये तीन भेद हैं। पद्यकाव्य के भी तीन भेद हैं—
काव्य, खण्ड-काव्य और कोष-काव्य।

महाकाव्य[1] में सर्ग होते हैं। इसमें का नायक कोई देव
धीरोदात्त कुलीन कोई क्षत्रिय राजा रहता है। यदि
क अनेक हों तो वे एक ही वंश के रहते हैं। इसमें शृङ्गार
र अथवा शान्तरस प्रधान रहकर दूसरे रस उसके
भूत रहते हैं। इसका वर्णन इतिहास के आधार पर
ता है, वा इसमें किसी सज्जन का चरित्र वर्णित रहता
इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों
वर्णन अवश्य ही रहता है। इसका मङ्गलाचरण, नम-
ार आशीर्वाद वा कथारम्भ से भी होता है। इसमें दुष्टों
निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा रहती है। प्रतिसर्ग में
ही वृत्त के श्लोक होते हैं किन्तु सर्ग के अन्त के कुछ
ोक अन्य छन्द के होते हैं। इसके सर्ग बहुत बड़े वा बहुत
टे नहीं होते और उनकी संख्या आठ से अधिक होती

1 साहित्य दर्पण श्लोक ३१५—३२७

है। कहीं २ महाकाव्यों में अनेक वृत्तों का भी
रहता है। महाकाव्य में सर्ग के अन्तिम श्लोक से
कथा का सूचित होना आवश्यक रहता है। इसमें
सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिवस, प्रभात,
मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, सम्भोग, विप्रलम्भ
स्वर्ग, नगर, यज्ञ, रण, प्रयाण, विवाह, मन्त्र,
आदि का वर्णन उचित स्थलों पर अवश्य रहता
रघुवंश, शिशुपाल वध, नैषध आदि महाकाव्यों में
प्रणीत महाकाव्यों में सर्ग के स्थान पर आख्यान
जैसे महाभारत में हैं। प्राकृत महाकाव्यों में सर्ग
आश्वास रहते हैं और स्कन्धक और गलितक नाम
भी रहते हैं जैसे सेतुबन्ध और कुवलयाश्व चरित
अपभ्रंश में रचित महाकाव्यों में सर्गों के स्थान में
होते हैं जैसे कर्णपराक्रम में हैं।

खण्ड काव्य[1] में महाकाव्यों के उपर्युक्त वस्तु
से कुछ वर्णन रहता है। इसमें सर्ग, प्रकाश, तरङ्ग
नामों के विभाग होते हैं। हरचरितचिन्तामणि
आदि खण्ड काव्य हैं। अंग्रेजी में खण्ड काव्य को
पोएट्री (Lyric Poetry) कहते हैं। संस्कृत के
काव्य और अंग्रेजी की लिरिक पोएट्री में यद्यपि
बहुत भेद है तथापि कुछ सादृश्य अवश्य है।

१ खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च। साहित्यदर्पण

ात्य विद्वानोंने खण्ड काव्य को लिरिक पोएट्री कहा है।

कोष काव्य[1] में परस्पर निरपेक्ष श्लोकों का संग्रह रहता इसमें समान विषयक श्लोकों का अलग २ विभाग भी ा है। इसके अन्तर्गत स्तोत्रकाव्य और सुभाषितकाव्य पाठकों के सुभीते के लिये इस पुस्तक में स्तोत्रकाव्य सुभाषितकाव्य अलग २ दो विभागों में दिये गये हैं।

पद्य काव्य छन्दोबद्ध होता है। गद्य काव्य[2] में छन्द का न नहीं रहता और अन्य सब काव्यों के गुण रहते हैं। तीन या चार प्रकार का है। वामन ने वृत्तगन्धि, लिकाप्राय और चूर्णक ये तीन भेद गद्य के माने हैं। ित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने मुक्तक को गद्य का चौथा र भी माना है। वृत्तगन्धि वह गद्य है जिसमें किसी के पाद वा पादार्ध मिलते हैं। उत्कलिकाप्राय गद्य में २ समास रहते हैं। छोटे २ समस्त पद युक्त गद्य को क कहते हैं। जिस गद्य में समस्त पदों का अभाव रहता ह मुक्तक गद्य कहाता है।

गद्य काव्य,[3] कथा और आख्यायिका के भेद से दो प्रकार होता है। कथा में सरस वस्तु का वर्णन गद्य में रहता

---

१ कोषः श्लोकसमूहस्तुस्यादन्योन्यानपेक्षकः व्रज्याक्रमेणरचितस्सएवा-ोरमः। साहित्य दर्पण श्लो० ३२०।

२ साहित्यदर्पण ३३०—३३२।

३ साहित्य दर्पण श्लोक ३३२-३३५।

है। इस में बीच २ में कहीं आर्या, वक्त्र,
वक्त्रक छन्द के श्लोक भी होते हैं। कथा के आर
लाचरण पद्य में होना आवश्यक है। इस के आ
और सज्जन का वर्णन भी रहता है। जैसे कादम्
आख्यायिका कथा के समान ही होती है, कि
विशेषता यह है कि इस में रचयिता का वंशवर्णन
कवियों का भी चरित्र रहता है। इस के विभा
नाम के रहते हैं। प्रत्येक आश्वास के पूर्व में दो,
भी होते हैं जैसे हर्ष चरित में हैं। पञ्चतन्त्र, हि
अन्य आख्यान ग्रन्थ भी कथा व आख्यायिका के
माने गये[1] हैं।

मिश्र काव्य[2] में गद्य और पद्य दोनों होते हैं।
प्रकार का होता है—चम्पू, विरुद और करम्भक।
मिश्र काव्य चम्पू कहाता है। गद्य व पद्य में
स्तुति को बिरुद कहते हैं। अनेक भाषायुक्त
को करम्भक कहते हैं।

पाठकों को उपर्युक्त काव्यों के लक्षणों को
अनुमान न करना चाहिये कि कालिदासादि प्राची
ने इन लक्षणों को देख कर ही अपने २ काव्यों की
होगी। प्रत्युत आलङ्कारिकों ने ही प्राचीन कवियों

---

१ अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः। काव्या

२ साहित्य दर्पण श्लोक ३३६-३३७।

ख कर ये लक्षण बनाये हैं। समग्र काव्यों में ये सम्पूर्ण
मिलते ही हैं यह भी कल्पना नहीं करनी चाहिये।
ङ्कारिकों ने ये लक्षण सामान्यतः काव्यों के भेद समझाने
ये ही लिखे हैं।

संस्कृत साहित्य का पर्यालोचन करने से ज्ञात होता है कि
पद्य काव्यों की अपेक्षा गद्य काव्यों की संख्या बहुत ही
है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं।

(क) जिस देश में संस्कृत काव्यों की रचना हुई है उस
सृष्टि-रचना, निसर्गरमणीयता, शस्यश्यामला भूमि,
त नदियां और सुन्दर पर्वत आदि अनेक साधनों से
की जनता की कल्पना-शक्ति का विकास हो कर उसका
पद्य ही में हुवा है। पद्य की स्वाभाविकता और मनो-
गद्य में मुश्किल से आ सकती है।

(ख) भारतवासी स्वभाव ही से कल्पना-प्रधान, निवृत्ति-
और दैववादी होते आये हैं। इसीलिये पद्यमय
की ओर उनकी प्रकृति सदैव झुकी रही है। तात्त्विक
र व्यक्त करने का प्रधान साधन गद्य ही है। किन्तु
सम्बन्धि विचारों का प्रगटीकरण पद्य में ही विशेष
ता और सरलता से होता है।

(ग) संसार के सभी देशों का प्रारम्भिक साहित्य पद्य
है। भारतवर्ष भी इस नियम के बाहर नहीं है।

परन्तु भारतवर्ष की यह प्राथमिक प्रवृत्ति अन्य देशों
विशेष स्थिरता से चली आई है।

(घ) अनुभव से मालूम हो सकता है कि
की अपेक्षा पद्य ग्रन्थ सरलता से कण्ठस्थ हो
भारतवासियों में ग्रन्थ कण्ठस्थ करने की प्रथा
से ही चली आई है। उस उद्देश से भी प
रचना, गद्य काव्यों की अपेक्षा अधिक हो
विक ही है।

(ङ) यद्यपि श्रव्य काव्य के अन्तर्गत गद्य
दोनों ही काव्य हैं तथापि अनुभव से प्रतीत हो
जैसा पद्य-काव्य श्रवण सुखद होता है वैसा गद्य
होता। इसलिये भी पद्य काव्य की विशेषता ही
आगे के प्रकरणों में महाकाव्य से प्रारम्भ क
अनेक भेदों के अनुसार कालक्रम से कवि और उ
का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है।

महाकाव्य

रामायण और महाभारत की निर्मिति के बा
ष्यकार पतञ्जलि के समय तक अनेक काव्य ग्र
थे जिनका परिज्ञान केवल निर्देश ही से है यह
कही जा चुकी है। उपलब्ध काव्यों में सबसे प्रा
दास और अश्वघोष के महाकाव्य माने गये हैं।

अश्वघोष इनमें प्राचीनतर कौन है इस विषय पर हासिकों में मतभेद है। इसका प्रधान कारण यही है कि अश्वघोष के समय निर्धारण में जैसे निश्चित प्रमाण हैं वैसे कालिदास के विषय में अभी तक उपलब्ध हैं। कई कारणों से, जो उचित स्थान पर दिखाये गे, हमलोगों ने कालिदास को ही अश्वघोष का वर्ती माना है।

कालिदास (ई०पू० १ म शतक)

कालिदास का जीवन चरित्र—दन्तकथाएँ—निवास स्थान—समय रिण—फग्युर्सन मत—मेक्डोनेल् मत—राय, शंकरादि भारतीय मत—क्रमादित्य का सभा पण्डित—कालिदास नाम के अनेक विद्वान्—चित ग्रन्थ- कुमार सम्भव, रघुवंश, ऋतु संहार, मेघदूत—अन्य —कालिदास की योग्यता—काव्य की प्रणाली व छन्द।

संस्कृत साहित्य में इस महाकवि का दर्जा बहुत ऊँचा। इसकी कवित्व शक्ति और प्रतिभा श्रेष्ठ कोटि की है। न्नराघवकार जयदेव ने जो कालिदास को 'कविकुलगुरुः' है वह यथार्थ है।

कालिदास के जीवन चरित्र के विषय में बहुत कम लुम है। इस कवि ने अपने ग्रन्थों में अपने नाम के सिवाय छ भी नहीं कहा है। बाद के ग्रन्थकारों ने भी इसके जीवन रित्र पर कोई भी प्रकाश नहीं डाला है। इसकी भाषाशैली

अनेक शास्त्रीयविषयनिर्देश, राज तथा अ
वर्णन आदि से इसके चरित्र के विषय में कुछ
सकता है। इसके विषय में परम्परागत अने
प्रचलित हैं।

(१) सीलोन[1] के किसी कुमारदास नामक
सभा में कालिदास अतिथि बनकर गया था और
के घर इसकी मृत्यु हुई थी।

(२) यह पहिले बहुत मूर्ख था। यह बात
हो जाने पर इसकी स्त्री विद्यावती को मालूम हुई
इसको बहुत फटकारा। इससे लज्जित होकर यह
उपासना करने लगा। काली से वरदान प्राप्त कर
पर इसकी विलक्षण वाक्शक्ति को देख विद्याव
"अस्ति कश्चिद्वागर्थः" यह सुनकर इस वाक्य
शब्द से प्रारम्भ होने वाले क्रम से कुमारसम्भव, मे
रघुवंश ये तीन काव्य इसने रचे।

कालिदास के निवास स्थान के विषय में भ
सिकों में मतभेद है। उसके ग्रन्थों में का वि
उज्जयिनी का विस्तृत वर्णन देखकर और उज्जयि
मादित्य के नवरत्नों[2] में इसकी गणना प्राचीन काल

१ नन्दर्गीकर का कुमारदास पृ० ५।

२ धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकुवेतालभट्टघटकर्परकालिदा
ख्यातोवराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्र

र कोई इसको उज्जयिनी वा विदिशा का निवासी
ते हैं। दूसरे इसके हिमालय के वर्णन से और इसकी
शैली से इसको काश्मीरवासी बताते हैं। कुछ लोग
ी कालीकी उपासना वाली दन्तकथा तथा इसके नाम
ाधार पर इसको बङ्ग देश का निवासी कहते हैं। श्री०
वि० वैद्य का मत है कि कालिदास यदि बङ्गीय होता
सके ग्रन्थों में गौड़ी रीति का प्राधान्य होता जैसा कि
वङ्गीय कवियों के काव्यों में है। बहुत सम्भव है कि
ाश्मीर में पैदा हुआ हो और बाल्यावस्था वहीं बिता-
ज्जयिनी में आ बसा हो। अन्यथा हिमालय पर्वत का
हुबहू वर्णन करना केवल उस पर्वत को एक दो बार
र ही सम्भवनीय नहीं है।

इसके समय के विषय में भी अनेक मत प्रचलित हैं।
ु कालिदास विक्रमादित्य का सभापण्डित था इसमें
ी का मतभेद नहीं है। भारत के प्राचीन इतिहास से
होता है कि ई० १००० तक ६ विक्रमादित्य हो चुके थे।
ु ई० ६३४ के आयहोल[1] के शिलालेख में कालिदास
भारवि के नाम साथ २ उल्लिखित होने से और बाण

---

१ येनायोजिनवेश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म। सविजयतां
ीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः।
an Antiquary Vol Viii Page 137.

भट्ट (ई० ६३०) के हर्ष चरित[1] में भी अन्य पूर्ववर्ती
के साथ कालिदास की प्रशंसा रहने के कारण ई०
बाद के कल्याणी चालुक्यवंश के विक्रमादित्य[2] का
इसके समय निर्धारण में अप्रस्तुत है। ई० ६३४ के
तीन विक्रमादित्यों की कल्पना कर जो तीन मत प्र
उनका संक्षेप में यहां दिग्दर्शन कराया जाता है।

(१) पुराण वस्तु संशोधक फर्ग्युसन (Ferg
महाशय ने शिलालेखों से अनुमान किया था कि ई०
उज्जयिनी के विक्रमादित्य ने कारूर की लड़ाई में
परास्त कर उस विजय के उपलक्ष्य में अपने नाम से
संवत् प्रचलित किया और उसकी प्राचीनता सि
के लिये उसको ६०० वर्ष पूर्व मानकर उसका आरम्भ
५७ से माना। इस आविष्कार के आधार पर मै
आदि विद्वानों ने रघुवंश में हूणों का निर्देश देख,
को इस विक्रमादित्य का सभापण्डित मान लिया
जब फ्लीट महाशय ने इस संवत् को ई० ५४४ से
मालव संवत् नाम से प्रचलित सिद्ध किया और
परास्त करने वाला कोई विक्रमादित्य न होकर

---

१ निर्गतासु नवाकस्य कालिदासस्य सूक्तिषु। कीर्तिमधुर
मञ्जरीष्विवजायते। हर्षचरित प्रस्तावना।

२ कल्याणी चालुक्य वंश में तीन विक्रमादित्य हुवे थे जो
म और ६ ष्ठ विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध हैं।

ष्णुवर्द्धन ही प्रमाणित हुआ जिसकी उपाधि विक्रमादित्य
हीं थी तब विद्वानों ने इस मत को केवल कोरी कल्पना
ी समझ त्याग दिया। परन्तु कालिदास को इसी काल का
सिद्ध करने के प्रयत्न और भी हुवे[1] थे और अभी भी हो
हे[2] हैं। किन्तु उनमें कोई भी प्रयत्न ऐतिहासिकों की दृष्टि
े हृदयग्राही नहीं हैं।

(२) फ्लीट महाशय के आविष्कार के बाद अनेक
ाचीन काव्यमयशिलालेखों की उपलब्धि से और विशेष
र मन्दसूर के ई० ४७३ के वत्सभट्टि के शिला लेख में
ालिदास के काव्य का अनुकरण देखकर स्मिथ (Smith)
ेक्डोनल् (Macdonell) प्रभृति विद्वानों ने कालिदास को
त्सभट्टि के शिला लेख के समय से प्राचीन अनुमान कर
सको द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (ई० ४००) का
मकालिक मान लिया। ऐसा मानने से रघुवंश के रघु-
दिग्विजय का वर्णन समुद्र गुप्त के दिग्विजय से, कुमार
सम्भव की रचना चन्द्र गुप्त के पुत्र कुमार गुप्त के जन्म से,
विक्रमादित्य की उपाधि के उपलक्ष्य में विक्रमोर्वशीय नाटक
की रचना, मल्लिनाथ के अनुसार कालिदास और बौद्ध
नैयायिक दिग्नाग का समकालीनत्व, कालिदास के ग्रन्थों से
अनुमित उसकाल की शान्ति आदि प्रायः सभी बातें

१ मेक्डोनल् का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ३२४-३२५।

२ देवदत्त भाण्डारकर का लेख सन् १९३०।

संगत हो जाती हैं। करीब २ सभी पाश्चात्य विद्वा
मत को मानते हैं। परन्तु इस मत के अनुसार, का
ने मालविकाग्निमित्र नाटक के लिये ५०० वर्ष पुरा
वंश के अप्रसिद्ध राजा अग्निमित्र को ही नायक
चुना; अश्वघोष और कालिदास के काव्यों में विशे
करण होने से यदि मान भी लिया जाय कि कालि
ही अश्वघोष का अनुकरण किया तो उसने "भास सौ
कविपुत्र आदि" के साथ अश्वघोष का भी
ल्लेख क्यों नहीं किया; रघुवंश के पाण्ड्य सम्रा
कालिदास द्वारा ऐसा विस्तृत वर्णन क्यों किया गया
कि पाण्ड्य वंशीय राजाओं की अवनत अवस्था थी
पह्लव वंशीय राजाओं का ही साम्राज्य था; ऐसे
सन्देह उठते हैं जो सूक्ष्म निरीक्षकों को सदैव
रहते हैं।

(३) कुछ बड़े बड़े विद्वान् एस० 'राय,[1] के० पी०
जयस्वाल[3], शिवराम महादेव परांजपे[4] प्रभृति कालिदा
ई० पू० १ म शताब्दि से अर्वाचीन मानने में सहमत
हैं। इस मत के कुछ प्रधान कारण नीचे दिये जाते हैं।

---

१ प्रोसीडिङ्ग्स आफदी ओरिएण्टल कान्फरेन्स। पूना १९१९
२ इण्डियनहिस्टारिक क्वार्टर्ली १।३०९।
३ जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी।
४ साहित्य संग्रह—शिवराम महादेव परांजपे कृत।

(क) ई० पू० ५७ वर्ष में विक्रम संवत् का आरम्भ
ता है। भारतवासियों की यह धारणा है कि उस समय
किसी प्रतापी विक्रमादित्य नाम के राजा ने इस संवत्
अपने नाम से चलाया है। परन्तु इस राजा का सप्रमाण
स्तित्व, ऐतिहासिक अभी तक सिद्ध नहीं कर सके हैं।
लीट महाशय ने सिद्ध किया है कि यह संवत् ई० पू०
७ से ई० ८ म शतक तक मालवा संवत् के नाम से प्रसिद्ध
और वाद में इसका नाम विक्रम संवत् हुआ। विक्रमादित्य
ज्जयिनी का राजा था जो मालवा में है। इसलिये इस
वत् के नाम मालवा और विक्रम दोनों हो सकते हैं जिनमें से
लीट महाशय को मालवा का ही उल्लेख प्राचीन लेखों में
ला होगा। कल्याणी चालुक्य वंश के इतिहास से ज्ञात
ता है कि ई० १० म शतक तक छ विक्रमादित्य हो चुके
। ई० ४ र्थ शतक के गुप्त वंश के द्वितीय चन्द्र गुप्त की
पाधि विक्रमादित्य थी और इस समय से आगे जितने
विक्रमादित्य हुवे उन्होंने इस नाम को उपाधि के रूप में
धारण किया। इससे भी यह सिद्ध हो सकता है कि
४ र्थ शतक के पूर्व में कोई विक्रमादित्य नाम का बड़ा
तापी राजा हो चुका था जिसका नाम राजा लोग उपाधि
रूप में अपना प्रताप व्यक्त करने के लिये धारण किया
रते थे। यह विक्रमादित्य राजा उसी समय का हो सकता
जब से विक्रम संवत् का प्रारम्भ है।

(ख) मालविकाग्निमित्र नाटक रचने में कालि
अवश्य यही उद्देश रहा होगा कि प्रेक्षक गण अ
की कथा को जाने और उसको प्रत्यक्ष करें। उस
अग्निमित्र की कथा लोक में प्रसिद्ध होगी और
अभिनय करने से लोगों का अवश्य मनोरंजन हो
इसी धारणा से प्रेरित हो कालिदास ने यह नाट
होगा। अन्यथा ई० ४ र्थ या ५ म शतक में होने वा
दास अपने प्रथम नाटक का नायक अन्य प्रसिद्ध
को छोड़कर ई० पू० २ य शतक के अप्रसिद्ध अग्नि
क्यों चुनने गया इसकी संगति नहीं लगती है। प्रा
प्रसिद्ध कथाओं के आधार पर ही रचे जाते हैं।
यह मान लेने से कि कालिदास ई० पू० १ म शतक
क्योंकि उस समय अग्निमित्र की कथाएँ अवश्य
रही होंगी, उपरोक्त संगति लग जाती है। इस न
अग्निमित्र के पितापुत्र पुष्यमित्र और वसुमित्र
का वर्णन, अश्वमेधयाग इत्यादि जो बातें भी
प्रमाणों के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से यथार्थ मा
उनका वर्णन, ४ या ५ सौ वर्ष के बाद होने वाला
इस प्रकार ठीक ठीक कैसे कर सकता था। इसलिये
दास को विक्रम संवत् के आरम्भ में ही मान ले
श्यक होता है।

(ग) विद्वानों को यह बात स्वीकृत है कि

भारत और अष्टादश पुराण जिस रूप में आज विद्यमान
से वे गुप्त राजा के समय में हुवे थे और तब से उनमें कोई
वर्तन नहीं हुआ है। यदि कालिदास गुप्त राजाओं के
य का होता तो उसको दी हुई रघु की वंशावलि
रामायण व अन्य वायु पुराण के अतिरिक्त पुराणों
वंशावलि में इतना भेद कदापि न होता। वायु पुराण
वंशावलि से भी कालिदास की वंशावलि[1] में कई ठिकाने
हैं। 'दिलीप का पुत्र रघु' यह आनन्द रामायण को
कर अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। आनन्दरामायण में
स्पष्ट लिखा है कि 'दीर्घबाहु' उपाधि दिलीप की थी।
वंश में यह उपाधि रघु की बतलाई गई है। इससे यह
द्ध होता है कि दीर्घबाहु नाम का कोई राजा नहीं था।
बाहु नाम के स्वतन्त्र राजा का उल्लेख विष्णु तथा वायु
णों में दिलीप और रघु के मध्य में किया है और इन दोनों
णों में दिलीप का नाम खट्वाङ्गद बतलाया है। रामायण[1]
ो दीर्घबाहु, दिलीप अथवा रघु का निर्देश ही नहीं है।
लदास ने रघुवंश के आरम्भ में 'अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मि-
सूरिभिः। मणौवज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवाऽस्तिमेगतिः॥
े जो प्रतिज्ञा की है इसमें 'पूर्वसूरिभिःकृतवाग्द्वार' कौन था
विषय में टीकाकारों ने स्पष्ट बताया है कि यह वाग्द्वार
ायण, पुराण व उपपुराण' थे[2]। अब यह विचार उप-

१ नन्दर्गीकर की रघुवंश की भूमिका पृ० १०३ और परिशिष्ट क।
२ मल्लिनाथ की टीका तथा नन्दर्गीकर की इस श्लोक की टिप्पणी।

स्थित होता है कि यह रामायण वा पुराण कौन था;
आधुनिक पुराणों की कोई वंशावलि रघुवंश से नहीं
है। कालिदास का दिलीप और रघु का सम्बन्ध
कल्पित नहीं है क्योंकि हरिवंश और आनन्दरा
यह सम्बन्ध दिया है और भास ने अपने प्रतिमा:
भी यहीं सम्बन्ध देकर इस सम्बन्ध की पुष्टि की है
यह जान पड़ता है कि आधुनिक रामायण व पु
अतिरिक्त गुप्त वंश के पूर्व कोई ऐसी पुस्तक अ
होगी जिसके आधार पर भास तथा कालिदास
वंशावलि लिखी होगी। अतएव यह कहना असं
है कि कालिदास गुप्त वंश से बहुत प्राचीन काल

(घ) अश्वघोष और कालिदास के काव्यों
अनेक विद्वानों ने उनके ग्रन्थों के श्लोकों को उद्धृत क
उनमें से कुछ तुलनात्मक श्लोक यहां दिये जाते हैं।

तासांमुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तरा सान्द्रकुतूहला
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवाऽऽसन्

रघुवंश ७ म सर्ग

वातायनेभ्यस्तुविनिः सृतानि परस्परोपासितकुण्डल
स्त्रीणांविरेजुर्मुखपङ्कजानि सक्तानि हर्म्येष्विव पङ्कजा

बुद्धचरित ३ य सर्ग

---

१ नन्दर्गीकर की रघुवंश की भूमिका पृ० १६३--१९५।

ाववुः सौख्यकराः प्रसेदुः आशाविधूम्रोहुतभुग्दिदीपे ।
न्यभूवन्विमलानितत्रोत्सवेऽन्तरिक्षं प्रससाद सद्यः ॥

कुमारसम्भव ११ श सर्ग श्लोक ३७

ाववुःस्पर्शसुखा मनोज्ञा दिव्यानि वासांस्यवपातयन्तः ।
: स एवाभ्यधिकं चकासेजज्वालसौम्यार्चिरनीरितोऽग्निः ॥

बुद्धचरित १ म सर्ग श्लोक ४१

महीपालतवश्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ।
ादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चयेमूर्च्छतिमारुतस्य ॥

रघुवंश २ य सर्ग श्लोक ३४

श्रमंनार्हसिमारकर्तुंहिंस्रात्मतामुत्सृजगच्छ शर्म ।
वया कम्पयितुंहिशक्यो महागिरिर्मेरुरिवानिलेन ॥

बुद्धचरित १३ श सर्ग श्लोक ५७

इस प्रकार का साम्य इन दोनों की कृतियों में प्रायः
त्र ही विद्यमान है। इस तुलना से विद्वानों को यह ज्ञात
ा है कि इन दोनों में से किसी एक ने दूसरे का अनु-
ण अवश्य किया है। परन्तु यह शंका होती है कि
लिदास ने अश्वघोष का या अश्वघोष ने कालिदास का
करण किया ? अश्वघोष दार्शनिक था और उसका प्रधान
 बौद्धधर्म का प्रचार करना था। उस समय के लोगों
अभिरुचि काव्यों में अधिक देख कर, उन विषयरत लोगों
उस मार्ग से परावृत्त कर धर्मोन्मुख करने के उद्देश से
उसने अपना प्रथम काव्य सौन्दरनन्द लिखा था। यह

बात उसने सौन्दरनन्द के अन्तिम श्लोकों में स्पष्ट
है । "इत्येषाव्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थ ग-
श्रोतॄणां ग्रहणार्थमन्यमनसां काव्योपचारात्कृता॥
त्कृतमन्यदत्रहि मया तत्काव्यधर्मात्कृतम्। पातुं ति-
षधं मधुयुतं हृद्यंकथं स्यादिति ॥ १ ॥ प्रायेणाऽऽलो-
विषयरतिपरं मोक्षात्प्रतिहतम् । काव्यव्याजेन त-
मिहमयामोक्षपरमिति ॥ तद्बुध्वाशामिकं यत्तदव-
ग्राह्यं न ललितम्। पांशुभ्यो धातुजेभ्यो नियतमुपक-
करमिति"। सौन्दरनन्द काव्य का कथानक भी
सिद्ध करता है। उपरोक्त श्लोकों से पाठकों को
होगा कि अश्वघोष ने अपने उद्देश की सिद्धि
काव्य की शरण ली। क्योंकि उस समय लोक
प्रसिद्ध कवि के प्रचलित सुन्दर शृङ्गाररस प्रधान
बहुत अभिरुचि थी और अश्वघोष ने उसी काव्य
का अनुकरण किया और उसमें 'ग्राह्यं न ललितं
शृङ्गार का ग्रहण मत करो ऐसा उपदेश दिया। पू
गया है कि कालिदास और अश्वघोष के काव्यों
सादृश्य है। इसलिये मानना पड़ता है कि अश्वघो
बुद्ध चरित और सौन्दरनन्द काव्यों में कालिदा
अनुकरण किया। यदि कालिदास ने अश्वघोष का
किया होता तो जैसा पहिले कहा जा चुका है, माल

१ म० म० हरप्रसाद शास्त्री का सौन्दरनन्द काव्य।

त्र नाटक के आरम्भ में भास सौमिल्ल कवि पुत्रादिकों
ी तरह अश्वघोष का भी निर्देश कहीं न कहीं अवश्य किया
ता। इससे मानना पड़ता है कि अश्वघोष से कालिदास
ाचीन है और अश्वघोष ने ही कालिदास का अनुकरण किया है।
सके अतिरिक्त अश्वघोष के काव्यों में कालिदास के काव्यों
अनुकरण के साथ २ भास, रामायण, महाभारत, भग-
द्गीता का भी स्पष्ट अनुकरण दीख पड़ता है। ऐसा
नुकरण कालिदास के ग्रन्थों में बहुत कम है। यह भी अश्व-
ोष का अनुकरणप्रियत्व सिद्ध करता है।

(ङ) कालिदास के मेघदूतकाव्य के (१) 'आषाढ़स्य
थमदिवसे' (२) 'प्रत्यासन्नेनभसि' तथा (३) 'शापान्तोमे
ुजगशयनात्' इन श्लोकों के आधार पर पं० रामचन्द्र
विनायक पटवर्धन महाशय ने ज्यौतिष गणना कर यह सिद्ध
किया है कि मेघदूत की रचना के समय सूर्य जब पुष्य नक्षत्र
के प्रथम चरण में होता था उस समय नभोभास अर्थात्
उत्तरायन-कर्क-संक्रान्ति (Summer Solstice) का प्रारम्भ
होता था। परन्तु अब वह आर्द्रा नक्षत्र के आरम्भ में होता
है। यह वर्तमान परिस्थिति १८०० वर्ष में ही उपस्थित हो
सकती है। रघुवंश के "प्रससादो[1] दयादम्भः कुम्भयोनेर्म-
हौजसः" इस श्लोक के आधार पर भी गणित कर आपने
यही बात सिद्ध की है। इनके अनुमान के अनुसार कालि-

---

१ रघुवंश ४ र्थ सर्ग श्लो० २१।

दास का समय ई० पू० ५६ वर्ष के पूर्व ही सिद्ध[1] हो

(च) कालिदास ने रघुवंश के षष्ट[2] सर्ग में
के स्वयंवर—प्रसङ्ग में अनेक राजाओं का वर्णन
हुवे पाण्ड्य राजा का भी वर्णन किया है। इसी तरह
के ४ र्थ सर्ग में रघुदिग्विजय वर्णन में कलिङ्ग
दक्षिण दिशा में पाण्ड्यों का ही वर्णन किया है। ४ र्थ
जो वर्णन है उससे स्पष्ट है कि उस समय ताम्रपर्णी
मोती बहुत मिलते थे, विदेशियों से उनका व्यापार
बहुत था और मोती के व्यापार का प्रभुत्व पाण्ड्य[3]
के हाथ में था। षष्ठ सर्ग के वर्णन से यह ज्ञात होता
पाण्ड्य राजा उस समय अश्वमेध[4] अवभृथ कर
कहाता था और उस अश्वमेध के सौस्नातिक अगस्त्य
थे। अग्रिम श्लोक से यह भी व्यक्त होता है कि सिंह
राजा (लंकाधिपति) इसका सामन्त था, रत्नानुविद्ध
इस राज्य की मेखला थी और इस पाण्ड्य राज्य की
धानी उरगाख्यपुर (उरगपुर) थी। अब यह देखना
कि ये सब बातें पाण्ड्य राज्य के इतिहास में किस

१ महावीर प्रसाद द्विवेदी का 'कालिदास' शारदा पुस्त
पृ० ९४-९५।

२ रघुवंश षष्ठ सर्ग श्लोक ५९-६५।

३ रघुवंश ४ थ सर्ग श्लो० ५०।

४ ,, षष्ठ ,, ,, ६१।

उपस्थित थीं। व्हीं० ए० स्मिथ का 'भारत का प्राचीन इतिहास'[1] देखने से यह पता चलता है कि पाण्ड्य राज्य का रोम के साथ सामुद्रिक व्यापार ई० पू० प्रथम शतक में जारी था। ई० पू० २० के लगभग पाण्ड्य राजा ने रोम के अगस्तस सीज़र के दर्बार में दूत भेजे थे। यद्यपि पाण्ड्य, केरल (चेर) और चोल इन तीनों राज्यों के संस्थापक तीन सगे भाई थे तथापि ई० प्रथम शतक तक पाण्ड्य राज्य का ही प्रभुत्व इन पर था और ताम्रपर्णी के मोती और सीप का उपभोग पाण्ड्य ही करते थे। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि ताम्रपर्णी के तटपर यह मोती का व्यापार ई० पू० ही उत्कर्ष में था। ई० प्रथम और द्वितीय शतक में जब कि प्लीनी (Pliny) और टालेमी (Ptolemy) का भारत का इतिहास लिखा है उस समय पाण्ड्यों का प्रभुत्व कम होकर चोल राजाओं का प्रभुत्व था। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि ई० पू० जब चोल राजाओं का प्रभुत्व स्थापित नहीं हुआ था उससमय वहां की राजधानी 'उरइयुर' (Uraiyur) के नाम से प्रसिद्ध थी। यह कहा जा चुका है कि ई० पू० प्रथम तथा द्वितीय शतक में पाण्ड्यों का ही प्रभुत्व था इसलिये यह बहुत सम्भव है कि यह उरइयुर नगर पाण्ड्यों की ही राजधानी समझी जाती होगी। इतिहास में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि चोल राजाओं

---

[1] पृष्ठ ४६८-४७२ और ४८०-४८२ चतुर्थ संस्करण।

का प्रभुत्व स्थापित करने वाले ऐतिहासिक आ
ऐतिहासिक राजा करिकाल ने ई० प्रथम शत
राजधानी को बदल कर कावेरी के तट पर दूसरी
स्थापित की। इससे यह स्पष्ट है कि उरइयुर यह
की राजधानी ईसा के बाद कभी भी नहीं थी। कालि
रघुवंश के षष्ठ सर्ग में पाण्ड्य राजा का वर्णन
'उरगाख्यस्य पुरस्यनाथं' ऐसा स्पष्ट कहा है। बहुत
है कि यह उरगाख्यपुर (उरगपुर) इतिहास में
उरइयूर[1] ही होगा। कालिदास ने रघुवंश के षष्ठ
लंकाधिपति को पाण्ड्य राजा का सामन्त बतलाया है
भी प्रमाण इतिहास में विद्यमान है। ई० ३ य
शतक के दक्षिण के इतिहास से यह ज्ञात होता है
समय दक्षिण में काञ्ची के पल्लवों का प्रभुत्व था
समुद्र गुप्त ने अपने दक्षिण के दिग्विजय में परास्त
था। उस समय में पाण्ड्य और चोल नाम मात्र के
कालिदास को गुप्त राजाओं के समय का मानने से

---

१ रघुवंश के टीकाकार मल्लिनाथ और हेमाद्रि आदि
नागपुर मानते हैं। नन्दर्गीकर महाशय ने इसको नागपट्टण मानकर
आधुनिक राजमहेन्द्री जिलेका नेगापट्टम (Negapatam) बत
किन्तु यह भूल है। क्योंकि प्राचीन काल से मदुरा और त्रि
जो कावेरी के तट पर हैं राजधानियां मानी जाती हैं और उरइयु
त्रिचनापाली का उस समय का नाम है।

स के पाण्ड्य राजा के वर्णन की संगति नहीं लग कती है।

कालिदास को ई० पू० प्रथम शतक का मानने वालों को सका जवाब देना होगा कि कालिदास ने रघु के दिग्विजय हूणों का जो उल्लेख किया है उसकी संगति कैसे लग कती है। यवन बहुत ही प्राचीन थे इसमें कोई सन्देह ही हीं है। कम्बोजों का उल्लेख कौटिल्य के अर्थ शास्त्र में प्राचीनत्वेन मिलता है। हूणों के विषय में कालिदास ई० पू० मानने[1] वाले विद्वान् कहते हैं कि हूण ज्ञाति भी चीन काल से ज्ञात थी। इसका निदर्शक उल्लेख द्धों के ललित विस्तर नाम के ग्रन्थ में आया है। उसमें नेक लिपियों के उल्लेख में हूण लिपि[2] का भी उल्लेख है। हले कहा जा चुका है कि इसी ग्रन्थ के आधार पर अश्व-ष ने अपना बुद्धचरित लिखा था। ललित विस्तर का मय ई० प्रथम शतक के बाद का नहीं हो सकता है। र्थात् हूण ज्ञाति ई० पू० प्रथम वा द्वितीय शतक में भी च्छी तरह ज्ञात थी।

संस्कृत साहित्य में कालिदास नाम के अनेक विद्वान् हैं। राजशेखर ने अपनी 'सूक्तिमुक्तावलि' के श्लोक में

१ नन्दर्गीकर की रघुवंश की भूमिका पृ० ९७।

२ चिं० वि० वैद्य ने अपने 'संस्कृत वाङ्मयाचात्रोटक इति-' में कहा है कि हूणों का उल्लेख महाभारत और हरिवंश में भी है।

कालिदासत्रयी[1] मानी है। स्व० म० म० पं० रा
शर्मा पाण्डेय जी ने बतलाया है कि नवसाहस
का कर्ता पद्मगुप्त भी परिमल-कालिदास कहाता
धाराधिप मुंज का सभापण्डित था। धारा के
सभा में भी एक कालिदास था। ज्योतिर्विदाभर
शत्रुञ्जयमाहात्म्य का रचयिता भी कोई कालिदा
परन्तु महाकवि कालिदास जिसके सम्बन्ध में
रहा है वह इन सब कालिदासों से प्राचीन तथा भिन्न

काव्यों में कालिदास के विरचित दो महाकाव्य
सम्भव और २ रघुवंश, दो खण्ड काव्य १ ऋतु-संहार
२ मेघदूत, और तीन नाटक १ मालविकाग्निमित्र,
मोर्वशीय और ३ अभिज्ञानशाकुन्तल प्रसिद्ध हैं।
प्रकरण में नाटकों के सम्बन्ध में लिखा जायगा।

कुमार सम्भव :- काव्यों में इसकी रचना ऋतु सं
बाद मानी जाती है। परन्तु महाकाव्यों में यह प्रथम
है। इसमें कार्तिकेय जन्म की पौराणिकी कथा व
इस काव्य के १७ सर्ग हैं। इसके प्रथम ८ सर्ग
मल्लिनाथ की बनाई हुई है। बाकी के सर्गों का
कोई सीताराम कवि हैं। इस काव्य की जो बहुत सी

---

१ एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्। शृङ्गारे ल
कालिदासत्रयी किमु ॥

खित पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं उनमें अधिकांश सप्तमसर्ग अन्त में समाप्त हैं। किसी में १० सर्ग भी हैं। किन्तु ल्लिनाथ की टीका प्रथम आठ सर्ग ही पर रहने के कारण द्वानों ने कालिदास का विरचित यह काव्य अष्टम सर्ग क अतएव अपूर्ण माना है। आगे के सर्गों की रचना सने की यह अभी तक निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। म सर्ग से सप्तदश सर्ग तक के श्लोकों का उल्लेख भारवि लेकर उनके बाद के प्राचीन ग्रन्थकारों के ग्रन्थों में द्यमान न होने के कारण ये सर्ग कालिदास के विरचित ीं माने जाते। इसके ४ र्थ सर्ग में रतिविलाप रघुवंश के जविलाप के सदृश वियोगिनी छन्द में वर्णित है। द्वितीय र्ग में ब्रह्मा और विष्णु की स्तुति रघुवंश के दशम सर्ग सदृश अनुष्टुप् छन्द में है। अष्टम सर्ग में शिवपार्वती का वर्णन अनुचित है ऐसा आनन्दवर्द्धनाचार्य का मत तथापि उनको यह मानना पड़ा है कि कालिदास के वित्व के प्रभाव से यह अनौचिती भी भासमान नहीं होती है। इस काव्य पर २३ टीकाएँ हैं उनमें मल्लिनाथ की ८ सर्ग संजीवनी टीका सर्वश्रेष्ठ है। अन्य सर्गों पर संजीवनी की सीताराम कवि की टीका है।

रघुवंश—सब काव्यों में श्रेष्ठ तथा प्रासादिक काव्य वंश माना जाता है। कालिदास की यह कृति उसके रणत अवस्था की मानी जाती है। इसमें दिलीप से लेकर

अग्निवर्ण तक इक्ष्वाकुवंश के राजाओं का वर्णन है कवि ने राजनीति तथा शास्त्रों के तत्वों का उप... सफाई से किया है। यह महाकाव्य १६ सर्ग का है ग्रन्थ की कथा रामायण तथा पुराणों में मिलती है कोई संस्कृत का छात्र न होगा जिसका इस काव्य... चय न हो। इस काव्य पर २४ टीकाएँ लिखी गई मल्लिनाथ की संजीवनी टीका सबसे अच्छी है। ... की टीका के अनन्तर और भी अनेक टीकाएँ लिखी ग... मल्लिनाथ की संजीविनी टीका सबसे श्रेष्ठ और प्रिय

ऋतु संहार ÷ यह कालिदास का प्रथम विरचि... माना गया है और इसी लिये इसमें कुछ दोष रह गये में छ ऋतुओं का वर्णन बहुत सरलता तथा रोचकता... गया है। इस काव्य पर मल्लिनाथ की टीका नहीं प्राचीन ग्रन्थकारों ने इसके श्लोक कहीं उद्धृत नहीं इसलिये कोई विद्वान् इसको कालिदासकृत नहीं म... इसमें ६ सर्ग हैं। इसके श्लोक भिन्न २ छन्दों में इस पर मणिराम विरचित टीका है।

मेघदूत ÷ इसके जोड़ी का शृङ्गाररस प्रधान दूसरा काव्य विरल ही होगा। इस काव्य की प्रशंसा ... ने मुक्त कंठ से की है। भारत में यह काव्य इतना ... कि जैन पण्डित जिनसेन ने इसके श्लोक का...

लेकर समस्यापूर्ति की तरह 'पार्श्वाभ्युदय' नाम का नया काव्य रचा है। द्वादश शतक के धोयी कवि ने 'पवनदूत' काव्य में इसका अनुकरण किया है। यह पूर्व तथा उत्तर मेघ इन दो विभागों में विभक्त है। ...श के सदृश इस काव्य के भी अनेक टीकाकार हैं। ...नाथ की टीका में इस काव्य को श्लोक संख्या ११८, ...भदेव की टीका में १११ और दक्षिणा वर्तनाथ की टीका ...१० मिलती है। इस काव्य का छन्द मन्दाक्रान्ता है। ...पर ३२ टीकाएँ हैं। मल्लिनाथ की संजीवनी सब से ...द्ध है।

छन्दः शास्त्र का श्रुतबोध ग्रन्थ कालिदास का विरचित परन्तु विद्वानों का मत है कि यह ग्रन्थ महाकवि कालि-...स का रचा नहीं है। सम्भव है कि इसका रचयिता कोई ...चीन कालिदास हो।

'घटकर्पर' और 'शृङ्गारतिलक' काव्यों का रचयिता कोई ...लिदास माना जाता था किन्तु ये किसी भी कालिदास विरचित नहीं मालुम पड़ते हैं।

कालिदास ने अपने ग्रन्थों में वर्णाश्रम धर्म का ...त्व तथा पूर्ण अनुयायित्व प्रदर्शित किया है। यह ... सनातनधर्मावलम्बी होने पर भी अन्य धर्मावल-...यों से द्वेष नहीं रखता था। इसके ग्रन्थों में शिव तथा

विष्णु दोनों के विषय में परब्रह्म की भावना
शिव का बार २ वर्णन मिलने से प्रतीत होता
शैव था। इसके ग्रन्थों में धार्मिक भावनाओं
विवरण के साथ २ अन्य सामाजिक, नैतिक और
त्मिक भावनाएँ भी अच्छी तरह से प्रगट की गईं
काव्यों में शृङ्गाररस प्रधान रहने पर भी अन्य रस
पुष्ट नहीं हैं। इसका भावों को प्रगट करने
चातुर्य्य और इसके साधन में उपमा अलङ्कार का
प्रयोग, योग्य शब्दों को योजना, संस्कृत भाषा
सत्ता, विविध शास्त्र तथा दर्शनों की मर्मज्ञता
व्यवहार का अद्भुत ज्ञान और उसको यथोचित स्थान
करने का विलक्षण वैचक्षण्य, अन्य सर्व गुणों से
भट्ट के शब्दों में वर्णित सकल-प्रयोजन-मौलिभूत,
के साथ ही अन्य सर्व वस्तुओं को भुलाकर
वाला ब्रह्मास्वादसहोदर आनन्द आदि सभी गु
ग्रन्थों में उत्कटता से भरे हुवे हैं। भारत के
दर्शन के पण्डितों ने कालिदास की श्रेष्ठता मुक्त
स्वीकार की है। पाश्चात्य देश के प्रसिद्ध २
कालिदास के ग्रन्थों को पढ़ कर अत्यन्त मुग्ध हो गये
उन्होंने अपनी २ भाषा में उन ग्रन्थों का उत्तम
करने की चेष्टा भी की है। उन्होंने कालिदास की तुलना
देश के सर्वोत्तम कवियों से की है। कालिदास के

शास्त्रों का कुछ न कुछ परिचय मिलता है। इसका
उपवेद तथा वेदाङ्गों का ज्ञान, आस्तिक तथा नास्तिक
ों की योग्य धारणा, व्याकरण अलङ्कार तथा कोष का
पाण्डित्य, वेदान्त शास्त्र का दुरूह विचार, सांख्य और
का तत्वज्ञान, वैद्यक, ज्यौतिष अर्थ तथा काम शास्त्रों का
परिचय और इन का धर्मशास्त्र के साथ मेल मिलाने की
क्षण शैली आदि अनुपम हैं। कालिदास की तुलना करने
ये अनन्वय[1] अलङ्कार की ही शरण लेनी पड़ेगी। जयदेव
कालिदास को "कविता कामिनी का विलास" कहना
ही उचित है।

कालिदास ने अपने काव्यों में वैदर्भी रीति का अनुसरण
ा है। इसके काव्य के प्रधान गुण माधुर्य और प्रसाद
इसके काव्य में व्यञ्जना व्यापार प्रधान रहने के कारण
काव्यों की गणना ध्वनि अर्थात् श्रेष्ठ काव्यों में है।
दास के काव्य, महाकाव्य तथा खण्डकाव्य के नमूने
समयोचित वर्णन, योग्य छन्दों का प्रयोग, आशय का
न्दिग्ध प्रगटी करण, क्लिष्ट कल्पना का त्याग, उदात्तता
अर्थगाम्भीर्य का उचित समावेश आदि सभी अच्छे
य के गुण इसके काव्यों में भरे हैं। कालिदास ने अनुष्टुप्,
ाति, वंशस्थ, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी,

---

१ उपमानोपमेयत्वे एकस्यैवैकवाक्यगे। अनन्वयः। काव्य प्रकाश
म उल्लास पृ० ५५१।

स्रग्धरा वियोगिनी, शार्दूलविक्रीडित; मन्दाक्रा
सभी प्रधान छन्दों का अपने काव्यों में प्रयोग
क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्ततिलक'[1] में कालिदास के
वृत्त की अत्यन्त प्रशंसा की है। जैसे—

सुवशाकालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति।
सदश्वदमकस्येव काम्बोजतुरगाङ्गना॥

अश्वघोष (ई० २ य शतक)

अश्वघोष का जीवनचरित्र—समय निर्धारण—राजा
सभापण्डित—विरचितग्रन्थ—सौन्दरनन्द, बुद्धचरित, सूत्राल

यह बौद्ध कवि और दार्शनिक था। इसके
अनेक काव्य, नाटक तथा दर्शन ग्रन्थ हैं। यह
का एक भारी विद्वान् था। इसके जीवन चरित्र के
विशेष पता नहीं चलता। इसके ग्रन्थों से केवल
होता है कि यह पहिले ब्राह्मण था और बाद में
के महायान पन्थ का धर्मोपदेशक हुआ। यह
रहता था। इसकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। इस
आचार्य थी। चीन यात्री इत्सिङ्ग (ई० ६७१-६५)
प्रवास वर्णन में लिखा है कि अश्वघोष बौद्ध धर्म
आचार्य था और उसके विरचित ग्रन्थ उसकी
समय भारतवर्ष में पठन पाठन में थे। इसके नाम के

[1] सुवृत्ततिलक—विन्यास ३ श्लो० ३४।

ऐसी कथा प्रचलित है कि इसका कण्ठ स्वर इतना मनो-
मधुर और गम्भीर था कि इसके व्याख्यान को सुनकर
ड़े भी अपना हिनहिनाना वन्द कर देते थे। इसीसे इसका
म अश्वघोष पड़ा।

बौद्ध परम्परा से ज्ञात होता है कि कनिष्क राजा ने पाटलि-
पर आक्रमण किया था और वहां से अश्वघोष को पुरुषपुर
शावर) ले जाकर बौद्धधर्म-महापरिषद् का उपसभापति
युक्त किया था। कनिष्क का शासन भारत की उत्तर सीमा पर
१२० से ई० १६० तक था। कनिष्क के समय के एक शिला-
त्र[1] पर 'अश्वघोष राज' ऐसा नाम भी मिलता है। इसलिये
तिहासिकों ने अश्वघोष का समय ई० १०० के बाद माना है।
इसके विरचित ग्रन्थों में सौन्दरनन्द और बुद्धचरित
महाकाव्य उपलब्ध हैं। 'सूत्रालङ्कार' नाम का बौद्ध कथा
थ पहिले चीन भाषा के अनुवाद में उपलब्ध हुआ था।
प्रति वह उपलब्ध हुआ है किन्तु अपूर्ण है। चीन भाषा
अनुवाद ई० ४०५ का है और हाल में इस ग्रन्थ का
नुवाद फ्रेञ्च भाषा में भी हुआ है। सूत्रालङ्कार का दूसरा
म 'कल्पना-मण्डितिका है। इस ग्रन्थ से अश्वघोष का
मायण महाभारत का परिचय, सांख्य, वैशेषिक और जैन
नों का ज्ञान और इसकी बौद्धधर्म पर अत्यन्त श्रद्धा
क होती है। सूत्रालङ्कार की रचना के पूर्व में अश्वघोष

---

१ एपिग्रेफिका इण्डिका ८ म वाल्यूम् १७१ पृष्ठ।

ने बौद्ध धर्म के उपदेश के लिये 'महायान-श्रद्धो
'वज्रसूचि' ये दो ग्रन्थ लिखे थे। प्रथम ग्रन्थ में
महायान पन्थ का पूर्ण विवरण है। दूसरे में
का खण्डन है। इसी की विरचित 'गण्डिस्तोत्र
गाथा भी प्रकाशित है। इस पुस्तक से अश्वघोष
शास्त्र विषयक ज्ञान प्रगट होता है।

बुद्ध-चरितः—इस काव्य में नाम के अनुसार
के चरित्र का वर्णन है। दुर्भाग्यवशात् इस काव्य
सर्गों में से केवल १७ सर्ग उपलब्ध हैं और उन
सर्ग मूल ग्रन्थ के हैं और अन्तिम ४ सर्ग, मूल ग्रन्थ
न होने के कारण, किसी नैपाल के पण्डित ने
हैं। इत्सिङ्ग नामक चीन यात्री के कथन से तथा
के चीन भाषा के अनुवाद से मालुम होता है कि
२८ सर्गों का था। इस महाकाव्य की रचना बौद्ध
ग्रन्थ 'ललित विस्तर' के आधार पर हुई है।

सौन्दरनन्दः—यह महा काव्य बुद्ध चरित के
विरचित है परन्तु बाद में उपलब्ध हुआ है।
सर्ग हैं। इस में गौतम बुद्ध ने अपने वैमात्रेय भ्राता
बौद्धधर्म की दीक्षा लेने के लिये किये हुवे अनुनय
है। यह कथा 'महावग्ग' और 'निदानकथा' में भी

इन दोनों काव्यों में रामायण, महाभारत,
वद्गीता, भास और कालिदास के ग्रन्थों का अनुक

ता है। इन काव्यों में वैदर्भी रीति है, भाषा सरल है और
धर्म का उपदेश प्रधान है।

भारवि (ई० षष्ठ शतक का उत्तरार्द्ध)

जीवन चरित्र—पह्लव राजा सिंहविष्णुवर्मा का सभापण्डित · समय
रण—इसका विरचित ग्रन्थ किरातार्जुनीय महाकाव्य—किराता-
ीय का विषयपरामर्श व टीकाएँ—भारवि की शैली व छन्द।

इस महाकवि की गणना महाकाव्यों के रचयिताओं में
लिदास के बाद की गई है। इसका विरचित महाकाव्य
ातार्जुनीय है। कालिदास के सदृश भारवि के भी
त्र के विषय में बहुत कम मालुम है। अवन्ति-सुन्दरी
के अनुसार भारवि का दूसरा नाम दामोदर था। यह
शिक गोत्रीय नारायण स्वामी का पुत्र था। यह अचलपुर
llichpore) का निवासी था और नरेन्द्रविष्णुवर्धन
काञ्ची के पह्लव राजा सिंहविष्णुवर्मा (ई० ५७०) का
ापण्डित था[1]। किन्तु यह ऐतिहासिक घटना अभी तक
श्चित नहीं हुई है। हाल ही में

"स मेधावी कविर्विद्वान् भारविः प्रभवं गिराम्।
अनुरुध्याऽकरोन्मैत्रीं नरेन्द्रे विष्णुवर्धने" ॥

इस श्लोक में भारविः को 'भारविम्' पढ़ कर यह सिद्ध
े का प्रयत्न किया गया है कि भारवि ही दामोदर नहीं
किन्तु किसी दामोदर ने भारवि से मित्रता कर उसके

---

1 अवन्ति-सुन्दरी कथा--प्रास्ताविक श्लोक।

द्वारा विष्णु-वर्धन के दर्बार में प्रवेश प्राप्त किया था
के आयहोल के शिलालेख में कालिदास के सा
भी नाम खुदा हुआ है। इस लिये ७ म शतक
में भारवि की कीर्ति भारतवर्ष में प्रसृत थी। कीथ
का कथन है कि ई० ६६० के लगभग विरचित काशि
ग्रन्थ में भारवि का निर्देश आया[1] है। इस लिये
लेना आवश्यक होगा कि ई० ६३४ के कम से कम
पहिले भारवि विद्यमान था। इसके काव्य के आं
विद्वानों को यह निश्चय हो गया है कि किराता
कालिदास के काव्यों का बहुत कुछ अनुकरण है।
को षष्ठ शतक के बहुत पूर्व का नहीं माना जा
क्योंकि ७ म शतक के आरम्भ में विद्यमान बाण
हर्षचरित में जहां बाण भट्ट ने अपने पूर्ववर्ति सं
कवियों का वर्णन किया है, भारवि का उल्ले
इसका प्रधान कारण यही हो सकता है कि
उसका नाम रहने पर भी बाण भट्ट को उसका
काव्य का परिचय नहीं था। अर्थात् बाण भट्ट
भारवि की प्रसिद्धि भारत वर्ष में सर्वत्र नहीं
अथवा पुलकेशीका 'आयहोल' का शिलालेख
होने के कारण उत्तर में भारवि को बाण भट्ट
था, ऐसा भी कहा जा सकता है। शिला लेख

1 कीथ का संस्कृतसाहित्य का इतिहास पृ० १०९।

मान हो सकता है कि भारवि दक्षिण का निवासी था।
य महाशय ने भारवि का समय ई० ५०० के लगभग
ा है। दूसरे भारवि को ई० ५५० के लगभग का मानते
इनका यह कथन है कि ई० ७७६ के शिला लेख में पृथ्वी-
कुणी राजा का निर्देश मिलता है। इसका पञ्चम पूर्वज
र्विनीत था जिसने, माना जाता है कि भारवि के काव्य के
श सर्ग की टीका लिखी थी। प्रति पूर्वज के लिये
वर्ष मान कर दुर्विनीत का समय ई० ६२० के लगभग
ता है। इस लिये भारवि को दुर्विनीत से कम से कम ५०
पूर्व का मान लेना आवश्यक होता है।

नरेन्द्र-विष्णु-वर्धन का भारवि सभापण्डित था यह
अवन्ति-सुन्दरी कथा के पूर्वोक्त श्लोक से स्पष्ट है।
ई विद्वान् नरेन्द्र-विष्णु-वर्धन को द्वितीय पुलकेशी का
ता कुब्ज विष्णु-वर्धन मानते हैं। यह कुब्ज विष्णु-वर्धन
पने ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा से ई० सप्तम शतक के आरम्भ
दक्षिण में शासन करता था। यदि यह ठीक माना जाय
ई० ६३४ के आयहोल के शिला लेख के समय इसकी
नी प्रसिद्धि हो गई होगी यह बात ठीक नहीं बैठती।
लिये यह विष्णुवर्धन, कुब्ज विष्णुवर्धन न हो कर ई०
७० के सिंहविष्णुवर्मा का पूर्ववर्ती कोई विष्णु-वर्धन राजा
होगा। इस प्रकार भारवि का समय ई० षष्ठ शतक का
त्तरार्द्ध हो सकता है।

किरातार्जुनीयः—इस महाकाव्य के १८ स
काव्य का कथानक महाभारत से लिया है। इन्द्रकी
पर तपस्या करते समय अर्जुन के साथ किरात
शिव जी का जो युद्ध हुवा था उसका वर्णन इसमें कि
है। इस काव्य का अर्थ गाम्भीर्य प्रसिद्ध ही है
कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्" यह सुभाषित
है। इस काव्य के सैंकड़ों वचन महावरे के समा
भाषा में प्रयुक्त किये जाते हैं। कवि ने अपना राज
परिचय इस काव्य में अच्छी तरह से दिखाया
काव्य की शैली प्रौढ़ तथा मोहक है। कवि की
क्षण शक्ति भी कालिदास के सदृश पूर्णतया व्यक्त
काव्य के १५ वे सर्ग में शब्दचित्र कौशल दिखाने
ने चेष्टा की है। इस सर्ग का १ श्लोक तो केवल
व्यञ्जन से ही बना हुआ है। अलङ्कारिकों ने चित्र
अधम काव्य माना है किन्तु ऐसा काव्य बनाने में
पाण्डित्य की आवश्यकता है। व्याकरण की प्रयोग
व्यक्त करने तथा चित्रकाव्य का प्रयोग करने का प्रयत्न
कारण काव्य में कहीं २ कुछ क्लिष्टता भी आ गई
प्रणाली को आगे के सब कवियों ने बढ़ाया है। अतः
प्रणाली का उत्पादक कहा जा सकता है। जिस तरह भा
ङ्कार के निवेश करने में प्रवीण है वैसे ही इसका कौश
में भी प्रगट हुआ है। वंशस्थ, उद्गता, प्रहर्षिणी,

लीय, द्रुतविलम्बित, प्रमिताक्षरा आदि कठिन छन्द
२ सर्गों में प्रयुक्त हैं। क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक में
वि के वंशस्थ वृत्त की प्रशंसा ऐसी है कि।

वृत्तच्छत्रस्य सा काऽपिवंशस्थस्य विचित्रता।
प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाधिकीकृता॥

भारवि का विरचित यह एक ही महाकाव्य प्रसिद्ध है।
काव्य के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रन्थ इसने बनाये थे या
इस का कोई पता नहीं है। इस काव्य पर करीब १६
ाएँ लिखी गई हैं किन्तु उन सब में मल्लिनाथ की घण्टा-
टीका सर्व श्रेष्ठ है।

प्रवरसेन (ई० ५५०-६००)

प्रवरसेन विरचित सेतुबन्ध काव्य—काश्मीर का राजा—इसके
त्व के सम्बन्ध में भिन्न २ मत—समय—सेतुबन्ध का विषय
ष—विशेषताएँ—शैली—छन्द—इसका शिवनारायण दास कृत
त अनुवाद 'सेतुसरणि'—टीकाएँ।

इस कवि का महाराष्ट्री प्राकृत में विरचित सेतुबन्ध
का महाकाव्य है।

प्रवरसेन काश्मीर का राजा था ऐसा राजतरङ्गिणी[1] से
दित होता है। ई० षष्ठ शतक के उत्तरार्द्ध में (५५०-६००)
गुप्त के बाद यह गद्दी पर आया था। मातृगुप्त राजा,
था इसलिये प्रवरसेन भी सेतुबन्ध काव्य का रचयिता

---

१ स्टाइन (Stein) मुद्रित राजतरङ्गिणी ३।६६।८४।

हो सकता है। परन्तु कई विद्वान् इस को इस
रचयिता न मान कर इस काव्य के रचयिता किं
आश्रयदाता मानते हैं। कुछ विद्वान् इस को दक्षि
काटक वंश का प्रवरसेन समझते हैं। किन्तु इस
पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध न होने से यह मत अनुपादे
काल पहिले यह महा काव्य कालिदास विरचित मा
था। परन्तु अब वह निर्मूल सिद्ध हो गया है
इस काव्य को जानते थे। इन्होंने अपने हर्ष चरित
में प्रवरसेन के विषय में लिखा है—

कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना॥

इसी प्रवरसेन का विरचित 'नलोदय' काव्य
जाता था। किन्तु अब सिद्ध हो गया है कि राजा
और राम के आश्रित किसी वासुदेव कवि की यह

सेतुबन्धः—यह प्राकृत में रचा हुआ महाकाव्य
दूसरे नाम 'रामसेतु' और 'रावण-वह' हैं। इसमें
की सेतुनिर्माण से आरम्भ कर रावण के मृत्यु तक
वर्णित है। इसमें १५ आश्वासक हैं। इसमें शब्द
अनुप्रास, लम्बेसमास, दुरूह उपमा तथा अतिशयो
रूप से विद्यमान हैं। इसमें प्रत्येक सर्ग के अन्त में
शब्द का प्रयोग है। इस महाकाव्य को दण्डी कवि

उसने अपने काव्यादर्श[१] में इस काव्य को "आकरः सूक्ति-
नां" ऐसा कहा है। आनन्दवर्धनाचार्य ने भी अपने
यालोक में इसका उल्लेख किया है।

इस काव्य का 'सेतुसरणि' नाम का संस्कृत अनुवाद
नारायणदास का विरचित है। इस काव्य की ३ टीकाएँ।
उनमें से रामदासकृत रामसेतु-प्रदीप नाम की टीका
शित है।

धनेश्वर-सूरि (ई० ६१०)

वलभी के राजा शिलादित्य का सभापण्डित—इसके विरचित
ञ्जय महाकाव्य का विषय परामर्श।

इस जैन महाकवि का विरचित शत्रुञ्जय महाकाव्य है।
काव्य वलभी में शिलादित्य राजा (ई० ६०५-६१५) के
नन काल में रचा गया था।

शत्रुञ्जय-महाकाव्य :—यह एक महाकाव्य है। इसमें
सर्ग हैं। यह कोई ऐतिहासिक काव्य नहीं है। इसमें
समय की दन्तकथाएँ तथा आख्यायिकाएँ संगृहीत हैं।
व्य की शैली मनोहर है।

---

१ काव्यादर्श प्रथम परिच्छेद श्लो० ३४।
महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।
आकरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादियन्मयम्॥

भट्टि (ई० ७ म शतक)

समय निर्धारण—वलभी के श्रीधर-सेन का आश्रि... भिन्न २ नाम—वंशपरिचय—इसका विरचित रावण ... काव्य—उसका विषय परामर्ष व टीकाएँ—काव्य की शैली ...

इस महाकवि का विरचित महाकाव्य राव... का है जो लोक में 'भट्टि काव्य' नाम से प्रसिद्ध... काव्य में कवि ने कहा है कि वलभी में श्रीधर-सेन... के समय इस काव्य को लिखा। वलभी में श्रीध... के चार राजा हुवे थे। अन्तिम राजा की मृत्यु... हुई थी। प्रायः यही अन्तिम श्रीधर-सेन भट्टि कवि... दाता मालुम होता है। क्योंकि इस श्रीधर-सेन ... महाराजाधिराज थी। वलभी के राजा प्रायः इसके... सर्व सामन्त थे। इसलिये यह अनुमान उत्पन्न... है कि भट्टि इसी श्रीधर-सेन राजा के समय ... जिस राजा की उपाधि महाराजाधिराज थी। ... कवि ई० ६४१ के बाद का तो हो ही नहीं सकता है। ... में इसके नाम के विषय में अनेक प्रवाद हैं। कोई ... को भर्तृ शब्द का प्राकृत रूप मानते हैं और भट्टि ... भर्तृहरि एक ही थे ऐसा अनुमान करते हैं। प्रसिद्ध ... 'वाक्य-पदीय' कार भर्तृहरि ई० ६५० के लगभग ... ऐसा चीन यात्री इत्सिङ्ग के लेख से ज्ञात होता ... कवि भी वैयाकरण था। इसलिये इन दोनों ...

पत है। इनकी एकता निदर्शक अन्य कोई भी प्रमाण लब्ध नहीं है। दूसरे विद्वान् भट्टि कवि को मन्दसूर के तालेख का रचयिता वत्स-भट्टि समझते हैं। किन्तु वत्स-ट्टि के शिलालेख में व्याकरण के दोष होने के कारण यह पना ठीक नहीं मालुम होती। इसके अतिरिक्त भट्टि काव्य अन्त में जो श्लोक है वह किञ्चिद् भेद से उन्हीं शब्दों में मह के काव्यालङ्कार में मिलता है। इन दोनों श्लोकों की ना कर इन दोनों में पूर्ववर्ती कौन था इस विषय में ानों में ऐकमत्य नहीं है। वे दोनों श्लोक ऐसे हैं:—

व्याख्यागम्यमिदं काव्यमुत्सवस्सुधियामलम्।
हता दुर्मेधसश्चास्मिन्विद्वत्प्रियतया मया॥

(भट्टि काव्य)

काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत्।
उत्सवस्सुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हताः॥

(काव्यालङ्कार)

इन दोनों श्लोकों को विचारपूर्वक देखने से यह कहना ता है कि भट्टि ने अपना काव्य निर्माण करने के बाद मह के वचन का स्मरण कर अपना काव्य व्याख्यागम्य ने के कारण आलङ्कारिकों (भामह) ने माना हुआ दोष करने के लिये उन्हीं शब्दों में अपने श्लोक को लिखकर द्वत्प्रियता के कारण जानबूझ कर इस दोषोन्मुख प्रवृत्ति अङ्गीकार किया, ऐसा कहा है। भट्टि कवि ने भामह

के अलङ्कार-निर्देश-क्रमानुसार ही अपने काव्य में ... ङ्कार के उदाहरण दिये हैं उससे भामह भट्टि ... था यह सिद्ध होता है। भामह बाण-भट्ट का ... था इस बात को विद्वानों ने मान लिया है। भट्टि ... समय काणे महाशय के मतानुसार ई० ५०० ... भीतर[2] है। इस अवधि में वलभि के चारों ओर ... गये हैं। के० पी० त्रिवेदी जी ने अपनी भट्टि ... भूमिका में भट्टि का समय ई० ५७५ से ६२५ तक ... किया है। इससे भट्टि कवि चतुर्थ श्रीधर-सेन का ... लिक सिद्ध होता है। बाण-भट्ट ने हर्ष चरित ... में और कवियों के साथ भट्टि का निर्देश नहीं ... इससे भी यही सिद्ध होता है। कई विद्वान् इस ... के कर्ता को चतुर्थ श्रीधर-सेन के पुत्र तृतीय ... दान पत्र का प्रतिग्रहीता वप्प का पुत्र "भट्टि भट्ट ... हैं। इस दान पत्र का समय ई० ६५३ है। किन्तु डा० ... (Dr. Hultzsch) ने इसका प्रतिषेध किया है। ...

हस्तलिखित पुस्तकों में भट्टि कवि का नाम ... स्वामि अथवा भर्तृस्वामि ऐसा मिलता है और ...

---

१ काणे की साहित्यदर्पण की भूमिका पृ० (४०); "भामह ... काव्यालङ्कार" की भूमिका हिन्दू-विश्वविद्यालयीयप्रोफेसर ...

२ काणे की साहित्यदर्पण की भूमिका पृ० १६।

का नाम जयमङ्गल की टीका में श्रीस्वामी और विद्या-
द की टीका में श्रीधर-स्वामी है।

रावण-वध वा भट्टि-काव्य :—यह महाकाव्य है। इसमें
यण की कथा सरल रूप से वर्णित है। इस काव्य को
ने का प्रधान उद्देश उदाहरण द्वारा व्याकरण तथा
ङ्कारों के नियमों को विशद करना है। इस महाकाव्य के
सर्ग हैं। ये २२ सर्ग ४ काण्डों में विभक्त हैं। प्रथम
र्ण-काण्ड १-४ सर्ग तक है। इसमें व्याकरण के सामान्य
मों का स्पष्टीकरण है। द्वितीय अधिकार-काण्ड में ५-६
हैं जिनमें व्याकरण के मुख्य नियम विशद किये गये
तृतीय प्रसन्न-काण्ड में १०-१३ सर्ग हैं। इस में
ङ्कार व गुण वर्णित हैं। चतुर्थ तिङन्त-काण्ड १४-२२ सग
है। इसमें लकारों (क्रियापदों) का विवरण है। इस
र की जयमङ्गल तथा मल्लिनाथकृत ऐसी दो टीकाएँ
शित हैं। इन दोनों टिकाओं के अतिरिक्त इस काव्य की
। और टीकाएँ हैं।

इस महाकाव्य में व्याकरण के प्रयोग रहने के कारण
गी गुण-दोष-विवेचना अप्रस्तुत है। महाकाव्य के सम्पूर्ण
ण इसमें मिलते हैं। व्याकरण शास्त्र के ग्रन्थों को न
र भी केवल इसी ग्रन्थ का ठीक २ अध्ययन करने से
यास से व्याकरण का अच्छा ज्ञान हो जाता है। साहित्य
वाले छात्र प्रायः इसी हेतु से इस काव्य का अध्ययन

करते हैं। इस काव्य के १३ सर्गों में अनुष्टुप्, १ में उपजाति, १ में आर्या, १ में पुष्पिताग्रा और अन्य प्रहर्षिणी, मालिनी, औपच्छन्दसिक मन्दाक्रान्ता विक्रीडित स्रग्धरा आदि छन्द हैं।

भौमक भट्ट (ई० सप्तम शतक)

भौमक—इसके अनेक नाम - विरचित रावणार्जुनीय; समय निर्धारण—रावणार्जुनीय वा अर्जुन--रावणीय का वि

इस कवि के दूसरे नाम भीम, भूम, भूमक ऐसे यह काश्मीर का निवासी था। इस का विरचित नीय वा अर्जुन-रावणीय नाम का महाकाव्य है। वृत्ति तथा क्षेमेन्द्र के सुवृत्ततिलक में इस काव्य मिलता है। यह कवि प्रवरसेन के बाद और पूर्व में था।

रावणार्जुनीय वा अर्जुन-रावणीय:—यह एक है। इसके २७ सर्ग हैं। इस में रामायण की क भाग जिस में रावण और सहस्राजुन वा कार्तवीर्य युद्ध हुवा था, वर्णित है। इस काव्य का प्रधान उद्दे रण के प्रयोग विशद करना है। यह काव्य और दोनों एक ही शतक के होने के कारण अनुकार्य औ का ठीक निश्चय नहीं हो सकता। तथापि भट्टि काव्य अनुकरण होगा। व्याकरण-प्रधान शास्त्र-काव्य होने इस में काव्य के माधुर्यादि गुण उत्कट रूप से नहीं

माघ (ई० ६६०-६७५ के लगभग)

माघकवि – तद्विरचित शिशुपाल-वध काव्य – माघ कवि का पितामह
त का मन्त्री – जीवनचरित्र—समयनिर्धारण – चित्तौर के द्वितीय
का समकालिक – शिशुपाल-वध वा माघकाव्य की विशेषताएँ – :
-परामर्ष – शैली – छन्द – टीकाएँ ।

संस्कृत साहित्य की प्राचीन परम्परा में माघ कवि की
न्त प्रशंसा की गई है। इसका विरचित शिशुपालवध
का एक ही महाकाव्य उपलब्ध है। यह कहा जाता है
इस काव्य में कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थ गौरव
दण्डी का पद—लालित्य तीनों गुण[1] मिलते हैं। यद्यपि
त्य विद्वान् माघ कवि की प्रशंसा करते हैं तो भी वे
कवि को बहुत ऊँचा स्थान देने के लिये तयार नहीं हैं।
तु माघ कवि की सर्वशास्त्रज्ञता और भाव-प्रगटन-पटुता
य महाकवियों मे कम हैं।

माघ कवि ने अपने विषय में बहुत कुछ कहा है। इसके
दत्तक[2] सर्वाश्रय और पितामह सुप्रभदेव थे। यह
भदेव राजा वर्मलात (६००-६२५) का मन्त्री था। इस
का उल्लेख ई० ६२५ के एक शिलालेख में विद्यमान है।

---

१ उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

२ प्रबन्ध-चिन्तामणि और भोज-प्रबन्ध में माघ का जीवन-चरित्र
है।

इस लिये माघ कवि का समय इसके अनुसार
का उत्तरार्द्ध होता है (ई० ६५०-७००)। यह
देश की उत्तर सीमा पर दक्षिण मारवाड़ में आबू
और लूनी नदी के बीच में विद्यमान गुजरात के
भीलमाल वा श्रीमाल नगर में जन्मा था। इसी
निवासी प्रसिद्ध ज्यौतिषी ब्रह्मगुप्त भी था। यह
राजा द्वितीय भोज का समकालिक था। भोज नाम
राजा हुवे हैं। द्वितीय भोज चित्तौर में ई० ६
तक राज्य करता था। यह श्रीमाली गुजराती
इसके सम्बन्ध में ऐसी किस्वदन्ती है कि यह
था। अन्त समय में भी दान देकर ही प्राण
माघ काव्य को पढ़ने से यह मालुम हो जाता
कवि ने भारवि का अनुकरण किया है। "किमु गु
भर्तृकाः" यह इस काव्य का वचन भट्टि काव्य के
का अनुकरण मालुम होता है। कीथ का कथन है
काव्य में जानकी हरण का भी अनुकरण है। माघ
द्वितीय सर्ग में यह श्लोक है—

> अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिस्सन्निबन्धना।
> शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा॥

माघ कवि के समय निर्धारण में इस श्लोक
उपयोग किया गया है। इस में निर्दिष्ट वृत्ति ग्रन्थ
वृत्ति ही हो सकती है। व्याकरण का वृत्ति-ग्रन्थ

ा प्रसिद्ध नहीं है। काशिकावृत्ति का समय ई० ६६० के
भग होने के कारण पूर्वोक्त माघ का समय इस से दृढ़ होता
न्यास ग्रन्थ के रचयिता कीथ महाशय के मत से जिनेन्द्र-
द्ध होना चाहिये। किन्तु व्याकरण के न्यास[1] ग्रन्थ बहुत
ग्रौर बाणभट्ट ने भी अपने हर्षचरित[2] में किसी न्यास ग्रन्थ
निर्देश किया है। इस लिए न्यास पद से जिनेन्द्र-बुद्धि के
यास ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है यह नहीं माना जा सकता
हर्ष-वर्द्धन का विरचित नागानन्द नाटक माघ कवि को
था। इस लिये माघ कवि ७ म शतक के उत्तरार्द्ध में
था इसमें कोई सन्देह करने का स्थान नहीं दीख पड़ता है।

शिशुपाल-वध वा माघ-काव्य:—यह महाकाव्य है। इस
य का कथानक महाभारत में वर्णित शिशुपाल का वध है।
काव्य की रचना किरातार्जुनीय के ढङ्ग पर की गई है।
ों काव्यों में बहुत कुछ सादृश्य है। किरातार्जुनीय में
की और इस में विष्णु की महिमा वर्णित है। दोनों ही
य 'श्रियः' पद से प्रारम्भ होते हैं। किरात काव्य के
सर्ग के अन्त के श्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग किया
है उसी प्रकार इस काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम
क में 'श्री' शब्द का उल्लेख है। इन दोनों काव्यों के
य प्रतिपादन क्रम तथा शैली में भी बहुत कुछ सादृश्य

---

१ Indian Antiquary Vol. XL, 11. 1913. Page 261.
२ हर्ष-चरित (Fuhrer's edition) पृ० १२३।

है। काव्यारम्भ में दोनों में राजनीति वर्णित है
काव्य में ४ र्थ सर्ग विविध छन्द के लिये और
शब्दचित्र काव्य के लिये रक्खे गये हैं। माघ में
उपरोक्त दोनों विषय ४ र्थ तथा १६ वे सर्गों में
लाये हैं।

माघ काव्य के २० सर्ग हैं। यद्यपि इस काव्य
में 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' ऐसी परम्परा है और
में भारवि की प्रौढ़ी तथा अर्थगाम्भीर्य और का
सरलता तथा उदात्तता उस उत्कर्ष को नहीं प्राप्त
है तो भी इसके वर्णन-वैचित्र्य, मोहकता, रसिक
कता, इत्यादि गुण अपूर्व हैं। शब्दचित्र आदि
कुछ क्लिष्टता आ गई है जिसका होना अनिवार्य
के प्रयोग में माघ ने भारवि का अनुकरण करते
विशेषता प्रगट की है। व्याकरण के परिनिष्ठित प्र
भारवि और भट्टि के सदृश इस काव्य में विद्यमान

इस काव्य पर १७ टीकाएँ लिखी गई हैं उनमें
की सर्वंकषा नाम की टीका प्रसिद्ध है। हाल
काव्य पर वल्लभ देव की 'सन्देह-विषौषधि' नाम
भी प्रकाशित हुई है।

कुमारदास (ई० ६७५-७५०)

जानकी-हरण महाकाव्य की उपलब्धि—कुमारदास सीलोन का —समय निर्धारण—कालिदास की मृत्यु का सम्बन्ध—इसका विर- जानकी-हरण काव्य व उसका विषय परामर्श—रीति—छन्द ।

इस कवि का विरचित जानकी-हरण नाम का काव्य है। काव्य प्रथम ग्रन्थकारों के वचनों से ज्ञात था। अनन्तर ल भाषा के अनुवाद में उपलब्ध हुआ। उसी अनुवाद आधार पर संस्कृत में यह ग्रन्थ पहिले पहल प्रकाशित किया । कुछ दिन के बाद इसकी एक प्रति दक्षिण में प्राप्त सीलोन की परम्परा से ऐसा ज्ञात है कि इस काव्य कर्ता वहां का राजा था जिसका शासन ई० ५१७-५२६ माना गया है। इसी परम्परा में इस कुमारदास के साथ कि कालिदास के मृत्यु का भी सम्बन्ध माना है। ारदास मौद्गल्यायन गोत्र का था।

कीथ महाशय इस परम्परा से यह निष्कर्ष निकलता के कुमारदास कालिदास के ग्रन्थों को बहुत चाहता था उसने अपने काव्य में कालिदास की शैलि तथा विषय बहुत कुछ अनुकरण[1] किया है। कुमारदास 'काशिकावृत्ति' जानता था। इस लिये यह ई० ६५० के पूर्व का नहीं हो कता है। वामन ने अपने 'काव्यालङ्कार-सूत्र-वृत्ति' में इस ्य के वचन का दोष दृष्टि से परामर्श करने की चेष्टा की

---

१ रघुवंश सर्ग १२ और जानकी हरण काव्य।

है[1]। यदि यह ठीक है तो कुमारदास वामन के
८०० के बाद का नहीं हो सकता। ई० ६०० के
राजशेखर कवि ने कुमारदास की बड़ी प्रशंसा की

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदिक्षमः॥

अर्थात्—[रघुराजा के बाद (इक्ष्वाकु वंश के
के शासन काल में सीता जी का हरण करने के
ही समर्थ हुआ इसी तरह रघुवंश काव्य के रहते
हरण (सदृश रोचक) काव्य लिखने के लिये कुमा
समर्थ था।] काव्य-मीमांसा[2] में कुमारदास और
अन्ध थे ऐसा निर्देश मिलता है।

जानकी-हरण:—जानकी हरण का कथानक
कथा है जो रामायण और रघुवंश में वर्णित है।
के हाथ में यह प्राचीन कथा भी अपना नवीन
कर सहृदयों के चित्त को आल्हाद देती है।
के २० सर्ग हैं। इस काव्य से मालुम होता है
दास के कवित्व पर कालिदास का बड़ा प्रभाव
इस काव्य की रीति पाञ्चाली है। इस ग्रन्थ से
अनुप्रास-प्रियता प्रगट होती है। कहीं २ यमक का
बड़ी ही सुन्दरता से किया गया है। इस काव्य के

१ कीथ का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ११९।
२ काव्य-मीमांसा पृष्ठ १२।

योगों से यह कहा जा सकता है कि इस का रचयिता
वैयाकरण था। इस काव्य के १ म, ३ य और ७ म सर्गों
जाति, २ य, ६ ष्ठ और १० म में अनुष्टुप्, ४ र्थ में वैता-
५ म, ६ म, १२ श और ३ य के कुछ श्लोकों मे वंशस्थ,
में रथोद्धता, ११ में द्रुतविलम्बित, १३ में प्रमिताक्षरा,
पुष्पिताग्रा छन्द प्रयुक्त हैं। इसके अतिरिक्त शार्दूल-
डित, शिखरिणी, स्रग्धरा, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता,
नी आदि छन्द भी मिलते हैं।

वाक्पतिराज (ई० अष्टम शतक)

वाक्पतिराज –विरचित ‘ गउडवहो ’ नाम का प्राकृत-महाकाव्य — – कन्नौज के यशोवर्मा राजा का सभापण्डित – इसकी वाक्पतिराज- भिन्नता – गउडवहो का विषय परामर्श — शैली — टीका।

इसका विरचित ‘ गउडवहो ’ नाम का प्राकृत महाकाव्य
भवभूति और वाक्पतिराज ये दोनों कान्यकुब्ज के राजा
वर्मा के सभापण्डित थे ऐसा कल्हण ने अपने राज-
ङ्गिणी[1] में कहा है। यशोवर्मा ने ई० ७४० के लगभग
मीर पर आक्रमण किया था और वहां के राजा मुक्तापीड-
तादित्य से मारा गया था। सर भाण्डारकर के मत से
वर्मा की मृत्यु ई० ७५३ के लगभग हुई थी और वाक्पति-
ने यह काव्य यशोवर्मा की मृत्यु के पूर्व ही लिखा
इस काव्य के लिखने का प्रयोजन,—बङ्ग का गौड़ राजा

---

१ राजतरङ्गिणी ४ र्थ तरङ्ग श्लोक १४४।

यशोवर्मा के हाथ से मारा गया था इसलिये
का यशगान करना—यही था। काश्मीर में यशो
के बाद इस काव्य की पूर्ति न की जा सकी अतः
अधूरा ही रह गया होगा। इस काव्य में कवि ने
वर्ती अनेक कवियों के नाम भी दिये हैं।
रघुकार (कालिदास), सुबन्धु, हरिचन्द्र, (भट्टा
और भवभूति प्रधान हैं। ऐसा कहा जाता है
वाक्पतिराज का गुरू था। उपर्युक्त लेख से यह
भवभूति और वाक्पतिराज समकालीन थे। इसके
नाम हर्षदेव था। यह वाक्पतिराज, वाक्पतिराज-
से भिन्न है जिसके श्लोक धनिक ने अपने दशरू
में उद्धृत किये हैं।

गउडवहो:—यह महाराष्ट्री—प्राकृत में विर
काव्य है। इसमें कवि ने अपने संरक्षक यशोवर्मा
गौड़ राजा पर विजय प्राप्त करने का वर्णन कि
गौड़ राजा कौन था इसका इतिहास मे कहीं
मिलता इसलिये विद्वानों में इसकी ऐतिहासिक
सम्बन्ध में सन्देह है। काव्य के गुण इसमें अ
पाये जाते हैं। स्थान २ पर कवि ने सृष्टि-वर्णन,
राजक्रीड़ा आदि महाकाव्य के ढङ्ग पर दिये हैं।
पौराणिकी कथाओं का भी उल्लेख मिलता है।

---

१ दशरूपकावलोक ४,५३।४,५७।

काव्य वाक्पतिराज का विरचित उपलब्ध है। इस में यद्यपि शब्दालङ्कार, श्लेष इतने उत्कट नहीं है पि दीर्घसमासों के कारण ओजो-गुण-विशिष्ट गौडी का कवि ने परिचय दिया है। उस समय महाराष्ट्री महाराष्ट्र देश की व्यावहारिक भाषा थी यह इस काव्य ने से स्पष्ट होता है। इस काव्य पर उपेन्द्र-हर्ष-पालित चित एक टीका है।

रत्नाकर (ई० नवम शतक)

त्नाकर—विरचित हरविजय महाकाव्य—समय—चिप्पट जयापीड़ अवन्तिवर्मा का सभापण्डित—वंशवर्णन—इस के विरचित ध्वनिगाथा—, वक्रोक्ति-पञ्चाशिका—हरविजयका विषय-परामर्श--शैली-टीका।

इस कवि का बनाया हुवा हरविजय महाकाव्य अलक 'विषम-पदोद्योत' नाम की टीका के साथ काव्य-माला काशित है। यह कवि काश्मीर का रहने वाला था। की उपाधियां राजानक और वागीश्वर वा विद्याधिपति। यह बालबृहस्पति[1] वा चिप्पट जयापीड और अवन्ति-[2] का सभा-पण्डित था। इस लिये इसका समय ई० -८५० के लगभग है। इसके पिता का नाम अमृत-भानु

---

१. हरविजय के प्रति सर्ग का समाप्ति-वाक्य।

२. मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः॥ राजतरङ्गिणी ५।३४।

था। इसका जन्म दुर्गदत्त के वंश में हुआ था। इस
में अधोलिखित सुभाषित मिलता है।

> मा स्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा इमे
> इतीव सत्कृतो धात्रा कवी रत्नाकरोऽपरः॥

इस कवि के विरचित 'ध्वनिगाथा-पंजिका'
पञ्चाशिका ये दोनों ग्रन्थ भी हरविजय के अ
क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्त तिलक' में रत्नाकर कवि
तिलक वृत्त की बड़ी प्रशंसा करते कहा है:—

> वसन्ततिलका रूढ़ा वाग्वल्ली गाढसङ्गिनी।
> रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्याननकानने॥

हरविजय काव्य:—यह सब से बड़ा महा
इसके ५० सर्ग हैं। इस काव्य में शिवजी द्वारा
के वध की कथा वर्णित है। यद्यपि यह कथा
है तो भी कवि ने छोटे २ विषयों का भी लम्बा
इस ग्रन्थ को बहुत विस्तीर्ण कर दिया है। इस
रचयिता रत्नाकर ने इसी ग्रन्थ में बाण भट्ट का
स्वीकार किया है। इसकी प्रसिद्धि के द्योतक
के श्लोक भी मिलते हैं। इस काव्य के
तो बहुत ही अच्छे हैं। कवि की यमक तथा श
प्रियता रहने पर भी इस काव्य की शोभा कम
इस काव्य में प्रायः सभी छन्द प्रयुक्त हैं। इस

क विरचित 'विषमपदोद्योत' नाम की टीका प्रकाशित
प्राय: इस काव्य पर यह एक ही टीका लिखी गई है।

शिव स्वामिन् (ई० ६ म शतक)

शिव स्वामी—विरचित कप्फणाभ्युदय—समय निर्धारण—काश्मीर
वन्तिवर्मा का समकालिक—कप्फणाभ्युदय का विषय परामर्श।

इसका विरचित बौद्ध महाकाव्य कप्फणाभ्युदय वा
प्फणाभ्युदय नाम का उपलब्ध है। यह काश्मीर में
न्तिवर्मा (ई० ८५५-८८३) के समय विद्यमान था।
एव यह राजानक रत्नाकर का समकालिक था। कल्हण ने
नो राजतरङ्गिणी में इसका वर्णन करते हुवे कहा है कि
काव्य और नाटक दोनों का रचयिता था। इसने अपने
व्य में हर्षवर्द्धन के नागानन्द का निर्देश किया है। क्षेमेन्द्र
'कवि-कण्ठाभरण' में इसके विरचित श्लोक मिलते हैं।
१५ वीं शताब्दि में अमरकोष-टीका पदचन्द्रिका (१४३१)
रचयिता राय मुकुट वा बृहस्पति ने और ई० १६ वीं
ब्दि में "मनोरमा-कातन्त्र-गणधातुवृत्ति" (१५३७)-
राथि रमानाथ ने शिव स्वामि का उल्लेख किया है।

कप्फणाभ्युदय काव्य:—यह एक बौद्ध पौराणिक महा-
व्य है। यह बौद्धों की 'अवदान शतक' की कथा के आधार
रचा गया है। कप्फण नाम का एक दक्षिणी राजा
श्रस्ति के बौद्ध राजा पर आक्रमण करने के विचार में था।
न्तु बौद्धों ने इसको अपने धर्म का उपदेश कर किस प्रकार

उसको बौद्ध धर्म की दीक्षा दी, इसका वर्णन इस
में है। इसकी रचना से मालुम होता है कि कवि
और माघ का अनुकरण किया है। इस काव्य के
इसमें इसके रचयिता ने संस्कृत साहित्य का पू
प्रगट किया है। इस काव्य के टीकाकार के सम्ब
भी पता नहीं है।

अभिनन्द (ई० ९ म शतक)

अभिनन्द-विरचित कादम्बरीकथासार—वंश व
के राजा ललितादित्य के मन्त्री शक्ति स्वामी का प्रपौत्र--
इसका विरचित अन्य ग्रन्थ योगवासिष्ठसार—कादम्ब
विषय परामर्ष—इसका अनुष्टुप् छन्द—शैली—किसी
विरचित रामचरित काव्य।

इसका विरचित 'कादम्बरी-कथासार' ना
है। यह प्रसिद्ध जरन्नैयायिक न्याय-मञ्जरीकार
का पुत्र था। अभिनन्द ने अपने कादम्बरी-क
आरम्भ में अपनी वंशावलि देते हुवे कहा है कि
कुल में शक्ति नाम का गौड़ ब्राह्मण था जिसका
स्वामी काश्मीर के कर्कोट वंश के मुक्तापीड
(ई० ७३३-७६९) का मन्त्री था। इसका पुत्र क
याज्ञवल्क्य के समान बुद्धिमान था। इसी क
का पौत्र वृत्तिकार जयन्त-भट्ट और प्रपौत्र अभिन

१ कादम्बरी कथासार श्लो० ५-१३।

यन्त-भट्ट ने अपनी न्याय-मञ्जरी में वाचस्पति मिश्र (ई० ८४१) निर्देश किया है। सुभाषित ग्रन्थों के श्लोकों से यह त होता है कि राजशेखर (ल० भ० ई० ९००) अभिनन्द का कालिक था। इसलिये अभिनन्द का समय ९ म शतक अन्त मानना उचित ज्ञात होता है। इसका विरचित ोगवासिष्ठसार ' भी है।

कादम्बरी-कथासार :—यह बाणभट्ट की कादम्बरी का में संक्षिप्त कथा वर्णन है यह बात कवि ने ही ग्रन्थारम्भ कही है—

" काव्यविस्तर-संधान-खेदालसधियः प्रति।
तेन कादम्बरीसिन्धोः कथामात्रं समुद्धृतम्॥ "

इस काव्य के ८ सर्ग हैं। यह काव्य सर्गान्तों के कुछ न्य छन्दों के श्लोकों के सिवाय सम्पूर्ण अनुष्टुप् छन्द में रचा गया है। इस कवि के अनुष्टुप् छन्द की प्रशंसा मेन्द्र[1] ने अपने सुवृत्त-तिलक में की है। इसमें प्रसाद व धुर्य गुण सर्वत्र विद्यमान हैं। इस ग्रन्थ के पढ़ने से बाण- की कादम्बरी की कथा पूर्णतया अवगत होती है।

किसी शतानन्द का पुत्र भी अभिनन्द नाम का है जिसका रचित रामचरित काव्य है। इस काव्य में जानकी-हरण प्रारम्भ कर रामायण की कथा वर्णित है। यह काव्य भी

---

१ अनुष्टुप्सततासक्ता साऽभिनन्दस्य नन्दिनी।
विद्याधरस्य वदने गुलिकेव प्रभावभूः॥

मनोहर है। परन्तु यह अभिनन्द जयन्त भट्ट के पु
अभिनन्द से भिन्न है। इसका समय निश्चित नहीं

हरिचन्द्र (ई० ९०० के लगभग)

हरिचन्द्र—विरचित धर्मशर्माभ्युदय—काव्य—जीवन—
निर्धारण—इस नाम के दो कवि—धर्मशर्माभ्युदय का वि
शैली—टिप्पणी।

इस का विरचित धर्म-शर्माभ्युदय नाम का मह
यह महाकवि दिगम्बर जैन मतानुयायी था। यह
में उत्पन्न हुवा था। इस के पिता का नाम आर्द्रदेव
का नाम रथ्या था। इस के छोटे भाई का नाम
हरिचन्द्र नाम के दो कवि प्रसिद्ध हैं। एक ह
वर्णित भट्टार हरिचन्द्र जिस के गद्य बन्ध की बाण
प्रशंसा की है और दूसरा विश्वप्रकाश कोष के क
का पूर्व पुरुष, चरक संहिता का टीकाकार, साहस
का प्रधान वैद्य हरिचन्द्र था। प्रस्तुत हरिचन्द्र
से है वा भिन्न है यह संदिग्ध है। विद्वानों ने
की कपूर मञ्जरी[1] में निर्दिष्ट हरिचन्द्र को धर्मशर्मा
कर्ता मान कर उस को राजशेखर का पूर्ववर्ती अर्थात्
शतक का माना है। किन्तु कपूर-मञ्जरी सदृश प्राकृ
जहां सब पात्रों का भाषण प्राकृत गद्य में हो

[1] प्रथम जवनिका में विदूषकोक्ति--'अम्हाणं चेडिआ
अंद कोहिसहालप्पहुदीणंऽवि पुरदो सुकइत्ति।'

के कवित्व की तुलना करने के लिये हाल सदृश प्राकृत
यों के साथ संस्कृत-पद्य कवि का निर्देश कहां तक युक्ति
त हो सकता है यह कहना कठिन है। प्रायः यह हरिचन्द्र,
विदूषकोक्ति में हरिचन्द नन्दि ऐसा पदच्छेद न किया
, तो गद्य कवि भट्टार हरिचन्द्र ही हो सकता है। इस
इस के समय के विषय में कोई ठीक निर्णय नहीं हो
ता। इस ने अपने काव्य में कालिदास का अनुकरण किया
चित्रबन्ध काव्य के कारण यह भारवि और माघ का
यायी भी हो सकता है। वीरनन्दी ने अपने चन्द्रप्रभ-
त में ७ म तीर्थङ्कर का वर्णन किया है और इसने उसका
करण १५ वे तीर्थङ्कर का वर्णन कर किया है। इसलिये
भी सम्भव है कि यह वीरनन्दी से अर्वाचीन हो। कीथ
शय ने जीवनधर-चम्पू का रचयिता इसी हरिचन्द्र को
नकर इसका समय ई० ६०० के बाद बतलाया है।

धर्मशर्माभ्युदय :—यह महाकाव्य २१ सर्गों में है। इसमें
वे जैन तीर्थङ्कर धर्मनाथ का चरित्र-वर्णन है। इसके
वें सर्ग में चित्रबन्ध काव्य है। कीथ का कथन है कि इस
व्य में माघ और वाक्पतिराज का अनुकरण है। किन्तु भाषा-
णी में कवि पर कालिदास का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा
यह काव्य के अवलोकन से ज्ञात होता है। वर्णन शैली
कालिदासकीसी है। इसमें वैदर्भी-रीति तथा माधुर्य व
ाद गुण हैं। कवि का अनुप्रास और यमक का प्रेम

स्थान २ पर और विशेषतया १९ वें सर्ग में
जिससे काव्य में कुछ क्लिष्टता आ गई है।
प्रधान छन्द इसमें हैं। इस काव्य पर
टिप्पणी भी है।

कनकसेन वादिराज (ई० ९२५

कनकसेन वादिराज—विरचित काव्य यशोधर-च
रण—यशोधर चरित का विषय—इसी नाम का
दूसरा काव्य।

इसका विरचित 'यशोधर चरित' नाम
यह दिगम्बर जैन था। इसका निवास स्थान
श्रीविजय नाम का इसका शिष्य ई० ९५०
मान था। इसलिये इसका समय १० म शतक
सकता है।

यशोधर-चरित:—इस काव्य का कथानक
यशस्तिलक चम्पु के सदृश है। इसमें २९६
४ सर्गों में विभक्त हैं। यह दिगम्बर जैनों का
नाम का दूसरा काव्य ई० ११ श शतक का
के लिये गुर्जर देशीय माणिक्य सूरि ने लिखा है।
दोनों समान नाम के ग्रन्थों का विषय भिन्न २ है।

हलायुध (ल० भ० ई० ९५०)

हलायुध—विरचित काव्य 'कविरहस्य'—समय—राष्ट्रकूट के तृतीय और मुंज राजा का सभा-पण्डित—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ १ छन्दः सूत्र की टीका, २ अभिधान रत्नमाला—कवि रहस्य का विवरण—विशेषताएँ—छन्द—टीकाएँ।

इसका विरचित 'कविरहस्य' काव्य है। यह ब्राह्मण कवि कूट के तृतीय कृष्ण राजा (ई० ९४०-५६) का सभा इत था। यह वैष्णव था यह बात काव्य के मङ्गलाचरण त होती है। पिङ्गल छन्दस्सूत्र की मृत संजीवनी नाम टीका में जिसका रचयिता भी भट्ट हलायुध है, कई धार के वाक्पतिराज वा मुंज (९७४-९९५) की प्रशंसा लखे हैं। बहुत सम्भव है कि कविरहस्य-कार हलायुध कूट राजा ३ य कृष्ण की मृत्यु के बाद मुंज राजा की में चला गया हो और वहां इस टीका की रचना की इसका विरचित ३य ग्रन्थ अभिधान-रत्नमाला है। ने अपने सम्बन्ध में विशेष कुछ भी नहीं लिखा है और के सम्बन्ध में अन्यत्र से भी कुछ पता नहीं चलता है। अच्छा वैयाकरण भी था।

कविरहस्यः—यह काव्य धातुओं के लट्लकार के भिन्न पों को विशद करता है और साथ २ राष्ट्रकूट के राजा ोय कृष्ण की प्रशंसा भी करता है। कवि ने ग्रन्थ के रम्भ में अपने को 'धातुपारायणाम्भोधिपारोत्तीर्णधीः' का

स्थान २ पर और विशेषतया १६ वें सर्ग में प्रा
जिससे काव्य में कुछ क्लिष्टता आ गई है।
प्रधान छन्द इसमें हैं। इस काव्य पर कवि
टिप्पणी भी है।

कनकसेन वादिराज (ई० ६२५ ल० म०)

कनकसेन वादिराज–विरचित काव्य यशोधर-चरित–
ण–यशोधर चरित का विषय–इसी नाम का माणिक्य
दूसरा काव्य।

इसका विरचित 'यशोधर चरित' नाम का
यह दिगम्बर जैन था। इसका निवास स्थान द्रवि
श्रीविजय नाम का इसका शिष्य ई० ६५० के
मान था। इसलिये इसका समय १० म शतक
सकता है।

यशोधर-चरितः—इस काव्य का कथानक
यशस्तिलक चम्पु के सदृश है। इसमें २९६
४ सर्गों में विभक्त हैं। यह दिगम्बर जैनों का
नाम का दूसरा काव्य ई० ११ श शतक का श्वे
के लिये गुर्जर देशीय माणिक्य सूरि ने लिखा है।
दोनों समान नाम के ग्रन्थों का विषय भिन्न २ है।

हलायुध (ल० भ० ई० ६५०)

हलायुध—विरचित काव्य 'कविरहस्य'—समय—राष्ट्रकूट के तृतीय और मुंज राजा का सभा-पण्डित—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ १ छन्दः सूत्र की टीका, २ अभिधान रत्नमाला—कवि रहस्य का विवरण—विशेषताएँ—छन्द—टीकाएँ।

इसका विरचित 'कविरहस्य' काव्य है। यह ब्राह्मण कवि कूट के तृतीय कृष्ण राजा (ई० ६४०-५६) का सभा डत था। यह वैष्णव था यह बात काव्य के मङ्गलाचरण ात होती है। पिङ्गल छन्दस्सूत्र की मृत संजीवनी नाम टीका में जिसका रचयिता भी भट्ट हलायुध है, कई क धार के वाक्पतिराज वा मुंज (६७४-६६५) की प्रशंसा लिखे हैं। बहुत सम्भव है कि कविरहस्य-कार हलायुध ट्रकूट राजा ३ य कृष्ण की मृत्यु के बाद मुंज राजा की ा में चला गया हो और वहां इस टीका की रचना की । इसका विरचित ३य ग्रन्थ अभिधान-रत्नमाला है। ने अपने सम्बन्ध में विशेष कुछ भी नहीं लिखा है और के सम्बन्ध में अन्यत्र से भी कुछ पता नहीं चलता है। अच्छा वैयाकरण भी था।

कविरहस्यः—यह काव्य धातुओं के लट्लकार के भिन्न रूपों को विशद करता है और साथ २ राष्ट्रकूट के राजा ीय कृष्ण की प्रशंसा भी करता है। कवि ने ग्रन्थ के रम्भ में अपने को 'धातुपारायणाम्भोधिपारोत्तीर्णधीः' का

विशेषण दिया है और काव्य के पढ़ने से यह वि...
लिये समुचित प्रतीत होता है। इसमें २७३ श्लोक ... वा
अनुष्टुप् छन्द के ही श्लोक इसमें विशेष हैं। इ... में
दूसरे नाम 'कविगुह्य' और 'अपशब्दाख्यका... वि
वामनालङ्कार-टीका के कर्ता महेश्वर ने और सिद्ध... इस
के रचयिता भट्टोजी दीक्षित ने अपने ग्रन्थों में ... में
श्लोक उद्धृत किये हैं। इस काव्य की दो टीकाएँ ...

पद्मगुप्त वा परिमल (ई० १०००)

पद्मगुप्त वा परिमल – विरचित नवसाहसाङ्क...
मालवा के सिन्धु राज का सभापण्डित—पितृनाम मृगाङ्क...
गुप्त – नव साहसाङ्क चरित का विषय वर्णन – शैली – छन्द। ...

इसका विरचित महाकाव्य नवसाहसाङ्क... का है। यह कवि मालवा के सिन्धुराज (नवसाहसाङ्क) का सभापण्डित था। सिन्धुराज मुंज राजा का ... हुआ था। इसने ई० ९९५ से १०१८ तक शासन ... की। इसके सम्बन्ध में दो शिलालेख[1] मिलते हैं जो ... १०२१ के हैं। इसलिये यह कवि ११ शतक के ... सिद्ध होता है। ग्रन्थकार ने ही ग्रन्थ के आरम्भ ... और राजा मुञ्ज का सहवास सिद्ध किया है। ... संहार से इसके पिता का नाम श्रीमृगाङ्कगुप्त ... था ऐसा मालुम होता है। इसने अपने काव्य ...

---

[1] Ind. Ant. 1912 Page 201.

वाक्पतिराज का उल्लेख किया है। इसने अपने मङ्गला-
ी में शिव जी के भूषणों में से चन्द्र, गणेश और नेत्र का
किया है। इससे मालूम होता है कि वह शैव था।
इस काव्य में अपने रक्षक सिन्धुराज वा नवसाहसाङ्क
ति विस्तृत वर्णन किया है। यह काव्य इन्होंने वृद्धा-
ा में रचा था।

वसाहसाङ्कचरितः—यह एक महाकाव्य है। इस
र्ग हैं। इस ग्रन्थ की नायिका शशिप्रभा नाम की है
का लाभ नवसाहसाङ्क को किस प्रकार हुआ इसका
वर्णन है। यह नायक ऐतिहासिक होने से यह काव्य
ासिक कहा जा सकता है। इस काव्य में प्रसाद गुण
मान है। कवि ने इस काव्य के बनाने में वैदर्भी रीति
नुसरण किया है। इसमें १५०० से अधिक श्लोक हैं।
ने इस काव्य में भिन्न २ प्रकार के १९ छन्दों में श्लोक
की है। इस महाकाव्य की एक भी टीका अभी तक
ब्ध नहीं है। सम्भवतः यह काव्य सरल होने के कारण
र टीका लिखी ही नहीं गई होगी।

क्षेमेन्द्र (ई० १०२५-८०)

क्षेमेन्द्र वा व्यासदास—विरचित ३५ ग्रन्थ—१ शशि
२ दशावतार चरित, ३ समयमातृका काव्य, ४ पद्यका
त्कथा-मञ्जरी, ६ भारत-मञ्जरी, ७ बौद्धावदानकल्पल
काव्य, ९ रामायण कथासार, १० लावण्यवती काव्य, ११
आदि—समय—काश्मीर के अनन्त व कलश राजाओं
जीवन-चरित्र—दशावतार चरित, भारत मञ्जरी, रामाय
त्कथा मञ्जरी के विषय-परामर्श—शैली—छन्द—(औ
कवि—कण्ठाभरण अलङ्कार प्रकरण में और सुवृत्त-तिल
में वर्णित हैं)।

क्षेमेन्द्र वा व्यासदास के विरचित क्रम से
हैं। इसकी प्रसिद्धि आलङ्कारिकों में है। इस
शशिवंश महाकाव्य है। परन्तु वह उपलब्ध न
अनेक काव्य बनाये हैं। उनमें दशावतार च
मातृकाकाव्य, पद्यकादम्बरी, बृहत्कथामञ्जरी,
बौद्धावदान कल्पलता, मुक्तावली काव्य, रामाय
लावण्यवती काव्य, लोकप्रकाश कोष इत्यादि
विरचित अनेक स्तोत्र भी हैं। उपरोक्त काव्यों
चरित, बृहत्कथा मञ्जरी, रामायण कथासार औ
मुद्रित हैं। इस के ग्रन्थों से मालूम होता है कि
के राजा अनन्त (१०२८-६३) का सभापण्डित
राजा के पश्चात् राजा कलश (ई० १०६३-८९)

ह उपस्थित था और इसने अनेक ग्रन्थ लिखे थे। इस इसका समय एकादश शतक का द्वितीय और तृतीय माना जाता है। यह पहिले शैव था किन्तु सोमपाद से त दीक्षा लेने पर वैष्णव हुवा। इस के पिता का नाम न्द्र, पितामह का सिन्धु और गुरू का गङ्गक था। यह न्द्र का पिता था और उदयसिंह व राजपुत्रलक्ष्मणादित्य रु था। बृहत्कथा मञ्जरी तथा भारत मञ्जरी से ज्ञात होता इसने अभिनव गुप्त पादाचार्य से साहित्य सीखा था।

शावतार-चरित:—यह विष्णु भगवान के दस अव- के वर्णन में लिखा हुआ काव्य है। यह काव्य १० गों में विभक्त है और प्रत्येक विभाग में एक २ अवतार र्णन है। इस काव्य को कवि ने 'अच्युतस्तव' संज्ञा भी । इसकी रचना राजा कलश के समय काश्मीर में हुई कवि ने स्वयं ग्रन्थ के अन्त में कहा है—

एकाधिकेऽब्दे विहितश्चत्वारिंशे सकार्त्तिके।
राज्ये कलशभूभर्तुः काश्मीरेष्वच्युतस्तवः॥

इस श्लोक में उक्त ४१ वां लौकिक शब्द ई० १०६६ के र है। पुराणों में वर्णित दशावतारों की कथा कवि ने की शैली में बहुत ही मनोहर और सुन्दर रीति से काव्य में वर्णन की है। माधुर्य्य और प्रसाद इस काव्य कटता से विद्यमान हैं। प्रति अवतार में भिन्न २ छन्दों श्लोक हैं।

भारत-मञ्जरी :—इस काव्य में सम्पूर्ण म
संक्षिप्त इतिहास है। ग्रन्थ के अन्त की प्रशस्ति
है कि किसी रामयश नामक ब्राह्मण के प्रा
भारत मञ्जरी की कवि ने रचना की थी।
प्रार्थना के बाद सत्यवती के पुत्र भगवान् वे
कवि को स्वप्न में दर्शन दे कर अनुगृहीत कि
लिये पहिले व्यासाष्टक निर्माण कर पश्चात्
काव्य की रचना की। इसकी प्रशस्ति में कि
नामोल्लेख न होने के कारण यह कहा जा
भारतमञ्जरी की रचना के अनन्तर ही इस
प्राप्त हुवा था। इसका विभाग भी महाभारत
पर्वों में है। अन्त में हरिवंश का भी कथानक
है। हरिवंश की सम्पूर्ण कथा १६४१ श्लोकों में है
प्रायः अनुष्टुप् छन्द में ही हैं बीच २ में कहीं २
हैं। "प्राप्तः सामान्यजल्पोऽपि क्षेमेन्द्रोऽद्य कवीन्द्र
अन्तिम श्लोक से अनुमान होता है कि यह क
कृति थी।

रामायण-मञ्जरी :—यह वाल्मीकि रामायण के
कथा काव्य है। मालूम होता है कि भारत म
रामयश की प्रार्थना से कवि ने इसकी भी र
काव्य वाल्मीकि रामायण की तरह ७ काण्डों में
सम्पूर्ण ग्रन्थ अनुष्टुप् छन्द में है केवल बीच २ में

है। इसकी कविता भारतमञ्जरी से उच्च कोटि की है।

बृहत्कथा मञ्जरी :—यह काव्य गुणाढ्य के बृहत्कथा का प है। गुणाढ्य की बृहत्कथा पैशाची प्राकृत में लिखी गई और बहुत लोग पिशाच बाधा के डर से उसे नहीं पढ़ते इस लिये कवि ने इस ग्रन्थ में संस्कृत में सब के पढ़ने य अनुष्टुप् छन्द में उन कथाओं को लिखा है। कवि ने यं कहा है—

"अथ सुखनिषेव्याऽसौ कृता संस्कृतया गिरा।
समां भुवमिवानीता गङ्गा श्वभ्रावलम्बिनी"॥

अर्थात् बृहत्कथा को, जो कि पैशाची प्राकृत भाषा में होने कारण गहिरे गड़हे में पड़ी हुई गङ्गा नदी, (जहां सर्व-धारण उतरने में असमर्थ थे) के समान थी उसे संस्कृत में नुवादित कर समप्रदेश में उस गङ्गा को प्रवाहित कर दिया जससे सर्वसाधारण उससे लाभ उठावें।

बिल्हण (ई० ११ श शतक)

बिल्हण—समय—कल्याणी चालुक्य वंश के षष्ठ विक्रमादित्य का पण्डित - विरचित विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य—जीवन-चरित्र—के विरचित अन्य ग्रन्थ, १ चौरीसुरत -पञ्चाशिका, २ कर्णसुन्दरी टीका - विक्रमाङ्कदेव चरित व चौरीसुरत पञ्चाशिका का विषय वार—शैली - छन्द - टीकाएँ।

इस कवि की जन्मभूमि काश्मीर में प्रवरपुर के पास नमुख नाम का ग्राम था किन्तु यह कल्याणी चालुक्य वंश

के षष्ठ विक्रमादित्य का सभापण्डित था। इस
का शासन ई० १०७६ से ११२७ तक था। जब
काश्मीर को छोड़ा था उस समय काश्मीर में क
का शासन था। यह मथुरा, कन्नौज, प्रयाग और
हुवे चेदि के राजा कर्ण के दर्बार में पहुँचा।
अणहिलवाड़ (पाटन) के कर्णदेव त्रैलोक्य मल्ल (
के यहां थोड़े दिन रह कर कल्याणी के षष्ठ विक्र
यहां पहुँचा था बिल्हण ने अपने समकालिक घा
का निर्देश किया है। इसी विक्रमादित्य ने
"विद्यापति" की उपाधि दी थी। इसी राजा के
लिये इसने विक्रमाङ्क देव चरित की रचना की। यह
ई० १०८८ के पूर्व बन चुका था। क्योंकि इस
विक्रमादित्य का दक्षिण का आक्रमण वर्णित नं
काश्मीर के हर्षदेव की युवराज अवस्था का वर्णन है
हर्ष के गद्दी पर आने के उपरान्त थोड़े ही समय में
की मृत्यु हुई। इसके पिता का नाम ज्येष्ठकलश
का राजकलश और प्रपितामह का मुक्तिकलश
सब श्रोत्रिय और अग्निहोत्री थे। इसकी माता का
देवी था। इसके इष्टाराम और आनन्द नामके
बड़े विद्वान् व कवि थे। विक्रमाङ्कदेवचरित के
इसके विरचित चौरी पञ्चाशिका और कर्ण-सुन्दरी
हैं। चौरी-सुरत-पञ्चाशिका 'बिल्हणकाव्य' के नाम से

विक्रमांकदेवचरित :—यह महाकाव्य है। इसमें षष्ठ
मादित्य का जीवन-चरित्र वर्णित है। इसलिये यह
हासिक काव्य कहा जाता है। इस काव्य के १८ सर्ग
अन्तिम पांच सर्गों में इसके पूर्वजों का वर्णन है और
सर्गों में विक्रमादित्य का वर्णन है। कालिदास का
करण इसने अपने ऋतु, स्वयंवर आदि वर्णनों में किया
यह काव्य ऊँचे दर्जे का है। काव्य में वैदर्भी रीति का
लम्ब किया गया है। लम्बे २ समास, अनुप्रासादि शब्द-
इस काव्य में बहुत कम है। इसमें प्रसाद और माधुर्य
विद्यमान हैं। इस काव्य का ४ थं सर्ग अत्यन्त प्रशंसनीय
इसमें करुण रस का वर्णन सरल शब्दों में बड़ी सफाई
किया है। इसकी शब्द योजना रसानुकूल ही है। इसमें
वज्रा, वंशस्थ, अनुष्टुप्, रथोद्धता मन्दाक्रान्ता, पुष्पिताग्रा
स्वागता, ये छन्द प्रधानत्वेन प्रयुक्त हैं। इसके अतिरिक्त
के अन्त में अन्य प्रसिद्ध छन्द भी हैं। इस काव्य की
टीका उपलब्ध नहीं हैं।

चौरी सुरत-पञ्चाशिका या विल्हण-काव्य—इस काव्य
चौरी-पञ्चाशिका भी कहते हैं। इसमें 'अद्यापि' पद
५० श्लोकों का आरम्भ किया है। दक्षिण भारत
काश्मीर में उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों पर विल्हण
व्य ऐसा लिखा होने के कारण इसका दूसरा नाम
ल्हण-काव्य है ऐसा माना जाता है। इसके विल्हण-पञ्चा-

शिका व शशिकला-पञ्चाशिका ऐसे नाम भी
विक्रमाङ्क चरित से भी यह काव्य उच्च कोटि
है। इसमें वसन्त-तिलका छन्द होने से यह
रमणीय है। इस काव्य की ४ टीकाएँ हैं।
वागीश की टीका प्रसिद्ध है।

लोलिम्बराज (ई० १०५०)

लोलिम्बराज—विरचित काव्य हरिविलास—
राजा हरिहर का सभापण्डित—भोजराज का समकालिक—
आयुर्वेद के ६ ग्रन्थों में वैद्य जीवन—हरिविलास का
प्रौढ़ी—छन्द।

इसका विरचित 'हरिविलास' नाम का
यह आयुर्वेद का और गायन शास्त्र का भी भारी
यह राजा सूर्य के पुत्र राजा हरिहर की सभा में
पिता दिवाकर भी हरिहर राजा का ही आश्रित
हरिहर की आज्ञा से ही लोलिम्बराज ने हरिवि
काव्य की रचना की थी। इस काव्य का उल्लेख पु
की 'वर्णदेशना' में मिलता है। यही पुरुषोत्तमदेव
और त्रिकाण्ड शेष का भी कर्ता है। इस पुरुषो
समय लगभग ई०११५० माना गया है। हरिविलास
शब्द का प्रयोग है जो भागवत में तथा उसके पूर्व
नहीं मिलता है। अर्थात् ई० १० म शतक के बा
११५० के पूर्व लोलिम्बराज का समय है। भोज

क पद्य[1] मिलता है जिस से यह भोजराज का समकालिक ऐसा परम्परा से सिद्ध होता है। इसलिये ई० १०५० के मग इसका समय मान लिया गया है। इसके विरचित वैद के ५-६ ग्रन्थों में वैद्य-जीवन बहुत प्रसिद्ध है। कीथ राय ने लोलिम्बराज का समय सप्तदश शतक माना है भ्रमात्मक प्रतीत होता है।

रिविलास:—यह एक पांच सर्गों का छोटा सा है। इसमें कृष्ण की बाललीला नन्द के घर से आने से : उद्धव सन्देश तक वर्णित है। यह काव्य अलङ्कारों-क, प्रसाद और माधुर्य गुणों से परिपूर्ण है। कवि को को कविनायक कहना बहुत ही ठीक मालुम होता है। सर्ग में अनेक छन्दों के श्लोक हैं।

हेमचन्द्राचार्य (ई० १०८८-११७२)

मचन्द्राचार्य—विरचित महाकाव्य १ त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित ारपाल--चरित वा द्व्याश्रयमहाकाव्य—जीवन चरित—इसके दूसरे —समय-निर्धारण— अणहिलवाड के राजा कुमारपाल का गुरु— विरचित अन्य ग्रन्थ– १ हैमयोगानुशासन २ शब्दानुशासन ३

---

[1] भो लोलिम्बकवे कुरु प्रणमनं किं स्थाणुवत्स्थीयते।
कस्मै भोजनृपाल बालशशिने नायं शशी वर्तते॥
किं तद्व्योम्नि विभाति चास्तसमये चण्डद्युतेर्वाजिनः।
पादत्राणमिदं जवाद्विगलितं खे राजतं राजते॥

बृहद्वृत्ति ४ लघु अर्हन्नीति—त्रिषष्टि--शलाका--पुरुष--चरित
चरित का विषय परामर्श—शैली—टीका।

यह प्रसिद्ध श्वेताम्बर जैन था। जैन उपदेशकों
कर श्वेताम्बरों में यह विद्वद्ग्रणी माना गया है।
चित "त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित और कुमार
वा द्व्याश्रय-महाकाव्य प्रसिद्ध हैं। इसका जन्म
गुजरात के अमदाबाद जिले के ग्राम में ई० १०८८
पूर्णिमा को हुआ था। इसके पिता माता चचिग
नाम के गरीब मोढ़ बनिये थे। इसके दूसरे नाम
हेमाचार्य और सोमचन्द्र थे। इसकी प्रौढ़ विद्वत्ता के
इसको 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहते थे। यह अणहिल
के राजा जयसिंह के भतीजे कुमारपाल का गुरु था।
त्प्रेमी रहने के कारण उसने हेमचन्द्र को अपने द
दिया था। किन्तु वह शैव था, उसने जैन धर्म को
थी। कुमार पाल की दीक्षा के बाद उसका सूत्र
जय' नाटक उसके उत्तराधिकारी अभयदेव के मन्त्री
रचा। इस दीक्षा में दृढ़ रहने के लिये कुमारपाल
से इसने "हैमयोगानुशासन' नामक [illegible] भी
जयसिंह की प्रार्थना से व्याकरण का 'शब्दानुशासन'
उसकी टीका बृहद्वृत्ति भी इसने बनाई थी। लघु
इसीकी विरचित है। उपरोक्त ग्रन्थों के व्यतिरिक्त
चित और भी अनेक ग्रन्थ हैं।

त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित:—यह महाकाव्य १० पर्वों । यह विस्तृत काव्य है । ई० ११६० से ११७२ के बीच में काव्य रचा गया था । इसके नाम के अनुसार ६३ जैन के महापुरुषों का जीवन चरित्र इसमें लिखा गया है। ६३ महापुरुषों में २४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्ती, ६ वासुदेव, लदेव और ६ विष्णुद्विट् हैं। काव्य के विस्तृत होने से अरोचक हो गया है। इसकी भाषा सरल है। अन्तिम में महावीर वर्द्धमान का जीवन चरित वर्णित है। कुमार-राजा के जैन धर्म दीक्षा का वर्णन भी इसमें है। यद्यपि ग्रन्थ महाभारत के ढङ्ग पर लिखा गया है तो भी इसमें क छन्दों का प्रयोग होने के कारण यह महाकाव्य कहा सकता है।

कुमारपाल-चरित वा द्व्याश्रयमहाकाव्य:—हेमचन्द्र ने महाकाव्य को ई० ११६३ में कुमारपाल को जीवितावस्था सकी प्रशंसा में लिखा था। यह महाकाव्य अपने ढङ्ग निराला ही है। इसके २८ सर्गों में २० सर्ग संस्कृत और र्ग प्राकृत के हैं और यह ऐतिहासिक काव्य होता हुवा ट्टि काव्य के सदृश व्याकरण के प्रयोगों को विशद करने । शास्त्रकाव्य है। इसीलिये इसको द्व्याश्रय-महाकाव्य हैं। इसमें चालुक्य-वंशीय राजाओं का भी इतिहास इस काव्य के संस्कृत २० सर्गों पर और प्राकृत के ७ र्गों पर अभयतिलकगणी विरचित टीका है और

हैं। इस काव्य में प्रायः प्रसिद्ध २ छन्द ही प्रयुक्त हैं।
काव्य की कोई टीका उपलब्ध नहीं है।

धनंजय (ई० १२ श शतक का मध्य)

नञ्जय --विरचित 'द्विसंधान महाकाव्य'—इसका अन्य नाम श्रुत-
—समय-निर्धारण —धनञ्जयनाममाला—द्विसंधान वा धनञ्जय
का विषय विचार – गुण – टीका।

इस महाकवि का विरचित 'द्विसंधान' नामक महाकाव्य
इस कवि को श्रुतकीर्ति भी कहते हैं। इसके समय और
स के विषय में स्पष्ट रूप से कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं
जल्हण की विरचित सूक्ति-मुक्तावलि में राजशेखर के
से धनंजय के विषय में एक श्लोक मिलता है।

द्विसंधाने निपुणतां स तां चक्रे धनंजयः।
यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनं जयः॥

यह राजशेखर प्रबन्धकोष का कर्ता जैन राजशेखर है।
राजशेखर ई० १३४८ में विद्यमान था। इसलिये इसका
य ई० १३४८ के बाद का नहीं है। इसका विरचित धनंजय
एटु[1] वा नाममाला नाम का दूसरा भी ग्रन्थ है। इस
माला में जैन दार्शनिक अकलङ्कदेव का निर्देश मिलता
अकलङ्कदेव का समय ई० ७५० है। इसलिये धनंजय ई०
-१३४८ के मध्य का है। के० बी पाठक[2] महाशय के मत

---

१ कल्पद्रु कोष की भूमिका पृ० ३२।

२ जे० बी० आर० ए० एस् २१ पृ० १।

से इसने इस महाकाव्य की रचना ई० ११२३ के
मध्य में की है इसलिये इसका समय ई० ११
होता है। यह कर्णाटक का निवासी दिगम्बर जैन

द्विसंधान काव्यः—इसको धनंजय काव्य
यह महाकाव्य है। इसका दूसरा नाम 'राघव-पा
इसके १८ सर्ग हैं। इसमें रामायण और महाभारत
प्रत्येक श्लोक में श्लेष से वर्णित है। यह श्लिष्ट
पर भी इसमें माधुर्य तथा प्रसादगुण विद्यमान
रीति वैदर्भी है। यह काव्य अत्यन्त प्रशंसनीय
है। अभङ्ग तथा सभङ्ग श्लेषों से युक्त इस काव्य
विनयचन्द्र के शिष्य नेमिचन्द्र ने विस्तार पूर्वक
इसी टीका का संक्षेप कर बद्रीनाथ ने सुधा नाम
प्रकाशित की है।

जल्हण (ई० द्वादश शतक)

जल्हण – विरचित सोमपाल विलास – समय निर्धारण – सोमपाल का मन्त्री—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ—१ सूक्ति मुक्तावली—सोमपाल विलास का विषय व टीका।

इसका विरचित सोमपाल विलास नाम का
है। जल्हण काश्मीर का निवासी था। मङ्ख ने श्री
चरित काव्य के २५ वें सर्ग में विद्वत्परिषद् के वर्णन
को उस परिषद् का सभ्य बतलाया है। यह
राजा सोमपाल विलास का मन्त्री भी था। इसने

ती छाया और सूक्ति-मुक्तावली ये दो ग्रन्थ भी हैं।
ो जल्हणदेव भी कहते हैं।

ोमपाल-विलास:—यह महाकाव्य राजपुरी के राजा
ाल के, सुस्सल के साथ युद्ध के वर्णन में लिखा गया
स काव्य का निर्देश रत्नकण्ठ ने अपने स्तुति-कुसुमाञ्जलि
या है। इस काव्य पर राजानक रुचक विरचित अलङ्का-
ारिणी नाम की टीका है।

मङ्ख वा मङ्खक (ई० १२ श शतक)

ङ्ख–विरचित महाकाव्य श्रीकण्ठ-चरित–जीवन-चरित–समय
ण—काश्मीर के राजा जयसिंह का सभापंडित—इसका विरचित
ग्रन्थ अनेकार्थ कोष–श्रीकण्ठ चरित का विषय विचार–टीका।

स कवि का विरचित महाकाव्य श्रीकण्ठ चरित नाम
। यह प्रसिद्ध आलङ्कारिक राजानक रुय्यक का शिष्य
ये गुरु शिष्य काश्मीर के राजा जयसिंह (११२९-५०)
भा में थे। मङ्ख की भी राजानक उपाधि थी। इसके
का नाम विश्वावर्त और पितामह का नाम मन्मथ था।
का अलङ्कार नाम का भाई काश्मीर के सुस्सल और
सिंह का मन्त्री था। मङ्ख का दूसरा भाई शृङ्गार 'बृहत्तन्त्र-
' नाम के उच्चाधिकारी के पद पर था। मङ्खक ने यह
ई० ११४५ के लगभग रचा है। इस काव्य के ५ श्लोक
नक रुय्यक के 'अलङ्कार सर्वस्व' में मिलते हैं। इसका
चित 'अनेकार्थ कोष' भी है।

श्रीकण्ठ चरितः—यह महाकाव्य है। इस
हैं। इसमें शिवजी द्वारा त्रिपुरासुर का वध
काव्य का २५ वां सर्ग बहुत महत्व का है। इस
सिंह राजा के सचिव अलंकार ने जो विद्व
थी, उसका विस्तारपूर्वक वर्णन दिया है। इसके
मङ्ख ४ भाई थे। वे सब लेखक थे और उच्च प
इस काव्य पर जोनराज की बनाई हुई टीका है।

वासुदेव (ई० १२ श शतक)

वासुदेव—विरचित युधिष्ठिर विजय महाकाव्य-समय
कुलशेखर का समकालिक---जीवनी—वासुदेव विजय का
वासुदेव से भिन्न---युधिष्ठिर विजय का विषय प
छन्द---टीका।

इसका विरचित युधिष्ठिरविजय नाम का
महाकाव्य है। ग्रन्थारम्भ के श्लोकों से ज्ञात होता
समय कोई कुलशेखर राजा राज्य करता था। कु
१२ शतक में केरल में शासन करता था।
इतिहास में ई० द्वादश शताब्दि में कुलशेखर राज्य
मिलता है। यह कुलशेखर वही केरल का राजा हैं।
इसलिये कवि का समय यही माना गया है।
वेदाध्यायी भारतगुरु थे। वासुदेव के नाम
विजय काव्य भी प्रसिद्ध है। इसके ६ सर्ग हैं। इसमें
३ सर्गों को धातुकाव्य कहा है। इन दोनों काव्यों ही

ी भिन्न है। वासुदेव विजय में यमक का नाम भी नहीं
तु इन दोनों काव्यों का साहश्य यह है कि इन दोनों का
काश्मीर के बाहर विरल है। इसलिये ये दोनों कवि एक
हों तो भी दोनों काश्मीरवासी थे ऐसा कह सकते हैं।
युधिष्ठिर-विजयकार वासुदेव के अपने ग्रन्थों में केरल
ों का वर्णन करने के कारण यह कहा जा सकता है कि
ल का रहने वाला होते हुवे भी काश्मीर में जा बसा
वहां उसके काव्य का प्रचार आगे चलकर हुवा।
ष्ठिर विजय का टीकाकार काश्मीरी है और वह टीका
ीं मिली है। इससे निवास स्थान की दृढ़ता होती है।
ासुदेव के समकालिक कुलशेखर के विरचित सुभद्रा-
। और तपती-संवरण नाम के दो नाटक मिलते हैं।

धिष्ठिर-विजयः—इस महाकाव्य के ८ आश्वास[1] हैं।
ाकाव्य के प्रत्येक श्लोक में यमक है। इसलिये इसमें
और माधुर्यगुण नहीं है तो भी काव्य सरल ही कहा
कता है। यमक की योजना पाण्डित्य पूर्ण है। इसमें
य युद्ध का संक्षिप्त वर्णन है। इसमें अप्रसिद्ध छन्द ही
हैं। इस काव्य पर काश्मीरवासी राजानक शङ्करकण्ठ
राजानक रत्नकण्ठ की विरचित शिष्यहिताभिधाना
ी टीका ई० १६७१ के लगभग की है।

---

[1] इसमें सर्ग न होकर आश्वास ही हैं। आश्वास प्रायः प्राकृत
ों ही होते हैं।

कविराज (ई० १२ श शतक)

कविराज—विरचित राघवपाण्डवीय महाकाव्य—कदम्ब राजा कामदेव का सभापण्डित—राघवपाण्डवीय—परामर्श—शैली—टीकाएँ।

इसका विरचित राघव-पाण्डवीय महा... जयन्तिपुरी के कदम्ब राजा कामदेव[1] के दर्बार... था। कामदेव का समय ई० ११८२-९७ माना जा... सूरि और पण्डित उपाधियाँ थी। कीथ महा... इस कवि का नाम माधव भट्ट था और क... पण्डित आदि इसकी उपाधियां थीं। मेकडानल... मत से कविराज ८ म शताब्दि के लगभग का...

राघव-पाण्डवीय :—यह महाकाव्य है। इस... में श्लेष रूप से रामायण और महाभारत की क... यह काव्य अपने ढङ्ग का निराला ही है। ... अभङ्ग तथा सभङ्ग श्लेषों के उदाहरण सर्वत्र ... कविराज ने इस ग्रन्थ में प्रतिज्ञा की है कि वह... और सुबन्धु को छोड़ कर अन्य किसी विरचित... काव्य उसकी बराबरी नहीं कर सकता। श्लेष... इस काव्य की गणना क्लिष्ट काव्यों में होती है... की ६ टीकाएँ हैं जिनमें चरित्र वर्द्धन की टीका...

---

1. आफ्रेक्त का केटलाग और कीथ का संस्कृत ... हास पृ० १३७।

जयदेव (ई० ११८०)

यदेव—विरचित महाकाव्य गीतगोविन्द—जयदेव नाम के १५ —समय—बङ्ग के लक्ष्मणसेन का सभापंडित—जीवन चरित्र— विन्द या अष्टपदी का विषय वर्णन—शैली—टीकाएँ।

इसका विरचित गीतगोविन्द नाम का महाकाव्य है। नाम के कम से कम १५ विद्वान् हुए हैं। इनमें ५ जयदेव हुवे हैं। इनमें भी कवित्व में प्रसिद्ध दो हुए हैं। प्रसन्न- और चन्द्रालोक के कर्ता जयदेव गीतगोविन्दकार व से अर्वाचीन हैं। गीतगोविन्दकार जयदेव वंग के ण सेन (ई० ११११-११६६) का सभापण्डित था। णसेन की सभा में जयदेव के साथ और भी ४ पण्डित नके नाम गोवर्द्धन, धोयी, शरणदेव और उमापतिधर इस सम्बन्ध में सुभाषित का एक श्लोक प्रसिद्ध है—

"गोवर्द्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च॥"

जयदेव ने अपने गीतगोविन्द के[1] ४ र्थ श्लोक में का निर्देश किया है। इसके पिता का नाम भोजदेव[2] और ा का नाम राधादेवी था ऐसा इसने स्वयं काव्य के अन्त

---

१ वाचः पल्लवयत्युमापतिधरस्सन्दर्भशुद्धिं गिरां जानीते जयदेव एव ः श्लाघ्यो दुरूहद्रुतेः। शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धनस्पर्द्धी पि न विश्रुतः श्रुतिधरो धोयी कविक्ष्मापतिः। गीतगो० ४-श्लोक।

२ गीतगोविन्द १२ सर्ग ४ र्थ श्लोक।

में कहा है। यह किन्दुबिल्व का निवासी था।
वंग देश के बीरभूम जिले में है। यह श्रीकृष्ण का
था। भक्ति माला में इसकी भक्ति की अनेक
हैं। इसका विरचित एक हिन्दी ग्रन्थ भी है
आदि ग्रन्थों में सब से प्राचीन माना जाता है
यह जयदेव विरचित छोटा सा एक ही महा
भी इस कवि का यश इतना प्रसृत हुवा कि
जन्म स्थान पर इसकी पुण्य तिथि पर अभी तक
उत्सव मनाया जाता है जिसमें गीतगोविन्द
जाते हैं। ई० १४९९ में उत्कल के प्रतापरुद्र
वैष्णव नर्तक और गायकों को सदैव गीतगोविन्द
गाने की आज्ञा दी थी। ई० १२९२ के शिलालेख
का एक पद्य उत्कीर्ण मिलता है। इसलिये जयदेव
को कविराज-राज कहना यथोचित प्रतीत होता
सदृश पाश्चात्य रसिक शिरोमणियों ने कालिदास
इस कवि की भी भूरि प्रशंसा की है।

गीतगोविन्द:—इसको दक्षिण में अष्टपदी
महाकाव्य १२ सर्गों का है। इसमें श्रीकृष्ण
का प्रेम वर्णित है। प्रति सर्ग के पद्य के पूर्व
आदि दिये हैं। इससे यह अनुमान होता है
रचयिता बड़ा भारी गवैया था। इस काव्य की
स्तुति की जाय उतनी ही थोड़ी है। माधुर्य और

काव्य में कूट २ कर भरे हैं। परम्परा में ऐसा कहा जाता
कि श्रीकृष्ण ने स्वयं कवि की इस काव्य रचना में सहा-
की थी और यह बात ठीक भी मालूम होती है अन्यथा
विलक्षण काव्य कैसे बन सकता था। संस्कृत में जितने
काव्य हैं वे सब रामायण वा महाभारत पर आश्रित हैं
ु यह काव्य अपने ढङ्ग का निराला ही है। इसमें विप्र-
और संभोग शृङ्गार का खूबसूरती से वर्णन किया है।
र के शृङ्गार रस का अनुभव करते हुवे परमार्थ
प करने की इच्छा करने वालों के लिये यह काव्य अत्यन्त
गी है। कवि ने स्वयं कहा है—

च्वी माध्वीकचिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्कशाऽसि।
द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत मृतमसि क्षीर नीरं रसस्ते॥
न्द क्रन्द कान्ताधर धरणितलं गच्छ यच्छन्ति भावं।
च्छृङ्गारसारस्वतमिह जयदेवस्य विष्वग्वचांसि'॥

इस काव्य की लोक प्रियता इसकी टीका की संख्या से
वेदित होती है। इस काव्य पर ३० टीकाएँ मिलती हैं।
टीकाकारों में उदयनाचार्य और शंकर मिश्र सदृश बड़े बड़े
यिक और गागाभट्ट से मीमांसक भी हैं।

श्रीहर्ष (ई० १२ श शतक)

श्रीहर्ष – विरचित महाकाव्य नैषध—जीवनचरित्र – समय – कन्नौज
विन्दचन्द्र तथा जयचन्द्र का सभापण्डित—भिन्न २ मत—इसके
वेत अन्य ग्रन्थ—१ खंडनखंडखाद्य, २ अर्णव-वर्णन, ३ गौडोर्वीश—

कुलप्रशस्ति, ४ नवसाहसाङ्क चरित, ५ विजय-प्रशस्ति, ... सिद्धि, ७ स्थैर्यविचारण, ८ पञ्चनलीय काव्य, ९ छिन्द... प्रशस्ति, ११ ईश्वराभिसन्धि,— नैषध चरित का ... शैली — छन्द — टीकाएँ ।

इस महाकवि का विरचित प्रसिद्ध महाका... चरित, नैषध चरित वा नैषध काव्य के नाम से ... यह कवि तो था ही किन्तु भारी दार्शनिक भी ... विरचित दर्शन का ग्रन्थ 'खण्डन-खण्डखाद्य' ... प्रसिद्ध है जिसमें कवि ने अपने पाण्डित्य से ... खण्डन कर अद्वैतमत-स्थापन किया है। इसके ... हीर तथा माता का नाम मामल्लदेवी या अ... अधिकांश विद्वान् यह कान्यकुब्ज के विजयचन्द्र ... चन्द्र का सभापण्डित था ऐसा मानते हैं ... शतक के राजशेखर ने अपने ग्रन्थ में श्रीहर्ष के ... है कि 'श्रीहर्षो वाराणस्यधिपतिजयन्तचन्द्रस... भूदिति'। यह जयन्तचन्द्र कान्यकुब्ज का जय... नैषध चरित के टीकाकार गदाधर ने श्रीहर्ष ... गोविन्दचन्द्र का सभापण्डित बताया है। यह ...

१ मामल्लदेवी मां + अल्लदेवी। अधिकांश विद्वान् 'मामल्लदेवी' ऐसा ही मानते हैं।

है जिसका कान्यकुब्ज के राजा के रूप में मङ्ख के श्रीकण्ठ[१]
त में निर्देश है। परन्तु गोविन्द चन्द्र के पुत्र विजयचन्द्र
ादर में इन्होंने 'विजय प्रशस्ति' नाम का ग्रन्थ लिखा है।
त्र इसका समय १२ शतक का उत्तरार्द्ध माना गया है।
विद्वान् प्रचलित प्रथा के आधार पर इसको मम्मटभट्ट का
ा[२] बताते हैं परन्तु यह बात युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होती।
के सम्बन्ध में ऐसी कथा प्रचलित है कि इसके पिता को
ी पण्डित ने शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया था। जब
ा मरणासन्न हुवा तब उसने श्रीहर्ष को बुलाकर कहा कि
ादि तू मेरा बेटा है तो जिसने मुझे परास्त किया है उसे
ास्त्रार्थ में हराकर मेरा बदला अवश्य लेना"। पिता के
ने के बाद इसने अपनी माता से चिन्तामणि मन्त्र की
क्षा लेकर देवी को प्रसन्न कर उससे उत्कट विद्या मांगी।
ने 'तथास्तु' कहकर अन्तर्ध्यान हो गईं। दूसरे दिन जब
राजदर्बार में जा बोलने लगा तब इसकी अत्युत्कृष्ट संस्कृत
षा को समझना भी लोगों को मुश्किल हो गया और

---

१ अन्यस्ससुहलस्तेन ततोऽवन्द्यत पंडितः।
दूतो गोविन्दचन्द्रस्य कान्यकुब्जस्य भूभुजः॥
श्रीकंठ चरित २५ सर्ग १०२ श्लोक।

२ श्रीहर्ष का नैषध काव्य का मम्मट को दिखाना और उनका इस
व्य को काव्य प्रकाश के दोष प्रकरण के उदाहरण के लिये उपयुक्त
ताना आदि।

प्रशंसा के बजाय इसकी निन्दा ही होने लगी।
होकर वह पुनः देवी की आराधना करने
प्रगट होने पर इसने अपना दुःख निवेदन कि
कहा कि उन विद्वानों में यह सामर्थ्य नहीं
भाषा को समझ सकें। अस्तु। तू रात के समय
दही पी। इससे तेरी बुद्धि कुछ कम तीक्ष्ण हो जा
ऐसा ही किया और पुनः सभा में जाकर
परास्त करने वाले पण्डित को पराजित कि
सम्बन्ध में अन्य भी अनेक कथाएँ[1] प्रचलित हैं।

इसके निवास स्थान के विषय में मतभेद है।
और यह भी कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र तथा
सभापण्डित थे। इस लिये बहुतांश विद्वान् इस
का निवासी ही मानते हैं। कुछ विद्वान् इस
गौडोर्वीश-प्रशस्ति तथा नवसाहसाङ्क-चरित ग्रन्थों
तथा नैषध काव्य में वर्णित कुछ देशाचारों के
इसको वङ्गीय[2] सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं।
महाकाव्य के सर्गान्त के श्लोकों से विदित होता है
विरचित 'अर्णव-वर्णन' 'गौडोर्वीशकुल—प्रशस्ति
साङ्क-चरित' 'विजय-प्रशस्ति', शिवशक्तिसिद्धि
विचारण' छिन्द-प्रशस्ति, ईश्वराभिसन्धि और द्विरू

१ शिवदत्त शर्मा की निर्णयसागर में मुद्रित नैषध काव्य
२ प्रो० नीलकमल भट्टाचार्य विलिखित ' नैषध एण्ड श्री

नैषधीय चरित :—इस महाकाव्य की पञ्च-महाकाव्यों में गणना है। पाण्डित्य प्रकर्ष में यह काव्य सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसके प्रत्येक सर्ग में प्रायः १०० से अधिक श्लोक हैं। इस काव्य का कथानक महाभारत का नलोपाख्यान है। इस काव्य के २२ सर्ग हैं। इन २२ सर्गों में कथापूर्ण न होने के कारण विद्वान् लोग अनुमान करते हैं कि इसके और भी सर्ग अवश्य अनुपलब्ध हैं। इसके सम्पूर्ण सर्गों की संख्या ६० से लेकर १२० तक भिन्न २ विद्वानों के मतानुसार मानी जाती है। इस काव्य को पढ़ने से ज्ञात होता है कि कवि की प्रतिभा शक्ति ऐसी विलक्षण थी कि उसकी कल्पना का कभी किसी विषय पर अन्त न होता था। परन्तु हठात् अतिविस्तार के भय से कवि को अपनी कल्पनाओं को रोक कर ही काव्य के सर्गों को समाप्त करना पड़ा है। इस काव्य में सर्वत्र ही पुराणों की कथाओं का उल्लेख किया गया है। इससे कहा जा सकता है कि इसका रचयिता पुराण का बहुत बड़ा वेत्ता था। इस काव्य में अलङ्कारों की तो भरमार है। शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों ही का प्रयोग है। इस काव्य में कामशास्त्र व कामशास्त्र का भी परिचय अच्छी तरह से मिलता है। इस काव्य में वैदर्भी रीति का अनुसरण किया गया है। इस काव्य में अनेक गुण होते हुवे भी शास्त्रीय ज्ञान तथा विलक्षण उत्प्रेक्षा के कारण कुछ क्लिष्टता आ गई है। इसकी श्लेष की योजना अत्यन्त सराहनीय है। इस

काव्य में केवल १९ छन्द हैं। इनमें सबसे अधिक
है जिसमें ७ सात सर्ग लिखे गये हैं। वंशस्थ
इनके व्यतिरिक्त वसन्ततिलका, स्वागता,
रथोद्धता, वैतालीय, हरिणी आदि छन्द हैं।
पर २३ टीकायें लिखी गई हैं जिनमें सबसे
विद्याधर रचित साहित्य-विद्याधरी है। काश्मीर
प्रकाश की निदर्शन नाम की टीका लिखी
आनन्द की लिखी टीका विद्वत्तापूर्ण है।
'जीवातु' और नारायण की नैषध-प्रकाश टीका है

सोमेश्वर (ई० ११७९-१२६२) सो

सोमेश्वरदेव—विरचित सुरथोत्सव महाकाव्य—
गुर्जरदेश के भीमदेव तथा वीसलदेव राजाओं का पुरोहित
इसका विरचित अन्य ग्रन्थ—कीर्ति कौमुदी—सुरथो
कौमुदी का विषय विचार—शैली—छन्द—काव्यप्रकाश
सोमेश्वर से इसकी भिन्नता।

इस महाकवि का विरचित 'सुरथोत्सव' सुप्रि
यह गुर्जरदेश के भीमदेव तथा वीसलदेव राजाय
हित था और इन्हीं की सभा का सभापण्डित था
पिता कुमारदेव चालुक्य वंश के राजा कुमारपाल
था। इसकी माता का नाम लक्ष्मी और भाई
महादेव और विजय था। महादेव भी भारी पण्डित
महाकवि की कविता का बहुत वर्णन मिलता है

रपाल का देहान्त होने के बाद अजयपाल, मूलराज भीमदेव ई० ११७६ तक राज्य करते थे। ई० ११७६ से तक वीसलदेव राज्य करता था। इसका विरचित कौमुदी नाम का प्रशस्ति-काव्य भी है। सुरथोत्सव के सर्ग में चालुक्य वंशीय राजाओं के वर्णन के साथ वृत्त भी लिखा है। यद्यपि इसने अपने ग्रन्थ में गुजरात वेल राजा लावण्यप्रसाद और वीरधवल का वर्णन है तथापि कीथ महाशय का यह कहना कि इन राजाओं सोमेश्वर पुरोहित था ठीक नहीं है।[१] कीथ महाशय स व्यक्ति को सोमेश्वरदेव के स्थान पर सोमेश्वरदत्त' ा भी भ्रमात्मक है।

सुरथोत्सव काव्यः—यह एक महाकाव्य है। इसमें १५ हैं। इसमें दुर्गा सप्तशती में उल्लिखित कोलाऽधिपति वंश समुद्भव सुरथ राजा का तथा सप्तशती के कथानकों सुविस्तृत वर्णन है। ग्रन्थान्त के १५ वें सर्ग में चालुक्य-य राजाओं के वर्णन के साथ २ कवि ने आत्मवृत्त भी ा है। १० म सर्ग में चित्र काव्य के भी अच्छे २ उदारण दण्डी के काव्यादर्श में वर्णित महाकाव्य के प्रायः सभी ण इसमें मिलते हैं। इसमें वैदर्भी रीति तथा माधुर्य और दगुण कुछ स्थलों को छोड़कर सर्वत्र विद्यमान हैं। इसमें

---

[१] कीथ का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ १७३।

प्रधान २ सभी छन्द विद्यमान हैं। इस काव्य
उपलब्ध नहीं है।

कीर्तिकौमुदीः—इसमें वीरधवल राजा के
पाल की प्रशस्ति और औदार्य वर्णित है।
में वस्तुपाल की भारत में बड़ी ख्याति है।
वर्णन में आदर्श अमात्य कैसा होना चाहिये
ने दिखाया है।

काव्य प्रकाश की काव्यादर्श नाम की
शतक का रचयिता सोमेश्वर, इस सोमेश्वरदेव

जयद्रथ (ई० १३ श शतक)

जयद्रथ – विरचित काव्य हरचरित चिन्तामणि-
काश्मीर के राजराज वा राजदेव राजा का सभापति
जयरथ विरचित ग्रन्थ १ अलङ्कार विमर्शिनी, २ अल
विषय में याकोवी व स्टैन के मत – हरचरित चिन्तामणि
शैली – छन्द।

इसका विरचित 'हरचरित चिन्तामणि'
काश्मीर का निवासी शृङ्गार रथ का पुत्र और
विमर्शिनीकार जयरथ का भाई था। इसका
संरक्षक काश्मीर का राजराज वा राजदेव राजा
१२२६) था। इसके प्रपितामह का भ्राता शिव
के उच्चल—देव का मंत्री था। उच्चल देव का
ई० ११०१ से ११११ तक माना जाता है। जो

जोनराज[1] द्वारा उल्लिखित राजदेव को एक नहीं मानते
मत से जयद्रथ का समय १२ श शतक का अन्त है।
याकोवी महाशय ने यह सिद्ध किया है कि जयरथ ने
राज—विजय-काव्य (ई० ११९३) का अपने ग्रन्थ में
ख किया है। इस लिये उसको १३ श शतक के आरम्भ
मानना उचित है। इस तरह राजराज और राजदेव
एक सिद्ध होते हैं। जयद्रथ और जयरथ दोनों सुभट-
शिव और शङ्खधर के शिष्य थे परन्तु स्टैन महाशय के
से जयद्रथ के गुरु का नाम श्रीहर्ष था। जयरथ के
चित अलङ्कार-विमर्शिनी और अलङ्कारोद्धरण ग्रन्थों को
क्त महाशय जयद्रथ विरचित मानते हैं। परन्तु यह भूल
तीत होती है। ये दोनों भाई शैव थे। जयद्रथ की उपा-
राजानक और महामहेश्वराचार्य थीं।

हरचरित चिन्तामणि:—यह काव्य महादेव के अनेक अव-
के वर्णन में लिखा गया है। इसमें ३२ प्रकाश हैं। यह
य अनुष्टुप् छन्द में लिखा गया है। प्रत्येक प्रकाश के
में एक दो श्लोक अन्य छन्द के भी हैं। इसमें सरल
में शिवपुराण की प्रायः सर्व कथाएँ लिखी गई हैं।
काव्य की कोई टीका उपलब्ध नहीं है और काव्य की
लता के कारण उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है।

---

[1] द्वितीया राजतरङ्गिणी श्लोक ७९.।

अभयदेव (ई० १२२१)

अभयदेव—विरचित जयन्त विजय महाकाव्य-जयन्त विजय का विषय-परामर्श—शैली—छन्द।

अभयदेव श्वेताम्बर जैनों का आचार्य विरचित 'जयन्त विजय' नाम का महाकाव्य है। मुनिराज का शिष्य था। इसके निवास स्थान ठीक पता नहीं चलता है। जयन्त विजय काव्य दी हुई ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति के श्लोक[1] से मालूम कवि ने यह ग्रन्थ १२२१ में रचा था।

जयन्त विजय काव्यः—यह महाकाव्य है सर्ग हैं। इसमें मगध के किसी जयन्त राजा वर्णन है। इस काव्य की श्लोक संख्या २२०० है कवि ने ही कहा है। इसमें कवि ने वैदर्भी रीति किया है। यद्यपि माधुर्य गुण उत्कटता से प्र है तो भी यह काव्य प्रसाद गुण से युक्त है। होने के कारण जैन धर्म की झलक सर्वत्र ही दीख पड़ती है। इस काव्य में उपजाति, वंशस्थ, विलम्बित आदि प्रसिद्ध २ छन्द हैं। इसपर उपलब्ध नहीं है।

---

१ दिक्करिकुलगिरि दिनकर (१२७८) परिमि समायाम्। द्वाविंशत्रिशतमानं शास्त्रमिदं निर्मितं जयतु।

अमरचन्द्र सूरि (ई० १२४३-१२६०)

अमरचन्द्र सूरि – विरचित बालभारत महाकाव्य – समय—अणहिल-
के वीसलदेव राजा का सभापण्डित – इसके विरचित अन्य ग्रन्थ—
य कल्पलता, २ मुक्तावली, ३ कलाकलाप, ४ छन्दोरत्नावली, ५
र चरित—बालभारत का विषय विचार —शैली – छन्द ।

इसका विरचित बालभारत नाम का महाकाव्य प्रसिद्ध
इसके अन्य ग्रन्थों से मालूम होता है कि यह अणहिलपट्टन
सलदेव राजा के दर्बार का पण्डित था। वीसलदेव का
। बूहर तथा भाण्डारकर महाशयों के मतानुसार १३ वीं
ब्दि का मध्य है। यह जिनदत्त सूरि का शिष्य था।
श्वेताम्बर जैन था। काव्य कल्पलता, मुक्तावली, छन्दो-
वली, कलाकलाप और जिनेन्द्र चरित इसी के बनाये हुवे हैं।

बालभारत:—यह महाकाव्य है। इसमें महाभारत की
र्ण कथा संक्षेप में वर्णित है। महाभारत के समान ही
महाकाव्य पर्वों में विभक्त है और प्रत्येक पर्व में कई एक
हैं। इस काव्य के अन्त के कवि-प्रशस्ति के अन्तिम
क से विदित होता है कि इसमें ४४ सर्ग हैं और ६६५०
क हैं। यह महाकाव्य ऊँचे दर्जे का है। इस काव्य की
बहुत ही मनोहर तथा प्रौढ़ है। कवि ने इस काव्य में
रीति का उपयोग किया है। इस ग्रन्थ के पढ़ने से
होता है कि कवि का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार
सर्गों में भिन्न २ छन्द तो हैं ही परन्तु अनुष्टुप् छन्द का

प्रयोग विशेषता से किया गया है। इस
उपलब्ध नहीं है।

वीरनन्दी (ई० १३ श शतक)

वीरनन्दी—विरचित चन्द्रप्रभ चरित—समय—
विषय—शैली—छन्द।

इसका विरचित महाकाव्य 'चन्द्रप्रभ च
जैन धर्मावलम्बी था। गुणनन्दी का शिष्य था
गुरु था। इसने कनकप्रभ, पद्मनाथ, श्रीषेण,
अजितसेन, अच्युतेन्द्र आदि राजाओं का
जिनका ऐतिहासिक सम्बन्ध ठीक २ ज्ञात नहीं है
देश का निवासी था और यह १३ श शतक के
ऐसा किसी विद्वान् का मत है।

चन्द्रप्रभ चरितः—यह महाकाव्य है। इसमें
ग्रन्थ के अन्त की प्रशस्ति में काव्य के नाम
ऐसा श्लोक है।

"शब्दार्थसुन्दरं तेन रचितं चारुचेतसा।
श्रीजिनेन्दुप्रभस्येदं चरितं रचनोज्वलम्।"

इससे यह स्पष्ट है कि यह काव्य चन्द्रप्रभ
ङ्कर के चरित—वर्णन में रचा गया है।
तीर्थङ्कर था। इस काव्य के अनेक सर्गों में
राजाओं को इस तीर्थङ्कर ने जैन धर्म का उपदेश
किया इसका वर्णन है। १७ और १८ वें सर्गों

ा ही वर्णन है। इसमें महाकाव्य के लक्षण हैं। कवि ने
ाव्य की रचना में वैदर्भी रीति का अवलम्बन किया है।
मधुर और सरल है। कवि का भाषा पाण्डित्य भी
प्रकार झलकता है। महाकाव्य के उपयुक्त प्रधान २
कवि ने भिन्न २ सर्गों में प्रयुक्त किये हैं। इस काव्य की
टीका विद्यमान नहीं है।

कृष्णानन्द (ई० त्रयोदश शतक)

ष्णानन्द—विरचित महाकाव्य सहृदयानन्द—समय निर्धारण—
राजा के दर्बार का उच्चपदाधिकारी—सहृदयानन्द का विषय-परा-
शैली—छन्द ।

सका विरचित 'सहृदयानन्द' नाम का महाकाव्य है।
त्कल देश के जगन्नाथपुरी का निवासी था। प्रत्येक
के अन्त में 'सन्धि विग्रहिक' और 'महापात्र' ये दो उपा-
इसके नाम के पूर्व में लिखी मिलती हैं। इन उपाधियों
इ स्पष्ट है कि यह कवि उत्कल राजा के दर्बार का उच्च-
धिकारी था। इस कवि ने अपने को कपिञ्जलकुलोद्भव
ाया है। इसके काव्य का १ श्लोक विश्वनाथ के साहित्य-
में मिलता है। इसलिये यह ई० १३०० के बाद का
हो सकता है। जगन्नाथपुरी की परम्परा में यह कहा
है कि इसने श्रीहर्ष के नैषध काव्य की टीका लिखी
किन्तु यह टीका कहीं उपलब्ध नहीं है और ग्रन्थान्तर
दिष्ट भी नहीं है। तथापि इससे इतना अनुमान कर

लेना अनुचित न होगा कि कृष्णानन्द श्रीहर्ष ... था। इस लिये इसका समय १२००-१३०० ... सकता है।

सहृदयानन्द :—यह १५ सर्गों में विभक्त ... का कथानक नैषध काव्य में वर्णित नल-चरित ... नलचरित महाभारत के सदृश पूर्ण रूप से वर्णित ... है कि नैषध की नल की कथा को अपूर्ण देख ... की प्रवृत्ति इसकी रचना की ओर बढ़ी हो। इ... नैषध काव्य की झलक है। यह काव्य माधुर्य ... युक्त बड़ा ही मनोहर है। महाकाव्य के लक्षण ... भिन्न २ छन्दों का समावेश है। इस काव्य पर ... उपलब्ध नहीं है।

वेदान्तदेशिक वा वेंकटनाथ (ई० १२...

वेङ्कटनाथ—विरचित १ यादवाभ्युदय महाकाव्य, २ ... नाटक, ३ हंस सन्देश खण्ड काव्य - जीवन चरित—इसके ... ग्रन्थ, १ पादुका सहस्र नाम, २ शतदूषणी—समय- ... हंस सन्देश का विषय परामर्श—शैली - छन्द—टीकाएं ...

यह रामानुज सम्प्रदाय का बड़ा भारी आचार्य ... दार्शनिक होते हुवे भी कवि था। इसका वि... भ्युदय महाकाव्य, सङ्कल्प सूर्योदय नाटक, हंस ... हैं। इसका जन्म काञ्ची में ई० १२६८ में हुवा ... और तोतरम्बा इसके पिता, माता थे। इसने ...

ज अप्पुल्लर के पास अध्ययन किया था। २० वर्ष की
ा के भीतर इसका अध्ययन पूर्ण हो चुका था ऐसा
सङ्कल्प सूर्योदय में कहा है। यह न्याय, विशिष्टाद्वैत,
, मीमांसा और साहित्य का भारी विद्वान् था। इसके
त करीब करीब १२१ ग्रन्थ हैं। इनमें विशिष्टाद्वैत के ग्रन्थ
द्य में हैं; न्याय के ग्रन्थ गद्य में हैं; अनेक स्तोत्र भी हैं।
कविता शक्ति इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि एक बार रात
घण्टे के भीतर १००० श्लोक इसने रचे थे जिनसे
ासहस्र' नाम का ग्रन्थ बना है। इसकी उपाधि कवि-
सिंह थी। प्रसिद्ध विद्यारण्य इसका सहाध्यायी था
विद्यारण्य इसको बड़े आदर से देखता था। विद्यारण्य
बार इसको विजय नगर के दर्बार में आदर से बुलाया
न्तु यह निस्पृहता के कारण वहाँ न गया। विद्यारण्य
ध्व संप्रदायाचार्य अक्षोभ्य तीर्थ के शास्त्रार्थ में यही
य माना गया था। यह और इसके ग्रन्थ इतने आदर-
थे कि अन्य मतावलम्बी आचार्य जैसे अप्पय दीक्षित
ड्डैयाचार्य इसके यादवाभ्युदय तथा शतदूषणी पर
लिखना बड़े महत्व का समझते थे। यह १०८ वर्ष तक
ा था। ई० १३७६ में इसका देहान्त हुआ।

दवाभ्युदयः—इसके २४ सर्ग हैं। इसमें कृष्णावतार
र्णन है। इसने अपने मत का उपदेश करने के लिये ही
व्य रचा, यही नहीं, किन्तु दर्शन के पद्य ग्रन्थ, नाटक

और खण्ड काव्य भी इसी उद्देश से रचे गये
काव्य में काव्य की तीनों वृत्तियों का प्रयोग कि
उसने स्वयं ही कहा है—

गौडवैदर्भ पाञ्चाल मालाकारां सरस्वती
यस्य नित्यं प्रशंसति सन्तस्सौरभवेदि

इसमें कवि ने कालिदास का अनुकरण
किया है तथापि इस काव्य में अन्य कवि का
दीख पड़ता है। यद्यपि प्रसाद और माधुर्य
में हैं तो भी षष्ठ सर्ग में कवि ने चित्र काव्य
है। इसमें भिन्न २ सर्गों में अनेक छन्द प्रयुक्त
प्रसिद्ध अप्पय दीक्षित की विस्तृत टीका है।

हंस सन्देश :—यह खण्ड काव्य कालिदास
वा मेघदूत के ढङ्ग पर है। कालिदास का
मेघदूत इतना प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय था कि
उसके अनुकरण रूप काव्यों की रचना करने में
यह काव्य बहुत सरल तथा मधुर है। इसमें
बनाया है और रामचन्द्र उसको सीता के
जैसे मेघदूत में कालिदास ने यक्ष का विर
मेघ को सन्देश हारक बनाकर वर्षा ऋतु का
विप्रलम्भ शृङ्गार का परिपोष किया है उसी
में राम परब्रह्म से सीतारूपी जीव का विरह
के संसाररूपी समुद्र के पार ले जाने के कार

पी हंस को जीव ब्रह्म के मध्य में सन्देशहारक बनाकर ऋतु का वर्णन करते हुवे शान्तरस का परिपोष किया ह भी काव्य मन्दाक्रान्ता वृत्त में रचा गया है ॥

त्रिविक्रमाचार्य (ई० १३ श शतक)

त्रिविक्रमाचार्य—विरचित महाकाव्य उषाहरण—जीवनी—समय—ण का विषय विचार—शैली—टीका ।

त्रिविक्रमाचार्य वा त्रिविक्रम पण्डित विरचित उषाहरण काव्य है। कवि के मङ्गलाचरण से तथा टीकाकार के त वर्णन से मालूम होता है कि रचयिता माध्व था और चार्य के शिष्यों में था। क्योंकि टीकाकार ने मध्वाचार्य न्दना कर जयतीर्थ के पूर्व में त्रिविक्रम पण्डित का किया है। कवि ने अपने सम्बन्ध में काव्य में कुछ भी कहा है। मध्वाचार्य का समय ई० ११९९ से १२७८ तक गया है। इसलिये यह कवि त्रयोदश शतक में रहे होंगे कोई सन्देह नहीं है।

उषाहरण:—यह महाकाव्य ४ सर्गों का है। इसमें हरि- की उषाहरण कथा मधुर श्लोकों में वर्णित है। कवि ाषा माधुर्य और प्रसाद गुण से युक्त है। काव्य पर दास का और श्रीमद्भागवत का पूर्ण प्रभाव पड़ा है। काव्य में भिन्न २ छन्द प्रयुक्त हैं। शब्दालङ्कार भी कहीं २ पड़ता है। इस काव्य की रसिकरंजनी नाम की टीका

सुमतीन्द्र-यति विरचित है। आनन्द तीर्थ के शि
यति इस टीकाकार के परम गुरु थे।

मलधारि-देवप्रभसूरि (ई० १२

देवप्रभसूरि–विरचित महाकाव्य पाण्डव चरि
समय निर्धारण—अनहिलवाड के जयसिंह सिद्धराज
उसका विरचित अन्य ग्रन्थ मृगावती काव्य—पाण्डव
परामर्श—विशेषता।

इसका विरचित पाण्डव चरित महाकाव्य
मलधारि पन्थ का जैन था। मलधारि राज
न्यायकन्दली की वृत्ति में इसके विषय में
हैं जिनसे मालूम होता है कि कोटिकगण
प्रश्नवाहन वंश में यह उत्पन्न हुवा था व ह
रहता था। जयसिंहसूरि का यह प्रधान शिष्य

---

१ श्रीप्रश्नवाहनकुले कोटिकनामनि गणे जगद्वन्द्ये।
श्रीमध्यम-शाखायां वंशे श्रीस्थूलिभद्रमुनेः॥
गच्छे हर्षपुरीये श्रीमज्जयसिंह-सूरि-वरशिष्यः।
षष्ठाश्रमीव्रततपाः षड्विकृतित्याग-साहसिकः॥
... ...
... ...
तत्क्रमिको देवप्रभसूरिः किल पाण्डवायनचरित्रं
श्रीधर्मसारशास्त्रञ्च निर्ममे सुकविकुलतिलकः॥

गुरुपरम्परा, निवास स्थान आदि पाण्डव-चरित के
की प्रशस्ति में दिया है। यह अभयदेवसूरि की शिष्य-
रा में था। मलधारि राजशेखरसूरि के न्याय कन्दली
की एक हस्तलिखित पुस्तक ई० १४८० की है। इसलिये
वि की चरमावधि ई० १४०० के बाद नहीं हो सकती।
परम गुरु विजयसिंह सूरि अनहिलवाड़ के जयसिंह
राज (ई० ११४० ल० भ०) का गुरु था। इसलिये
समय ई० १२०० के बाद मान लेना अनुचित न होगा।
विरचित मृगावती-चरित नाम का दूसरा काव्य भी
गावती चरित में इसके विरचित अन्य ग्रन्थ भी थे ऐसा
मिलता है।

ाण्डव-चरितः—यद्यपि कवि ने इसको महाकाव्य कहा
महाकाव्य के अनुसार यह सर्गबन्ध भी है और
त में २-४ श्लोक अन्य छन्द के भी मिलते हैं तो भी यह
आदि से अन्त तक अनुष्टुप् छन्द ही में है। इसमें
ारत की कथा है परन्तु कृष्ण के साथ २ नेमिनाथ के
की भी कल्पना की गई है। मालूम होता है कि कवि ने
रचना करते समय महाभारत को अपने सामने रक्खा
इसमें महाभारत के १८ पर्वों के अनुसार १८ सर्ग रक्खे
। कविता सरल तथा रोचक है। इसकी कोई टीका
ध नहीं है।

वस्तुपाल (ई० १३ श शतक)

वस्तुपाल—विरचित महाकाव्य नरनारायणानन्द-प्र... धोलका के राजा वीरधवल का प्रधान मन्त्री-... विरचित अन्य ग्रन्थ आदीश्वरमनोरथमय स्तोत्र—... विषय वर्णन—विशेषता—छन्द।

इसका विरचित नर-नारायणानन्द महाका... में धोलका के राजा वीरधवल का यह प्रधा... इसका शासन गुजरात में आदर्श माना जाता था... लोक प्रिय था की इसके वर्णन में अनेक ग्र... शिलालेख खोदे गये थे। इसकी प्रशंसा में मे... प्रबन्ध चिन्तामणी, चतुर्विंशति प्रबन्ध, सोमेश्व... कौमुदी और अरिसिंह विरचित सुकृतसं... मिलते हैं। वस्तुपाल की मृत्यु के बाद उसके पु... प्रार्थना से बालचन्द्र ने वस्तुपाल का वर्णन ... वसन्त विलास नाम का महाकाव्य लिखा था।... नाम वसन्तपाल था ऐसा स्वयं वस्तुपाल ने ... कहा है[1]। इसकी प्रसिद्धी अनेक विषयों में थी... आमात्य, (२) उत्तम योद्धा (३) दानशौण्ड ... निर्मापक (४) कवि होते हुवे कवियों का आश्र... वीरधवल का शासनकाल ई० १२१६ से १२... जाता है। इसलिये इसका भी समय यही मान...

---

१ नरनारायणानन्द सर्ग १६ श्लोक ३८।

संस्कृत के विद्वानों का यह इतना आदर करता था और इतना दान देता था कि लोग इसको लघुभोजराज कहा करते थे। सोमेश्वर, हरिहर, अरिसिंह आदि अनेक विद्वान् इसके आश्रित थे। वसन्त-विलास महाकाव्य से ज्ञात होता है कि वस्तुपाल का प्रपितामह चण्डप, पट्टन के राजपरिषद् का सदस्य था। इसका पुत्र चण्डप्रसाद पट्टन का अमात्य था। इसके दो पुत्र सूर और सोम थे। सोम सिद्धराज के दर्बार में था। इसका पुत्र अश्वराज था जिसका विवाह कुमारदेवी से हुआ था। सोम दण्डपति के पद पर था। इसके चार पुत्रों में वस्तुपाल तृतीय था। वस्तुपाल की बुद्धिमत्ता देखकर भीम ने उसको अपनी सभा में रक्खा था। भीम को अशक्त देखकर वस्तुपाल वीरधवल के पास गया और वीरधवल ने इसको अपना अमात्य बनाया। इसकी जीवितावस्था में इसका पुत्र जैत्रसिंह वा जयन्तसिंह सूबेदार बनाया गया था। वस्तुपाल विरचित आदीश्वर-मनोरथमय-स्तोत्र और कुछ सूक्तियाँ मिलती हैं।

नरनारायणानन्द:—यह १६ सर्गों का महाकाव्य है। इसमें कृष्णार्जुन मैत्री, गिरनार पर्वत पर उनकी क्रीड़ा और सुभद्राहरण वर्णित है। यद्यपि यह कथा संक्षिप्त है तथापि ऋतु, की पुष्पवाटिका आदि का वर्णन कर कवि ने इसको विस्तृत कर दिया है। इस काव्य का एक श्लोक जल्हण की सूक्तिमुक्तावलि में एक और एक श्लोक अमरचन्द्र की कवि-

कल्पलता में मिलता है। नरेन्द्रप्रभ ने अपने
वस्तुपाल के कविता की तुलना महाभारतकार
से की है। परन्तु यह अत्युक्ति प्रतीत होती;
काव्य अच्छा है तथापि भारत की तुलना
हो सकती। इसमें प्रायः सभी प्रसिद्ध छन्द
सर्ग में चित्रकाव्य भी है।

बालचन्द्रसूरि (ई० १३ श शतक)

बालचन्द्रसूरि—विरचित महाकाव्य वसन्तविलास
समय—अमात्य वस्तुपाल का आश्रित—इसके
करुणावज्रायुध नाटक, २ आसद की विवेक मञ्जरी,
की टीकाएँ—वसन्त विलास का विषय विचार—छन्द

इसका विरचित वसन्त-विलास महाकाव्य
गच्छ के हरिभद्र सूरि का शिष्य था और गुरु
प्रान्त के मॉडरेक ग्राम के प्रसिद्ध ब्राह्मण धरादेव
स्त्री विद्युत् का पुत्र था। धरादेव यद्यपि
तथापि जैन श्रमणों को बहुत मानता था।
नाम मुञ्जाल था जो बाल्यावस्था से ही विरक्त
हरिभद्र सूरि ने इसको जैन दीक्षा देकर इसका
रक्खा और अपने बाद इसको अपना उत्तराधि
प्रबन्ध-चिन्तामणि से ज्ञात होता है कि बाल
वसन्त-विलास काव्य वस्तुपाल को इतना रोचक
कि उसने खुश होकर इसको आचार्य-पदाभि

दीनार दिये। इसका समय ई० १३ श शतक का द्वितीय
क्योंकि यह वस्तुपाल तथा उसके पुत्र जैत्रपाल का सम-
था। इसके विरचित अन्य ग्रन्थों में 'करुणावज्रायुध
५ अङ्कों का नाटक, और आसद की विवेक-मञ्जरी और
-कन्दली की टीकाएँ हैं। करुणावज्रायुध नाटक वस्तु-
े शत्रुञ्जय की यात्रा के समय रचा गया था और
ल की आज्ञानुसार आदिनाथ के मन्दिर में खेला
ा।

न्त-विलास:—यह १४ सर्गों का ऐतिहासिक महा-
है। इसमें धोलका के राजा वीरधवल के प्रधानामात्य
ल वा वसन्तपाल का जीवन चरित वर्णित है। यह
वस्तुपाल के पुत्र जैत्रसिंह वा जयन्तसिंह के मनो-
के लिये रचा गया था। इसमें प्रसाद तथा माधुर्यगुण
न हैं। इसके भिन्न २ सर्गों में अनेक छन्द हैं।

भानुदत्त (ई० १४ शतक का आरम्भ)

दत्त—विरचित 'गीतगौरीपति काव्य'—इसके विरचित अन्य
रसतरङ्गिणी, २ रसमञ्जरी, ३ कुमार-भार्गवीय, ४ अलङ्कार-
५ शृङ्गारदीपिका—जीवन चरित—समय—गीतगौरीपति काव्य
परामर्ष—शैली—गीत—गीतगोविन्द तथा इसके अनुकरण में

वस्तुपालाङ्गभुवो नवोक्तिप्रियस्य विद्वज्जनमज्जनस्य।
जैत्रसिंहस्य मनोविनोदकृते महाकाव्यमुदीर्यतेऽहो॥

वसन्त विलास १।७५।

विरचित ग्रन्थ – १ कल्याण का गीतगङ्गाधर, २ राम...
३ वंशमणि का गीतदिगम्बर, ४ प्रभाकर का गीतराघव...
गीतराघव, ६ राम कवि का रामगीतगोविन्द—इनके...

इसका विरचित गीतगौरीपति काव्य है।...
में प्रसिद्ध आलङ्कारिक, रस-तरङ्गिणी और रस...
यही भानुदत्त है। रसतरङ्गिणी और रसमञ्जरी...
पति काव्य के अनेक श्लोक मिलते हैं।...
और रसमञ्जरीकार भानुदत्त के पिता का...
गणपतिनाथ वा गणनाथ मिलता है और गीत...
के रचयिता के पिता का नाम भी गणपति वा...
है। इस लिये इन सबों का रचयिता यही भा...
कोई सन्देह नहीं। यह शैव था और इसने अ...
के आरम्भ में शिव की ही वन्दना की है।...
अन्तिम श्लोक में इसने अपना निवास स्थान...
है। इसलिये यह मैथिल था। इसका काव्य...
गोविन्द का अनुकरण रहने के कारण इसका...
के पूर्व नहीं हो सकता। रसमञ्जरी की हस्त...
पुत्र गोपाल की टीका ई० १४२८ की उपलब्ध...
के लगभग विरचित शार्ङ्गधर-पद्धति में भानु...
श्लोक मिलते हैं। इसलिये भानुदत्त ई० १३...

१ तातो यस्य गणेश्वरः कविकुलालङ्कारचूडामणिः।
देशो यस्य विदेहभूस्सुरसरित्कल्लोलकिर्मीरिता।

ो सकता। इस प्रकार इसका समय ई० १२०० और
के मध्य में कहीं अवश्य है। किन्तु इसका पिता गणे-
तो मैथिल था यदि वीरेश्वर का भ्राता गणेश्वर मन्त्री
तो इस भानुदत्त का समय ई० १३०० के बाद ही हो
ा है। क्योंकि वीरेश्वर पुत्र चण्डेश्वर विरचित 'विवाद
र' नाम के ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि चण्डेश्वर ने ई०
में अपनी सुवर्ण तुला प्रदान की थी। इसके विरचित
ग्रन्थ कुमार-भार्गवीय, अलङ्कार-तिलक और शृङ्गार-
का हैं।

ीत-गौरीपति काव्यः—यह १० सर्ग का गीति-काव्य
स काव्य में जयदेव के गीतगोविन्द का अनुकरण है।
महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षण मिलने से इसको भी महा-
कहना अनुचित न होगा। इसमें महादेव और पार्वती
ृङ्गार क्रीड़ा अनेक छन्द के श्लोकों में और भिन्न २
के गीतों में वर्णित है। कवि ने प्रत्येक गीत के पूर्व में
गोविन्द के समान इसमें भी अमुक ताल में और अमुक
में यह गाना गाना चाहिये ऐसा निर्देश किया है। यद्यपि
काव्य अच्छा है तथापि गीतगोविन्द की बराबरी में
ी गणना नहीं की जा सकती है। इन दोनों काव्यों के
करण में और भी अनेक गीति-काव्य लिखे गये हैं जिनमें
ाण का गीत-गङ्गाधर, राम का गीतगिरीश, वंशमणि
गीतदिगम्बर, प्रभाकर का गीतराघव (ई० १६१७),

हरिशङ्कर का गीतराघव और किसी राम
गीतगोविन्द, हैं। ये सब गीत काव्य उपरोक्त
नीचे दर्जे के हैं।

रघुवीरचरित महाकाव्य।

रघुवीरचरित महाकाव्य—इसके रचयिता के
इसका विषय—प्रौढ़ी—छन्द।

यह महाकाव्य हाल ही में केरल के
वलि में प्रकाशित हुवा है। इसमें रामचन्द्र
प्रारम्भ कर राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है।
में रचयिता का नाम कहीं भी उल्लिखित नहीं
की पुस्तक-सूची में (Aufrechts Catalo-
gorum) रघुवीर चरित नाम का एक ही
उसका रचयिता मल्लिनाथ कहा गया है और
शय को इस मल्लिनाथ पद से प्रसिद्ध टीकाकार
मल्लिनाथ ही अभिप्रेत है। यदि यह काव्य
नाथ विरचित ही हो तो उसका समय ई० १४
पूर्वार्द्ध है। मल्लिनाथ विरचित अन्य ग्रन्थों में
उल्लेख न मिलने से यह कहा जा सकता है
अन्तिम रचना है।

इस काव्य के १७ सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग में
यह काव्य प्रौढ़ और व्युत्पत्ति प्रदर्शक है।
मालूम होता है कि कवि ने इस काव्य के मिष से

रिचय देने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है। काव्य में सर्वत्र
ग्राद और माधुर्य्यगुण चमकता हुवा दीख पड़ता है।

वामनभट्ट बाण (ई० १४५०)

मनभट्ट बाण—विरचित नलाभ्युदय काव्य—समय—त्रिलिङ्ग देश
वेमभूपाल का सभापण्डित—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ १
भूषण भाण, २ पार्वती परिणय, ३ वेमभूपाल चरित, ४ रघुनाथ
५ शब्दरत्नाकर, ६ शब्दचन्द्रिका, ७ साहित्य चिन्तामणि—
दय का विषय परामर्ष—शैली—छन्द।

इनका विरचित नलाभ्युदय काव्य है। यह भी कादम्बरी-
बाणभट्ट के समान वत्सगोत्रीय था। बाणभट्ट के वाद
द्य काव्य लिखने वाले कवि बहुत कम होनें से जो
द्यकाव्य लिखने का साहस करता था वह उपहासास्पद
ा। इस उपहास को दूर करने के लिये इसने अपने
वेमभूपाल का चरित सरल गद्य में लिखा था। जो
मभूपाल चरित नाम से प्रसिद्ध है। यह चरित प्रसिद्ध
ट्ट के हर्ष चरित का अनुकरण है। वेमभूपाल त्रिलिङ्ग
तैलङ्ग देश) का राजा था। यह बड़ा भारी कवि भी
इसका चाचा अन्ववेम का शासनकाल ई० १५ श शतक
र्द्ध में (१४००-१४५०) था ऐसा प्राप्त ताम्र[1] पत्र से
त होता है। इसलिये वेमभूपाल का और उसके आश्रित
भट्टबाण का भी यही समय है। इस कवि के विरचित

---

[1] नलाभ्युदय काव्य—भूमिका, अनन्त शयन ग्रन्थमाला।

शृङ्गारभूषण भाण, पार्वती-परिणय, वेमभूपाल
चरित, शब्दरत्नाकर, शब्दचन्द्रिका और
मणि ग्रन्थ हैं।

नलाभ्युदयः—इसमें महाकाव्य के लक्षण
भी एक महाकाव्य है। इसके ८ सर्ग हैं। इसमें
चरित वर्णित है। यद्यपि इस काव्य में श्रीहर्ष
अनुकरण है तथापि इसकी भाषा सरल होते हुए
की भरमार है। इस काव्य में प्रसाद गुण
वर्णन में कालिदास की छटा भी दीख पड़ती है।
काव्य अत्यन्त रोचक और मनोहर है।
अनेक छन्दों का प्रयोग है।

चन्द्रचूड (ई० पञ्चदश शतक

चन्द्रचूड़—विरचित कार्तवीर्यविजय महाकाव्य
कार्तवीर्य विजय का विषय विचार—शैली—छन्द।

इसका विरचित कार्तवीर्य विजय नामक काव्य
इसके पिता का नाम पुरुषोत्तम भट्ट था। यह
में ई० १५ वीं शताब्दि में विद्यमान था।

कार्तवीर्य-विजयः—यह महाकाव्य १४
इसमें कार्तवीर्य की कथा वर्णित है। यह काव्य
कठिन नहीं है तो भी नैषध चरित के समान
वैदर्भी रीति का अनुसरण किया गया है। यह
है। इसमें प्रायः सर्व प्रसिद्ध २ छन्द हैं।

श्रीराजनाथ (ई० १५४०)

जनाथ—विरचित महाकाव्य अच्युत रायाभ्युदय—पितृ नाम—
वेजयानगर के अच्युत राय का सभापण्डित – अच्युत रायाभ्युदय
विचार—शैली – टीका।

का विरचित अच्युत रायाभ्युदय महाकाव्य है। इसके
ा नाम अरुणगिरिनाथ था। कवि ने अपने काव्य में
नगर के राजा नरसिंह के पुत्र कृष्ण राय के बाद के
निष्ठ भ्राता अच्युत राय का अभ्युदय वर्णन किया
च्युत राय का समय इतिहास में ई० १५३० से १५४२
या है। अच्युत राय के वर्णन करने से मालूम होता
कवि इसी का सभापण्डित था। इसलिये कवि का
समय माना जा सकता है। कवि ने अपने सम्बन्ध
में विशेष नहीं कहा है।

युत-रायाभ्युदय :—यह एक महाकाव्य है। इसमें
नगर के राजाओं का वर्णन होने से यह ऐतिहासिक
य कहा जा सकता है। इसके १२ सर्ग हैं। कवि ने
वियों के अनुकरण करने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है
समें उसको सफलता भी मिली है। इसमें प्रसाद और
गुण उत्कट हैं। प्रत्येक सर्ग की रचना भिन्न २ छन्दों
श्लोकों में शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार की योजना भी
की गई है। बीच २ में पाञ्चाली रीति का भी नैषध
के अनुसार अवलम्ब किया गया है। इसकी लघु-

पञ्चिका नाम की टीका श्रीकृष्ण सूरि की लि

गोविन्द मखी (ई० षोडश श

गोविन्द मखी – विरचित हरिवंशसारचरितमहाका
समय—कोण्डमनाइक का अमात्य—हरिवंशसार
विचार—शैली – छन्द ।

इसका विरचित हरिवंशसार चरित नाम
है । यह शाण्डिल्य गोत्र के श्रीधल्ली और
था। यह पहिले दक्षिण के अच्युत भूपाल
और बाद में अर्थात् वृद्धावस्था में वह को
अमात्य हुवा। इसके विरचित छोटे २ मन्
के तट पर कुम्भकोणम् के पास अभी तक वि
यह मध्यार्जुन क्षेत्र में रहता था तब इसने
की भेट हुई थी ऐसी दन्त कथा है। इसीसे इस
शतक का उत्तरार्द्ध और १७ शशतक का पूर्वार्द्ध

हरिवंशसार-चरित :—यह महाकाव्य
इसमें हरिवंश की कथा वर्णित है। काव्य स
तिहत प्रवाह का आदर्श है। इसकी
हरिवंश का विस्तार पूर्वक वर्णन इसमें नहीं है
प्रसाद गुणों की उपस्थिति के कारण यह काव्य
है । इसमें अनुष्टुप् आदि सभी प्रसिद्ध २ छन्द

रुद्रकवि (ई० १५९६)

रुद्रकवि – विरचित राष्ट्रौढ़वंश महाकाव्य–जीवन

रे के राजा नारायणशाह और उसके पुत्र प्रतापशाह का सभा-
-इसका विरचित गद्यग्रन्थ जहांगीरशाह चरित – राष्ट्रौढ़वंश
र का विषय—शैली – छन्द ।

ा कवि का विरचित ऐतिहासिक महाकाव्य राष्ट्रौढ़वंश
ा है। यह दक्षिणी ब्राह्मण था। इसके पितामह का
शव और पिता का नाम अनन्त था। यह राष्ट्रौढ़वंश
रगिरि के राजा नारायण शाह और उसके पुत्र प्रताप-
ा आश्रित था। कवि ने ग्रन्थ के अन्त[1] में इस काव्य
चनाकाल ई० १८९६ दिया है। इसने किसी लक्ष्मण-
ा के मुख से इस कथा को सुनकर इस काव्य की रचना
। इसका विरचित जहांगीर शाह चरित नाम का गद्य
है जिसको नारायण शाह के पुत्र प्रतापशाह की आज्ञा
ा ने रचा था।

ष्ट्रौढ़वंश महाकाव्य:—यह ऐतिहासिक महाकाव्य २०
का है। इसमें इस वंश के मूल पुरुष राष्ट्रौढ़ से जो कि
का राजा था, मयूरगिरि के नारायण शाह तक इस
राजाओं का वर्णन है। इस वंश के राजा मयूरगिरि के
कहलाते थे। इस काव्य से उस समय के इतिहास

---

[1] शाके भोगिशशीवुभू (१५१८) परिमिते संवत्सरे दुर्मुखे ।
मासे चाश्वयुजे सितप्रतिपदि स्थाने मयूराचले ॥
श्रीमल्लक्ष्मणपण्डितोदितकथामाकर्ण्य रुद्रः कविः ।
श्रीनारायणशाहकीर्तिरसिकं काव्यं व्यधान्निर्मलम् ॥

पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। इस ऐति
काव्य की दृष्टि से मध्यम श्रेणी में रखना
इसमें यद्यपि सर्वत्र माधुर्य नहीं है तो भी
विद्यमान है। इसके प्रत्येक सर्ग में अनेक छ

रामभद्र दीक्षित (ई० १७ श श

रामभद्र दीक्षित—विरचित महाकाव्य प
दूसरा नाम चोक्कनाथ—जीवनी—समय—इसके विर
परिणय नाटक, २ शृङ्गारतिलक भाण आदि—
विषय—प्रौढ़ी—छन्द—टीका।

इसका विरचित पतञ्जलिचरित नाम
इसका दूसरा नाम चोक्कनाथ था। इसके पि
रामदीक्षित था। यह नीलकण्ठ मखीन्द्र,
और बालकृष्ण का समकालिक था ऐसा
से मालूम होता है। किन्तु विद्यावाचस्
शास्त्री ने नीलकण्ठ मखीन्द्र विरचित गङ्गा
भूमिका में चोक्कनाथ को रामभद्र मखीन्द्र का
जो कि नीलकण्ठ मखीन्द्र का समकालिक था।
दीक्षित का समय सप्तदश शतक का मध्य
चित न होगा। इसके विरचित जानकी परि
तिलक भाण आदि अनेक हैं।

पतञ्जलि-चरित:—यह महाकाव्य ८ सर्ग
महाभाष्यकार पतञ्जलि का जीवनचरित लि

किया है। यह चरित कथा सरित्सागरादि प्राचीन के आधार पर लिखा हुवा प्रतीत होता है। इसलिये ने ऐतिहासिक महत्व नहीं है। पतञ्जलि के अनन्तर के करणों का भी ८ म सर्ग में वर्णन है। यह काव्य मधुर प्रासादिक है। कवि की कवित्वशक्ति और पदलालित्य नीय है। प्रत्येक सर्ग में महा काव्य के नियमानुसार छन्द हैं और पर्वत, नगर आदि का वर्णन भी इसमें ता है। कविता प्रौढ़ है और अलङ्कारों से भूषित है। ेश्वर विरचित इस काव्य की टीका भी है।

हरदत्त सूरि (ई० १६५० ल० भ०)

हरदत्त सूरि—विरचित महाकाव्य राघव नैषधीय—जीवनी—समय- रण—राघव नैषधीय का विषय-परामर्ष—शैली—छन्द—टीका।

इसका विरचित राघव नैषधीय २ सर्गों का महाकाव्य काव्य के अन्त में कवि ने अपने सम्बन्ध में २ श्लोक दिये उनसे ज्ञात होता है कि गर्ग ऋषी के वंश में तिलकभूत शंकर नाम का एक ज्योतिषी, कवि, वेदान्ती तथा धर्मा- हुवा था। वही इसका पिता था। कवि स्वयं महाभाष्य भारी वेत्ता था। छन्दः शास्त्र तथा साहित्य में इसने बड़ी णता प्राप्त की थी। इसके निवास और समय के सम्बन्ध छ भी ज्ञात नहीं होता। इसने अपने काव्य में दीक्षित से भट्टोजी दीक्षित का निर्देश किया है। इस काव्य की हस्तलिखित पुस्तक काश्मीर की ई० १८१८ की लिखी

प्राप्त भई है। इससे भट्टोजी का दीक्षित श...
होता है। भट्टोजी दीक्षित का समय स...
आरम्भ होने के कारण कवि का समय ...
और ई० १८०० के पूर्व मान लेना अनुचित न...

राघव-नैषधीयः—यह एक दो सर्गों ...
काव्य है। इसमें श्लेष रूप से रामचरित तथा न...
वर्णन है। कवि ने इसमें अपनी व्याकरण औ...
विद्वत्ता अच्छी तरह प्रगट की है। श्लिष्ट...
कारण श्लोकों का भाव पाठकों को सहज में न...
इसलिये कवि ने ही इसकी विस्तृत तथा ...
भी लिखी है। इसमें मालिनी, वंशस्थ, अनुष्टु...
आदि छन्द हैं। प्रथम सर्ग में १२६ श्लोक हैं ...
दो श्लोकों की टीका प्राप्त हुई है परन्तु श्लो...
चलता है। द्वितीय सर्ग में केवल २२ श्लोक हैं...
ने अपना छन्दः कौशल प्रगट किया है।

देवविमल-गणि (ई० सप्तदश श...

देवविमलगणि—विरचित हीर—सौभाग्यमहाकाव्य—...
समय—हीर सौभाग्य का विषय विचार—शैली—छन्द...

इस श्वेताम्बर जैन कवि का विरचित हीर...
का महाकाव्य है। इसके पिता का नाम शिव...
माता का नाम सौभाग्यदेवी था। यह सीहवि...
शिष्य था। इस काव्य के नायक हीर-विजय...

९५ में भाद्रपद शुक्ल ११ को हुई ऐसा वर्णन मिलता सलिये इस काव्य का समय सप्तदश शतक का प्रारम्भ ा उचित है। यह सुराष्ट्र का रहने वाला था।

ीर सौभाग्यः—यह महाकाव्य १७ सर्ग का है। इस के प्रति सर्ग की श्लोक संख्या नैषध की तरह बहुत क है। नैषध काव्य के ही तरह प्रत्येक सर्ग के अन्तिम ; में कवि ने अपने पिता, माता व गुरू का उल्लेख किया समें हीरविजयसूरि का चरित वर्णित है। इसमें जैन ा उपदेश है। कवि ने वर्णन करने में श्रीहर्ष का अनु- किया है। इसमें वैदर्भी तथा स्थान २ पर गौड़ी रीति योग किया गया है। प्रायः सभी प्रसिद्ध छन्द इसमें हैं। इस काव्य पर ग्रन्थकार ने ही टीका भी लिखी है। ीका में प्रायः प्राचीन जैन ग्रन्थ ही उद्धृत किये गये हैं।

वेंकटेश्वर (ई० सप्तदश शतक)

ङ्कटेश्वर—विरचित रामचन्द्रोदय महाकाव्य—जीवन चरित— —रामचन्द्रोदय का विषय विचार—शैली—छन्द।

सका विरचित रामचन्द्रोदय नाम का महाकाव्य है। पिता का नाम श्रीनिवास था। यह आत्रेय गोत्री था। ई० १५९५ में काञ्ची के पास किसी स्थान पर ा जन्म हुवा था। यह ५० वर्ष तक जीवित था। इसकी का ठीक २ वर्ष ज्ञात नहीं है। इसने रामचन्द्रोदय महाकाव्य चना ४० वर्ष की अवस्था में काशी में की थी (ई० १६३५)।

रामचन्द्रोदयः—यह महाकाव्य ३० सर्गों ...
यण की कथा वर्णित है। इसके विषय में कवि ने ...
"आसीतेशाभिषेकादुदित शुभकथं त्रिंशता ...
तस्मिन्रामाभिषेकाऽभ्युदयशुभकथस्त्रिंश ...

यह काव्य अच्छा है। छन्दों की योजना ...
पूर्णता से की है।

नीलकण्ठ दीक्षित (ई० सप्तदश ...

नीलकंठ दीक्षित—विरचित महाकाव्य १ शिव ... वतरण—जीवनी—समय—इसके विरचित अनेक ग्रं... काव्य, २ कलिविडम्बन, ३ सभारंजन, ४ अन्यापदेश ... विलास, ६ वैराग्य शतक, ७ आनन्द सागरस्तव ८ नील... के तिरुमल्लनायक महाराज का अमात्य—शिव लीला... का विषयविचार—शैली—छन्द।

इसके विरचित दो महाकाव्य हैं—शिव ... गङ्गावतरण। यह सुप्रसिद्ध अप्पय दीक्षित के ... अच्चा दीक्षित का पौत्र था। इसके पिता का ... ध्वरि और माता का भूमिदेवी था। यह नील... अपने पिता का द्वितीय पुत्र था। इसके ४ ... विद्वान् और कवि थे। उनमें से एक कुश... का कर्त्ता अतिराज-यज्वा नाम से ज्ञात है। नील... नीलकण्ठ विजय चम्पू में अपना समय दिया है

त्रिंशदुपस्कृत-सप्तशताधिक-चतुस्सहस्रेषु।
वर्षेषु गतेषु (४१३८) ग्रथितः किल नीलकण्ठविजयोऽयम्॥"

इसका समय ई० १६३७ है। यह श्रीकण्ठमत का आचार्य था
इसको 'श्रीकण्ठमत सर्वस्ववेदी' कहते थे। इसके
रचित—लघुकाव्य, कलिविडम्बन, सभा-रंजन, अन्यापदेश-
शान्त-विलास, वैराग्य-शतक, आनन्द-सागरस्तव,
नीलकण्ठ-चम्पू आदि ग्रन्थ हैं। नीलकण्ठ मखीन्द्र मधुरा
के तिरुमल्ल नायक महाराज के सभा में का पण्डित-
प्रधान और अमात्य-प्रवर था। इसका दूसरा नाम अय्या-
भी था। यह वार्तिका-भरण प्रणेता वेङ्कटेश्वर-मखी
का शिष्य था।

शिव-लीलार्णवः—यह महाकाव्य २२ सर्ग का है। इसमें
शिव की कथा वर्णित है। प्रायः पुराणों की सम्पूर्ण शिव
कथाओं का इसमें समावेश किया गया है। यह काव्य उत्तम
श्रेणी का है।

गङ्गावतरणः—यह भी महाकाव्य है। किन्तु इसके केवल
८ सर्ग हैं। इसमें भगीरथ जी के तप से गङ्गा जी का पृथ्वी
पर आने का वर्णन है। इसमें विशेष करके अनुष्टुप् तथा
उपजाति छन्द हैं और कहीं २ स्रग्धरा आदि भी हैं। नील-
कण्ठ मखी के काव्यों के सम्बन्ध में कहा गया है कि—'मञ्जुल-
सन्निवेशा विचित्रोल्लेखा, रसनिर्भरा, विशङ्कट-प्रवाहा
साहित्यसरणिः।' यह बात उपरोक्त दोनों काव्यों में है।

प्रकरण ४

खण्ड काव्य

महाकाव्यों के लक्षणों में से कुछ लक्षण
मिलते हैं उसे खण्ड-काव्य कहते हैं। इस
महाकाव्य का एक अङ्ग कहना अनुचित
ऐसे काव्यों की उत्पत्ति महाकाव्यों के
लेनी चाहिये।

उपलब्ध खण्ड काव्यों में सब से प्राचीन
के मेघदूत और ऋतुसंहार हैं[1] जिनका व
महाकाव्यों के साथ किया जा चुका है।

प्राचीन काल से प्राकृत-खण्ड-काव्यों की
चली आई है। पाली भाषा की बौद्धों
महाराष्ट्रीय प्राकृत में विरचित हाल की 'सत्त
दृढ़ होती है। हाल की 'सत्तसई' से

---

१ इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य कई काव्य
माने जाते हैं। किन्तु उस सम्बन्ध में कोई विशिष्ट

में खण्ड-काव्यों की रचना संस्कृत के खण्ड-काव्यों के पर न होकर, स्वतन्त्र ढङ्ग से ही होती थी। अपभ्रंश अन्य प्राकृत भाषाओं में भी ऐसे काव्य हैं।

ल की 'सत्तसई' से प्रारम्भ कर कुछ खण्ड काव्यों का तिहास दिया गया है। कालिदास के खण्ड काव्यों का हाकाव्य प्रकरण में ही दिया गया है।

हाल (ई० २०० से ४५०)

—विरचित प्राकृत काव्य सत्तसई -- इसके विषय में दन्त कथाएँ – श का १७ वां राजा—समय निर्धारण—निवास स्थान—सत्तसई विचार—इसके आधार पर विरचित संस्कृत आर्या सप्तशती की सत्तसई – इसके गुण—टीकाएँ।

का विरचित महाराष्ट्री प्राकृत काव्य 'सत्तसई' शती) नाम का है। इसके पिता का नाम द्वीपकर्णी था। विषय में अनेक दन्त-कथाएँ हैं। परम्परा से इसका नाम शातवाहन वा शालिवाहन[1] वा शाल था ऐसा जाता है। यह शालिवाहन ऐतिहासिकों के मत से वंश का १७ वां राजा माना जाता है। पार्गिटर के राजाओं के शासनकाल के अनुसार इस हाल राजा का

---

[1] मकोष – 'शालो हाले मत्स्यभेदे' और 'हालः सार्थवाहन-पार्थिवे' तवाहननृपे'।

नाममाला— "हालस्यात्सातवाहनः", "अभिधानचिन्तामणि – नः सात्यवाहनोऽपि"।

समय लगभग शालिवाहन शक का प्रारम्भ
है। ऐतिहासिक शालिवाहन शक का प्रवर्तक
दूसरे कटफिसी को मानते हैं। सत्तसई के
के आधार पर कीथ महाशय इस ग्रन्थ को
पूर्व का नहीं मानते हैं। उनके मत से इस
काल ई० २०० से ४५० के मध्य में है। प
कामसूत्र[1] में "कर्तर्या कुन्तलः शातकर्णिः शा
मलयवतीं (जघान)" ऐसा निर्देश मिलने
"सातवाहन नरेन्द्रनिर्मिता........काव्योत्त
सानमगात्" और "रायेण विरयिआ
हालेण सत्तसई असमत्तं सत्तममज्झा सं
उल्लेख मिलने से हाल का समय प्रसिद्ध
ही मान लेना आवश्यक होता है। कीथ मह
निराधार है। प्राचीन परम्परा के अनुसार इस
निवास स्थान दक्षिण में गोदावरी के तटस्थ
पत्तन (पैठन) नाम का नगर माना जाता है

सत्तसई:—यह महाराष्ट्री प्राकृत में वि
है। इसमें ७०० आर्याएँ हैं। ये सब आर्याएँ
लम्भ शृङ्गार का वर्णन करती हैं जो कि उस
देश में मूर्तिमान था। इसमें कवि ने अपनी

---

१ कामसूत्र १२ अध्याय का उपान्त।

२ राजशेखर सूरि प्रणीत प्रबन्धकोष—सातवाहन

े प्रगट की है। यह काव्य इतना श्रेष्ठ हैं कि ई० १२००
वर्द्धन ने और ई० १६६२ के बिहारीलाल ने इसका अनु-
कर संस्कृत में आर्या सप्तशती और हिन्दी में सत्तसई
चना की है। इसकी हस्तलिखित प्रतियों में ७०० में से
आर्याएँ समान हैं और बाकी की आर्याएँ भिन्न पुस्तकों
न्न २ हैं। इससे यह मालूम होता है कि इसमें बहुत
हुवा है। इस पुस्तक के दूसरे नाम गाथा-सप्तशती या
-कोष भी हैं। यह काव्य बहुत मनोहर है। इस पर ७
एँ लिखी गई हैं जिनमें गङ्गाधर भट्ट विरचित भावलेश-
शिका नाम की टीका अच्छी है।

कवि घटखर्पर (ई० ५०० के ल० भ०)

टखर्पर—विरचित घटखर्पर काव्य—समय—इसका विरचित अन्य नीतिसार—घटखर्पर काव्य का विषय विचार—टीकाएँ।

इसका नाम घटखर्पर इसलिये पड़ा था कि इसने अपने
ग्र के अन्त के श्लोक में यह प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई
ी यमक और अनुप्रास में बराबरी करेगा उसके यहां
कवि फूटे घड़े से पानी भरेगा। इस कवि का विरचित
ा सा घटखर्पर नाम का काव्य है। विक्रम के नवरत्न के
क[1] से जाना जाता है कि यह महाकवि था। ये सब प्रायः
र्थ शतक और षष्ठ शतक के मध्यवर्ती थे। इसलिये इसका

---

[1] धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकुवेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेःसभायांरत्नानिवैवररुचिर्नव विक्रमस्य॥

समय ल० भ० पञ्चम शतक का अन्त मान के
नहीं है। इसके विषय में इससे अधिक कुछ
नीतिसार नाम का २१ श्लोक का १ काव्य
बनाया माना जाता है।

घटखर्पर-काव्य:—इस काव्य के कुल
इसमें मेघदूत के विपरीत पत्नी अपने पति
सन्देश भेजती है। श्लोकों का विचार करने
कालिदास के श्लोकों की छाया दिखाता है।
अनुप्रास और यमक है। कोई इस काव्य
विरचित मानते हैं। इस काव्य की ८ टीकाएं हैं
नवगुप्तपादाचार्य विरचित 'कुलकवृत्ति' नाम

भर्तृमेण्ठ (ई० षष्ठ शतक)

भर्तृमेण्ठ — विरचित काव्य हयग्रीव वध — समय-
तरङ्गिणी में की कथा।

इसका विरचित हयग्रीववध नाम का काव्य
उल्लेख कभी २ मेण्ठ शब्द से भी मिलता है। इसी
पक' भी कहते थे। काश्मीर का राजा मातृगुप्त
चित हयग्रीव वध को देखकर इतना प्रसन्न हुआ
लावण्य रस जमीन पर चू न पड़े इसलिये
नीचे रखने के लिये उसने १ सोने की थाली
की ऐसी कथा कल्हण के राजतरङ्गिणी'[1] में मिलती

---

१ राजतरङ्गिणी ३ तरङ्ग श्लो० २६०-२६२।

वित अनेक श्लोक क्षेमेन्द्र के सुवृत्त-तिलक, मम्मट के
-प्रकाश और भोजराज के सरस्वती-कण्ठाभरण में
ते हैं। मातृगुप्त प्रवरसेन का पूर्ववर्ती होने के कारण
ा समय षष्ठ शतक का उत्तरार्द्ध माना गया है।

मयूर (ई० ६२५)

यूर — विरचित काव्य मयूर शतक — बाण कवि का सम्बन्धी —
न का सभापण्डित — मयूर शतक के सम्बन्ध में दन्त कथा — मयूर
वा सूर्य शतक का विषय विचार — रीति — अलङ्कार — टीकाएँ।

सका विरचित 'मयूर शतक' काव्य है। यह कवि बाण-
ा समकालिक था और ये दोनों हर्षवर्द्धन के सभापण्डित
समें कोई सन्देह नहीं है। क्योंकि पद्मगुप्त ने अपने
ाहसाङ्क चरित में इन दोनों की स्पर्धा का वर्णन किया
परम्परा से ऐसा ज्ञात होता है कि मयूर बाणभट्ट का
ा सम्बन्धी था। कोई मयूर को बाणभट्ट का श्वसुर कहते
ौर कोई श्यालक मानते हैं। इस मयूर शतक के सम्बन्ध
ी दन्त-कथा है कि मयूर कवि ने एक बार अपनी
ी कन्या का पूर्ण रूप से श्रृङ्गार वर्णन किया जिससे
हो कर उसकी कन्या ने उसको शाप दिया जिसके कारण
े सर्वाङ्ग में कुष्ठ फूट गया। इस कुष्ठ को दूर करने के
सूर्य नारायण की आराधना के लिये सूर्य शतक वा
शतक की रचना की जिससे उसका कुष्ठ दूर हो गया।
दन्त कथा का समर्थक मम्मट भट्ट के काव्य प्रकाश का

"आदित्यादेर्मयूरादीनामिवानर्थनिवारणम्" यह

मयूर-शतक वा सूर्य-शतक :—यह एक खण्ड
वास्तव में इसको स्तोत्र-काव्य ही कहना चाहि
काव्य के विशेष गुण मिलने से इसकी गणना
में की गई है। इसका दूसरा नाम सूर्य-शतक है। ऐ
है कि इस शतक को रच कर मयूर ने अपना
किया था तथा उसका इतना प्रताप जान कर
इतनी ईर्ष्या हुई की उसने अपने हाथ से अपने को
चण्डी-शतक की रचना कर अपने व्रण को थोड़
से अच्छा कर लिया था। मयूर शतक में गौड़ी
यमकादि विशेष हैं। मयूर-शतक इतना लोक प्रिय
पर १० टीकाएँ लिखी गई हैं जिनमें वल्लभदेव
वादिनी टीका सर्वश्रेष्ठ है। ई० १८८६ की काव्
मयूर शतक त्रिभुवन पाल को टीका के साथ छापा

भर्तृहरि (ई० ६५०)

भर्तृहरि—विरचित नीति, शृङ्गार और वैराग्यशतक-
चरित्र के सम्बन्ध में अनेक परम्पराएँ—इसके विरचित
महाभाष्य की टीका, २ वाक्य पदीय—समय—शृङ्गार, नीति
शतक का विषय विचार—शैली—छन्द—टीकाएँ।

इसके विरचित नीति, शृङ्गार और वैराग्य
इसके जीवन-चरित्र के सम्बन्ध में अनेक परम्परा
विक्रमादित्य का भ्राता था और विक्रमादित्य के

था। उस समय एक ऐसी घटना हुई जिससे इसको वैराग्य[1] गया। चीन यात्री इत्सिङ्ग का कथन है कि उसके भारत आने के ५० वर्ष पूर्व कोई वैयाकरण भर्तृहरि नाम का मर था जो कि बौद्धमतानुसार ७ बार गृहस्थाश्रम छोड़ कर प्रस्थ तथा वानप्रस्थ से गृहस्थाश्रम में आया गया था। सिङ्ग वर्णित भर्तृहरि ही वाक्यपदीयकार था इसमें सन्देह नहीं है। उसके कथनानुसार इसकी विरचित भाष्य की टीका भी थी। भर्तृहरि विरचित महाभाष्य की के विषय में गणरत्न-महोदधि में भी निर्देश[2] है। परन्तु वाक्यपदीयकार शतक-त्रय का रचयिता है इसके सम्बन्ध भी तक कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। किन्तु क-त्रय भी बहुत प्राचीन होने से तथा वैराग्य-शतक और त-शतक में किये हुवे परब्रह्म के विवरण से और वाक्य-ीय में किये हुवे शब्द ब्रह्म के विवरण से यह बहुत सम्भव कि इनका भी रचयिता वाक्य-पदीयकार ही हो। इत्सिग् के -ानुसार इसकी मृत्यु ई० ६५१ में हुई थी। शिव और विष्णु अभेद भाव रखने वाला यह शैव था।

---

१ यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता।
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽपि चान्याम्॥
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या।
धिग्ताञ्च तञ्च मदनञ्च इमाञ्च माञ्च॥

२ भर्तृहरिर्महाभाष्यत्रिपाद्या व्याख्याता।

शृङ्गार-शतक :—इसमें १०० श्लोक भिन्न २ छ
इसमें पहिले शृङ्गार रस को पूर्णतया पुष्ट कर
अभिरुचि उत्पन्न कर धीरे २ उस की अस्थिरता
शान्ति रस की तुलना में उसकी तुच्छता प्रगट की
श्लोक अपूर्व और प्रतिभाशाली है।

नीति-शतक :—इसमें भी १०० श्लोक भिन्न
हैं। इस शतक के कई श्लोक कालिदास, शूद्रक,
के ग्रन्थों में मिलते हैं। इसलिये इस शतक के
प्रक्षिप्त माने गये हैं। तथापि इस शतक
श्लोक संस्कृत सुभाषित का मुकुटमणि है। नी
अवलम्बन करने वालों के लिये इस शतक के
अपनी हृद्भित्ति पर खोद लेने योग्य हैं।

वैराग्य-शतक :—इसके भी भिन्न २ छन्दों में
हैं। इसमें कवि ने आयु की क्षण-भङ्गुरता को
वैराग्य का महत्व और उसकी आवश्यकता प्रगट
ये तीनों शतक सुभाषित ग्रन्थों के उज्वल मणि
शतकों से संस्कृत साहित्य में आबाल वृद्धों के
श्लोक वास करते हैं। इनमें १०१ श्लोक शार्दूल
छन्द में हैं। अन्य श्लोक शिखरिणी, अनुष्टुप् वसन्त
स्रग्धरा आदि अनेक छन्दों में विरचित हैं।
प्रसाद तथा माधुर्य गुण कालिदास की कविता
अंश में कम नहीं है। इन शतकों पर ५ टीकाएँ प्राचीन

अमरुक या अमरु (ई० ६५०-७५०)

अमरु - विरचित काव्य अमरु शतक—इसके सम्बन्ध में परम्परा—य—अमरुशतक का विषय विचार – प्रौढ़ी – छन्द – टीकाएँ -विशेषता।

इसका विरचित शृङ्गारिक खण्ड-काव्य अमरु-शतक है। र्तृहरि के सदृश इसका भी जीवनवृत्त निश्चित रूप से ज्ञात हीं है। इसके ग्रन्थ से केवल यही ज्ञान होता है कि यह एक शृङ्गारिक कवि था। परम्परा से ऐसा ज्ञात है कि शङ्कराचार्य ने शृङ्गार रस का अनुभव करने के लिये अमरु मक मृत राजा के शरीर में अपनी आत्मा को प्रवेश कराकर स काव्य की रचना की थी। इस परम्परा की सत्यता र्शक कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस शतक के श्लोक वामन (ई० ८००) के काव्यालङ्कार-सूत्र-वृत्ति में तथा आनन्द-वर्द्धनाचार्य (ई० ८५०) के ध्वन्या-लोक में उद्धृत हैं। इस लिये इस शतक की प्रसिद्धि ई० ७५० के पूर्व ही हुई थी ऐसा मानना आवश्यक है। कोई विद्वान् इस शतक को भर्तृहरि के ही मानकर इसको कालिदास का समकालिक मानते हैं परन्तु इसमें कोई प्रमाण नहीं मिलता है। तथापि विद्वानों ने अनुमान से इसका समय ई० ६५०-७५० के मध्य में माना है।

अमरु-शतक :—इस खण्ड-काव्य का दूसरा नाम शृङ्गार-शतक है। यद्यपि इसका नाम शतक है तथापि हस्तलिखित पुस्तकों में इसकी श्लोक संख्या ९० से ११५ तक भिन्न २

मिलती है। हस्तलिखित प्रतियों की तुलना से यह
इनमें केवल ५१ श्लोक समान हैं और बाकी के श्लो
हैं। इन ५१ श्लोकों का भी सब पुस्तकों में एक
है। इस शतक के बहुत से श्लोक सुभाषित ग्रन्थों
रचयिता के नामों से दिये मिलते हैं। कई विद्वानों
कि इस शतक के सर्व श्लोक शार्दूल-विक्रीड़ित छन्द
गये थे। इसलिये शार्दूल-विक्रीड़ित छन्द के अ
शतक के सर्व श्लोक इस शतक के नहीं हैं। इस म
सार केवल ६१ श्लोक ही इस शतक के कहे जा
परन्तु इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा
है। इसका सब से प्राचीन टीकाकार अर्जुन वर्मा (
है। इसने जितने श्लोकों पर टीका लिखी है वे
अमरु शतक के हैं ऐसा मान लेना ही उचित सा
है। दूसरे टीकाकार रविचन्द्र ने इन श्लोकों को
विरचित मान कर इन श्रृङ्गार रस-प्रधान श्लोकों
परक दूसरा अर्थ निकालने की चेष्टा की है। इन
व्यतिरिक्त वेमराज वा वेमभूपाल ई० (१५ श शतक
चित श्रृङ्गार-दीपिका और सूर्यदास विरचित श्रृङ्गार
टीकाएँ भी इस काव्य पर हैं। यह माधुर्य तथा प्रसाद
युक्त, श्रृङ्गार-रस-प्रधान, उत्तम काव्य होने के कारण
अलङ्कारिकों ने इसके श्लोकों को अपने ग्रन्थों में
लिये उद्धृत किया है।

दामोदर गुप्त (७७६-८१३)

दामोदर गुप्त — विरचित काव्य कुट्टनी मत वा शम्भली मत — समय — मीर के राजा जयापीड़ का मन्त्री — काव्य-रचना का उद्देश — कुट्टनी का विषय विचार — छन्द — इसकी आदरणीयता।

इसका विरचित 'कुट्टनी मत' नाम का काव्य है। इसका पूरा नाम 'शम्भली मत' भी है। इस दामोदर गुप्त के विषय कल्हण के राजतरङ्गिणी में एक[1] ही श्लोक है। उससे ज्ञात ता है कि यह काश्मीर के राजा जयापीड़ का मन्त्री था और ने यह काव्य रचा था। राजतरङ्गिणी से यह भी ज्ञात ता है कि जयापीड़ के पूर्ववर्ती २-३ राजा बहुत विषयासक्त और जयापीड़ भी—यद्यपि उसकी सभा में अच्छे २ पण्डित र विद्वान् थे और उनकी सङ्गति से यद्यपि वह पूर्व वयस् विषय से अलिप्त था तो भी—उत्तर वयस् में विषया-क्त हो गया। इसके उत्तराधिकारी राजा ललितादित्य का वैसा ही वर्णन मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि उस मय काश्मीर में विषय लोलुपता बहुत बढ़ी चढ़ी थी। ससे राजाओं को मुक्त करने के लिये दामोदर गुप्त ने मन्त्री पद पर रह कर उपदेश के लिये इस ग्रन्थ की रचना की सा की ग्रन्थ के अन्त में कवि ने कहा है—

काव्यमिदं यः शृणुते सम्यक्काव्यार्थ-पालनेनाऽसौ।
नो वञ्च्यते कदाचिद्विटवेश्याधूर्त कुट्टनीभिः इति ॥

[1] राजतरङ्गिणी ४।४९६।

जयापीड़ का समय ई० ७७९ से ८१३ है। इसलि दर गुप्त का भी यही समय मान लेना ठीक है। ग्रन्थ में अपने जीवन-चरित के सम्बन्ध में कुछ लिखा है। वल्लभदेव ने अपनी सुभाषितावली में गुप्त के नाम से उद्धृत किये हुवे श्लोकों में ४ ग्रन्थ में नहीं मिलते हैं। इससे अनुमान होता है कि के अतिरिक्त इसके बनाये अन्य ग्रन्थ भी थे जो अनुपलब्ध हैं।

कुट्टनी-मत:—इस काव्य में १०५९ आर्याएं हैं। कोकशास्त्र का विषय है। संस्कृत साहित्य में इस बहुत कम ग्रन्थ हैं। अथवा यह भी कहा जा सकता इस प्रकार के बहुत से ग्रन्थों में से इस समय बहुत गये हैं। इसमें इस मत के प्राचीन आचार्यों के बहुत दिये हैं उनमें वात्स्यायन, दत्तकाचार्य, विशाखिल, मातङ्ग, आदि हैं। मम्मट भट्ट ने अपने काव्य प्रकाश काव्य प्रकाश के अनेक टीकाकारों ने भी अपने ग्रन्थों काव्य की आर्याएँ उद्धृत की हैं। इससे इसकी आदर सिद्ध होती है।

शंकुक (ई० ८५० के लगभग)

शंकुक—विरचित काव्य भुवनाभ्युदय—समय निर्धारण—शंकु के अन्य विद्वान्—भुवनाभ्युदय का विषय विचार।

इसका विरचित 'भुवनाभ्युदय' काव्य है। कार

जा जयापीड़ के बाद अजितापीड़ गद्दी पर बैठा था। इस
जितापीड़ के पाँच मातुलों ने इसको गद्दी पर बैठाया था।
मों से मम्म और उत्पल में ऐसा युद्ध हुवा था कि वितस्ता
झेलम) नदी खून से लाल हो गई थी। इसी युद्ध के उप-
क्ष्य में काश्मीर के कवि शंकुक ने जो कि उस समय उप-
यत था, भुवनाभ्युदय काव्य की रचना की। इसका समय
यापीड़ के बाद और अवन्ति वर्मा के पूर्व है, अर्थात् ई० ८१३
८५० के मध्य का यह कवि हो सकता है। यह शंकुक वही
जिसका उल्लेख काव्य-प्रकाशकार मम्मट-भट्ट ने रस-
रूपण में किया है। इसका विरचित अलङ्कार शास्त्र का कोई
थ अवश्य था जो अद्यापि उपलब्ध नहीं है। विक्रमादित्य
नवरत्नों में भी शंकु वा शंकुक का नाम आया है। बाण भट्ट
समकालिक मयूर का पुत्र भी शंकुक नाम से उल्लिखित
। किन्तु ये दोनों भुवनाभ्युदयकार से प्राचीन हो सकते हैं।
भाषित ग्रन्थों में कुछ श्लोक शंकु वा शंकुक के नाम से उद्धृत
लते हैं वे श्लोक इन तीनों में से किसी के हो सकते हैं।

भुवनाभ्युदय :—यह एक काव्य है। इसमें उत्पल और
म्म का जो कि राजा अजितापीड़ (काश्मीर) के मातुल थे,
यंकर युद्ध वर्णित है। कल्हण ने अपनी राजतरङ्गिणी में
सके विषय में कहा है—

अथमम्मोत्पलकयो रुदभूद्दारुणोरणः
रुद्ध-प्रवाहा यत्रासीद्वितस्ता सुभटैर्हतैः ॥

कविर्बुधमनःसिन्धुशशाङ्कः शंकुकाभिधः।
यमुद्दिश्याऽकरोत्काव्यं भुवनाभ्युदयाभिधम्।

क्षेमेन्द्र तथा विल्हण के खण्ड काव्यों का वर्णन महाकाव्य में किया गया है।

माणिक्य-सूरि (ई० ११ श शतक)

माणिक्य सूरि—विरचित काव्य यशोधर चरित-इसे वादिराज विरचित काव्य—समय।

इसका विरचित 'यशोधर चरित' नाम का काव्य श्वेताम्बर जैन था। इसका निवासस्थान गुजरात था। म्बर जैन वादिराज विरचित इसी नाम के ग्रन्थ के इसने श्वेताम्बर जैनों के लिये इस ग्रन्थ की रचना परन्तु दो समान नाम वाले इन ग्रन्थों का कथानक है। यह ई० ११ श[1] शतक का माना गया है।

शम्भु (ई० ११ श शतक)

शम्भु—विरचित १ राजेन्द्रकर्णपूर, २ अन्योक्तिमुक्तालता समय—काश्मीर के हर्षदेव का सभापण्डित—राजेन्द्रकर्णपूर क्तिमुक्तालता—शतक के विषय विचार—काव्य श्रेणी।

इसके विरचित राजेन्द्र कर्णपूर और अन्योक्ति शतक ये दोनों काव्य हैं। यह काश्मीर के हर्षदेव (ई० १०८९-११०१) का सभापण्डित था।

---

१ कीथ का सं० सा० का इतिहास पृ० १४२।

राजेन्द्र-कर्णपूर :—यह हर्षदेव की प्रशस्ति में लिखा हुवा काव्य है। इसमें के अनेक श्लोक वल्लभदेव की सुभाषितावली में मिलते हैं।

अन्योक्ति-मुक्तालता-शतक :—इस काव्य में १०८ श्लोक हैं। मयूर शतक और नीति-शतक आदि के समान इसकी प्रसिद्धि नहीं है।

ये दोनों काव्य मध्यम श्रेणी के माने गये हैं।

कल्हण (ई० १२ श शतक)

कल्हण - विरचित राजतरङ्गिणी—राजतरङ्गिणी की विशेषताएँ—जीवन चरित—समय—अलकदत्त का आश्रित—जयसिंह राजा का सभा-पण्डित—इसका विरचित अन्य ग्रन्थ अर्द्धनारीश्वर स्तोत्र—राजतरङ्गिणी का विषय विचार—जोनराज, श्रीवर व प्राज्य भट्ट विरचित क्रम से द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी राजतरङ्गिणी—इनका कवित्व।

इसका विरचित 'राजतरङ्गिणी' नाम का ऐतिहासिक काव्य है। यद्यपि इसके पूर्व में बाण भट्ट, वाक्पतिराज और बिल्हण ने अपने हर्ष-चरित, गौडवहो और विक्रमाङ्कदेव-चरित में अपने संरक्षक राजाओं की जीवनी वर्णन कर ऐतिहासिक काव्य बनाने की चेष्टा की है तथापि इतिहास का प्रधान विषय अर्थात् समय-निर्देश उन लोगों के काव्यों में नहीं किया गया है। कल्हण के काव्य में यह वैशिष्ट्य है। इसके अतिरिक्त उन काव्यों में एक ही राजा का वर्णन मिलता है। किन्तु राजतरङ्गिणी में काश्मीर के प्राचीन से प्राचीन

राजाओं को लेकर लेखकों के समय तक के रा
वर्णन मिलता है। राजतरङ्गिणी में एक यह भी
कि इसमें रचयिताओं के सम्बन्ध में भी बहुत
होता है।

कल्हण का पिता चम्पक नाम का ब्राह्मण था
हर्ष (१०८६-११०१) का राजनिष्ठ महामात्य था
मृत्यु के १ वर्ष पहिले कल्हण का जन्म हुआ था
मृत्यु के पश्चात् चम्पक दीर्घकाल तक जीवित था
ई० ११०१ के बाद राजकार्य से इसका कुछ भी
था। कल्हण के वंश के लोग काश्मीर के परिहासपु
थे। कल्हण यद्यपि शैव था तथापि बौद्धों का
इसको बहुत प्यारा था। मंख कवि के श्रीकंठचरि
होता है कि कल्हण के आश्रयदाता अलकदत्त थे
कल्हण को राजतरङ्गिणी लिखने को प्रोत्साहित
उसी ग्रन्थ से यह भी जाना जाता है कि कल्हण
दास, बाणभट्ट और विशेष कर बिल्हण के ग्रन्थ
अभ्यास किया था। राजतरङ्गिणी पढ़ने से यह भी
है कि कल्हण ने रामायण, महाभारत का परि
अच्छी तरह से किया होगा। इस ग्रन्थ के वृह
उल्लेखों से सिद्ध होता है कि कल्हण अच्छा ज्योति
अलकदत्त द्वारा प्रोत्साहित इस कल्हण कवि को
सिंह (ई० ११२६-५०) के समय में राजतरङ्गिणी

वसर प्राप्त हुवा था। इसने १ वर्ष में अपना लेख सम्पूर्ण किया था। कल्हण यद्यपि जयसिंह का दर्बारी था तो भी उसने काश्मीर का इतिहास लिखने में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया। इसका विरचित अर्द्धनारीश्वर-स्तोत्र भी है।

राजतरङ्गिणी:—यह एक ऐतिहासिक काव्य है। इसमें कलियुग के प्रारम्भ से काश्मीर के राजाओं का वर्णन है। बौद्ध, अशोक और कुशान के कनिष्क आदि राजाओं का भी इसमें वर्णन है। परन्तु प्रामाणिक इतिहास का आरम्भ इसमें षष्ठ शतक से मातृ गुप्त, विक्रमादित्य हर्ष और मालवा के शीलादित्य के शासनकाल से होता है। इस ग्रन्थ के लिखने में कल्हण ने स्वयं कहा है कि उसने नीलमत-पुराण, क्षेमेन्द्र की राजावली आदि का उपयोग किया था और इसके प्रमाण में अनेक शिलालेख, मन्दिर, प्रासाद और स्मारकों पर उत्कीर्ण लेख, ताम्रपत्र, दानपत्र आदि प्रशस्तियाँ, हस्तलिखित ऐति-हासिक ग्रन्थ और सिक्के भी देखे थे। उस समय के काश्मीर के राजनैतिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत गुण-दोषों का वर्णन पढ़ने से उस समय की काश्मीर की अवस्था और लोक-स्वभाव का यथार्थ ज्ञान हो सकता है।

कल्हण की राजतरङ्गिणी ८ तरंगों में विभक्त है। इसमें ३ तरंगों के प्रथम ५२ राजा काल्पनिक हैं और बाकी के तरंग के राजा ऐतिहासिक हैं ऐसा स्वयं कल्हण ने कहा है। प्रथम सात तरंग जिनमें हर्ष की मृत्यु (ई० ११०१) तक का वर्णन

है, उपरिनिर्दिष्ट ग्रन्थों के आधार से लिखे गये हैं। तरंग को जिसमें ३४५० श्लोक हैं, अपनी जीवि अनुभूत राजकीय विषयों के वर्णन में कल्हण ने इसमें प्रसाद गुण विद्यमान हैं।

कल्हण के बाद ४०० वर्ष का काश्मीर का इति जोनराज, उसका शिष्य श्रीवर और प्राज्य भट्ट द्वारा द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी राजतरंगिणी के नाम है। इसमें अकबर बादशाह द्वारा काश्मीर देश हस्त जाने तक का वर्णन है। श्रीवर विरचित तृतीया रा को जैन-तरंगिणी भी कहते हैं और प्राज्य भट्ट चतुर्थी राजतरंगिणी को राजावलीपताका भी कहते की दृष्टि से कल्हण की राजतरंगिणी से ये तीन गिणियाँ श्रेष्ठ हैं।

गोवर्द्धन (ई० १२ श शतक)

गोवर्द्धन—विरचित काव्य आर्या सप्तशती—जीवनी—के लक्ष्मण सेन का सभापण्डित—आर्या सप्तशती का वि शैली - छन्द - टीकाएँ।

इसका विरचित आर्या-सप्तशती नाम का है। इसके पिता का नाम नीलाम्बर या सङ्कर्षण था सप्तशती के ३८ वें श्लोक में कवि ने अपने पिता को के समान कवि बता कर वन्दन किया है। इसका

भद्र था और इसके शिष्य का नाम उदयन[1] था। इन दोनों इस ग्रन्थ को स्वच्छतया लिखकर इस ग्रन्थ का प्रचार या। ग्रन्थारम्भ में कवि ने शंकर, मुरारि, हैमवती, लक्ष्मी, मातुर और कामदेव की वन्दना कर वाल्मीकि, व्यास, णाढ्य, कालिदास, भवभूति और वाण की प्रशंसा की है। न्त में अपने पिता नीलाम्बर को वन्दन कर सेनकुलतिलक-पति की प्रशंसा की है। यह सेनकुलतिलक भूपति बंगाल लक्ष्मण सेन (ई० ११९६-११९९) था जिसकी सभा में वर्द्धन के साथ शरणदेव, जयदेव, उमापति-धर और धोई वि[2] थे। जयदेव ने अपने गीत गोविन्द[3] में इन कवियों का मोल्लेख किया है।

आर्यासप्तशती:—इस काव्य में ७०२ आर्याएँ और तियाँ हैं। आर्याओं की रचना अकारादिवर्णानुक्रम से की ई है। यह हाल विरचित गाथा सप्तशती की तरह सौ २ श्लोकों सात विभागों में विभक्त नहीं है। कवि ने एक आर्या में स बात को मान लिया है कि आर्या गीति में वर्णन-सरसता कृत भाषा में ही उत्पन्न हो सकती है और संस्कृत में वह रसता अत्यन्त कठिनता से उत्पन्न होती है। तथापि कवि

---

१ आर्यासप्तशती श्लो० ७०१।

२ गोवर्द्धनश्चशरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्यच॥

३ गीतगोविन्द श्लो० ४।

ने आर्या में वह सरसता लाने का प्रयत्न[1] किया है
कवि ने स्वयं कहा है कि यह ध्वनि काव्य है
काव्य की गणना प्राचीन गुणाढ्य, भवभूति,
कालिदास के काव्यों के साथ होनी[2] चाहिये।
से अनुमान होता है कि कवि ने गाथा-सप्तशती
काव्य का आधार बनाया होगा। इस काव्य
प्रधान है। जयदेव कवि ने भी गोवर्द्धन की रचना
रोत्तर सत्प्रमेयरचना' कहा है। यह काव्य यथार्थ
का है और इसमें माधुर्य और प्रसाद गुण विद्यमान
काव्य पर ४ टीकाएँ लिखी गई हैं उनमें दुर्गा-
कार अनन्तदेव की व्यङ्ग्यार्थ-दीपना टीका उत्त
काव्यमाला में प्रकाशित है।

श्रीहर्ष के खण्ड काव्यों का वर्णन महाकाव्य
किया गया है।

सन्ध्याकर नन्दी (ई० १२ श शतक)

सन्ध्याकर नन्दी—विरचित काव्य रामपाल चरित—
राजा रामपाल का सभापण्डित—रामपाल चरित का
नेपाल में उपलब्ध – एशियाटिक सोसाइटी में प्रकाशित।

इसका विरचित रामपाल चरित नामक
काव्य है। यह दिगम्बर जैन मतावलम्बी था।

---

१ आर्या सप्तशती श्लो० ५२।

२ „ „ „ ६९७।

पाल (ई० १०८४-११३०) के दर्बार का यह प्रधान पण्डित । इसलिये इसका समय भी वही मान लेना उचित है ।

रामपाल-चरित :—यह एक ऐतिहासिक काव्य है । इसमें से रामचन्द्र तथा रामपाल का वर्णन किया गया है । राम-ल की बहादुरी वर्णन करने के साथ अपनी व्याकरण तथा हित्य को विज्ञता प्रगट करना ही इस काव्य के लिखने का ान उद्देश था । इस काव्य की हस्तलिखित पुस्तक नेपाल प्राप्त हुई और वंग के एशियाटिक सोसायटी ने अपने मायर में इस काव्य को ई० १९१० में प्रकाशित[1] किया ।

नागराज (ई० १३००)

नागराज—विरचित काव्य १ भाव शतक २ शृङ्गार शतक—जीवनी—य निर्धारण—भाव शतक काव्य का विषय विचार—शैली—छन्द ।

इसके विरचित भाव शतक और शृङ्गार शतक काव्य हैं । सने भाव शतक के अन्त में अपने सम्बन्ध में कुछ बातें कहीं । इसके पितामह का नाम विद्याधर था जो केदारेश्वर का मभक्त था और टंक वंशीय था । नागराज के पिता का म जालय था । यह टंक वंश कहां का था और ये लोग कहां और किस राजा के समय में थे इसका कुछ भी पता नहीं

अमरचन्द्र सूरि, मलधारि देवप्रभसूरि और वेदान्तदेशिक रचित काव्यों का वर्णन महाकाव्य प्रकरण में किया गया है ।

---

१ ए० एस० बी० मेमायर्स भाग ३ अङ्क १-१९१० ।

चलता। भाव शतक[१] के एक श्लोक में धाराधीश मिलता है और टिप्पणीकार उसकी टिप्पणी में "धाराधीश नागराज" ऐसा लिखता है। अन्यत्र भी नागराज के राजा होने का परिचय मिलता है। सम्भव है कि त्रयोदश शतक तक कभी यह करता हो। इसलिये इसका समय भोज के पुत्र के बाद (१०५५ ई०) और धारानगरी के नाश के पूर्व माना जा सकता है।

भावशतक काव्य:—इसमें १०१ श्लोक हैं। ने अपने हृदयस्थ शृङ्गारिक भावों का प्रशंसनीय है। इसमें प्रत्येक श्लोक के आदि और अन्त में का भाव व्यक्त करने के लिये कुछ संस्कृत गद्य कवि ने अपने को "गिरां गुरुः" कहा है और कवि के शृङ्गारिक भावों को व्यक्त करने की अच्छी तरह यथार्थ प्रतीत होता है। इसके प्रत्येक प्रसाद और माधुर्य गुण टपकता है। यह काव्य है और अनेक छन्दों में रचा गया है।

वामन-भट्ट-बाण और नीलकण्ठ दीक्षित विरचित का वर्णन महाकाव्य प्रकरण में किया गया है।

---

१ भाव शतक श्लो० ६३।

जगन्नाथ-पण्डितराज (ई० १६५०)

जगन्नाथ पण्डितराज—विरचित भामिनी विलास—जीवन चरित—समय—दाराशिकोह और खान-खाना आसफ का आश्रित—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ १ रस गङ्गाधर, २ चित्र मीमांसा खण्डन, ३ मनोरमा-कुचमर्दन, ४ गङ्गा लहरी, ५ लक्ष्मी लहरी, ६ अमृत-लहरी, ७ पीयूष-लहरी, ८ सुधालहरी, ९ जगदाभरण, १० आसफ विलास, ११ यमुना-वर्णन चम्पू, १२ प्राणाभरण काव्य—भामिनीविलास का विषय परामर्श—शैली—टीकाएँ ।

इसका विरचित भामिनी विलास नाम का खण्ड-काव्य है। यह तैलंग ब्राह्मण था। इसने अपने पिता पेरु भट्ट या पेरं भट्ट और काशी के शेष वंश के वीरेश्वर के पास अध्ययन किया था। पेरु भट्ट ने वेदान्त का अध्ययन ज्ञानेन्द्र-भिक्षु के पास, न्याय का महेन्द्र से, पूर्व मीमांसा का खण्डदेव से और व्याकरण का शेष वीरेश्वर के पास किया था। इसको शाहजहां दिल्ली के बादशाह ने पण्डितराज की उपाधि दी थी। शाहजहां का पुत्र दाराशिकोह और उसका खान-खाना आसफ़ ये दोनों इसके आश्रयदाता थे। आसफ़ की मृत्यु ई० १६४१ में हुई और ई० १६५७ में दारा का वध हुवा। इसके बाद जगन्नाथ ने मथुरा[1] में और अनन्तर काशी में वास किया था। इसकी विरचित चित्र-मीमांसा खण्डन की हस्त-लिखित पुस्तक ई० १६५२ की उपलब्ध है। इसलिये इसका

१ भामिनीविलास, शान्तसमुल्लास श्लो० ३२ ।

ग्रन्थ रचना काल ई० १६२० से १६६० तक माना
भामिनी विलास के अतिरिक्त इसके विरचित 'रस
और 'चित्र मीमांसा खण्डन' ये दो अलङ्कार के ग्र
रमा कुचमर्दन' नाम का व्याकरण का ग्रन्थ, गंगालह
लहरी, अमृतलहरी, पीयूषलहरी और सुधालहरी
स्तोत्रकाव्य, जगदाभरण और आसफ़विलास ये दो
काव्य, यमुना वर्णन चम्पू और प्राणाभरण काव्य हैं।

भामिनी-विलास :—इस खण्ड काव्य के
अन्योक्ति, शृङ्गार, करुण और शान्त हैं। अन्योक्ति
समुल्लास शतक हैं। करुण समुल्लास में १६
समुल्लास में ३२ श्लोक हैं। इस काव्य के श्लोक
और मनोहर हैं कि अन्त में कवि को यह कहना पड़ा

दुर्वृत्ता जारजन्मानो हरिष्यन्तीति शङ्कया।
मदीयपद्य-रत्नानां मञ्जूषेयं कृतिर्मम ॥

पण्डितराज की प्रतिज्ञा थी कि रस गङ्गाधर में
दूसरे ग्रन्थों से न लिये जाएँगे तदनुसार उन्होंने
उदाहरणों में स्वरचित श्लोक ही दिये हैं। इस
विलास में तो कवि के चुने हुवे श्लोक हैं। इस
अनेक श्लोक सुभाषित के तौर पर प्रसिद्ध हैं।
टीकाएँ हैं, उनमें पण्डितराज के पौत्र महादेव दीक्षि
तराज विरचित विलास-प्रदीपिका नाम की टीका प्र

प्रकरण ५

स्तोत्र-काव्य

पद्य काव्य के महाकाव्य, खण्ड काव्य और कोष काव्य जो प्रधान तीन भेद बताये गये हैं उनमें स्तोत्र और सुभाषित काव्यों का अन्तर्भाव कोष काव्य में है।

ऋग्, यजुः, साम और अथर्व संहिताओं के सूक्तों में विविध देवताओं की स्तुतियां देखने से अवगत होता है कि देवताओं की स्तुति करने की प्रथा भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। समयानुसार वैदिक काल के देवताओं के स्थान में अनेक नवीन देवता माने जाने लगे। अग्नि, इन्द्र, वायु, सोम, अश्विनीकुमार उषस् आदि वैदिक देवताओं से धीरे २ त्रिमूर्ति कल्पना तथा पञ्चायतन-उपासना संसार में रूढ़ हुई। देवता पञ्चायतन की उपासना में गाणपत्य, सौर, शाक्त, शैव और वैष्णव संप्रदायों का अन्तर्भाव है। स्तोत्र काव्यों में प्रायः इन्हीं देवताओं की स्तुतियां हैं। वेदान्त-मतप्रवर्तक अनेक आचार्यों के निर्गुण ब्रह्म प्रतिपादक अनेक स्तोत्र भी विद्यमान हैं। जैन तथा बौद्धों के भी अनेक स्तोत्र हैं।

रामायण, महाभारत और पुराणों में असंख्य स्तोत्र हैं

जिनको स्तोत्र काव्य का मूल कहना अनुचित न होगा
पर ई० ५ म शतक के सिद्धसेन दिवाकर के कल्याण
स्तव से प्रारम्भ कर कुछ स्तोत्र काव्यों का संक्षेप
किया गया है।

सिद्धसेन-दिवाकर (ई० ४८०-५५०)

सिद्धसेन दिवाकर—विरचित कल्याण मन्दिरस्तव—अंत
इसका दूसरा नाम कुमुदचन्द्र—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर
क्षपणक कहा है—कल्याण मन्दिरस्तव का विषय—श्लोक सं

इसका विरचित कल्याण-मन्दिरस्तव या स्तोत्र
जैनों के शास्त्रीय न्यायदर्शन के संस्थापकों में प्र
इसका विरचित जैन न्याय का 'न्यायावतार' नाम
सर्व विश्रुत है। यह श्वेताम्बर जैन था। वृद्धवादि
यह शिष्य था और दीक्षा के समय इसका नाम 'कुमु
रक्खा गया था। जैन परम्परा में कहा जाता है कि
स्तोत्र के प्रभाव से उज्जयिनी के महाकाल का लिङ्ग
पार्श्वनाथ की मूर्ति का आह्वान किया था। इसकी
क्षपणक थी। श्रीईश्वरचन्द्र विद्यासागर[1] इसी क्षप
विक्रमादित्य के दर्बार के नव रत्नों में का क्षपणक मा

कल्याण-मन्दिरस्तव:—यह एक स्तोत्र काव्य है
४४ श्लोक हैं। इसमें पार्श्वनाथ की स्तुति है।

---

१ ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का भारतीय न्याय का इतिहास

मयूर (ई० ६३० ल० भ०)

मयूर–विरचित मयूर वा सूर्य शतक ।

इसका विरचित 'मयूर शतक' वा सूर्य शतक नाम का त्र काव्य है। मयूर तथा मयूर शतक वा सूर्य शतक के न्य में खण्ड काव्यों में कहा जा चुका है।

मानतुङ्ग (ई० ६३५ ल० भ०)

मानतुङ्ग–विरचित भक्तामर स्तोत्र–चरित्र–समय–भक्तामर त्र का विषय विचार।

इसका विरचित 'भक्तामर-स्तोत्र' है। यह बाण भट्ट का कालिक माना जाता है। मयूर के सदृश इसने भी इस त्र के द्वारा सूर्य की स्तुति कर अपना कुष्ठ रोग दूर किया । बाण भट्ट ने इसकी और मयूर की स्पर्धा कर चण्डी-क रचा था। इसने जिनों का प्रभाव दिखाने के लिये ने को ४२ सिकड़ियों से बांध कर एक कमरे में बन्द कर या था और इस स्तोत्र को पढ़ कर अपने को उस बन्धन मुक्त किया था। इस कथा का भाव यह हो सकता है कि सार-बन्धों से भक्तों को दूर करने के लिये उसने इस स्तोत्र रचना की थी। कीथ के मत से इसका समय बाण के ० या १५० वर्ष बाद है।

भक्तामर-स्तोत्र:—यह स्तोत्र काव्य है। इसमें ऋषभ- की स्तुति है। इसके श्लोकों में काव्य के गुण स्पष्ट हैं। षभ को बुद्ध, शंकर वा पुरुषोत्तम बतलाया है। इसकी

तुलना " कल्याण मन्दिरस्तव ' से की जाती है।
की दृष्टि से यह उससे श्रेष्ठ है।

बाणभट्ट (ई० ६४०)

बाण भट्ट – विरचित स्तोत्र चण्डी शतक – चण्डी
विचार – श्लोक संख्या – टीका।

इसका विरचित 'चण्डी शतक' नाम का स्तोत्र
इसके सम्बन्ध में गद्य काव्य प्रकरण में कहा गया

चण्डी-शतक:—यह एक स्तोत्र काव्य है।
श्लोक हैं और वे सब स्रग्धरा छन्द में है। इसमें
मर्दिनी श्री दुर्गा की स्तुति है। इसमें भक्तों की
लिये प्रार्थना की गई है। यद्यपि इसमें काव्य
अनेक गुण हैं तथापि इसमें कादम्बरी और ह
मनोहारिता नहीं है। इस पर धनेश्वर विरचित टी

हर्षवर्द्धन (ई० ६०६–६४७)

हर्षवर्द्धन – विरचित स्तोत्र: १ अष्ट-महाश्री – चैत्य सं
स्तोत्र – दोनों अमुद्रित।

इसके विरचित ' अष्ट-महाश्री—चैत्य-स्तोत्र ' ई
भात-स्तोत्र ' माने जाते हैं। किन्तु इनमें ' सुप्र
का कर्ता विकल्प से श्री हर्ष नैषधकार भी माना

के विषय में इतिहास के अध्याय में कहा जा चुका है।
हर्ष के विषय में भी महाकाव्य प्रकरण में कहा गया है।
अष्ट-महाश्री—चैत्य-स्तोत्र और सुप्रभात स्तोत्र अभी तक
त नहीं हैं। पाश्चात्य देशों में इनकी हस्तलिखित प्रतियां
लब्ध हुई हैं।

पुष्पदन्त (ई० ८०० के पूर्व)

पुष्पदन्त—विरचित महिम्नः स्तव—पुष्पदन्त की कथा—समय
रण—महिम्नः स्तोत्र का विषय विचार—श्लोक संख्या—टीकाएँ।

इसका विरचित महिम्नः स्तव वा महिम्नः स्तोत्र है।
दन्त के विषय में इसमें कहा है कि यह शिव जी के गणों
धान था और कुसुमदशन नाम का सब गन्धर्वों का राजा
र शिव जी के रोष से भूतल पर जन्मा था। इस स्तोत्र
द्वारा शिव जी को प्रसन्न कर पुनः अपने पद पर पहुँचा था।
कथा मञ्जरी, कथा-सरित्सागर और हर चरित चिन्तामणि
किसी पुष्पदन्त के सम्बन्ध में ऐसी कथा मिलती है—जब
देव, पार्वती को एकान्त में अश्रुत-पूर्व वृहत्कथा सुनाते थे
समय उनके प्रधानगण पुष्पदन्त ने यह कथा सुन ली और
नी प्रियतमा जया को जाकर सुनाई। जया से पार्वती को
यह हाल मालूम हुवा तब क्रुद्ध होकर देवी ने पुष्पदन्त
शाप दिया। उस शाप से पुष्पदन्त इस पृथ्वी पर
त्यायन वररुचि होकर जन्मा था। यदि महिम्नः स्तवकार
दन्त यही हो तो इसका समय ई० पू० ४ र्थ शतक मानना

आवश्यक होता है। परन्तु महिम्नः स्तोत्र की भा
इतनी प्राचीनता नहीं झलकती है। इसलिये पु
समय ई० ८०० के पूर्व मान लिया है। सम्भव है
की शिष्य-परम्परा में वह स्तोत्र अन्य किसी
आया हो और ई० ८०० के पूर्व के किसी विद्वान
सरे रूप में अर्थात् आधुनिक रूप में निर्मा
स्तोत्र के उपसंहार के श्लोकों से ज्ञात होता है
के स्तोत्र को उसके किसी अनुयायी ने पुनः
केवल उसके स्तोत्र में उपसंहार के श्लोक जोड़
स्तोत्र का निर्देश प्राचीन से प्राचीन ई० ९०० के
नैयायिक जयन्त भट्ट ने अपनी न्याय-मञ्जरी में
शङ्कराचार्य का पुष्पदन्त समकालिक वा पूर्व
ठीक नहीं कहा जा सकता। अतः इसका सम
ई० ८०० के पूर्व मान लिया गया है।

महिम्नः स्तोत्र वा महिम्नः स्तवः--यह
स्तोत्र है। इसमें उपसंहार के श्लोकों के साथ
उपसंहार के ८ श्लोक हैं। इसमें शंकर की स्तु
वर्णित है। इसमें त्रयी, सांख्य, योग पाशुपत मत
मत का भी निर्देश है। यह स्तोत्र शिखरिणी छ
गया है। इस पर १७ टीकायें हैं जिनमें बोपदेव
सबसे प्राचीन है। श्रीधर स्वामी की 'शिव
भयार्थिका' टीका अत्यन्त महत्व की है।

मूक (ई० ८०० ल० भ०)

मूक—विरचित देवीपञ्चशतिः या मूकपञ्चशतिः—समय—देवी-पञ्चशति का विषय परामर्श।

इसका विरचित 'देवीपञ्चशतिः' या 'मूक-पञ्चशतिः' [illegible]म का स्तोत्र-काव्य है। इसने स्तोत्रों में अपने विषय में [illegible] भी नहीं कहा है और अन्य ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख [illegible]हीं मिलता है। परम्परा से यह शंकराचार्य का समकालिक [illegible]ना जाता है। किन्तु इसके स्तोत्र के पढ़ने से यह शङ्कराचार्य का [illegible] पूर्ववर्ती होगा, ऐसा अनुमान होता है। स्तोत्र में कम्पातीर काञ्चीपुरी की कामाक्षी देवी का वर्णन होने से यह कवि [illegible]क्षिणात्य ही प्रतीत होता है।

देवीपञ्चशतिः—इसको मूक-पञ्चशती भी कहते हैं। इसमें [illegible]टाक्ष शतक, मन्दस्मित शतक, पादारविन्द शतक, आर्या-[illegible]तक और स्तुति-शतक हैं। ये पांचों शतक कामाक्षी देवी [illegible] स्तुति परक हैं। इन शतकों की श्लोक संख्या कहीं १००, [illegible]हीं १०० से अधिक वा न्यून भी है। उपरोक्त शतकों के [illegible]म में भी कहीं २ भेद मिलता है। काव्य की दृष्टि से इनमें [illegible]ाव्य के अनेक गुण हैं। कवि ने भक्ति-रस के परिपोष में [illegible]ब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार की योजना बहुत उचित रूप [illegible] की है।

शंकराचार्य (ई० ८००)

श्रीशङ्कराचार्य—जीवन चरित—आद्य शङ्कराचार्य भगवत्पूज्यपाद गो-

विन्द शिष्य – इनके विरचित ग्रन्थ १ ब्रह्म सूत्र – शाङ्कर भा... पनिषच्छाङ्कर भाष्य, ३ भगवद्गीता शाङ्कर भाष्य, शिव, सूर्य, गणपति के अनेक स्तोत्र, दक्षिणामूर्ति स्तोत्र आदि - मानसोल्लास टीका ।

अद्वैत वेदान्त मत प्रवर्तक, आद्य श्रीशङ्कराचार्य... में जन्म लेकर अपने ३२ वें वर्ष में अपनी प्रतिभा... से नास्तिक बौद्ध-मत का समूल नाश कर श्रुति... अद्वैत वेदान्त मत की स्थापना कर भारतवर्ष के... में ४ पीठ स्थापित किये थे। उनमें दक्षिण के शृङ्गेरी... स्वयं सुशोभित किया था। इनका समय ई० ... तक माना गया है। ये शिव गुरु के पुत्र थे और... के शिष्य गोविन्द इनके गुरु थे। इन्होंने अपने... शिष्यों को ४ धामों की गद्दी देकर कैवल्य प्राप्त... इन धामों के पीठ पर जितने आचार्य उस स... आये हैं वे सब परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री शङ्कर... जाते हैं। इसलिये जितने स्तोत्र परमहंस परिव्रा... श्री शङ्कराचार्य विरचित हैं वे सब आद्य शङ्कर... चित नहीं हो सकते हैं। आद्य शङ्कराचार्य ने... ग्रन्थों के उपसंहार में "भगवत्पूज्यपाद गोविन्द शि... विशेषण अपने नाम के पूर्व दिया है। इसलिये इ... उल्लेख जिन ग्रन्थों में है वे ही ग्रन्थ इनके विरचि... सकते हैं। ब्रह्म सूत्र-शाङ्कर भाष्य, दशोपनिषद्...

और भगवद्गीता-शाङ्कर भाष्य जो अद्वैत सम्प्रदाय में स्थानत्रयी के नाम से प्रसिद्ध हैं वे आद्य शङ्कराचार्य विरचित हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। इनके व्यतिरिक्त वेदान्त के और भी बहुत से ग्रन्थ और शिव, विष्णु, देवी, सूर्य और गणपति की उपासना पर अनन्त स्तोत्र इनके विरचित होंगे। इनकी संख्या करना कठिन है। तथापि स्तोत्रों में दक्षिणामूर्ति के जितने स्तोत्र उपलब्ध हैं वे प्रायः आद्य शङ्कराचार्य जी के विरचित हैं। क्योंकि दक्षिणा मूर्ति स्तोत्र पर ७-८ प्रसिद्ध टीकाएँ हैं। उनमें से 'मानसोल्लास' नाम की इनके शिष्य सुरेश्वराचार्य की विरचित टीका है जिसको दक्षिणा मूर्ति-स्तोत्र-वार्तिक भी कहते हैं। इसी स्तोत्र पर प्रसिद्ध अद्वैत वेदान्त के आचार्य स्वयं प्रकाश और रामतीर्थ की भी टीकाएँ हैं।

रत्नाकर (ई० ८५०)

रत्नाकर - विरचित स्तोत्र वक्रोक्ति-पञ्चाशिका—इसका विषय विचार—[illegible]—टीका।

इसका विरचित 'वक्रोक्ति पञ्चाशिका' नाम का स्तोत्र है। इसके जीवन चरित के विषय में महाकाव्य प्रकरण में कहा जा चुका है।

वक्रोक्ति-पञ्चाशिका:—यह एक स्तोत्र काव्य है। इसमें ५० श्लोक हैं। इसमें महादेव-पार्वती का विनोद वक्रोक्ति अलङ्कार से वर्णित है। प्रायः सभी श्लोक शार्दूल विक्रीडित

छन्द में हैं। इसमें श्लेष की प्रधानता होने से
विद्वानों को ही आनन्द देने वाला है। इसपर
टीका है।

आनन्द वर्द्धनाचार्य (ई० ८५०)

आनन्दवर्द्धनाचार्य—विरचित स्तोत्र देवी शतक-
मर्ष - छन्द—श्लोक संख्या।

इसका विरचित ' देवी शतक ' नाम का स्तोत्र
जीवन चरित्र के सम्बन्ध में अलङ्कार प्रकरणमें लि

देवीशतक:—यह एक स्तोत्र काव्य है। इसमें
हैं। ये श्लोक बड़े २ छन्दों के हैं। इसमें देवी
काव्य की दृष्टि से इसमें काव्य के अनेक अच्छे
यह ध्वनि काव्य नहीं है। स्तोत्र होने के कारण
होना भी आवश्यक नहीं है। प्राय: अलङ्कारिक बहुत
हुवे हैं। इस न्याय से यद्यपि आनन्दवर्द्धन प्रथम
गिने जाते हैं तो भी इनकी श्रेष्ठ कवियों में गणना
जा सकती। इस काव्य में स्तोत्र की दृष्टि से
परिपोष के साथ देवी का बहुत अच्छा वर्णन है।

उत्पलदेव (ई० ६२५)

उत्पलदेव—विरचित ग्रन्थ परमेश स्तोत्रावलि—जीवनी
चित अन्य ग्रन्थ १ ईश्वर प्रत्यभिज्ञासूत्र, २ ईश्वर प्रत्य
अजड प्रमातृ सिद्धि, ४ स्पन्द प्रदीपिका—परमेश स्तोत्रा
विचार—टीका।

इसकी विरचित 'परमेश स्तोत्रावलि' है। उत्पलदेव, भिनव गुप्त पादाचार्य के प्रत्यभिज्ञा दर्शन के परमगुरु थे। भिनव गुप्त के गुरु लक्ष्मण गुप्त इनके शिष्य थे। इनके ता का नाम उदयाकर और गुरु का नाम सोमानन्द था। श्मीर के शैवागम में उत्पल का नाम 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा' के त्र और वृत्तिकार के नाम से प्रसिद्ध है। इस सूत्र और त्ति पर अभिनव गुप्त विरचित बृहद् और लघु नाम की वृत्तियां वा टीकाएँ प्रसिद्ध हैं। अभिनव गुप्त का समय ० १००० के लगभग होने के कारण इनका समय ई० १० म तक का पूर्वार्द्ध माना गया है। इनके विरचित अन्य ग्रन्थ अजड़ प्रमातृ सिद्धि' और 'स्पन्द प्रदीपिका' हैं।

परमेश-स्तोत्रावलि:—यह एक स्तोत्र काव्य है। इसमें ० स्तोत्र हैं। ये सब स्तोत्र शिव जी के हैं। काव्य की दृष्टि इनका विशेष महत्व नहीं है। इसका निर्देश स्तुति कुसुमा-लि के टीकाकार रत्नकण्ठ ने किया है। इसपर क्षेमराज रचित टीका है।

कुलशेखर (ई० १०००-११५९ का मध्य)

कुलशेखर-विरचित स्तोत्र मुकुन्द माला-इसके विरचित अन्य थ, १ तपती संवरण, २ सुभद्रा धनञ्जय नाटक, ३ आश्चर्य मञ्जरी—न्द माला का विषय परामर्ष—छन्द।

इसका विरचित 'मुकुन्दमाला' नाम का स्तोत्र काव्य है। कुलशेखर केरल के महोदयपुर का राजा परम भागवत,

परम वैष्णव 'तपतीसंवरण' और 'सुभद्रा धनञ्जय' का रचयिता है। ऑफ्रेक्ट की सूचि में इसकी विरचित "निबन्ध मञ्जरी" भी कही गई है। यह एक गद्य काव्य है, इसके सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चलता। इसके चरित्र नाटक प्रकरण में देखिये।

मुकुन्दमाला :—यह एक स्तोत्र काव्य है। इसमें हैं। इसमें श्री मुकुन्द की स्तुति है। इन श्लोकों में कवित्व शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। इसमें का खूब परिपोष किया गया है। इसमें वसन्त तिलका विक्रीडित आदि छन्दों का प्रयोग है।

श्री साम्ब कवि (अज्ञात समय)

साम्बकवि – विरचित साम्ब पञ्चाशिका—समयविचार साम्ब पञ्चाशिका विषय परामर्ष—श्लोक संख्या—टीका।

इसका विरचित 'साम्ब पञ्चाशिका' नाम का है। इस काव्य के उपसंहार के श्लोकों से विदित साम्ब कोई योगी था, क्योंकि वह अपने को 'रा समतायोगमेवारुरुक्षुः' कहता है। भक्ति, श्रद्धा तरुणी मानता है। इस लिये यह अवश्य कोई योगी होगा। मार्तण्ड की स्तुति करने के कारण, इसका क्षेमराज काश्मीर का होने से और ग्रन्थकार के अनुमान होता है कि यह शैवागम का अनुयायी

---

१ साम्ब पञ्चाशिका श्लोक ५१

निवासी था। ग्रन्थ के आरम्भ में शब्द ब्रह्म और विवर्त-
दका मार्तण्ड के स्वरूप में वर्णन करने से यह आद्य शङ्करा-
र्य का पूर्व वर्ती प्रसिद्ध 'वाक्य—पदीयकार भर्तृ-हरि और
टककार भवभूति का समकालिक प्रतीत होता है। इस
व्य में मन्दाक्रान्ता वृत्त के साथ अनेक स्थलों में मेघदूत
झलक दिखाती है। इसलिये यह कालिदास के बाद
विरचित हो सकता है। क्षेमराज ने इसकी टीका १०म
तक में लिखी है। इसलिये यह कवि ई० १०म शतक के पूर्व
र कालिदास के वाद का है। क्षेमराज ने इस साम्ब कवि
प्रसिद्ध यदुकुल के वासुदेव का पुत्र साम्ब बतलाया है।
न्तु यह विश्वासार्ह नहीं है। परन्तु इससे यह तो अवश्य
सकता है कि यह साम्ब कवि ई० १० म शतक में भी बहुत
चीन समझा जाता था। इसका आदित्यब्रह्म-वर्णन, योग-
सिष्ठ की ब्रह्म कल्पना से सादृश्य रखता है। विद्यमान योग-
सिष्ठ का समय भी कालिदास के वाद और भर्तृहरि के
माना गया है। अतः यह स्तोत्र काव्य भी उसी समय का
सकता है।

साम्ब पञ्चाशिका :—यह स्तोत्र काव्य है। इसमें ५३ श्लोक
इसमें सूर्य ब्रह्मका तात्विक वर्णन है। इसके सर्व श्लोक
न्दाक्रान्ता वृत्त में हैं। इसमें सूर्यस्तुति दार्शनिक भाषा में
है। इस पर क्षेमराज राजानक की टीका, विवृति नाम
है।

बिल्वमंगल वा लीलाशुक (ई० ११०० लो०

बिल्वमङ्गल वा लीलाशुक – विरचित स्तोत्र कृष्णकर्णामृत लीलामृत – इसके विरचित अन्य ग्रन्थ – १ कृष्ण बालचरि न्हिक कौमुदी,३ गोविन्द स्तोत्र,४ बालकृष्ण क्रीड़ा काव्य, ६ बिल्वमङ्गल टीका—समय—कृष्ण कर्णामृतका विषय संख्या—टीकाएँ ।

इसका विरचित ' कृष्णकर्णामृत ' वा ' कृष्ण स्तोत्र काव्य है। यह एक वैष्णव कवि था। प्रा का रहने वाला था। इसके विषय में विशेष पता इसके विरचित इसके व्यतिरिक्त—कृष्ण बालच न्हिक कौमुदी, गोविन्दस्तोत्र, बालकृष्ण क्रीड़ा बिल्वमङ्गल स्तोत्र और उसकी टीका भी है। ई० ११०० श शतक माना जाता है।

कृष्ण-लीलामृत :—इसका दूसरा नाम कृष्ण है। यह एक अच्छा स्तोत्र काव्य है। इसमें सब श्लोकों में कृष्ण की स्तुति है। वैष्णवों में बहुत प्रिय था। इसके अनेक श्लोक सुभाषित ग्र हैं। इसकी ६ टीकाएँ हैं।

जगद्धर-भट्ट (ई० १३००)

जगद्धरभट्ट – विरचित स्तोत्र स्तुति कुसुमाञ्जलि– विरचित अन्य ग्रन्थ १ कातन्त्र व्याकरण की वृत्ति बालबो शब्दनिराकरण—समय निर्धारण – बेलवलकर का मत—यह

...र जगद्धर से भिन्न — स्तुति कुसुमाञ्जलि का विषय परामर्श — छन्द — ...ली — टीका।

इसका विरचित 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' नाम का स्तोत्र काव्य है। 'स्तुति कुसुमाञ्जलि' के अन्त के कवि वंशवर्णन ...मालूम होता है कि इसका पितामह गौरधर और पिता ...लधर था और इसकी निवास भूमि काश्मीर थी। काश्मीर ...में ई० १२०० से ई० १६०० तक कातन्त्र व्याकरण का अध्ययन होता था। जगद्धर भट्ट ने अपने पुत्र यशोधर को पढ़ाने के लिये कातन्त्र व्याकरण की वृत्ति बालबोधिनी लिखी थी। ...स बालबोधिनी का व्याख्यान उसके नप्तृ-कन्या-तनया-तनूज अर्थात् उसके पोते की कन्या के दौहित्र राजानक शितिकण्ठ ने लिखा था। राजानक शितिकण्ठ, काश्मीर के हस्सन (ई० १४५०) और गुजरात के महम्मद शाह (ई० १४५०) का समकालिक होने के कारण उसका समय १५ श शतक का मध्य है। प्रति पीढ़ी को ३० वर्ष मानकर जगद्धर का समय ई० १३०० के लगभग आ सकता है। बेलवलकर ने अपनी व्याकरण सम्प्रदाय की पुस्तक में जगद्धर का समय ई० १० म शतक का मध्य कहा है किन्तु उसमें कोई दृढ़ प्रमाण नहीं दिखाई पड़ता है। इसके विरचित अन्य ग्रन्थ 'अपशब्द-निराकरण' नाम को व्याकरण की पुस्तक है। यह जगद्धर मालती-माधव, मेघदूत वासवदत्ता आदि काव्यों के टीकाकार जगद्धर से भिन्न है।

स्तुति-कुसुमाञ्जलि :—यह एक स्तोत्र काव्य है।
३६ स्तोत्र हैं जिन में शिव जी की स्तुति है। इसमें
स्तोत्र भिन्न २ छन्दों में महाकाव्य के सर्गों के
इसमें नायकादिकों के स्थान पर भगवान् की स्तुति है
के गुण और छन्दों के विषय में यह महाकाव्य से
रखता है। यह प्रसाद और माधुर्य गुण युक्त है और
लङ्कार, अर्थालङ्कार और भिन्न २ रसों से पूरित है
रत्नकण्ठ विरचित लघुपञ्चिका नाम की
१७०० की है।

रूपगोस्वामी (ई० १५२०).

रूपगोस्वामी—विरचित स्तोत्र और सुभाषित काव्य
जीवन तथा वंशवर्णन—समय निर्धारण—इसके विरचित
१ विदग्ध माधव, २ उत्कलिकावल्लरी, ३ उज्ज्वल—नीलमणि
चन्द्रिका, ५ वैष्णवतोषिणी आदि—पद्यावलि का विषय वि

इसकी विरचित 'पद्यावलि' यह स्तोत्र काव्य
षित काव्य है। यह बंगाल के प्रसिद्ध वैष्णव मत
चैतन्यदेव का शिष्य था। इसके वंश का मूल पुरुष
कर्णाट का राजा था। इस राजा के प्रपौत्र पद्म
पुत्र थे उनमें मुकुन्द कनिष्ठ था। इसके पितामह
मुकुन्द और पिता का नाम कुमार था। कुमार के
सनातन, रूप, और वल्लभ थे। रूप और सनातन
इस्लामधर्म स्वीकार किया था इसलिये वे जाति

परन्तु चैतन्यदेव ने इनको पुनः हिन्दू बनाया था। चैतन्यदेव की मृत्यु ई० १५१४ में हुई। इसलिये रूपगोस्वामी का समय ई० १५ श शतक का अन्त और १६ श शतक का पूर्वार्द्ध मान लेना उचित है। इसका विरचित 'विदग्ध माधव' ई० १५३३ का है और 'उत्कलिकावल्लरी' ई० १५५० की है। इसके व्यतिरिक्त इसके विरचित ग्रन्थ 'उज्वल-नीलमणि' अलङ्कार ग्रन्थ, 'नाटक चन्द्रिका' नाट्य ग्रन्थ और 'वैष्णवतोषिणी' व्याकरण ग्रन्थ हैं। 'उज्वल-नीलमणि' में इसके रचित और भी ग्रन्थ निर्दिष्ट हैं।

पद्यावलि :—यह स्तोत्र तथा सुभाषित काव्य है। इसमें अनेक कवियों के विरचित श्रीकृष्ण की स्तुति के श्लोक रूपगोस्वामी द्वारा एकत्रित किये गये हैं। इसमें कई श्लोक रूपगोस्वामी विरचित भी हैं। लक्ष्मण सेन (ई० १११६-११६६) के दर्बार के उमापतिधर, जयदेव, शरणदेव, गोवर्द्धन और कविराज के और लक्ष्मण सेन विरचित भी श्लोक इसमें संगृहीत हैं। इसमें के श्लोक भिन्न २ कवियों के भिन्न २ छन्दों में रचे हैं। श्रीकृष्ण की स्तुति के अच्छे २ श्लोक इसमें दृष्टिगोचर होते हैं। श्लोकों में भक्ति की ही प्रधानता हैं।

वेङ्कटाध्वरी (ई० १६४०)

वेङ्कटाध्वरी—विरचित लक्ष्मी सहस्र स्तोत्र—इसका विषय परामर्ष—प्रौढ़ी—छन्द।

इसका विरचित 'लक्ष्मी सहस्र स्तोत्र है। इसके जीवन

चरित्र के सम्बन्ध में 'चम्पू काव्य' के प्रकरण में ... चुका है।

लक्ष्मी-सहस्र स्तोत्र:—यह एक स्तोत्र काव्य है। ... लक्ष्मीसहस्र-नाम भी कहते हैं। इसमें २५ स्तवकों ... लक्ष्मीकी स्तुति हैं। काव्य की दृष्टि से यह स्तोत्र ... का है। इसमें अर्थालङ्कार और शब्दालंकार दोनों ही ... प्रकार से वर्णित हैं। इसमें प्रसाद और माधुर्य गुण ... हैं। अनुष्टुप्, स्रग्धरा आदि प्रायः सभी छन्द ... इसमें हैं।

जगन्नाथ पण्डितराज (ई० १६५०)

इनके विषय में खण्ड काव्य प्रकरण में कहा जा ... इनके विरचित गङ्गालहरी, सुधालहरी, पीयूषलहरी ... लहरी, अमृतलहरी ये पांच स्तोत्र हैं। गङ्गा लहरी के ... ऐसी कहानी प्रचलित है कि ये एक मुसलमान युवती ... जो आसफ़खां की कन्या थी और जिससे इन्होंने विवाह ... था काशी में आये थे। यह देख इनके ज्ञाति बान्धवों ने ... जाति बहिष्कृत कर दिया। इससे दुःखी होकर ये ... पर जाकर बैठ गये। जहां ये बैठे थे वहांसे ५२ सीढ़ियों ... पर गङ्गा जी का स्पर्श होता था। इन्होंने वहीं बैठ ... लहरी की रचना की। प्रत्येक श्लोक की रचना ... गङ्गा जी एक २ सीढ़ी बढ़ती थीं। अन्तिम श्लोक ... के बाद गङ्गा जी प्रत्यक्ष मकरारूढ़ हो आईं और ...

ी पुरुषों को अपनी गोद में ले अन्तर्धान हो गई।

गङ्गालहरी—इसमें ५२ श्लोक हैं। यह स्तोत्र त्यन्त उत्कृष्ट कोटिका है। इसमें प्रसाद और माधुर्य गुण द्यमान है। अभी भी गङ्गादशहरा के अवसर पर इसका र्वत्र पाठ होता है।

लक्ष्मणाचार्य (अज्ञात समय)

लक्ष्मणाचार्य—विरचित स्तोत्र चण्डी कुच पञ्चाशिका—इसका विषय र्णन-श्लोक संख्या।

इसका विरचित 'चण्डी-कुच-पञ्चाशिका' नाम का स्तोत्र ाव्य है। इसके जीवन चरित्रके विषयमें कुछ भी पता नहीं है। य: यह आधुनिक कवि है। इसका विरचित अन्य कोई ग्रन्थ सिद्ध नहीं है।

चण्डी-कुचपञ्चाशिका:—यह एक स्तोत्र काव्य है। चण्डी ी के कुच वर्णन पर इसमें ५० श्लोक हैं। किन्तु उपक्रम और पसंहार के श्लोकों को मिला कर इसमें ८३ श्लोक हैं। इसमें वि ने काम शास्त्र का अच्छा परिचय दिया है।

युवराज (ई० १८ श शतक)

युवराज—विरचित स्तोत्र सुधानन्द लहरी—निवासस्थान—समय धारण—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ श्रीपाद सप्तकस्तोत्र, २ मुररिपु- त्र, ३ हेत्वाभास उदाहरणश्लोक—सुधानन्द लहरी का विषय परामर्श ोक संख्या-विशेषता।

इसका विरचित 'सुधानन्द लहरी स्तोत्र है।
को कोटिलिङ्गपुर का रहने वाला बताता है। प्रा
लिङ्ग पुर दक्षिण में कहीं हैं। कोटिलिङ्गपुर
भी स्तोत्र इसके विरचित हैं। यद्यपि इसने
अपनी विद्वत्ता के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा
अपने माता पिता या समय के सम्बन्ध में कुछ
यह[1] व्याकरण न्याय आदि समस्त शास्त्र रूपी
अपने को अगस्त्य समान कहता है॥ पण्डितरा
के लिये अपने को वज्र समान बताता है। का
बुद्धि को नलिनी से भी कोमल और शास्त्र में
तीक्ष्ण कहता है। इसकी अपनी स्तुति को देख
होता है कि इसने जगन्नाथ पण्डित राज का अनु
है। इस लिये इसका समय ई० १७०० के पूर्व
सकता। इसके विरचित अन्य स्तोत्र श्री-पाद

१ शास्त्रेषु शाततमशस्त्रसमापि बुद्धिः
काव्येषु नव्यनलिनाधिकसौकुमारी।
यस्यास्यतामरसलास्यरसा च वाणी।
हर्षं न कस्य कुरुते युवराज एषः॥ १॥
व्याकरणादि-समस्त-शास्त्र समुदायाम्भोधि-कुम्भोद्भ
काव्यालंकृ-तिनाटकोत्थ-सुकृतः काव्यस्य सत्यं सम
पुण्यः पण्डितराजराजिगजताकुम्भाद्रिसम्भेदने।
दम्भोलि युंवराज-कोविदमणिर्वर्त्तते सर्वोपरि।

रिपु-स्तोत्र और हेत्वाभास-उदाहरण-श्लोक भी हैं।

सुधानन्द-लहरी :—यह एक स्तोत्र काव्य है। यह गङ्गा का
है। यह जगन्नाथ पण्डित राज की गङ्गालहरी के अनुकरण
ची गई है। इसमें ५३ श्लोक हैं। यद्यपि इसके अन्तमें कवि
ण्डितराज से स्पर्धा की है तथापि इसका काव्य पण्डित-
के काव्य की तुलना में नहीं ठहर सकता है। पण्डितराज
पद लालित्य व प्रसाद और माधुर्य गुण इसमें नहीं है।
में अभङ्ग और सभङ्ग श्लेष की विशेषता अवश्य है।

मोरोपन्त या मयूर कवि (ई० १७२९-१७९४)

मोरोपन्त—विरचित स्तोत्र मन्त्र रामायण—जीवन-चरित—समय—
के विरचित अन्य ग्रन्थ, १ श्रीकृष्णस्तवराज, २ शिवार्या शतक, ३
स्तव, ४ शङ्करस्तव, ५ अभ्ङान पङ्कज माला बन्ध पञ्चक, ६ पाण्डुरङ्ग
व, ७ गङ्गाविज्ञप्ति, ८ हरिसंबोधन स्तोत्र, ९ राम नामाष्टक, १० दश-
न्य गीति, ११ मुक्ता माला आदि—इसके विरचित मराठी के १०८
यण—मन्त्र रामायणका विषय परामर्ष—छन्द—श्लोक संख्या—
षताएँ।

इसका विरचित " मंत्र रामायण " स्तोत्र काव्य है। यह
क्षिणात्य कहाड ब्राह्मण कोल्हापूर के पास पनहालगढ़ पर
१७२९ में पैदा हुवा था। इसके पिता का नाम राम और
ता का नाम लक्ष्मी था। इसके २ भाई और १ वहिन थीं।
थ रचना काल में यह बारामति में रहता था। पण्ढरपूर
विट्ठल का यह परम भक्त था। इसकी प्रसिद्धि संस्कृत

कवियों में उतनी नहीं है जितनी मराठी कवियों
मराठी काव्यों में भी संस्कृत के शब्द विशे
अभ्यास करने के समय संस्कृत के ५० ग्रन्थ
लिखकर पढ़े थे। इसके विरचित मराठी के ग्र
ही परन्तु संस्कृत के ग्रन्थ भी अनेक हैं जिनमें
राज, शिवार्या-शतक, रामस्तव, शंकरस्तव,
माला-बन्धपञ्चक, पाण्डुरङ्ग-स्तोत्र, गङ्गा-विज्ञ
धन-स्तोत्र, राम-नामाष्टक, दशमस्कन्ध-गीति,
आदि हैं। इसकी मृत्यु ई० १७६४ में हुई।

मन्त्र-रामायण:—मराठी में इसके विरचित
यण हैं। किन्तु यहां उनका प्रपञ्च नहीं किया
कवि ने संस्कृत मंत्र रामायण की रचना अने
की थी। इसके श्लोक अनुष्टुप् छन्द के हैं।
इसकी ४००० के करीब है। मंगलाचरण में रा
वाल्मीकि का वन्दन है। मंत्र रामायण में भी
यमक व अनुप्रास उपस्थित है। यह काव्य सु
भक्ति रस से परिप्लुत है। "श्री राम जय राम
यह त्रयोदशाक्षरी मन्त्र प्रथम काण्ड के प्रथम अ
काण्ड के द्वितीय अक्षर में एवं सप्तम काण्ड
में निकलता है। अर्थात् प्रथम काण्ड के १३

१ अक्षिबाणाङ्क शिखिभिः (३९५२) विज्ञेया
मंत्र रामायण।

क्षरों को एक साथ पढ़ने से यह मन्त्र निकलता है। द्वितीय
एड के १३ श्लोकों के द्वितीय अक्षरों को एक साथ पढ़ने
ऐसे तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ और सप्तम काएड के
येक १३ श्लोकों के क्रम से तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ और
तम अक्षरों को एक साथ पढ़ने से यही मन्त्र निकलता है।
में ४०० बार यह मन्त्र आया है।

अमितगति (ई० ९९४)

अमितगति—विरचित ग्रन्थ सुभाषित रत्नसन्दोह—जीवनी—समय—धारा के मुंज का सभापण्डित—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ १ श्रावकाचार धर्म परीक्षा—सुभाषित रत्नसन्दोह का विषय परामर्श—छन्द—शैली।

इसका विरचित 'सुभाषित-रत्न-सदोह' है। यह दिगम्बर था। मातुरित संघ का साधुतिलक श्री नेमिषेण इसका परम गुरु और उसका शिष्य माधवसेन-सूरि इसका गुरु था। इस ग्रन्थ का रचनाकाल ग्रन्थ के अन्त की प्रशस्ति में ० ९९४[1] कहा है यहां धारा के मुंज का निर्देश होने से यह मुंज का सभापण्डित था। ऐसा अनुमान होता है। इसके विरचित 'श्रावकाचार' और 'धर्म परीक्षा' ये दोनों ग्रन्थ भी हैं। 'धर्म परीक्षा' का रचना काल ई० १०१४ है।

सुभाषित-रत्न-सन्दोह:—यह सुभाषित ग्रन्थ है। इसमें ३२ निरूपण हैं। प्रत्येक निरूपण भिन्न २ छन्द में रचा गया है। सर्वत्र जैन धर्म का उपदेश प्रधान है जो कि वैदिक धर्म के उपदेश से वहुत कुछ मिलता है। षष्ठ निरूपण में स्त्रियों की घृणा, २४ वें में वेश्या की निन्दा, २५ वें में द्यूत निरूपण

---

१ "समारूढे पूर्तत्रिदशवसतिं विक्रमनृपे।
सहस्रे वर्षाणां प्रभवतिहि पञ्चाशदधिके (१०५०)
समाप्ते पञ्चम्यामवति धरणीं मुञ्जनृपतौ।
सितेपक्षे पौषे बुधहितमिदं शास्त्रमनघम्"।

श्लोक ९२२ अन्तिम श्लोक।

२८ वें में जैनों की स्तुति है और ३२ वें में बारह
तपश्चरण निरूपित है। इसकी भाषा बिलकुल
मनोहर है परन्तु सुभाषित श्लोकों का स्वाभावि
और प्रसाद गुण इसमें बहुत कम है।

कवीन्द्र-वचन-समुच्चय

कवीन्द्र वचन समुच्चय—इसकी उपलब्धि—रचयिता आ विषय विवरण—श्लोक।

यह एक सुभाषित ग्रन्थ है। इसमें ई० १००० सुकवियों के सुभाषित वचन संगृहीत हैं। इसकी ह प्रति ई० १२ श शतक की लिखी हुई नेपाल में थी। लण्डन के इण्डिया आफिस पुस्तकालय एफ० डब्ल्यू० थामस (F. W. Thomas) ने नैपा का देवनागरी में उलथा कर इसे छपवाया था। और अवलोकितेश्वर के प्रकरण होने से अनुमान इसका रचयिता कोई बौद्ध होगा। इन दो प्रकर रिक्त अन्य प्रकरण अन्य सुभाषित ग्रन्थों के स इसमें व्यवहार नीति-चरित्र, राज-कारण, श्रृङ्गार आदि पर श्लोक हैं। इसकी श्लोक संख्या ५२५ है।

जल्हण (ई० ११४७ ल० भ०)

जल्हण—विरचित सुभाषित ग्रन्थ १ सूक्तिमुक्तावली मुक्तावली—पितृनाम—समय निर्धारण—पुरी के राजा कृष्ण जयसिंह के मन्त्री अलङ्कार का आश्रित—इसके विरचित

मपाल विलास महाकाव्य, २ सप्तशती छाया—सूक्ति मुक्तावली और भाषित—मुक्तावली का विषय विचार—शैली—विशेषताएँ।

इसके विरचित 'सुभाषित और सूक्तिमुक्तावलि' नाम के भाषित ग्रन्थ हैं। इसके पिता का नाम लक्ष्मी देव था। ह राजा पुरी के राजा कृष्ण का अमात्य था। राजा कृष्ण ० ११४७ में गद्दी पर आया था। मङ्ख ने अपने श्रीकण्ठ चरित जल्हण को अपने भ्राता अलङ्कार के सभा का सभासद तलाया है। अलंकार काश्मीर के राजा जयसिंह का न्त्री ई० ११२७ से ११५० तक था। इसलिये इसका समय १४७ के लगभग का है। इसके विरचित सोमपाल विलास हाकाव्य, और 'सप्तशती-छाया' ये दो ग्रन्थ हैं।

सूक्ति-मुक्तावली तथा सुभाषित-मुक्तावली:—जल्हणके दो सुभाषित ग्रन्थ हैं। इनमें एक छोटा व दूसरा बड़ा है। इन दोनों के ये दो भिन्न २ नाम हैं। इन दोनों में श्लोक क्रम से सम्पत्ति, औदार्य, दैव, शोक, प्रेम, राजभक्ति आदि विषय पर हैं। कवि और कविता के विषय के श्लोक अत्यन्त मनोहर हैं। उनमें कवि और कवियों के ग्रन्थों का यथार्थ वर्णन दिया है।

श्रीधर दास (ई० १२०५)

श्रीधर दास—विरचित सदुक्ति कर्णामृत वा सूक्तिकर्णामृत सुभाषित ग्रन्थ—पितृनाम—समय—वंग के लक्ष्मणसेन के सभापण्डित—सूक्तिकर्णामृत का विषय परामर्ष—शैली।

इसका विरचित 'सदुक्ति-कर्णामृत' या 'सूक्ति... ग्रन्थ है। इसके पिता का नाम बटुदास था। ... पुत्र बङ्गाल के लक्ष्मण सेन राजा के दर्बार में थे। ... सेन का समय ई० ११११ से ११६६ है। इसलिये ... का समय भी यही और इसके बाद १२०५ तक मा...

सदुक्ति-कर्णामृत अथवा सूक्ति-कर्णामृत : -यह ... का ग्रन्थ है। इसमें वङ्गदेश के ४४६ प्राचीन कवियों ... संकलित हैं जिन में गङ्गाधर और ५-६ कवि जो ... और ११५० के मध्य में हुये थे, उनके भी वचन ... व्यवहार आदि के भी अनेक श्लोक हैं। कविता ... तथा रोचक हैं।

शंकरानन्द यति (ई० १३०० ल० भ०।

शङ्करानन्द यति—विरचित ग्रन्थ प्रश्नोत्तर रत्नमाला—... निर्धारण—बुक्क, हरिहर राय विजयानगर के राजा के ... माधव का गुरु—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ १ उपनिषद् ... पुराण, २ २७ उपनिषदों की टीका दीपिका, ३ भगवद् ... बोधिनी, ४ यत्युनुष्ठान पद्धति, ५ शिव सहस्र नाम टीका, ... सार आदि—प्रश्नोत्तर रत्न माला का विषय विचार—छन्द ...

इसका विरचित 'प्रश्नोत्तर रत्नमाला' नाम का ... यह शृङ्गेरी पीठस्थ आद्य शङ्कराचार्य के शिष्यों ... था। इसके पिता का नाम वाञ्छेश और माता का ... था। इसके गुरु का नाम आनन्दात्मा यति था। ...

माधव अर्थात् प्रसिद्ध विद्यारण्य का गुरु था। सायण माधव बुक्क हरिहर राय विजयानगर के राजा के मन्त्री थे। बुक्क हरिहर का शासन ई० १४ श शतक माना जाता है। सायण माधव या माधवाचार्य जब अमात्य था तब उसने अनेक विद्वानों को आश्रय दिया था। इन विद्वानों के परिषद् का अध्यक्ष माधवाचार्य का सहोदर भ्राता सायणाचार्य ही था। सायणाचार्य विरचित वेदादि के भाष्य प्रसिद्ध हैं। माधवाचार्य ने वृद्धावस्था में अमात्य पद छोड़ कर विद्यारण्य की उपाधि ग्रहण कर सन्यास ले शङ्कराचार्य की गद्दी प्राप्त की थी। शंकरानन्द इसके गुरु थे। इसलिये शंकरानन्द का समय ई० १४ श शतक का प्रथम वा द्वितीय पाद माना जा सकता है। इसके विरचित अनेक ग्रन्थ हैं जिनमें सर्व उपनिषदों का सार एकत्रित कर 'आत्मपुराण वा उपनिषद् रत्न' २७ उपनिषदों की दीपिका नाम की टीका, भगवद्गीता तात्पर्यबोधिनी नित्यनुष्ठान-पद्धति, शिवसहस्रनाम टीका तथा सर्वपुराणसार प्रसिद्ध हैं।

प्रश्नोत्तर-रत्नमाला:—यह एक सुभाषित ग्रन्थ है। इसमें ३३ श्लोक हैं। इसमें प्रश्नोत्तर रूप में संसार की हेय और उपादेय वस्तुओं का संक्षेप में अच्छा वर्णन है। यह ग्रन्थ आर्या छन्द में है। इसपर रामचन्द्र भट्ट की टीका है।

शार्ङ्गधर (ई० १३६३ ल० भ०)

शार्ङ्गधर—विरचित ग्रन्थ शार्ङ्गधर पद्धति—वंशवर्णन—समय

निर्धारण—इसका विरचित वैद्यक ग्रन्थ शार्ङ्गधर संहि
पद्धति का विषय—इसका दूसरा नाम शार्ङ्गधर-व्रज्या
सुभाषितावली का आधार ग्रन्थ।

इसका विरचित 'शार्ङ्गधर पद्धति' ग्रन्थ है। इ
दामोदर और पितामह राघवदेव थे। यह राघवदेव
राजा हम्मीर का मन्त्री था। इसका शासन
१३ श शतक में विद्यमान था। गोपाल और देव
पितृव्य थे। लक्ष्मीधर और कृष्ण इसके अनुज थे
था। इसका विरचित वैद्यक ग्रन्थ 'शार्ङ्गधर संहिता'
है। इस संहिता की अनेक टीकाओं में वोपदेव
टीका भी है। वोपदेव देवगिरी के यादव राजा
हेमाद्रि का आश्रित पण्डित था। हेमाद्रि का समय
के लगभग माना गया है। इसलिये शार्ङ्गधर सं
१३०० के पूर्व विरचित थी यह स्पष्ट है। शार्ङ्गधर
यह सुभाषित ग्रन्थ वृद्धावस्था में भी रचा हो
१३६३ में यह ग्रन्थ रचा गया होगा ऐसी कल्पना
सकती है। परन्तु सम्प्रति इसका समय ई०
माना जाता है।

शार्ङ्गधर पद्धतिः—यह सुभाषित का ग्रन्थ है
१६३ पद्धतियां हैं। सब श्लोक ४६८९ है। इनमें अने
कवि विरचित भी हैं। कवि का संग्रह प्रशंसनीय
ग्रन्थ का दूसरा नाम 'शार्ङ्गधर व्रज्या' है। इसमें

कवियों के श्लोक हैं। यह वल्लभदेव के सुभाषितावलि का आधार ग्रन्थ है।

वल्लभदेव (ई० १५ श शतक)

वल्लभदेव—विरचित ग्रन्थ सुभाषितावलि—टीकाकार वल्लभदेव से भिन्न—समय निर्धारण—सुभाषितावलिका विषय विचार—श्लोक संख्या।

इसका विरचित 'सुभाषितावलि' नाम का सुभाषित ग्रन्थ है। इसके विषय में विशेष कुछ पता नहीं चलता। यह वल्लभदेव टीकाकार वल्लभदेव से जिसका उल्लेख मल्लिनाथ और रायमुकुट ने ई० १४ श व १५ श शतक में क्रम से किया है, भिन्न है। इसने जैनोल्लभ दीन के श्लोक उद्धृत किये हैं। इसलिये इस से प्राचीन यह नहीं हो सकता। जैनोल्लभदीन का समय कनिङ्घम् महाशय (Cunningham) के मत से ई० १४१७ से १४६७ तक है। इसलिये इसका समय ई० १५ श शतक का उत्तरार्द्ध मानना आवश्यक है। इसके ग्रन्थ में वल्लभदेव के नाम से अनेक श्लोक मिलते हैं परन्तु ये श्लोक इसी के विरचित हैं या टीकाकार वल्लभदेव के हैं यह नहीं कहा जा सकता।

सुभाषितावलि:—यह एक सुभाषित का ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ शार्ङ्गधर की शार्ङ्गधर पद्धति के आधार पर लिखा गया है। इसमें १०१ पद्धतियां हैं। और श्लोक संख्या ३५२७ है इसमें ३५२ से अधिक कवियों के श्लोक उद्धृत हैं। यह ग्रन्थ संग्रह करने योग्य है।

श्रीवर (ई० १५ श शतक)

श्रीवर—विरचित सुभाषितावलि—निवास स्थान—का... का शिष्य—इसका विरचित अन्य ग्रन्थ कथा कौतुक—सुभा... विषय विचार—श्लोक संख्या ।

इसका विरचित सुभाषित काव्य 'सुभाषितावलि'... काश्मीर का निवासी था, और जोनराज का शि... जोनराज का समय ई० १४४८ के लगभग माना गया... लिये इसका भी वही समय मानना उचित है। इसने... की 'राजतरङ्गिणी' के तृतीय भाग की अर्थात् जैन... ङ्गिणी की रचना में ई० १४५९ से १४८६ तक २७ वर्ष... इसका विरचित दूसरा ग्रन्थ कथा कौतुक है।

सुभाषितावलिः—यह सुभाषित का ग्रन्थ है... ३८० से अधिक कवियों के श्लोक संगृहीत हैं। ... विषयों पर चुने हुये अच्छे २ श्लोक इसमें मिल सकते...

दीक्षित नीलकण्ठ (ई० १६३७)

दीक्षित नीलकण्ठ—विरचित १ कलिविडम्बन, २ सभा... शान्तिविलास, ४ वैराग्य शतक, ५ अन्यापदेश शतक—इन... परामर्श—श्लोक संख्या ।

इसके जीवन चरित्र के विषय में चम्पू-प्रकरण में... जा चुका है इसलिये यहां चर्वित चर्वण नहीं किया जा... इसके विरचित—कलिविडम्बन, सभारञ्जन, शान्ति... वैराग्य शतक और अन्यापदेश शतक हैं।

कलिविडम्बन आदिः—कलिविडम्बन में १०... हैं। कलियुग में प्रधानतया दृश्यमान दम्भ, धौर्त्य...

आदि का इसमें वर्णन है। सभारञ्जन में १०५ श्लोक हैं। इसमें सभा के उपयोगी व तोषप्रद उत्तम २ श्लोक हैं। शान्तिविलास में ५१ श्लोक हैं। इसमें वेदान्त के भाव से भरे उपदेशप्रद श्लोक हैं। वैराग्य शतक में १०५ श्लोक हैं। ये वैराग्य विषयक श्लोक हैं। अन्यापदेश में १०१ श्लोक हैं। ये सब श्लोक अन्योक्ति अलङ्कार से भूषित हैं। उपरोक्त पांचों विभागों के श्लोक कवि विरचित ही हैं, संगृहीत नहीं हैं।

हरिहर (अज्ञात समय)

हरिहर—विरचित हरिहर सुभाषित—माता पिता—समय निर्धारण—हरिहर सुभाषित का विषय विचार।

इसका विरचित 'हरिहर सुभाषित' ग्रन्थ है। इसके पिता का नाम राघव और माता का नाम लक्ष्मी था। इसने इस ग्रन्थके आरम्भ में व्यास वाल्मीकिसे आरम्भकर कालिदासादि प्राचीन कवियों की प्रशंसा करते हुवे शंकर मिश्र तक के कवियों का वर्णन किया है। शंकर मिश्र की तुलना शङ्कराचार्य के साथ करने के कारण यह शंकर मिश्र प्रसिद्ध नैयायिक वैशेषिक सूत्रोपस्कार का कर्ता शंकर मिश्र ही है जिसका समय ई० १४६२ के लगभग माना गया है। इसलिये हरिहर ई० १५०० के बाद का है।

हरिहर-सुभाषितः—इसमें १२ प्रकरण हैं। इसमें उपदेश, शृङ्गार, राजनीति प्रकीर्ण आदि सब प्रकारके सुभाषित श्लोक हैं। इसमेंके सब श्लोक अच्छे कवि विरचित हैं,संगृहीत नहीं हैं।

प्रकरण ७

गद्य-काव्य

गद्य काव्य में काव्य के सभी रस अलङ्कार, गु
विषय रहते हैं किन्तु पद्य-काव्य के सदृश इस में
बन्धन नहीं रहता है। गद्य-काव्य का विकास बहु
काल से ही पद्य-काव्य के साथ २ होता चला आया है
भारत के समय में ही गद्य-काव्य को व्यवस्थित रू
चुका था यह बात महाभारत के गद्य को देखने से
सकती है। महाभाष्यकार पतञ्जलि के समय में
और आख्यायिकाएँ रची गई थीं क्योंकि महाभाष्य
दत्ता, सुमनोत्तरा, भैमरथी आदि आख्यायिका ग्रन्थ
निर्देश मिलता है। भास, कालिदास आदि प्राचीन
के नाटकों में गद्य-काव्य की सुन्दर झलक है। ई०
शतक के शिला लेखों से प्रारम्भ कर ई० ६ षष्ठ श
शिला लेखों के गद्यों में भी काव्य है। ई० ६ षष्ठ
पूर्व का गद्य-काव्य का कोई प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध

गद्य-काव्य के प्राचीन रचयिताओं में दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट ही श्रेष्ठ हैं और इनके उपलब्ध ग्रन्थ भी गद्य-काव्य के आदर्श माने जाते हैं। पद्य-काव्य से गद्य-काव्य की श्रेष्ठता दिखाते हुवे वामन ने कहा है कि 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' अर्थात् गद्य-काव्य ही कवियों की कसौटी है।

इस प्रकरण में दण्डी कवि से प्रारम्भ कर प्रसिद्ध २ कवि और उनके निर्मित गद्य ग्रन्थों का वर्णन संक्षेप में किया गया है।

दण्डी (ई० ६०० ल० म०)

दण्डी—विरचित ग्रन्थ दशकुमार चरित—अवन्ति सुन्दरी कथा के अनुसार मत—दशकुमार चरित का विषय वर्णन—शैली—रीति—टीकाएँ।

इसका विरचित गद्य-काव्य दशकुमार-चरित है। दण्डी के चरित्र और ग्रन्थों के विषय में अलङ्कार प्रकरण में विस्तार पूर्वक कहा गया है। दण्डी के समय के विषय में भी वहां दो मत निर्दिष्ट हैं। प्रथम बाणभट्ट और भर्तृहरि के बाद सप्तम शतक के उत्तरार्द्ध और दूसरा बाणभट्ट और सुबन्धु के पूर्व षष्ठ शतक का उत्तरार्द्ध वा अन्त में—दण्डी यदि अवन्ति सुन्दरी कथा का अनुसार भारवि का प्रपौत्र वास्तवमें हो और भारवि का वास्तव्य यदि काञ्ची के सिंहविष्णुवर्मा के सभा में मान लें तो दण्डी का समय ७ म शतक का उत्तरार्द्ध मान लेना आवश्यक होता है। भारवि का सम्बन्ध काञ्ची के सिंहविष्णु

वर्मा की सभा में न मान कर यदि षष्ठ शतक
माना जाय तो दण्डी का अस्तित्व वाणभट्ट और
पूर्व में सिद्ध हो सकता है। कीथ महाशय के
कुमार चरित का भूगोल वर्णन हर्षवर्द्धन के
वर्णन से सादृश्य रखता है। दशकुमार चरित की
भी दण्डी के सुबन्धु और वाणभट्ट के पूर्ववर्तित्व
करती है। ऐसी अवस्था में कोई निर्णय करना

दशकुमार-चरित :—यह एक गद्यकाव्य है।
पीठिका, चरित और उत्तर पीठिका ये तीन
पूर्वपीठिका में ५ उच्छ्रास हैं। चरित में ८ उच्छ्रास
पीठिका ८ म उच्छ्वास का ही उपसंहार है। इस
भाषा सुबन्धु और वाणभट्ट की भाषा से सरल
है। इसमें श्लेषालङ्कार नहीं है। अन्य अलङ्कारों का
नहीं है। इसमें राजवाहनादि दस राजपुत्रों की
मनोहरता से वर्णित है। इसमें मनोरंजन के साथ
का भी उपदेश देने का भाव प्रकट होता है।
शास्त्र प्रवीणता भी कहीं २ झलक पड़ती है।
अश्लीलता का बोध होने के कारण वह दोषावह है।
और वाण के असदृश इस काव्य में काव्य वर्णन
कथा सन्दर्भ भी पाठकों के स्मृति पथ से दूर नहीं
इसमें उस समय के व्यवहार की प्रायः सभी
झलकाई गई हैं। इस काव्य के सूक्ष्म निरीक्षण

सकती है कि पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका के लेखक दश-
मार चरित के लेखक से भिन्न हो सकते हैं। इस विषय में
की अनेक बातें हैं जो एक दूसरे से मेल नहीं खातीं।
द्वानों ने पूर्व और उत्तर पीठिका के लेखकों को दण्डी से
तिरिक्त माना है। कोई पद्मनाभ को उत्तर पीठिकाकार
ते हैं। भाषा प्रयोग में सुबन्धु की अपेक्षा दण्डी ने
णिनीय व्याकरणों के नियमों का अधिक पालन किया है।
में लिट् और लुङ् लकार के प्रयोग व्याकरण के अनुकूल हैं
कि सुबन्धु को वासवदत्ता में नहीं हैं। केवल दशकुमार
त पर ३ टीकाएँ हैं जो की पूर्व पीठिका और उत्तर
ठिका पर नहीं हैं। कवीन्द्राचार्य की विरचित पदचन्द्रिका,
राम का भूषण और भानुचन्द्र की लघुदीपिका टीका हैं।
पीठिका पर पददीपिका नाम की टीका है। ये तीन
द्ध टीकाएँ पूर्व पीठिका पर न होने से पूर्व पीठिका दण्डी
चित नहीं है यह कहा जा सकता है।

सुबन्धु (ई० ६००)

सुबन्धु—विरचित ग्रन्थ वासवदत्ता—समय निर्धारण—वासवदत्ता
विषय परामर्श—शैली—रीति—टीकाएँ।

इसका विरचित वासवदत्ता नाम का गद्य काव्य है।
के जीवन-चरित के सम्बन्ध में कुछ विशेष पता नहीं
ता। सुबन्धु की वासवदत्ता और बाण की कादम्बरी और
चरित पढ़ने से मालूम होता है कि बाण ने सुबन्धु के हीं

ढांचे पर अपने गद्य काव्यों की रचना की थी। बाण ने दोनों गद्य काव्यों के प्रारम्भ में सुबन्धु की प्रशंसा[1] की है। वाक्पतिराज ने भी अपने गौडवहो काव्य में भास, ... और हरिचन्द्र के साथ सुबन्धु का निर्देश किया है। ... ने भी राघव पाण्डवीय[2] में वक्रोक्ति में निपुण ... और कविराज ही हैं ऐसा कहा है। ई० ११६८ ... शिलालेख में भी इसकी प्रशंसा खुदी है। सुबन्धु ... मे उल्लिखित सर्व ग्रन्थ ई० ६०० के पूर्व के हैं। ... पूर्वावधि निश्चित करने के लिये वासवदत्ता का ... स्थितिमिव उद्योतकरस्वरूपां बौद्ध-संगतिमिव ... भूषितां......वासवदत्तां ददर्श" यह वाक्य बहुत ... इस वाक्य में न्यायवार्तिककार उद्योतकर और ... प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक धर्मकीर्ति निर्दिष्ट हैं। ... समय ई० ६०० के लगभग माना गया है और वास...

---

१ कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।

शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्।

हर्षचरित

२ सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयम्।

वक्रोक्ति-मार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा।

राघव पाण्डवीय १ सर्ग

३ वासवदत्ता हाल मुद्रित पृ० २३५।

ई० ६४० है। इसलिये सुबन्धु ७ म शतक के प्रथम पाद में विद्यमान था ऐसा मानना आवश्यक है।

वासवदत्ता:—यह गद्य काव्य है। यह विद्यमान गद्य काव्यों में प्राचीन माना जाता है। इसकी कथा कविकल्पित है। इसलिये कोई विद्वान् इसे कथा तथा कोई आख्यायिका कहते हैं। इसके आरम्भ में सुभाषित श्लोक हैं और उनके अन्त में कवि ने अपने और काव्य के विषय में कहा है कि इसके प्रति अक्षर में श्लेष है और यह स्फूर्ति सरस्वती के प्रसाद[1] से हुई है। इस कथन के अनुसार सर्वत्र ही श्लेष मिलता है। इन श्लेषादि अलङ्कारों में आये हुए रामायण व महाभारत में के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि कवि को रामायण और महाभारत हस्तामलकवत् ज्ञात थे। काव्यमें बीच २ में श्लोक भी हैं। इसकी रीति गौडी है। इसमें ओजोगुण पूर्णतया प्रकट है। गौडी रीति के प्रधान लक्षण भूत दीर्घ समासों से यह परिपूर्ण है। इस पर ६ टीकाएँ हैं, जिनमें जगद्धर की 'तत्वदीपिनी', रामदेव की तत्वकौमुदी और शिवराम का काञ्चन-दर्पण प्रसिद्ध हैं।

---

[1] सरस्वतीदत्तकरप्रसाद श्चक्रे सुबन्धुस्सुजनैकबन्धुः।
प्रत्यक्षर-श्लेपमय-प्रबन्ध-विन्यास-वैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम्।

वासवदत्ता मङ्गलाचरण श्लो० १३।

बाण भट्ट (ई० ६५०)

बाणभट्ट—विरचित ग्रन्थ १ कादम्बरी २ हर्षचरित—शैली—समय निर्धारण—कन्नौज के हर्ष वर्धन का सभा पण्डित—कादम्बरी के रचयिता बाण का पुत्र भूषण भट्ट—इसके विरचित १ चण्डी शतक २ पार्वती-परिणय—पार्वती-परिणय के सम्बन्ध में—कादम्बरी और हर्ष चरित का विषय वर्णन—शैली—रीति—

इसके विरचित कादम्बरी और हर्ष चरित ... काव्य हैं। बाण भट्ट वात्स्यायन वंश में उत्पन्न हुवा ... पिता का नाम चित्रभानु और माता का नाम राज्य... चित्रभानु के १३ भाई थे उनमें चित्रभानु ८ वां था। ... का जन्महिरण्य बाहु वा शोण नदी के किनारे प्रीतिकूट ग्राम में हुवा था। बहुत बाल्यावस्था में ही इसकी ... हुई थी। इस लिये पिता का अकेला पुत्र होने के कारण ... का कार्य भी पिता को ही करना पड़ा। १४ वर्ष की ... पिता का भी देहान्त हो गया। इसके अनन्तर वाण ... वर्ष तक इधर उधर भटकता था। इस प्रकार घूमने ... देश देशान्तर देखने से इसका अनुभव बहुत कुछ बृद्धि ... था तो भी सर्व साधारण इसको उपहास की ... देखते थे। सम्राट् हर्षवर्द्धन का चचेरा भाई कृष्ण, बाण ... बहुत चाहता था। जब बाणभट्ट का दुर्लौकिक उदं... में पड़ा, तब उसने उसको पत्र भेज कर बुलवाया और हर्ष बर्द्धन की सभा में प्रवेश करा दिया। यद्यपि हर्ष

बाण को पहले नहीं चाहता था तथापि उसकी विलक्षण विद्वत्ता से सन्तुष्ट होकर वह उसको थोड़े ही दिनों के बाद अत्यन्त आदर से देखने लगा। हर्षवर्द्धन की आज्ञा से ही बाण ने हर्षचरित लिखा। कादम्बरी की रचना इसके बाद हुई। परन्तु ये दोनों ही ग्रन्थ अधूरे रह गये थे। कादम्बरी को इसके पुत्र भूषण भट्ट वा भट्ट पुलिन ने पितृ प्रेम से उत्तर भाग लिख कर पूर्ण किया। जिस हर्ष वर्द्धन का वर्णन हर्षचरित्र में बाण ने किया वह सम्राट् हर्ष वर्द्धन स्थाण्वीश्वर(Thaneshwar) और कान्यकुब्ज में ई० ६०६–६४८ तक शासन करता था यह बात चीन यात्री ह्युएन्त सङ्ग ने (ई० ६२६–६४२) जो भारत आकर अपना प्रवास वर्णन लिखा है उससे सिद्ध होता है। इस लिये इसका समय सप्तम शतक का प्रथम और द्वितीय पाद माना गया है। इन दोनों गद्य काव्यों के अतिरिक्त चण्डी-शतक नामक स्तोत्र काव्य है जो दुर्गा की स्तुति पर मयूर शतक की स्पर्धा में लिखा गया था। पार्वती-परिणय नाटक भी इसका विरचित माना जाता है परन्तु वास्तव में वह १५ श शतक के वामन-भट्टबाण का विरचित है।

हर्ष-चरित :—यह आख्यायिका है। इसके ८ उच्छ्वास हैं। ग्रन्थके आरम्भमें शिवका मङ्गल है। परन्तु उसमें समाप्तिका कोई चिन्ह नहीं हैं। इससे इस ग्रन्थ की अपूर्णता झलकती है। इसके प्रथम दो तथा तृतीय उच्छ्वास के कुछ अंश में कवि ने अपना परिचय दिया है इसके पश्चात् हर्षवर्द्धन का वर्णन

प्रारम्भ होता है। यह काव्य गद्य के ओजो गुण ...
रीति से भरापूरा है। प्रति उच्छ्वास के आरम्भ में ...
हैं। इसमें कादम्बरी के सदृश अलङ्कार-बाहुल्य नहीं है ...
दो टीकाएँ राजानक रुय्यक वा रुचक का विरचित ...
वार्तिक और शंकर विरचित हर्ष-चरित-संकेत, हैं।

कादम्बरीः—यह कथा है। यह उच्छ्वासादि ...
विभक्त नहीं है। प्रस्तावना के तौर पर कवि ने ...
प्रकरण लिखा है जिसके बाद से ग्रन्थ की मूल कथा ...
होती है। इस कथा की नायिका कादम्बरी नाम की ...
चन्द्रापीड नायक है। कवि ने इस कथा द्वारा अपने ...
के विलास इसमें प्रकट किये हैं। यद्यपि इसकी ...
छोटी है तो भी वर्णन के विस्तार से विस्तृत हो ...
इसका कथानक गुणाढ्य की बृहत्कथा से लिया ...
इसमें भिन्न २ स्थान और विषयों के वर्णन के साथ ...
राजनीति-वर्णन-पाटव भी झलकता है। इसकी भाषा ...
से अनुमान होता है कि यह ग्रन्थ हर्षचरित के ...
रचा हुआ है। बाण भट्ट पर यह दोष दिया जाता है कि ...
अपने वर्णन के झोंके में कथा के सन्दर्भ को बहुत ...
कर दिया है। यह दोष इसके पुत्र के विरचित उत्तर ...
विशेषतया दीख पड़ता है। भूषण भट्ट की भाषा ...
इतिहास पुराण का ज्ञान बाण भट्ट से बहुत ही हीन ...
है। इस पर ६ टीकाएँ हैं जिनमें वैद्यनाथ पायगुण्डे ...

पम-पद-वृत्ति और भानुचन्द्र[1] व सिद्धचन्द्र की टीकाएँ सिद्ध हैं।

धनपाल (ई० १००० ल० भ०)

धनपाल—विरचित ग्रन्थ तिलक मञ्जरी—जीवन चरित्र—समय र्धारण—धारा के राजाओं का सभापण्डित—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ पाइयलच्छी नाम माला, २ ऋषभ पञ्चाशिका—तिलक मञ्जरी का य परामर्श।

इसका विरचित 'तिलक मञ्जरी' नाम का गद्य काव्य है। के पिता का नाम सर्वदेव था। यह काश्यप गोत्रीय था र विशालापुरी में निवास करता था। इसके भाई का नाम न था। सर्वदेव ने जैन धर्म की दीक्षा ली थी। इसीलिये पाल भी जैन ही था। इसने स्वयं तिलक मञ्जरी की तावना में कहा है कि मुञ्जराज ने इसको सरस्वती की धि दी थी। इसने अपनी प्रस्तावना में मुंज, सिन्धुराज र भोजराज इन तीनों का वर्णन किया है। इसलिये मालूम ता है कि यह कवि तीनों के समय में विद्यमान था। इसने ना प्राकृत कोष पाइयलच्छी नाममाला मुञ्ज ई० ६७२-६६७ समय में रचा था। जैन दीक्षा के बाद इसने ५० श्लोकों ऋषभदेव की स्तुति—'ऋषभ पञ्चाशिका' की रचना की।

---

१ ये गुरु शिष्य थे। पूर्व कादम्बरी पर भानुचन्द्र की टीका है और तर पर सिद्धचन्द्र की है।

बाण की कादम्बरी का अनुकरण कर यह तिलक...
काव्य अन्त में रचा था। इसलिये इसका स...
से १०२२ तक माना जाता है। जैन मेरुतुङ्ग आचा...
भोजराज का सभापण्डित कहा है।

तिलक-मञ्जरी:—यह कथा है। इसमें भी...
सादि विभाग नहीं है। तिलक मञ्जरी इसकी ना...
समरकेतु इसका नायक है। यह कादम्बरी का अ...
इसमें भी प्रस्तावना में अनेक श्लोक हैं। इस...
प्रायः सभी प्राचीन पण्डितों की प्रशंसा की है। इ...
कादम्बरी की भाषा के सदृश ओजस्वी नहीं है।...
गद्य काव्य अन्य गुण अलङ्कारादिकों से युक्त है।...
टीका उपलब्ध नहीं है।

वादीभ-सिंह (ई० १००० ल० भ०)

वादीभ सिंह—विरचित ग्रन्थ 'गद्दय चिन्तामणि'—...
निर्धारण—गद्य चिन्तामणि का विषय परामर्श—शैली—...

इसकी विरचित 'गद्य-चिन्तामणि यह गद्य-का...
दिगम्बरजैन भिक्षु था। इसके गुरु का नाम पुष्प-सेन...
दूसरानाम उदय-देव था॥ यह प्रतिवादि रूपी हाथि...
सिंह के समान था इसलिये इसका नाम वादीभ-सिंह...
यह मद्रास प्रान्त के दक्षिण में किसी ग्राम का नि...
भोज राजा (ई० १०१८-५५) के समकालिक का...
एक वचन "अहा धारा निराधारा निरालम्बा सर...

के वचन के सदृश है। इसलिये यह भोज का पूर्ववर्ति र्थात् ई० १० म शतक का माना जाता है।

गद्य-चिन्तामणि :—इस गद्य ग्रन्थ में जीवनधर को वर्णित है जो जैनपुराण से ली गई है। इसका कथानक म्बरी के कथानक के सदृश है। रीति और भाषा वैचित्र्य बाण का अनुकरण दीख पड़ता है कहीं २ तो इसमें बाण वचनों से कुछ भी भेद नहीं दिखाता। इसकी कोई टीका लब्ध नहीं है।

वामन भट्ट बाण (ई० १५ श शतक)

वामन भट्ट बाण—विरचित ग्रन्थ वेम भूपाल चरित—इसका विषय र्श—शैली—रीति—टिप्पणी।

इसका विरचित "वेम भूपाल चरित" गद्य काव्य है। इसके न चरित्र तथा समय के विषय में खण्ड काव्य प्रकरण में भ्युदय के वर्णन में उहापोह किया जा चुका है अतः पुनः ष्ट-पेषण करना व्यर्थ है।

वेम-भूपाल-चरित :—यह आख्यायिका है। इसमें बाण के हर्षचरित का अनुकरण है। इसके ४ उच्छ्वास हैं। में राजा वेम का चरित वर्णित है। राजा वेम का दूसरा म वीरनायण था जो की पेद्द कोमटीन्द्र और अनन्ताम्बा पुत्र था। कवि ने वेम भूपाल के चरित वर्णन के मिष से ना गद्य ग्रन्थ रचना कौशल प्रकट करते हुवे, महाकाव्यों में वश्यक नगरार्णव शैलादि का वर्णन कर इसको महाकाव्य के

गुणों से विभूषित किया है। इसका पद-विन्या
आशया-विष्करण-गाम्भीर्य, सरसालङ्कार-योजना,
शृङ्गार आदि बाण भट्ट के अनुकरण पर हैं। इसकी
न्त मधुर, सरल तथा मनोहर है। अलङ्कार भी प्रायः
और सुप्रयुक्त हैं। कवि ने अपने को जो 'गद्य कवि
कहा है वह यथार्थ है। इसपर प्राचीन टीका कोई
है परन्तु आधुनिक १ टिप्पणी इस पुस्तक के साथ
चारि विरचित छपी है।

प्रकरण ८

कथा व आख्यायिका

यहाँ कथा व आख्यायिका से गद्य-काव्य के कथा और आख्यायिका ये दो भेद गृहीत नहीं हैं। इस प्रकरण में गद्य-काव्य के वे ही ग्रन्थ वर्णित हैं जिन में उपदेश और मनोरंजन के लिये अनेक कथाएँ एकत्रित लिखी गई हैं, जैसे पञ्चतन्त्र हितोपदेश आदि। यद्यपि काव्यादर्श में दण्डी ने "अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः" ऐसा कह कर गद्य काव्य के अन्तर्गत ही ऐसे ग्रन्थों को मान लिया है तथापि सूक्ष्म दृष्टि से देखने से मालूम हो सकता है कि इनमें गद्य काव्य कहलाने योग्य विशेष गुण बहुत कम हैं।

इस प्रकार की कथा और आख्यायिका लिखने की प्रथा वैदिक काल से चली आई है। वेद ग्रन्थों के अनेक आख्यानों से यह कल्पना दृढ़ होती है। समयानुसार इन प्राचीन तथा नवीन आख्यान और कथाओं का संग्रह महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों में हुवा। जैन और बौद्धों ने भी अपने २ ग्रन्थों का लोक में प्रचार करने के हेतु से आदि पुराण, जातक ग्रन्थ आदि अनेक कथा ग्रन्थ निर्माण किये। इन्हीं ग्रन्थों के

आधार पर इस प्रकरण में वर्णित प्रायः सभी ग्रन्थ
हैं। ये ग्रन्थ दो विभागों में विभक्त किये जा सकते
नीति वा उपदेश परक-जैसे पञ्चतन्त्र, हितोपदेश और
जैनों के कुछ ग्रन्थ, २ विनोद परक—जैसे बृहत्कथा
सरित्सागर आदि।

इस प्रकार के उपलब्ध ग्रन्थों में सब से प्राचीन
का "ललित-विस्तर" होने से उसी से प्रारम्भ कर
कथा ग्रन्थों का वर्णन इस प्रकरण में किया गया है।

ललित-विस्तर (ई० ७० के पूर्व)

ललित विस्तर—बौद्ध त्रिपिटकों का अन्तिम भाग—
वर्णन—श्लोक संख्या—अन्य भाषाओं में अनुवाद—सम
के बुद्ध चरित का आधार ग्रन्थ।

यह बौद्ध त्रिपिटकों का अन्तिम भाग माना
इसमें गौतम बुद्ध की अनेक कथाएँ गद्य तथा पद्य में
पद्य प्रायः गाथा छन्द में हैं। इसके अन्त में महा
महायान सूत्र जोड़े गये हैं। इस ग्रन्थ में गाथा छन्द
श्लोक हैं। इसके २७ अध्याय हैं। अध्यायों का
में है किन्तु अन्य महावैपुल्य सूत्रों की तरह अन्त में
में गाथा छन्द में गद्य का सारांश वर्णित है। इस
भाषा में ई० ६ ष्ठ व ७ म शतक में अनुवाद हुवा
ग्रन्थ की चीन भाषा में भी बहुत सी प्रतियां उपलब्ध
तङ्ग वंश के 'शमण दिवाकर' का अनुवादित ग्रन्थ

और ६०४ के मध्य का है। इसमें प्रायः गद्य का ही अनुवाद
। भारतीय बौद्ध भिक्षु धर्मरक्ष का अनुवादित दूसरा ग्रन्थ
२६५-३१३ के लगभग का है। चीन देश के महाकोष
Chinese Encyclopaedia) से ज्ञात होता है कि चीन
बौद्ध भिक्षु ने इसका अनुवाद ई० ७० के करीब में किया
[1]। इस ग्रन्थ का पद्य भाग वा गाथा भाग बहुत प्राचीन
ना जाता है। गौतम बुद्ध ने पाली भाषा में अपने धर्म का
देश किया था। उस उपदेश को ज्यों का त्यों रखने की
च्छा से केवल पाली शब्दों के स्थान पर उनके पर्यायवाचक
स्कृत शब्द रख कर यह गाथा भाग रचा गया है। विद्वानों
मत से यह प्रयत्न बौद्धों की द्वितीय परिषद् के समय
र्थात् ई० पू० ३०० व ४०० के मध्य में हुवा[2] है।

ऐसा माना जाता है कि अश्वघोष का बुद्ध-चरित इसी
'ललित-विस्तर' के आधार पर रचा गया था। इसमें गौतम
बुद्ध का जन्म, बाल्यावस्था, युवावस्था और बोधिवृक्ष के
नीचे धर्म साक्षात्कार होने तक का वर्णन है। संस्कृत भाषा में
इस तरह का पूर्ण वर्णन करने वाला यह प्रथम ग्रन्थ है।
गौतम बुद्ध की उपदेशकावस्था, निर्वाण और और्ध्वदेहिक
क्रिया का वर्णन सूत्र तथा अवदान ग्रन्थों में और बुद्ध घोष
विरचित पाली ग्रन्थों में मिलता है। किन्तु ललित-विस्तर

[1] ललित विस्तर की राजेन्द्रलाल की भूमिका पृ० १८,१९।
[2] ललित विस्तर की राजेन्द्रलाल की भूमिका पृ० ५६।

की तरह कोई भी पूर्ण वर्णन करने वाला एक ग्रन्थ
ललित विस्तर की कथाओं में असित की कथा (अ
बिम्बिसार की कथा (अध्याय १६) बुद्धमार संवाद (
और सारनाथ पर बुद्ध का उपदेश आदि बहुत प्र
ये सब प्राचीन वर्णन तथा उपदेश गाथा छन्द में
अर्वाचीन विषय अन्य छन्दों में वर्णित हैं।

गुणाढ्य (ई० ७८)

गुणाढ्य—विरचित ग्रन्थ बृहत्कथा - इसकी भाषा - बृहत्
आख्यायिका - इसके अनुवादक संस्कृत ग्रन्थ—समय विचार-
का विषय विवरण ।

इसका विरचित 'बृहत्कथा' नाम का कथा का
काव्य पैशाची भाषा में लिखा हुआ है इसका पैशाची
रचे जाने का कारण यह बताया जाता है कि शातवा
७८) के समय गुणाढ्य प्रतिष्ठान में जन्म लेकर अ
के कारण शात वाहन का बड़ा प्रिय पात्र हुवा था। ए
जल क्रीड़ा में जल के छींटोंसे त्रस्त होकर स्त्रियों ने
से कहा कि 'मोदकं देहि राजन्' अर्थात् राजा पानी म
परन्तु शातवाहन संस्कृत भाषा में निपुण न होने से
कि ये लड्डू मांगती हैं और यह समझ कर उनको ल
इस पर सब स्त्रियां हँसने लगीं। इससे लज्जित हो
संस्कृत सीखने की इच्छा गुणाढ्य से प्रगट की। गु
कहा कि 'मैं तुमको ६ वर्ष में संस्कृत सिखा स

र्व वर्मा भी वहां बैठा था और उसने ६ मास में संस्कृत सिखाने की प्रतिज्ञा कर कातन्त्र व्याकरण की रचना की। गुणाढ्य खिन्न होकर जंगल २ घूमने लगा और वहां काण-भूति से उसने बृहत्कथा का श्रवण किया। उस कथा को अन्य किसी भाषाओं में न लिखकर पैशाची में लिखा। जब वह पुस्तक शिष्यद्वारा शालिवाहन के सामने आई तो उसने उस का तिरस्कार किया। इससे दुःखित होकर वह एक एक पत्र बांच कर और पशुपक्षियों को सुनाकर अग्नि में भस्म करने लगा। जब शालिवाहन को यह पता लगा तब वह स्वयं वहां आया और ७००००० श्लोकों में से बचे हुए १००००० श्लोकों को बचा सका। यही बचे हुवे श्लोक आज कल बृहत्कथा के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह ग्रन्थ रामायण महाभारत की तरह अनेक ग्रन्थों की निर्मिति में आधार भूत हुवा है। इसकी पिशाची भाषा का अध्ययन कर संस्कृत में बृहत्कथा मञ्जरी, कथा सरित्सागर और हर चरित चिन्तामणि आदि अनेक ग्रन्थ बने हैं। इसका कथानक सुबन्धु, बाण, दण्डी आदि प्राचीन कवियों से लेकर आधुनिक कवियों तक सबको विदित था। इसलिये इसका समय द्वितीय वा तृतीय शतक से अर्वाचीन कदापि नहीं हो सकता। यदि शालिवाहन और गुणाढ्य का संयोग जैसा कथा में वर्णित है ठीक हो तो इसका समय शालिवाहन का समय ही अर्थात् ई० ७८ ठीक है।

बृहत्कथा :—यह पैशाची भाषा में लिखा हुवा कथा

संग्रह था। यह गद्य में था वा पद्य में इस विषय में
है। काश्मीरी परम्परा इसको श्लोकबद्ध मानती है
काव्यादर्श में दण्डी[1] ने जो इस ग्रन्थ का वर्णन किया
में इसको गद्यात्मक ही माना है। जातक माला के
बीच २ में श्लोक होना भी सम्भव है। संप्रति यह ग्रन्थ
पलब्ध है। तो भी इस ग्रन्थ का परिचय तथा कथा
आनन्द संस्कृत बृहत्कथा-मञ्जरी, कथा-सरित्सागर,
चिन्तामणि आदि ग्रन्थों से मिलता है। यह अनुमान
ही है कि इस ग्रन्थों के रचयिताओं को गुणाढ्य की
उपलब्ध थी। 'इसकी पैशाची भाषा विन्ध्याद्रि
की मूल भाषा मानी जाती है परन्तु कोई इसको भा
के वायव्य सीमा पर प्रचलित भाषा मानते हैं। जो
पुस्तक की अनुपलब्धि में इन सब विषयों पर विचार
व्यर्थ ही है।

मातृचेट (२ य शतक)

मातृचेट—तिब्बत के ऐतिहासिक तारानाथ का मत—इसका
स्तोत्रशत पञ्चाशतिका—इसका चीन भाषा में अनुवाद—अवदान
अवदान शतक का विषय विवरण—दिव्यावदान का विषय परा

---

१ अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा इति तस्य प्रभेदौ द्वौ
१ परि० श्लो०

भूतभाषामयीं प्राहु रद्भुतार्थां बृहत्कथां।
काव्यादर्श १ परि० श्लो०

तिब्बत का प्रसिद्ध ऐतिहासिक तारानाथ कहता है कि मातृचेट, अश्वघोष का दूसरा नाम था। किन्तु आधुनिक ऐतिहासिक इसको अश्वघोष से भिन्न मानते हैं। यह अश्वघोष का समकालिक था यह बात मातृचेट लिखित एक पत्र[1] से सिद्ध होती है। इस पत्र में मातृचेट ने कनिष्क से निमन्त्रित होने पर अपनी वृद्धावस्था के कारण कनिष्क के यहां जाने में असमर्थता प्रकट की है। इसके अनेक ग्रन्थ संस्कृत में तुर्फान देश में लिखे हुवे मध्य एशिया में अश्वघोष के नाटक के साथ उपलब्ध हुवे हैं। मातृचेट का १५० श्लोक का १ स्तोत्र 'शत-पञ्चाशतिका स्तोत्र' के नाम से बौद्ध संघ में बहुत प्रसिद्ध है। इत्सिङ्ग नामक चीन यात्री ने इसका आदरपूर्वक वर्णन किया है। आसङ्ग और वसुबन्धु सदृश बौद्ध तत्व वेत्ताओं ने भी मातृचेट की प्रशंसा की है। इत्सिङ्ग ने इस स्तोत्र का चीन भाषा में अनुवाद किया है।

इस समय बौद्धों में गौतम बुद्ध की कथाएँ श्रवण करने की बहुत श्रद्धा थी और विशेष कर धर्म और लोकोपकार में जिन बोधिसत्वों ने अपने प्राणों की आहुति दी थी उनकी कथाएँ अवदान के नाम से प्रसिद्ध होती थीं। ऐसे ग्रन्थों में सबसे प्राचीन अवदान शतक है जिसका अनुवाद चीन भाषा में ३ य शतक के पूर्वार्द्ध में हो चुका था। इसकी कथाएँ जातक माला की कथाओं से भिन्न नहीं हैं। अवदान शतक

[1] इण्डियन एण्टिक्वेरी १९०३।

गद्य पद्यात्मक काव्य है। काव्य की दृष्टि से इसमें कोई विशेषता नहीं है। इसके दस दशक हैं। इसमें बौद्ध होने के उपाय वर्णित हैं। इसके सदृश 'दिव्यावदान' दूसरा कथा संग्रह ग्रन्थ है। इसका ई० २६५ में चीनी में अनुवाद हुआ है। इसमें बीच २ में लम्बे समास और बड़े २ छन्दों के पद्य भी मिलते हैं। इसमें सूत्रालङ्कार, बौद्ध चरित तथा सौन्दरनन्द का मिलता है।

विष्णु शर्मा (ई० २ य शतक)

विष्णु शर्मा—विरचित ग्रन्थ पञ्चतन्त्र—रचयिता के ग्रन्थ का रचना स्थान—समय निर्धारण—पञ्च तन्त्र का विषय

इसका 'विरचित पञ्चतन्त्र' नाम की उपदेश वा आख्यायिका है। दाक्षिणात्य जनपद के महि नामक नगर में अमरशक्ति नाम का राजा राज्य करता उसने अपने ३ लड़कों को पढ़ाने के लिये विष्णु नियुक्त किया था। विष्णु शर्मा अर्थ शास्त्र और नीति का वेत्ता था। यह मन्वादि धर्म शास्त्र, चाणक्यादि वात्सायननादि काम शास्त्र, को अच्छी तरह जानता ऐसी कथा पंचतन्त्र के कथामुख में वर्णित है। परन्तु में राजा अमर शक्ति का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता हर्तल (Hertel) पञ्चतन्त्र की रचना काश्मीर में हुई मानता है क्योंकि इसमें हरिन और व्याघ्र का वर्णन बहुत

और काश्मीर में भी ये जानवर नहीं मिलते। परन्तु इसकी जन्मभूमि दक्षिण ही होनी चाहिये क्योंकि इस के सदृश रत्नाख्यायिका नामका दूसरा ग्रन्थ ऋष्यमूक पर्वत के आस पास में रचा गया है। इसमें पुष्कर,गङ्गाद्वार (हरिद्वार),प्रयाग, काशी आदि तीर्थ स्थान का उल्लेख आया है। यद्यपि विष्णु शर्मा और उसकी जन्मभूमि के सम्बन्ध में कोई निश्चय नहीं किया जा सकता है तथापि इस ग्रन्थ के प्राचीनत्व के अनेक प्रमाण मिल सकते हैं।

इसका पहलवी भाषा में ई० ५७० के पूर्व अनुवाद हुवा था। यद्यपि वह अनुवाद इस समय विद्यमान नहीं है तथापि उसका अनुवाद जो सीरिया और अरब भाषामें हुवा है उससे पहलवी भाषा के अनुवाद की सिद्धि होती है। पह्लवी भाषा में अनुवाद होने के कई सौ वर्ष पूर्व यह ग्रन्थ भारत में प्रसिद्ध था ऐसा अनुमान किया जा सकता है। हर्तेल (Hertel) ने इसका समय ई० पू० २०० माना है किन्तु इसमें महा भारत की कथाएँ तथा दीनार शब्दका प्रयोग मिलनेसे कीथ (Keith) इसकी रचना ई० २०० से पूर्व नहीं मानते हैं। परन्तु पाठकों को यह समझ लेना चाहिये कि भास और कालिदास यदि ई० पू० के सिद्ध हो जांय जैसा कि प्रयत्न हो रहा है तो इस ग्रन्थ को ई० पू० २ य शतक का मानने में कोई बाधा नहीं है।

पञ्चतन्त्रः—इसको पञ्चोपाख्यान भी कहते हैं यह गद्यात्मक ग्रन्थ है। यह, मित्र-भेद, मित्र-प्राप्ति, काकोलूकीय,

लब्ध-प्रणाश, अपरीक्षित-कारक इन पांच तन्त्रों में विभ
इन नामों से यह स्पष्ट होता है कि इसमें नीति शास्त्र
विषय है। यह नीति शास्त्र का विषय बालकों को समझाने
लिये कथा-रूप से इसमें वर्णित है। प्रति तन्त्र की
कथाएँ एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

आर्यशूर (ई० ३ य शतक)

आर्यशूर—विरचित ग्रन्थ जातकमाला—इसका विषय—
शिलालेखों पर इसके श्लोक—समय निर्धारण—जातक माला की

यह बौद्धों के प्रसिद्ध ग्रन्थ जातक-माला का रचयिता
इसमें बुद्ध का चरित दन्त कथा के रूप से बड़ी हो
रीति से वर्णित है। ये कथाएँ संस्कृत काव्य में लि
हैं। इस काव्य में अश्वघोष का अनुकरण है। पाली के
वा जातक ग्रन्थ से इसकी कथाएँ ली गई हैं। पाली ग्र
में हीनयान ग्रन्थ का वर्णन मिलता है किन्तु आर्यशूर
काव्य में हीनयान के साथ २ महायान का भी वर्णन
इस काव्य की प्रथम कथा जो बोधिसत्व के सम्बन्ध
जातक ग्रन्थों में नहीं पाई जाती। इत्सिङ्ग नाम का
यात्री सप्तम शतक के अन्तिम पाद में (६७१-६९४) भा
आया था उस समय उसके कथनानुसार यह जातक
काव्य बौद्धों को बड़ा ही प्रिय था। अजन्ता की शिला
इस काव्य के श्लोक और कथाचित्र खुदे हुवे हैं। इससे
सिद्ध होता है कि अजन्ता की शिलाओं पर चित्र लिखे

समय यह ग्रन्थ पूर्णतया प्रसिद्ध था। इस ग्रन्थ का चीन
भाषा में अनुवाद ई० ४३४ का मिलता है। इसलिये यह
आर्यशूर ३ य शतक के बाद का नहीं हो सकता।

जातक-माला :—यह गद्य-पद्यात्मक काव्य है। इसमें
काव्य के अनेक गुण हैं। समस्तपदों का प्रयोग गद्य में सर्वत्र
मिलता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि आर्यशूर ने इन कथाओं की
रचना में 'कुमारलात' का अनुकरण किया है। यह पञ्चतन्त्र
सदृश ग्रन्थ हैं।

दण्डी (ई० ७ म शतक का उत्तरार्द्ध)

दण्डी—विरचित अवन्ति सुन्दरी कथा—इसका विषय परामर्श।

इसकी विरचित अवन्ति-सुन्दरी कथा है ऐसा माना
जाता है। इस ग्रन्थ में बाण, मयूर आदि कवियों के नाम
तथा ग्रन्थों का उल्लेख मिलने से इसका रचना काल बाणभट्ट
के बाद ही मानना आवश्यक होता है। इसका रचयिता दण्डी
मानने वाले विद्वान् दण्डी का समय बाणभट्ट के बाद मानते
हैं। इस कवि के विषय में अलङ्कार प्रकरण में लिखा जा
चुका है।

अवन्ति सुन्दरी-कथा :—यह एक गद्य-पद्य में लिखी हुई
कथा है। इसके प्रारम्भ का, अनुष्टुप् छन्द में, अनेक प्राचीन
कवियों का वर्णन अत्यन्त महत्त्व का है। इसके केवल प्रथम
४ परिच्छेद ही उपलब्ध हैं। इसमें दशकुमार चरित के पूर्व
पीठिका का ही कथानक है। कथा में वररुचि, शूद्रक, काद-

न्दरी आदि अनेक उपकथाएँ भी निबद्ध हैं जिनसे ... बृहत्कथा के ढङ्ग पर रचा प्रतीत होता है। इसकी रच... अत्यन्त ओजस्विनी है। कहीं २ अर्थ में क्लिष्टता भी आ...

सिद्धर्षि (ई० ६०५)

सिद्धर्षि—विरचित ग्रन्थ उपमिति भव प्रपञ्च कथा—प्रम... में का सिद्धर्षि वर्णन-समय—इसके विरचत अन्य ग्रन्थ १ ... विवरण २न्यायावतार वृत्ति,३ तत्वार्थाधिगम सूत्र वृत्ति, ४ ... ५ सिद्धयोग माला वृत्ति, ६ कुवलय माला कथा—उपमिति ... कथा का विषय विवरण – इसका संस्कृत में लिखे जाने ... विशेषताएँ।

इसकी विरचित 'उपमिति-भव-प्रपञ्च-कथा' है। ... इस ग्रन्थ की प्रशस्ति[1] में अपने गुरु के विषय में निर्दे... हैं। इसके ३ गुरु थे। एक लाट देशका सूराचार्य, (२)... निमित्तशास्त्रज्ञ देल्ल महत्तर और (३) दुर्ग-स्वामी ... ब्राह्मण जा जैन भिक्षु होकर दक्षिण मारवाड़ के भि... मरा था। इसका धर्मोपदेशक हरिभद्र सूरि था। ... भिनमाल वा श्रीमाल सिद्धर्षि वा सिद्धर्षि-देव-सूरि ... भूमि थी। प्रभावक चरित में प्रभाचन्द्र ने सिद्धर्षि ... पाल वध के कर्ता माघ कवि का चचेरा भाई ... है। गुजरात के वर्मलात राजा के मन्त्री सुप्रभदेव के ... और शुभंकर दो पुत्र थे। दत्तक का पुत्र माघ और शुभं...

---

१ उपमिति-भव-प्रपञ्च कथा की नव प्रशस्ति।

सिद्धर्षि था। किन्तु इतिहास की दृष्टि से यह सत्य का अप-लाप है। अब इतिहास में यह निश्चित है कि वर्मलात का शासन सप्तम शतक के आरम्भ में था और माघ ने अपना काव्य सप्तम शतक के अन्त में रचा था। सिद्धर्षि ने अपना ग्रन्थ रचना काल के बराबर दिया है। इस वर्ष में ई० ९५०[1] उसके ग्रन्थ की समाप्ति हुई। हरिभद्र सूरि का भी यही समय होनेसे इसका यह समय सुदृढ़ होता है। इसके विरचित अन्य ग्रन्थ—धर्म-दास गणि की उपदेशमाला का विवरण, सिद्धसेन दिवाकर के न्यायावतार की वृत्ति, तत्वार्थाधिगम सूत्रकी वृत्ति, नय-चक्र की वृत्ति, सिद्ध योग माला की वृत्ति और कुवलयमाला कथा हैं।

उपमिति-भव-प्रपञ्च-कथा :—यह प्रबोध चन्द्रोदय नाटक के सदृश उसके २०० वर्ष पूर्व विरचित रूपक कथा है। इसमें प्रस्ताव हैं और १६०० श्लोक हैं। इसमें जैन धर्म का उपदेश है। इसमें के जो उपदेश्य और उपदेशक निष्पुण्यक और सद्बोधकर हैं वे स्वयं सिद्धर्षि और हरिभद्र सूरि हैं। इस प्रकार रूपक से कवि ने इसमें आत्मचरित का ही वर्णन किया है। कवि ने कहा है कि इस ग्रन्थ को प्राकृत में न लिख कर संस्कृत में इस लिये लिखा कि संस्कृत भाषा बालावबोधक और अधिक कर्ण-पेशल अवश्य हो सकती है। इस कथा का

[1] संवत्सरशतनवके द्विषष्टिसहितेऽतिलङ्घिते चास्याः। ज्येष्ठे सित-पञ्चम्यां पुनर्वसौ गुरुदिने समाप्तिरभूत्।

संस्कृत गद्य तथा पद्य दोनों अत्यन्त सरल है। इसके विषय में कवि ने कहा है "भव-प्रपञ्चो व्याजेन यतो[illegible] मुपमीयते" अर्थात् इसमें भव प्रपञ्च के मिष से कथा [illegible] है। संस्कृत साहित्य में इस ढङ्ग का यही प्रथम ग्रन्थ [illegible] इसमें एक ही नायक की भिन्न २ जन्म की कथा वर्णित [illegible] इसमें सांसारिक जीव का नीचतम योनि से प्रारम्भ कर [illegible] तक का वर्णन दिया है। इसमें का पद्य भाग, गद्य [illegible] अधिक है। श्लोक द्रुत-विलम्बित, वैतालीय, अनुष्टुप् [illegible] अनेक छन्दों में हैं। कवि का ध्यान उपदेश पर विशेष [illegible] कारण कवि ने भाषा सौष्ठव, अलङ्कार आदि का विशेष [illegible] नहीं किया है।

नारायण (ई० १० म शतक)

नारायण—विरचित ग्रन्थ हितोपदेश—समय—हितोपदेश [illegible] विचार—अनेक भाषाओं में अनुवाद।

इसकी विरचित 'हितोपदेश' नाम की पुस्तक है। [illegible] बंगाल का निवासी था और बंगाल के किसी धवल[1] [illegible] राजा का सभापण्डित था। हितोपदेश की एक हस्तलि[illegible] प्रति में उस पुस्तक का समय ई० १३७३ दिया है। इस[illegible] नारायण का समय उसके पूर्व का ही है। इसमें रविवार [illegible] भट्टारकवार कहा है और उस दिन को अनध्याय का [illegible]

---

१ श्रीमान् धवलचन्द्रोऽसौ जीयान्माण्डलिको रिपून्।
येनाऽयं संग्रहो यत्नाल्लेखयित्वा प्रचारितः। हितोपदेश।

ता है। फ्लीट[1] (Fleet) मानता है कि रविवार को अन-
य दिवस मानने का प्रकार ई० ६०० के पूर्व भारत में नहीं
। कीथ[2] कहता है कि नारायण, माघ और कामन्दकी के
ता है और इसमें बंगाल के तान्त्रिकों में प्रचलित गौरी
पद्धति का निर्देश मिलने से रचयिता बंगनिवासी था
अनुमान होता है। ग्रन्थ के आरम्भ में शिव का मंगल
इसलिये यह शैव था।

हितोपदेश :—यह एक गद्य-पद्यात्मक कथा वा आख्यायिका
कवि ने स्वयं कहा है कि पञ्चतन्त्र तथा अन्य ग्रन्थों के
धार पर इसकी रचना की गई है। इसमें ४ विभाग मित्र-
, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि है। ये चार विभाग,
ति के उपाय-चतुष्टय अर्थात् साम, दान, भेद और दण्ड
था बालकों को सरलता से ज्ञान होने के लिये कथारूप से
गये हैं। मित्र-लाभ और सुहृद्भेद प्रायः पञ्चतन्त्र ही से
के तैसे लिये गये हैं। केवल इनमें स्थान २ पर कामन्दकीय
ति शास्त्र के भी वचन ग्रन्थकार ने उद्धृत किये हैं। पञ्च-
त्र का तृतीय तन्त्र काकोलूकीय नाम का सन्धि और
ग्रह इन दो विभागों में विभक्त है। इनमें पञ्चतन्त्र का गद्य
धिक है और पद्य कम है। नारायण के विरचित अनेक
श्लोक इनमें हैं जिससे उसकी कवित्व शक्ति प्रकट होती है।

---

[1] जे० आर० ए० एस० १९१२ पृ० १०३९-४६।

[2] कीथ का सं० सा० इ०, पृ० २६३।

इसकी भाषा पञ्चतन्त्र की भाषा से वहुत अर्वाचीन ... सरल है। इसका भी पञ्चतन्त्र के सदृश अनेक भाषाओं ... अनुवाद हुवा है।

धनपाल वा धणवाल (ई० १० म शतक लं० भ०)

धनपाल वा धणवाल—विरचित ग्रन्थ भविसयत्तकहा— ... चरित्र—समय निर्धारण—तिलक मञ्जरीकार धनपाल से भिन्न— ... सयत्तकहा' का विषय वर्णन।

इसकी विरचित 'भविसयत्तकहा' है। अपभ्रंश में ... नाम धणवाल है। कहीं २ धणवई भी मिलता है। इस ... की अन्तिम सन्धि में ग्रन्थकार ने अपने सम्बन्ध में ... कि मायसर के धनश्री धक्कड़ वनिये के वंश में यह ... हुवा था। यह अपने को सरस्वती पुत्र कहता है और ... स्वती से अनेक वरदान पाने का वर्णन करता है। ... सन्धि में दिगम्बर शब्द आनेके कारण याकोवी ने ... किया है कि यह दिगम्बर जैन था और यह ग्रन्थ ... वातों से भी सिद्ध होता है। ई० १२३० के तेजपाल ... शिलालेख में धर्कट वंश का नाम आया है। धर्कट और ... ये दोनों एक ही हैं। परन्तु इससे समय निर्धारण ... नहीं हो सकता। याकोवी के मत से इस पुस्तक की ... हरिभद्र सूरि के नेमिनाह चरिउ की भाषा से प्राचीन ... परन्तु "नेमिनाह चरिउ" उपलब्ध न होने से इसका ... नहीं किया जा सकता। इसकी २० वीं सन्धि प्राचीन ...

सूरि के 'समराइच्च कहा' के अनुसार है। प्राचीन हरिभद्र सूरि का समय ई० ८ म शतक का उत्तरार्द्ध होने के कारण धनपाल का समय ई० १० म शतक से प्राचीन नहीं हो सकता। यद्यपि प्राचीन हरिभद्र सूरि का समय निश्चित है तथापि उससे धनपाल का समय पूर्णतया निश्चित नहीं हो सकता। यह अवश्य कहा जा सकता है कि इसकी अपभ्रंश भाषा हेमचन्द्र के अपभ्रंश से प्राचीन है क्योंकि उस समय अपभ्रंश व्याकरण के नियम शिथिल थे और शब्द के रूप भी भिन्न २ होते थे। अर्थात् अपभ्रंश भाषा धनपाल के समय में प्रचलित थी किन्तु हेमचन्द्र के समय में वह व्यवहार में नहीं थी। भाषा में इतना भेद होने के लिये कम से कम २०० वर्ष की आवश्यकता है। हेमचन्द्र ई० १२ श शतक के मध्य में वर्तमान था। इसलिये इसका समय ई० १० म शतक ठीक ही प्रतीत होता है।

यह धनपाल धारा नगरी के मुंजकी सभा के तिलक मंजरी आदि ग्रन्थों के रचयिता धनपाल से भिन्न है। क्योंकि वह पहिले ब्राह्मण था और बाद में जैन हुवा था।

भविसयत्त-कहा :—यह अपभ्रंश भाषा में लिखी हुई कथा है। इसकी बाइस सन्धियां हैं जो २ खण्डों में विभक्त हैं। इसमें भविष्यदत्त की बाल्यावस्था से निर्वाण तक की कथा वर्णित है। यह अपभ्रंश भाषाका अनूठा काव्य है। इसमें की सम्पूर्ण कथा अपभ्रंश की 'कडवक' गीति में रची गई है।

(२) सोड्ढल (ई० १०२६-१०५०)

सोड्ढल—विरचित ग्रन्थ उदय सुन्दरी कथा—जीवन—चरित्र—लाट देश के राजा वत्सराज का समकालिक—उदय सुन्दरी कथा का विवरण व विशेपताएँ।

इसकी विरचित उदय-सुन्दरी कथा है। इसने स्वयं ग्रन्थ में अपने चरित्र के विषय में कहा है जिससे मालूम है कि यह गुजरात के दक्षिण भाग में नर्मदा के प्रवाह से पूत लाट देश में पैदा हुवा था। यह शैवमतावलम्बी था। इसने अपना वंश सम्बन्ध शिलादित्य के भ्राता कलादित्य से जोड़ा है। इस कलादित्य को शिव जी का गण मान कर इसने उसकी भूरि प्रशंसा की है। कलादित्य वंश के कायस्थ कुलका संस्थापक था। यह चण्डं प्रपौत्र, सोल्लपेय का पौत्र और सूर का पुत्र था। बाल्य में ही इसका पिता मर गया था। इसके मामा गङ्गाधर ने पालन पोषण किया था। इसके गुरु का नाम चन्द्र था। यन के बाद लाट देश को छोड़ कर यह कोंकण की राज में चला गया था। वहां पर यह राजपण्ड़ित नियुक्त हुआ इसके समय में वहां छित्तिराज, नागार्जुन और मुम्मु नाम के तीन सगे भाई राजाओं ने क्रम से शासन किया लाट के राजा वत्सराज ने भी इसको अपने दर्बार में बु बड़ा आदर किया था। छित्तिराज ई० १०२६ में कों गद्दी पर आया था यह बात उस समय के ताम्रपत्र से

...मुनिराज ने ई० १०६० में राज्यभार लिया था ऐसा ...लेख से भी ज्ञात होता है। सोड्ढल इनका समकालिक ... के कारण इसका समय ई० ११ श शतक माना जाता है। ... ग्रन्थमें कहा[1] है कि लाट देश के राजा वत्सराजके ... यह ग्रन्थ समाप्त हुवा। यह वत्सराज ई० १०५० के ... मर चुका था क्योंकि ई० १०५० में उसका पुत्र त्रिलोचन- ... गद्दी पर था। इस लिये इस ग्रन्थ का रचनाकाल ई० ... और ई० १०५० के मध्य में माना जाता है।

उदयसुन्दरी-कथा :—यह कथा गद्य व पद्य में है। इसमें ... उच्छ्वास हैं। प्रारम्भ में हाल, युवराज वाक्पतिराज, अभि- ..., बाण प्रभृति कवियों का वर्णन है। प्रथम उच्छ्वास में ... ने अपना वंश वर्णन तथा चरित्र कहा है। द्वितीय ...च्छ्वास से कथा प्रारम्भ होती है। इस कथा की नायिका ... लोकाधिपति शिखण्ड-तिलक की कन्या उदयसुन्दरी है ... नायक प्रतिष्ठान नगर का राजा मलयवाहन है। इसमें ... की कादम्बरी का अनुकरण स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ... शब्द तथा अर्थ माधुर्य प्रशंसनीय हैं। इसकी उत्प्रेक्षा ... विशिष्ट प्रकार की है। इसकी भाषा अत्यन्त मनोहर है।

क्षेमेन्द्र (ई० १०५०)

क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मञ्जरी।

इसकी विरचित कथा बृहत्कथा-मञ्जरी है। इसके जीवन

[1] उदय-सुन्दरी कथा पृ० १५६।

चरित्र तथा वृहत्कथा-मञ्जरी के सम्बन्ध में खण्ड काव्य
प्रकरण में कहा जा चुका है।

सोमदेव (ई० १०६३ के लगभग)

सोमदेव—विरचित ग्रन्थ 'कथा सरित्सागर'—जीवन चरित्र—का
काश्मीर के राजा अनन्त का समकालिक—कथा सरित्सागर
विषय विचार।

इसका विरचित ' कथा-सरित्सागर ' ग्रन्थ है। सोमदेव
भट्ट रामदेव-भट्ट का पुत्र था। इसका जन्म राजा अनन्त
(ई० १०२८-१०६३) के समय काश्मीर में हुआ था। इस
यह क्षेमेन्द्र का समकालिक वा किञ्चित् अनन्तरवर्ती है। क्षेमेन्द्र
की वृहत्कथा-मञ्जरी वहुत संकुचित देखकर राजा अनन्त की
परम विदुषी रानी सूर्यवती ने भट्ट सोमदेव को इस तरह
विस्तृत ग्रन्थ निर्माण करने के लिये प्रोत्साहित किया था। अनन्त
राजा के पुत्र कलश (ई० १०६३-१०८९) के गद्दी पर आने
वाद ही इसकी रचना पूर्ण हुई होगी क्योंकि कथा-सरित्सागर
क्षेमेन्द्र की वृहत्कथा-मञ्जरी के वाद ही रचा गया है। इस
ग्रन्थ के आरम्भ में शिव जी की स्तुति की है। इससे ज्ञात
होता है कि यह शैव था।

कथा-सरित्सागर:—यह एक पद्य में विरचित कथा
है। इसमें १८ लम्बक और १२४ तरङ्ग हैं। यह ग्रन्थ
अनुष्टुप् छन्द ही में है। केवल तरङ्गों के अन्त में कुछ

...ों के श्लोक हैं। इसकी श्लोक संख्या २१३८८ है जिनमें ...त ७६१ अनुष्टुप् छन्द से भिन्न छन्दों के श्लोक हैं। यह ... गुणाढ्य की बृहत्कथा के आधार पर रचा गया है। ...ें कथा की योजना करते हुवे रस[1] का विघात न होने ...ें कवि ने प्रयत्न किया है। इसकी भाषा बृहत्कथा-मञ्जरी ...ाषा से अधिक मनोरंजक है। इसको पढ़ने से उस समय ...श्मीर की लोकरीति, प्रथा, चालचलन, व्यवहार आदि ...ा ज्ञान होता है। अनुपलब्ध बृहत्कथा के आधार पर राजा-...ि, नागानन्द, प्रियदर्शिका, पञ्चतन्त्र, कादम्बरी, मालती-...व, मुद्रा राक्षस, वेताल-पञ्चविंशति, हितोपदेश आदि ...रचे गये थे इसका पता इस ग्रन्थ से तथा बृहत्कथा-...ों से चलता है।

शुकसप्तति (ई० १२ श शतक)

शुकसप्तति—पञ्चतन्त्र का अनुकरण—विषय।

यह किसी जैन कवि की विरचित है। पञ्चतन्त्रों के अनेक ...करणों में से यह एक जैन अनुकरण है। इसके अंशतः ...धार पर पूर्णभद्र ने अपनी जैन तन्त्राख्यायिका रची है। ...में ७० कहानियाँ हैं। इसकी संस्कृत भाषा प्राकृत ...श्रित है।

---

[1] औचित्यान्वयरक्षा च यथाशक्ति विधीयते। कथा रसाऽविघातेन काव्यांशस्य च योजना। श्लो० ११ तरङ्ग १।

पूर्णभद्र (ई० ११९९)

पूर्णभद्र—विरचित ग्रन्थ 'जैन तन्त्राख्यायिका'—समय—जैन तन्त्राख्यायिका का विषय विचार—मेघविजय का पञ्चाख्यानोद्धार।

इसकी विरचित जैन तन्त्राख्यायिका है। यह किसी सो... नामक मन्त्री का आश्रित गुजराती जैन था। उसके विनोद के लिये इसने पञ्चतन्त्र के आधार से और दूसरे एक इसके ... के जैन पन्थ में विद्यमान पञ्चतन्त्र वा शुकसप्तति से इसे ई० ११९९ में रचा था। इसके जीवन चरित के विषय में कुछ पता नहीं चलता।

जैन-तन्त्राख्यायिका :—यह, तन्त्राख्यायिका और ... पञ्चतन्त्र के आधार पर रचा गया है। उपरोक्त दोनों पुस्तकों से इसमें २१ कथाएँ अधिक हैं जिनमें महाभारत की ... कथाएँ हैं। इसमें विशेषतया नीति की ही कथाएँ हैं। इसमें गुजराती और प्राकृत शब्द मिश्रित हैं। इसकी भाषा ... पञ्चतन्त्र की भाषा से अच्छी है। जैन पञ्चतन्त्र को पञ्चाख्या-नक कहते हैं और इसका भी कभी २ 'पञ्चाख्यानक' से ... होता है। इन दोनों पञ्चाख्यानों के आधार पर ई० १६... में मेघ-विजय ने पञ्चाख्यानोद्धार नाम का इसी तरह का ग्रन्थ रचा।

शिवदास (ई० १२ श शतक के बाद)

शिवदास—विरचित ग्रन्थ १ शालिवाहन कथा, २ वेताल-पञ्चविंशति, ३ कथार्णव—समय—उपर्युक्त ग्रन्थों का विषय परामर्श।

इसके विरचित शालिवाहन कथा, वेतालपञ्चविंशति और शुकार्णव ये कथा ग्रन्थ हैं। इसके जीवन चरित्र के विषय में कुछ पता नहीं चलता। यह गुजराती था। यह भारी विद्वान् नहीं था। अतः इसका भाषा पाण्डित्य साधारण ही है। विद्वानों के मत से इसका समय ई० १४४७ से बहुत पूर्व नहीं है।

शालिवाहन-कथा :—इसमें १८ सर्ग हैं। श्लोकों के बीच में गद्य भी है। यह वृहत्कथा-मञ्जरी वा कथा-सरित्सागर के आधार पर विरचित है।

वेतालपञ्चविंशति-कथा :—यह भी गद्य पद्य में है। इसका आधार वृहत्कथा-मञ्जरी वा कथा-सरित्सागर है। जम्भल दत्त तथा वल्लभदास विरचित भी इसी नाम की कथाएँ हैं। जम्भल भट्ट की वेतालपञ्चविंशति कथा में गद्य विशेष है। वल्लभदास की वेतालपञ्चविंशति कथा अर्वाचीन है। इसका अनुवाद हिन्दी गुजराती आदि अनेक भाषाओं में मिलता है।

शुकार्णव :—इसमें ३५ कथाएँ हैं। ये सब कथाएँ मूर्ख, चोर आदि बुरे कर्म वालों की हैं। तथापि ये उपदेशप्रद हैं।

मेरुतुङ्ग (ई० १३०६)

मेरुतुङ्ग—विरचित ग्रन्थ प्रबन्ध चिन्तामणि—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ। विचार श्रेणी, २ काङ्कालाध्याय वार्तिक—समय—प्रबन्ध चिन्तामणि का विषय विचार।

इसका विरचित 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' नाम का कथा ग्रन्थ है। यह श्वेताम्बर जैन धर्म का आचार्य था। इसके अन्य

ग्रन्थ—विचार-श्रेणी नाम का जैन ग्रन्थ और ... वार्तिक नाम का वैद्यक ग्रन्थ हैं। इसके ग्रन्थ में ई० ... इसका समय मिलता है।

प्रबन्ध-चिन्तामणिः—इसमें अनेक जैन ग्रन्थकार ... आचार्यों का जीवन चरित वर्णित है। इसका ऐति... कोई महत्व नहीं है।

माधवाचार्य (ई० १४ श शतक)

माधवाचार्य—विरचित ग्रन्थ 'शङ्कर दिग्विजय'—जीवन ... समय—विजयानगर के राजा बुक्क और हरिहर का मंत्री व सभा... इसकी उपाधि 'नव कालिदास'—इसका भ्राता सायण—इसके ... अन्यग्रन्थ १ पञ्चदशी, २ विवरण प्रमेय संग्रह, ३ काव्य निर्णय, ... माधवीय, ५ जैमिनि न्याय माला विस्तर, ६ माधवीय ... एकाक्षर रत्नमाला कोष—शङ्कर दिग्विजय का विषय परामर्श—...

इसका विरचित 'शङ्कर-दिग्विजय' नाम का ... है। ग्रन्थ में 'माधवाचार्य' यह नाम न होकर उनके ... का 'विद्यारण्य' नाम दिया है। दाक्षिणात्य विद्वानों में शङ्क... के अनन्तर तत्सदृश माधवाचार्य ही माने जाते हैं। ... इसका भाई 'सायण' दोनों विजयानगर के बुक्क और हरि... के सभापण्डित और मन्त्री थे। यह सर्व शास्त्रों का विद्वान् ... था किन्तु बड़ा भारी राजनीतिज्ञ और विजयानगर रा... संरक्षक भी था। बुक्क और हरिहर राय का शासन ई० ... शतक में था। ई० १३८६ में विद्यारण्य का ९० ...

...वस्था में देहान्त हुवा था। ई० १३७७ में इसने ४ र्थ आश्रम ...कर शृङ्गेरी के श्रीशङ्कराचार्य की गद्दी भूषित की थी। ...ग्रन्थ विद्यारण्य विरचित होने से इसकी रचना ई० १३७७ ...हुई थी इसमें कोई सन्देह नहीं। इसके ३ गुरु थे। ...तीर्थ, भारती-तीर्थ और श्रीकण्ठ। इसके सब ग्रन्थों ...विद्यातीर्थ का वन्दन मिलता है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में ...विद्यातीर्थ का वन्दन है। इसने अपने को नव-कालिदास ...हा है। अनेक ग्रन्थों में इसके चरित्र के सम्बन्ध में ...श्लोकों से मालूम होता है कि यह मायण और ...का पुत्र था। सायण और भोगनाथ इसके छोटे भाई ...यह कृष्ण यजुर्वेदी बौधायन शाखा का भारद्वाज-गोत्री ...इसने स्वयं अनेक ग्रन्थ रचे थे और अपने भाई सायण ...अन्य विद्वानों से भी ग्रन्थ रचना करवाई थी। यह ग्रन्थ ...काल ई० १३३०-१३८५ तक माना गया है। माधवाचार्य ...वेदान्त वा शाङ्कर-वेदान्त का भारी आचार्य माना ...है। इसके विरचित वेदान्त के पञ्चदशी और विवरण-...संग्रह, धर्म शास्त्र के कालनिर्णय और पाराशर माध-

---

श्रीमती जननी यस्य सुकीर्तिर्मायणः पिता।
सायणो भोगनाथश्च मनोबुद्धी सहोदरौ॥
यस्य बौधायनं सूत्रं शाखा यस्य च याजुषी।
भारद्वाजं कुलं यस्य सर्वज्ञः स हि माधवः॥

पाराशर माधवीय भूमिका श्लो० ६७।

वीय, मीमांसा का 'जैमिनि न्यायमाला विस्तर' व्याकरण
माधवीया-धातुवृत्ति और एकाक्षर रत्नमाला कोष, ये ग्रन्थ
सायण भारी वैदिक था। इसके और इसके आश्रित पण्डितों
के विरचित ४ वेद, सब ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थों पर
सब भाष्य प्रसिद्ध हैं।

शङ्करदिग्विजय :—इस कथा में आद्य श्रीशङ्कराचार्य
कथाएँ वर्णित हैं। इसका मूल ग्रन्थ 'आनन्दगिरि' विरचित
शङ्कर विजय ग्रन्थ था जिसका कथासार इसमें लिया है।
इसके प्रारम्भ के श्लोक में 'प्राचीनशङ्करजये सारस्तु
स्फुटम्' ऐसा कहा है। इसीलिये इसको संक्षेप शङ्करजय
कहते हैं। महाकाव्य के सदृश इसमें १६ सर्ग हैं। सर्गान्त
'इति श्री माधवीये......' ऐसा निर्देश मिलता है।
कथाएँ अनेक छन्दों के श्लोकों ही में वर्णित हैं। इसके
संख्या १८४३ है। इसकी भाषा विद्वत्ता प्रचुर तथा
किन्तु कथा के कारण अलङ्कारों से कम विभूषित है।
के गुण भी इसमें विद्यमान हैं। इसपर दो टीकाएँ हैं
धनपति सूरि की 'डिण्डिम' टीका प्रसिद्ध है।

राजशेखर सूरि (ई० १३४८)

राजशेखर सूरि—विरचित ग्रन्थ प्रबन्ध कोष वा चतुर्विंशति
चरित्र—समय—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ १ न्यायकन्दली
पञ्जिका, २ रत्नावतारिका पञ्जिका, ३ स्याद्वादकलिका—प्रबन्ध
विषय परामर्श।

इसका विरचित 'प्रबन्ध कोष वा चतुर्विंशति प्रबन्ध है।
की उपाधि मल्लधारि थी। यह श्वेताम्बर जैन नैयायिक
इसके गुरु जिनप्रभ और श्रीतिलक थे। इसने श्रीधर की
कन्दली का अध्ययन इसी से किया था। इसलिये यह
१३४८ में विद्यमान था। इसकी विरचित 'पञ्जिका' नाम
न्यायकन्दली की टीका प्रसिद्ध है। इसके विरचित जैन
के ग्रन्थ 'प्रमाण नय तत्वालोकालङ्कार' की टीका
रत्नावतारिका पञ्जिका' और 'स्याद्वादकलिका' हैं।

प्रबन्धकोष:—इसका दूसरा नाम चतुर्विंशति प्रबन्ध है।
में २४ प्रबन्ध वा कथाएँ हैं। इसमें प्राचीन कवियों का
वृत्त वर्णित है।

विद्यापति (ई० १५ श शतक)

विद्यापति—विरचित ग्रन्थ पुरुष-परीक्षा—जीवनी—समय—मिथिला
राज शिवसिंह का सभापण्डित—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ १ गङ्गा-
वाक्यावलि, २ दानवाक्यावलि, ३ दुर्गाभक्ति तरङ्गिणी, ४ वर्षकृत्या,
५ विभागसार, ६ शैव सर्वस्वसार, ७ कीर्तिलता—पुरुष-परीक्षा का
परामर्श।

इसका विरचित 'पुरुष-परीक्षा' नाम का कथा संग्रह है।
यह मिथिलादेशवासी ब्राह्मण था। मिथिला के राजा देवसिंह
के पुत्र राजा शिवसिंह का यह सभापण्डित था। शिवसिंह
ई० १४०३ में गद्दी पर आया था। इसलिये विद्यापतिका समय
ई० १५ श माना गया है। राजा शिवसिंह के पश्चात् नरसिंह

तथा विश्वास देवी के दर्बार में भी यह विद्वान् उपस्थित था।
यह महामहोपाध्याय श्रीदेवदत्त का शिष्य था। इसकी वि-
और कवित्व से मुग्ध होकर राजा शिवसिंह ने जरइल ग-
में विरूपी नाम का ग्राम ताम्रपत्र शासन कर विद्यापति को
अर्पण किया था। यह गणपति का पुत्र और जयदत्त का
था। इसके विरचित अन्य ग्रन्थ–गङ्गावाक्यावलि, दानवाक्या-
वलि, दुर्गाभक्ति-तरङ्गिणी, वर्षकृत्या, विभागसार, शैव-
स्वसार और कीर्तिलता हैं।

पुरुष-परीक्षा :–यह गद्य पद्य मिश्रित कथा ग्रन्थ।
इसमें ४ परिच्छेद और ४४ कथाएँ हैं। ये सब कथाएँ भिन्न
विषय की हैं। इसका उद्देश पुरुष शब्द का लक्षण बताता
है। इसकी भाषा सरल न रहने पर भी रोचक है।
व्याकरण के अनुपयुक्त शब्दों का प्रयोग विशेष है।

जिनकीर्ति (ई० १५ श शतक का पूर्वार्द्ध)

जिनकीर्ति—विरचित ग्रन्थ १ चम्पक श्रेष्ठि कथानक, २ पा-
कथानक—इसका विषय विचार।

इसका विरचित 'चम्पक श्रेष्ठि कथानक' और 'पाल-
कथानक' हैं। यह श्वेताम्बर जैन था। इसके विषय में कि-
कुछ पता नहीं चलता। यह ई० १५ श शतक के पूर्वार्द्ध
विद्यमान था।

चम्पक-श्रेष्ठि-कथानक :—इसमें तीन कथाएँ जैन प्रा-
वा-अर्ध मागधी में लिखित हैं जिनमें पहिली कथा राजा

बन्धन से मुक्त होने की चेष्टा वर्णन करती है। इसका प्राकृत अर्धमागधी है।

पालगोपाल-कथानक :—इसमें की कथाएँ भी प्राकृत में हैं। किसी स्त्री के फेर में न पड़ने के कारण एक तरुण पर उसका बलात्कार करने का आरोप अत्यन्त खूबी से ग्रथित है। इसका प्राकृत भी अर्धमागधी है।

द्वात्रिंशत्पुत्तलिका (ई० १५ श शतक)

द्वात्रिंशत्पुत्तलिका वा सिंहासनद्वात्रिंशिका—इसका विषय परामर्श—दक्षिण और उत्तर भारत में उपलब्ध पुस्तकों में भेद—समय निर्धारण

इसका दूसरा नाम 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' है। इसमें विक्रमादित्य के सिंहासन पर बैठने की इच्छा रखने वाले धारा के भोजराज को सिंहासन की बत्तीस पुत्तलिकाओं की कही बत्तीस कथाएं हैं। इस सिंहासन के विषय में ऐसी परम्परा है कि इस सिंहासन को इन्द्र ने विक्रमादित्य को दिया था और विक्रमादित्य की मृत्यु के बाद यह ज़मीन के अन्दर गाड़ दिया गया था। जैन परम्परा में क्षेमङ्कर विरचित पुस्तक में यह कथा अन्य रीति से वर्णित है। दक्षिण[1] भारत की उपलब्ध पुस्तक में सुभाषित कूट श्लोक भी बीच २ में मिलते हैं। एक पुस्तक में केवल पद्य ही हैं। उत्तर भारत की पुस्तक

---

[1] मद्रपुर (Madras) में वहां के विद्वानों ने 'विक्रमार्क चरित्र' नाम से द्वात्रिंशत्पुत्तलिका की कथाओं को प्रकाशित किया है। यही उपलब्ध दाक्षिणात्यों की द्वात्रिंशत्पुत्तलिका कथा हैं।

में कथाओं की अपेक्षा नीति वर्णन अधिक है। वररुचि वि
चित बंग-पुस्तक जैन-ग्रन्थ के आधार पर रची गई है
उसका प्राकृत महाराष्ट्री है। यह द्वात्रिंशत्पुत्तलिका
वेतालपञ्चविंशति से अर्वाचीन है। इसका समय ई० ११
शतक मान लिया गया है किन्तु इसका ठीक समय नहीं
जा सकता। कोई इसको भोजराज के समय का मानते
परन्तु वह सयुक्तिक नहीं है। इसमें 'यां चिन्तयामि सततं
यह भर्तृहरि का प्रसिद्ध श्लोक मिलता है। इसके रचयिता
सम्बन्ध में कोई ठीक २ प्रमाण नहीं उपलब्ध है।

श्रीबल्लाल कवि (ई० १६ श शतक)

वल्लाल कवि—विरचित ग्रन्थ भोज प्रबन्ध—रचयिता के सम्बन्ध
मतभेद—समय—भोज प्रबन्ध का विषय परामर्श।

इसका विरचित ' भोज-प्रबन्ध ' नाम का कथा-ग्रन्थ है
इस वल्लाल के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा ही मतभेद है
कोई इसको बंगाल का राजा वल्लाल सेन मानते हैं। परन्तु
आनन्द कवि विरचित वल्लाल चरित में इसका कोई उल्ले
न मिलने से और बल्लाल सेन विरचित 'अद्भुत सागर'
'दान सागर' में भी इसका कोई उल्लेख न होने से यह बात
नहीं मालूम होती। दूसरे ई० १४ श शतक के पूर्वार्द्ध के द्वार
मुद्र के वीरबल्लाल वा तृतीय श्री वल्लाल को इसका रचयि
मानते हैं। परन्तु इसके विषय में भी मुञ्ज और भोज
कथा लिखने का उल्लेख कहीं उपलब्ध नहीं है। सम्भव है कि

बल्लाल नाम का पण्डित हुवा हो जिस ने भोजराज की कथाओं को सुनकर और मेरुतुङ्गाचार्य के प्रबन्ध चिन्तामणि को पढ़कर उसके अनुकरण में यह ग्रन्थ लिखा हो। इस में मल्लिनाथ का निर्देश होने से यह कवि ई० १४ श के बहुत बाद का प्रतीत होता है।

भोजप्रबन्ध :—यह कथा ग्रन्थ है। इसमें ७३ प्रबन्ध इसके प्रथम भाग में धारा के भोज का राज्याभिषेक उसके सम्बन्ध की अन्य कथाएँ कहीं हैं जो इतिहास की से किसी प्रकार महत्व की नहीं है। दूसरे भाग में भोज-उसकी सभा तथा अतिथि पण्डितों की कथाएँ हैं। इस वर्णन में भोज के पूर्ववर्ती तथा पश्चाद्वर्ती अच्छे कवियों के भोज के दर्बार में पहुँचाने का कवि ने प्रयत्न किया है। इसमें ३ कालिदासों का नाम है। इसकी भाषा वैदर्भी रीति का अनुसरण करती है।

प्रकरण ९

चम्पू-काव्य

गद्य-पद्य मय काव्य को चम्पू कहते हैं। चम्पू काव्य की रचना गद्य-काव्य के रचना काल से बहुत बाद की हुई होती है। गद्य-काव्यों में भी बीच २ में कुछ श्लोक मि[illegible] हैं। बौद्धों के जातकमाला आदि ग्रन्थों में तथा पञ्च[illegible] आदि में भी गद्य में कथा वर्णन रहने पर भी सुभाषित [illegible] पर बहुत से श्लोक हैं। किन्तु इन श्लोकों में प्रधान [illegible] भाग का वर्णन बहुत कम रहता है। चम्पू काव्य की [illegible] षता यही है कि इसमें कवि स्वेच्छानुसार कथा का कुछ [illegible] गद्य में और कुछ भाग पद्य में वर्णन करता है।

इस प्रकार का चम्पू काव्य यद्यपि ई० १० म शताब्दि [illegible] पूर्व का कोई उपलब्ध नहीं है तथापि ई० ४ थं शतक के ह[illegible] के शिलालेख में और कतिपय पाश्चात्य विद्वानों के मतानु[illegible] बौद्धों के जातक ग्रन्थों में भी इस काव्य का नमूना [illegible] जाता है।

---

१ बाणभट्ट की कादम्बरी और हर्षचरित।

उपलब्ध चम्पू काव्यों में सब से प्राचीन त्रिविक्रम-भट्ट के नल चम्पू से प्रारम्भ कर कुछ प्रसिद्ध चम्पूओं तथा चम्पू-कारों का इतिहास यहाँ दिया जाता है।

त्रिविक्रमभट्ट (ई० ६१५)

त्रिविक्रमभट्ट—विरचित ग्रन्थ १ नल चम्पू, २ मदालसा चम्पू—चरित्र—समय निर्धारण—राष्ट्रकूट राजा तृतीय इन्द्र का सभा-पंडित—नल चम्पू और मदालसा चम्पू का विषय वर्णन—शैली—छन्द—टीकाएँ व टिप्पणी।

इसके विरचित नल चम्पू या दमयन्ती कथा और मदा-लसा चम्पू या कुवलयाश्व-विलास नाम के दो चम्पू हैं। यह शाण्डिल्य वंशीय श्रीधरात्मज देवादित्य का पुत्र था। पहिले यह बहुत जड़ था परन्तु गिरिजा के प्रसाद से यह भारी विद्वान् हुवा। इसने नल चम्पू के आरम्भ में रामायण व महाभारत के साथ गुणाढ्य और बाण भट्ट का उल्लेख किया है। नलचम्पू का एक श्लोक[1] भोजराज के सरस्वती कण्ठा-भरण में मिलता है। यही त्रिविक्रम भट्ट राष्ट्रकूट राजा तृतीय इन्द्र के नवसारी शिलालेख का रचयिता है। इस शिलालेख का समय ई० ९१५ माना गया है। इसलिये त्रिविक्रम भट्ट का यही समय निश्चित है।

---

[1] उदयगिरिरिव पवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमतङ्गहनम्।
हरिमिव हरिमिव हरिमिव वहति पयः पश्यत पयोष्णी॥

६ उच्छ्वास २९

नलचम्पू :—इसका दूसरा नाम दमयन्ती कथा है। यह चम्पू काव्य ७ उच्छ्वासों का है। इसमें राजा नल और दमयन्ती की कथा वर्णित है। यह कथा केवल स्वयंवर तक ही है और अन्त में मङ्गल श्लोक भी नहीं मिलता। इससे ज्ञात होता है कि इसकी पूर्ति न हो सकी। परम्परा से सुना जाता है कि जब त्रिविक्रम भट्ट का पिता विदेश गया था तो राजसभा में कोई पण्डित शास्त्रार्थ के लिये आया। राजा ने यहां त्रिविक्रम भट्ट की बुलाहट हुई। इसने घबरा कर सरस्वती की प्रार्थना की। सरस्वती ने प्रसन्न होकर कहा कि जब तक तेरा पिता नहीं आता तब तक मैं तेरी जिह्वापर रहूंगी। त्रिविक्रम भट्ट हर्षित हो सभा में गया और पण्डित को शास्त्रार्थ में हराया। घर आने पर उसने नलचम्पू लिखना प्रारम्भ किया। पिता के आ जाने से सरस्वती का वास जिह्वा से हट गया। अतएव नलचम्पू ७ उच्छ्वास तक ही रह गया। इसमें कवि का शब्द-पाण्डित्य विशेष रूप से प्रकट हुआ है। कवि का ध्यान अर्थालङ्कार की अपेक्षा शब्दालङ्कार पर विशेष जान पड़ता है। गद्य का ओजोगुण इसमें पूर्ण व्यक्त है। श्लोकों में पाञ्चाली रीति का अनुसरण है। कवि ने इसकी रचना में पूर्ण पाण्डित्य प्रकट किया है। श्लोक अनेक छन्दों में रचे हुवे हैं। इसकी ५ टीकाएँ हैं उनमें चण्ड-पाल की विषम-पदप्रकाशिका टीका सब से प्राचीन है।

मदालसाचम्पू :—इसका दूसरा नाम कुवलयाश्वचरित

गी है। इसमें ६ उल्लास हैं। इसका कथानक मार्कण्डेय पुराण
के इस माहात्म्य प्रस्तावना में का है, जोकि जैमिनी को
पक्षियों ने पिता पुत्र के संवाद के रूप में कहा है। इसका
नायक कुवलयाश्व और नायिका मदालसा है। इसमें गद्य की
अपेक्षा पद्य बहुत अधिक है। इसके गद्य का ओजोगुण बहुत
उत्कट नहीं है। इसके अन्त में कविकृत मङ्गलाचरण है और
यह काव्य पूर्ण है। इस काव्य पर केवल टिप्पणी ही किसी
की विरचित उपलब्ध है।

सोमदेव सूरि (ई० ९५९)

सोमदेव सूरि—विरचित ग्रन्थ यशोधर महाराज चरित काव्य—
जैन चरित—समय—चालुक्य वंश के द्वितीय अरिसिंह का सभा-
पण्डित—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ नीति वाक्यामृत—उपर्युक्त दो
ग्रन्थों का विषय परामर्श—शैली—टीकाएँ।

इसका विरचित 'यशस्तिलक चम्पू' वा 'यशोधर महाराज
चरित' काव्य है। यह दिगम्बर जैन था। इस चम्पू का नायक
यशोधर महाराज इसका परम गुरु और नेमिदेव इसके गुरु
थे। इसने नेमिदेव को सकल तार्किक चूडामणि कहा है।
सोमदेव सूरि ने अपने को गद्य पद्यादि जानने वाले कवियों
का चक्रवर्ती कहा है। यह तृतीय राष्ट्रकूट राजा कृष्ण के
सामन्त चालुक्य वंश के द्वितीय अरिसिंह का सभापण्डित
था। कवि ने इस काव्य की रचना अरिसिंह के पुत्र वागराज

के शासन काल में गङ्गधारा में की थी। इसने अपना सम
ई० ६५६ बताया है। इसका विरचित 'नीति-वाक्यामृत'
नाम का राजनीति का ग्रन्थ भी है।

यशस्तिलक-चम्पू:—इसमें ८ आश्वास हैं। कवि ने
इसमें अपने परम गुरु यशोधर महाराज के वर्णन के साथ
जैन धर्म का प्रभाव व्यक्त करने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है।
इसके श्लोक की भाषा प्रसाद और माधुर्य गुण युक्त है।
गद्य में लम्बे २ समास रहते हुवे भी यह बहुत क्लिष्ट नहीं है।
तृतीय आश्वास में कवि ने राजशेखर तक प्राय: सभी
कवियों का नामोल्लेख किया है। षष्ठ आश्वास में संक्षेप
आस्तिक और नास्तिक सब मतों का मोक्ष के विषय
विचार खूब सफाई से दिखाया है। इस पर श्रुतसागर सूरि
की विरचित टीका है।

नीति-वाक्यामृत:—यह कौटिल्य के अर्थ शास्त्र और
कामन्दकीय नीतिसार के आधार पर लिखा हुवा ग्रन्थ है।
इसके लिखने में राजनीति पर इतना ध्यान नहीं दिया गया
है जितना कि राजचरित्र पर है। इसमें कूटनीति छोड़ कर
नीति का अवलम्ब करने का उपदेश है। स्मृति ग्रन्थों
अनुसार इसमें दिव्य का उपयोग करने का परामर्श है। इसमें
जैन धर्म को उपदेश-श्रेणी दीख पड़ती है। इसकी भाषा
और संक्षिप्त है। इसमें भी कवि ने अपना पाण्डित्य
किया है।

भोजराज (ई० १०५०)

भोजराज—विरचित ग्रन्थ चम्पू रामायण काव्य के ५ काण्ड—लक्ष्मण कवि विरचित इसका युद्ध काण्ड—वेङ्कट राय दीक्षित विरचित उत्तर काण्ड—धारा नगरी का राजा—ऑफ्रेक्त की सूचि में प्रमाद—समय निर्धारण—चम्पू रामायण का विषय परामर्श—टीकाएँ।

इसके विरचित 'चम्पू रामायण' काव्य के प्रथम ५ काण्ड हैं। इस अपूर्ण ग्रन्थ की पूर्ति युद्ध काण्ड लिखकर लक्ष्मण कवि ने और सप्तम काण्ड अर्थात् उत्तर काण्ड लिखकर वेङ्कट राय दीक्षित ने की। इतिहास में भोजराज धारानगरी का राजा प्रसिद्ध है। किन्तु प्रति काण्ड के अन्त में 'विदर्भराज विरचिते' ऐसा होने के कारण यह पाठ प्रामादिक मालूम पड़ता है। नैषधकार ने अपने काव्य में विदर्भ के कुण्डिनपुर के पति को भोजराज कहने के कारण अनन्तर के किसी ग्रन्थकार ने इन दोनों का अभेद मान लिया होगा। ऑफ्रेक्त महाशय की सूची से ज्ञात होता है कि उसको जो रामायण चम्पू की प्रति मिली थी उसके प्रथम ३ काण्डों के अन्त में भोज और कालिदास के नाम, ४ र्थ और ५ म के अन्त में विदर्भराज का नाम और षष्ठ के अन्त में लक्ष्मण कवि और ७ म के अन्त में वेङ्कट राय दीक्षित के नाम उल्लिखित थे। युद्ध काण्ड के आरम्भ में लक्ष्मण कवि ने स्पष्ट कहा है कि भोज विरचित ५ काण्डों की पूर्ति इस षष्ठ काण्ड को लिखकर मैं करता हूं और इसके पूर्व में सादर भोज का वन्दन भी

किया है। लक्ष्मण कवि का समय निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है तथापि वह भोज का समकालिक वा उसका किञ्चित् अनन्तर कालिक हो सकता है। क्योंकि टीकाकार रामचन्द्र के समय यह छत्रों काण्ड प्राचीन माने जाते थे। रामचन्द्र ने प्रथम ५ काण्ड भोज विरचित और षष्ठ काण्ड लक्ष्मण कवि विरचित माना है। मुद्रित ग्रन्थ में सप्तम काण्ड नहीं मिलता है। इस लिये यह कहा जा सकता है कि रामचन्द्र के समय वह काण्ड या तो लिखा नहीं गया था, या लिखा होने पर भी रामचन्द्र को प्राप्त नहीं हुआ था। ऑफ्रेक्ट की सूची से यह भी ज्ञात है कि गोविन्द-राज चम्पू-रामायण का टीकाकार था। बहुत सम्भव है कि यह गोविन्दराज मनुस्मृति के प्रसिद्ध टीकाकार गोविन्दराज ही हों। क्योंकि इसकी स्मृति टीकाओं में भोजदेव का निर्देश मिलता है और भोजदेव के बाद उसी शतक में ई० ११५० से ११८० के मध्य में यह वर्तमान था, ऐसा माना गया है। भोजराज के विषय में विद्वान् यह भी मानते हैं कि भोजराज के अनेक सभापण्डितों ने अनेक ग्रन्थों को लिखकर भोज के नाम से प्रकाशित किये थे। चम्पू रामायण के आरम्भ में ग्रन्थकर्ता का नाम दिया न होने के कारण भोजराज विषयक यह कल्पना और भी पुष्ट होती है। ग्रन्थकर्ता कोई भी हो परन्तु यह ग्रन्थ भोज के समय में (ई० १०५०) विरचित हुवा इसमें कोई सन्देह नहीं है। भोजराज के चरित्र के विषय में अलङ्कार के अध्याय में कहा जाय

चम्पू-रामायण :—यद्यपि ऑफ्रेक्त की सूचि के अनुसार इसमें ७ काण्ड हैं तथापि सम्प्रति जो पुस्तक प्रकाशित है उसमें केवल ६ काण्ड हैं। इसमें रामायण की कथा वर्णित है। इसकी भाषा शब्दालङ्कार से परिपूरित है। काव्य की कृति में कवि का पाण्डित्य प्रकर्ष और अलङ्कार रचना चातुर्य पूर्णतया व्यक्त है। शब्दालङ्कार की ओर कवि का अधिक ध्यान होने के कारण इसमें कुछ क्लिष्टता आ गई है। तथापि यह काव्य हृद्य है। इसकी टीका रामचन्द्र विरचित व्याख्या नाम की है। गोविन्दराज की टीका मुद्रित नहीं प्रतीत होती है।

अभिनव कालिदास (ई० १३४०)

अभिनव कालिदास—विरचित ग्रन्थ भागवत-चम्पू—ग्रन्थकर्ता के सम्बन्ध में ऑफ्रेक्त महाशय का मत—समय निर्धारण—टीकाकार—विद्यानगर के माधवाचार्य का समकालिक—इसका विरचित अन्य ग्रन्थ अभिनव भारत चम्पू—भागवत का विषय परामर्श—शैली—रीति—टीकाएँ।

अभिनव कालिदास वा नवकालिदास का विरचित 'भागवत-चम्पू' काव्य है। शङ्कर-दिग्विजयकार माधवाचार्य ने भी अपने को नवकालिदास कहा है। ऑफ्रेक्त महाशय शंकर दिग्विजयकार माधव की ही अभिनव कालिदास उपाधि थी ऐसा मानता है। यह ग्रन्थकार प्रसिद्ध माधवाचार्य विद्यारण्य है ऐसा इस चम्पू के मंगलाचरण के श्लोकों से प्रतीत नहीं

होता है। माधवाचार्य के समय के किसी कवि ने यह ग्रन्थ
बनाया हो यह बहुत सम्भव है। इसमें माघ कवि का ...
मिलने के कारण और प्रत्येक विलास वा स्तवक के अन्त के
श्लोकों में नैषध चरित का अनुकरण होने के कारण इसका
समय १२ श शतक के बाद का है इसमें कोई सन्देह नहीं
इस काव्य के टीकाकार रघुनाथ और चिदम्बर १६ श और
१७ श शतक के हैं। इसलिये बहुत सम्भव है कि यह कवि
१४ श शतक में विजयानगर के माधवाचार्य का समकालीन
हो। ग्रन्थ के आदि और अन्त में शिव पार्वती का मङ्गल
से यह शैव मालूम होता है। इसका विरचित अभिनव-...
चम्पू भी सूची में उल्लिखित है।

भागवत-चम्पू:—इसके ६ स्तवक वा विलास हैं। ...
में 'कालिदासकृते'[1] और आदि में 'अभिनव'[2]-कालिदास
ऐसा लिखा है। इसमें पद्य की अपेक्षा गद्य विशेष है। ...
में भी बहुत लम्बे २ वाक्य अलङ्कार से रहित दीख पड़ते
पद्य में ही कुछ प्रसाद गुण प्रकट होता है। यद्यपि ग्रन्थारम्भ
में कवि ने इसके प्रतिपद में ध्वनि का जृम्भण है ऐसा कहा
तथापि इसके पढ़ने से यह उक्ति यथार्थ प्रतीत नहीं होती।

---

१ भागवत-चम्पू पृ० १७२।

२ अभिनवपदपूर्वः कालिदासः प्रगल्भः त्रिनयनदयितायाः ...
स्मस्तृतीयः। विरचयति तदैव प्रेरितः प्रेमपूर्वं ७ हरिगुण-परिरब्धं ...
चम्पूप्रबन्धम्। भागवत-चम्पू १ स्तबक ७ श्लोक।

...भी प्रायः मध्यम कोटी के हैं। काव्य की रीति पाञ्चाली
...होती है। इसकी कथा श्रीमद्भागवत को होने के
...उस ग्रन्थ के आधार पर ही इसकी रचना की गई है।
...चम्पू की ३ टीकाएँ निर्दिष्ट हैं। अक्षय शास्त्री, चिदम्बर
...रघुनाथ कवि इस चम्पू के टीकाकार हैं।

कवि-कर्णपूर (ई० १६ श शतक)

कवि कर्णपूर—विरचित ग्रन्थ आनन्द वृन्दावन चम्पू—जीवन चरित—
...—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ १ आर्याशतक, २ चैतन्य चरितामृत
...काव्य, ३ चैतन्य चन्द्रोदय नाटक, ४ गौराङ्गगणोद्देश दीपिका, ५ अल-
...कौस्तुभ, ६ अलङ्कार कौस्तुभ टीका 'किरण', ७ चमत्कार चन्द्रिका,
...प्रकाश कोष, ९ बृहत्कृष्ण गणोद्देश दीपिका, आनन्द वृन्दावन
...विषय परामर्श—टीका—केशव विरचित आनन्द वृन्दावन चम्पू
...भिन्न।

...इसका विरचित 'आनन्द-वृन्दावन-चम्पू' है। इसका
...नाम परमानन्द दास सेन था। इसकी कर्णपूर गोस्वा-
...उपाधि थी। इसके पिता का नाम शिवानन्द सेन और
...का नाम श्रीनाथ था। इसका पुत्र कविचन्द्र था। यह
...बंगाल के वैष्णव सम्प्रदाय के वैद्यकुल में, नवद्वीप के काञ्चन
...में ई० १५२४ में पैदा हुवा था। इसके विरचित अन्य ६
...और हैं, जिनमें आर्याशतक, चैतन्य चरितामृत महाकाव्य
...१५४२), चैतन्य चन्द्रोदय नाटक (ई० १५७२) का, गौराङ्ग-
...देश-दीपिका वा गौरगणोद्देश-दीपिका ई० १५७६ की,

अलङ्कार-कौस्तुभ और उसकी टीका किरण, चमत्कार-चन्द्रि
वर्णप्रकाश (कोष), और बृहत्कृष्ण-गणोद्देश-दीपिका
कृष्णलीलोद्देश-दीपिका हैं। इसका पिता श्रीनाथ-चैतन्य
का शिष्य था।

आनन्द वृन्दावन-चम्पू:—इस चम्पू के २२ स्तबक
इसमें श्रीमद्भागवत की श्रीकृष्ण लीला वर्णित है। इस
की भाषा भक्ति वात्सल्य और प्रेमरस से परिप्लुत है। इस
रचयिता की ही विरचित टीका है। इसी पुस्तक से कवि
के पाण्डित्य की प्रसिद्धि हुई। केशव विरचित आनन्द-वृ
वन-चम्पू इससे भिन्न है।

जीव-गोस्वामी (ई० १६ श शतक)

जीव-गोस्वामी—विरचित ग्रन्थ गोपाल चम्पू—समय—जीवनवृ
इसके विरचित व्याकरण, अलङ्कार, नाटक व स्तोत्र के १० ग्रन्थ लि
लघुतोषिणी—गोपालचम्पू का विषय परामर्श—टीका।

इसका विरचित गोपाल-चम्पू है। यह चैतन्यदेव के शि
प्रसिद्ध रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी का
था। बंगाल की परम्परा में इसका समय ई० १५२३ से
तक माना गया है और यही ठीक है। इसके पिता अ
वल्लभ गोस्वामी था। यह भी चैतन्यदेव के वैष्णव सम्प्र
का ही अनुयायी था। इसके विरचित लघुतोषिणी ग्रन्थ
इसके चाचाओं के विरचित ग्रन्थों का पता चलता है।
विरचित कुल ग्रन्थ ६ या १० हैं जिनमें व्याकरण, अ

...क और स्तोत्र आदि हैं। इन सब में वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है।

गोपाल-चम्पू :—यह विस्तृत ग्रन्थ दो विभागों में विभक्त है—पूर्व-चम्पू और उत्तर-चम्पू। पूर्व चम्पू के ३३ पुराण हैं और उत्तर-चम्पू के ३७ पूरण हैं। पूर्व-चम्पू ई० १५८८ के लगभग ...त हुवा था और उत्तर चम्पू ई० १५९२ में पूर्ण हुवा था। ...में श्रीकृष्ण का चरित्र वर्णित है। यह ग्रन्थ वैष्णवों के ..., वात्सल्य और भक्तिरसों का नमूना है। यह ग्रन्थ चैत-...के ग्रन्थों के सदृश आदरणीय माना जाता है। इसकी ...रचयिता की ही वनाई हुई है।

श्रीशेष-कृष्ण (ई० १५९०)

शेष-कृष्ण—विरचित ग्रन्थ पारिजात हरण चम्पू—जीवनी—...-इसके विरचित अन्य ग्रन्थ १ प्रक्रिया-प्रकाश, २ उषा परिणय चम्पू ३ कंसवध, ४ मुरारि विजय, ५ सत्यभामा परिणय, ६ सत्यभामा विलास, ...गोपाल काव्य आदि—पारिजातहरण का विषय परामर्श—शैली।

इसका विरचित पारिजातहरण चम्पू है। यह काशी के ...वासी महाराष्ट्र शेषवंश का अवतंस था। इसके पिता का नाम नृसिंह शेष था। यह प्रसिद्ध वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी के रचयिता भट्टो जी दीक्षित का गुरु था। पत्रपुञ्ज राजा के कुमार कल्याण के उपदेश के लिये इसी ने व्याकरण की राम-चन्द्र की प्रक्रिया कौमुदी की टीका 'प्रक्रिया प्रकाश' लिखी थी। इन बातों से शेष कृष्ण का समय ई० १६ श शतक का

अन्त माना जाता है। इसके विरचित व्याकरण के
उषा परिणय और पारिजातहरण नाम के २ चम्पू,
मुरारिविजय, सत्यभामा परिणय और सत्यभामा
नाम के नाटक और क्रिया-गोपन नाम का काव्य ये ग्रन्थ

पारिजातहरण-चम्पूः—यह चम्पू उस समय के
राज नरोत्तम की आज्ञा से जिसको सांसारिक
अत्यन्त मानसिक पीड़ा हो रही थी, भगवन्नाम
लिये श्रीशेष कृष्ण ने रचा था। इसके ५ उच्छ्वास हैं।
उच्छ्वास के अन्तिम श्लोक में कवि ने उपर्युक्त
है। इसमें हरिवंश के पारिजातहरण की कथा सविस्तार
है। काव्य की भाषा अत्यन्त मधुर और हृद्य है। माधुर्य
पोषक वर्णों को चुनकर रखने में कवि की प्रवीणता
तरह व्यक्त हुई है। इसमें शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार
ही हैं। इस काव्य पर किसी की टीका उपलब्ध नहीं है।

नीलकण्ठ-दीक्षित (ई० १६३७)

नीलकण्ठ दीक्षित—विरचित ग्रन्थ नीलकण्ठ चम्पू—जीवन
समय—मधुरा के तिरुमल्ल नायक राजा का प्रधान अमात्य—
चम्पू का विषय परामर्श।

इसका विरचित नीलकण्ठ चम्पू है। यह प्रसिद्ध
दीक्षित के भ्राता अच्चा दीक्षित का पौत्र था।
दीक्षित को अप्पा दीक्षित भी कहते थे। यह मदुरा के
नामक राजा की सभा का 'पण्डित सार्वभौम' कहलाता

और उस राजा का प्रधान अमात्य था। इसके विषय में और महाकाव्य के प्रकरण में कही जा चुकी हैं। इसलिये यहां फिर कहने की आवश्यकता नहीं है। इस नीलकण्ठ चम्पू में इन्होंने अपना समय श्लोक[1] में ई० १६३७ दिया है।

नीलकण्ठ चम्पू:—इसका दूसरा नाम नीलकण्ठ विजय चम्पू है। इसके ५ आश्वास हैं। इसमें महादेव की कथा वर्णित है। काव्य में प्रसाद और माधुर्यगुण उत्कटता से विद्यमान हैं। इसमें अर्थ और शब्द दोनों ही अलङ्कार बड़े खूबी के साथ प्रयुक्त हैं।

वेङ्कटाध्वरी (१६५०)

वेङ्कटाध्वरी—विरचित ग्रन्थ विश्वगुणादर्श चम्पू—जीवनी—समय—विरचित अन्य ग्रन्थ १ लक्ष्मी सहस्रनाम स्तोत्र, २ हस्तिगिरि चम्पू—गुणादर्श चम्पू का विषय परामर्श—शैली—टीकाएँ—वीरराघव विरचित विश्वगुणादर्श चम्पू इससे भिन्न।

इसका विरचित विश्वगुणादर्श चम्पू है। यह रामानुजमतानुयायी महाकवि श्री महालक्ष्मी का भक्त था। यह अप्पय दीक्षित का पौत्र और रघुनाथ दीक्षित का पुत्र था। इसकी माता का नाम सीता था। यह अप्पय गुरु प्रसिद्ध कुवलयानन्द चित्र मीमांसादिकों के कर्ता श्री मदप्पय दीक्षित द्रविड़ से भिन्न

---

[1] अष्टात्रिंशदुपस्कृत सप्तशताधिकचतुस्सहस्रेषु (४७३८)।
कलिवर्षेषु गतेषु ग्रथितः किल नीलकण्ठविजयोऽयम्।
मङ्गल श्लोक १०।

था। अप्पय दीक्षित शैव था किन्तु अप्पय गुरु और वेङ्कटा-
ध्वरी वैष्णव थे। अप्पय गुरु प्रसिद्ध ताताचार्य का अन्ते-
वासी था। परन्तु अप्पय दीक्षित इस ताताचार्य का प्रबल
प्रतिस्पर्द्धी था। वेङ्कटाध्वरी नीलकण्ठ दीक्षित का समका-
लिक माना गया है। यह काञ्चीपुर के पास के अरसाणिपाल
नाम के अग्रहार में रहता था। वड़हल नाम के वैष्णव सम्प्रदाय
में इसका जन्म हुवा था। विश्वगुणादर्श-चम्पू में एक श्लोक
आया है जिस से इस ग्रन्थ का समय ई० १६४० सिद्ध होता
है। इसलिये इसके और नीलकण्ठ दीक्षित के समकालिक होने
में कोई सन्देह नहीं है। इसके विरचित लक्ष्मी सहस्रनाम
स्तोत्र और हस्तिगिरि चम्पू हैं।

विश्वगुणादर्श चम्पू—यह चम्पू काव्य बहुत विस्तृत
है। इसमें भारत के अनेक आश्रम, नगर, आचार्य, नदियाँ,
देश, और लोग और उनकी रीति आदि के वर्णन में ५३ प्रक-
रण हैं। कवि का भाष-प्रभुत्व इसमें पूर्णतया व्यक्त है, क्योंकि
इसमें सब वर्णन कवि ने अपने अनुभव से दिया है ...
किसी ग्रन्थ का आधार नहीं लिया गया है। काव्य के ...
अच्छे गुण इसमें विद्यमान हैं। अलङ्कारों के विषय में ...
ने अर्थालंकार की अपेक्षा शब्दालङ्कार पर विशेष ध्यान दिया ...

१ हूणाः करुणाहीनास्तृणवद्ब्राह्मणगणं न गणयन्ति।
तेषां दोषाः पारेवाचां येनाचरन्ति शौचमपि॥

विश्वगुणादर्श चम्पू पृ० १५० श्लो० २११।

इसलिये काव्य में कुछ क्लिष्टता आ गई है। तथापि के सहज माधुर्य और प्रौढ़त्वादि गुण लुप्त नहीं हैं। इस रीतियां हैं। इसकी दो टीकाएँ प्रसिद्ध हैं, उनमें सुब्बाशास्त्री की विरचित भावदर्पण नाम की टीका बालकृष्ण विरचित पदार्थ-चन्द्रिका टीका मुद्रित हैं। वीरराघव विरचित विश्वगुणादर्श चम्पू इससे भिन्न है।

अनन्त कवि :—(अज्ञात समय)

अनन्त कवि—विरचित ग्रन्थ चम्पू भारत—इसका विषय परामर्श—टीकाएँ।

अनन्त द्वारा विरचित चम्पू भारत काव्य है। इसके समय, स्थान वा माता पिता के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं क्योंकि इसने अपने सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है।

चम्पू-भारत :—इस काव्य के १२ स्तवक हैं। इसमें महाभारत की कथा वर्णित है। भाषा की दृष्टि से यह काव्य अन्य चम्पू काव्यों से श्रेष्ठ है। इसमें शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार अनेक रहने पर भी शब्दार्थोभय श्लेषालङ्कार प्रधान है। साहित्य-शास्त्र के प्रेमियों को यह काव्य अत्यन्त सेव्य है। आचार्य परीक्षा के अन्तिम कक्षा में इसका पठनपाठन होने से इसके पाण्डित्य के विषय में अधिक कहना व्यर्थ है। श्लेषालङ्कार के कारण इसमें क्लिष्टता सहज है तथापि माधुर्य और प्रसाद गुण को हानि नहीं हुई है। इस काव्य की दो टीकाएँ

हैं, उनमें नरसिंह की टीका प्राचीन है। दूसरा टीकाकार रा
चन्द्र लिखता है कि नृसिंह की टीका अत्यन्त दूषित होने
कारण कवि के हार्दिक भावों का प्रकट करने के लिये उस
अपनी टीका लिखी है। इस रामचन्द्र बुधेन्द्र की टीका
नाम 'लास्य' है।

केशव भट्ट (अज्ञात समय)

केशव भट्ट—विरचित ग्रन्थ नृसिंह चम्पू—जीवन चरित्र—
निर्धारण प्रयत्न—दक्षिण के उमपाति दलपति राजा का सभापति—
नृसिंह चम्पू का विषय परामर्श।

इसका विरचित नृसिंह चम्पू है। यह लौगाक्षि कुल
माध्यन्दिनी वाजसनेयी शाखा के ब्राह्मण वंश में जन्मा था।
मीमांसा, वेदान्त तन्त्र, न्याय और साहित्य में प्रवीण
इसका निवास गोदावरी के तीरपर पुण्यस्तम्भ नामक
में था। यह पुण्यस्तम्भ आजकल बम्बई प्रान्त के जिला
मदनगर में पुन्ताम्बा के नाम से प्रसिद्ध है। इसके पित
का नाम केशव और पिता का नाम अनन्त था। यद्यपि इ
समय के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं है तथापि लौगाक्षि
निर्देश से यह लौगाक्षि भास्कर के बाद का मालूम होता
लौगाक्षि भास्कर का समय १७ श शतक माना गया
उमापति दलपति नाम का कोई राजा उस समय दक्षि
शासन करता था जिसके दर्बार का केशव भट्ट सभापति
था, ऐसा उपसंहार के श्लोकों से प्रतीत होता है। यह

...और कब था, इसका पता न लगने से इसका कोई समय ...नहीं किया जा सकता है।

...नृसिंह-चम्पू :—यह छोटा सा चम्पू ५ स्तबकों में बद्ध है। ...बहुत ही सरल और प्रासादिक काव्य है। इसमें प्रसिद्ध ...की कथा वर्णित है। कवि का आराध्यदेव नृसिंह था, इस ...उसकी प्रशंसा में इसकी रचना की है। इसमें शब्दा-...र की विशेषता न होने से काव्य मधुर और मनोहर है। ...की टीका कोई उपलब्ध नहीं है और उसकी कोई आवश्य-...भी नहीं प्रतीत होती है।

रामनाथ (अज्ञात समय)

...रामनाथ—विरचित ग्रन्थ चन्द्रशेखर चम्पू—वंश परिचय—चन्द्रशेखर ...का विषय-विचार—शैली—विशेषता।

...इसका विरचित 'चन्द्रशेखर-चम्पू है'। इसके समय और ...निवास स्थान के सम्बन्ध में कोई पता नहीं चलता है। इसके ...माता पिता शिवदादेवी और रघुनाथदेव थे। यह शिव और ...विष्णु दोनों का भक्त था। इसके गुरु का नाम प्रायः रत्नगर्भ था।

चन्द्रशेखर-चम्पू :—यह चम्पू अत्यन्त विस्तृत होने के ...कारण पूर्व और उत्तर दो भागों में विभक्त है। पूर्व भाग में ५ ...उच्छ्वास और उत्तर भाग में ४ हैं। इस प्रकार इसमें ९ ...उच्छ्वास हैं। इसकी कथा कविकल्पित प्रतीत होती है। ...द्वितीय उच्छ्वास जिसमें मृगया-वर्णन है, श्लोक बद्ध है। ...अन्य उच्छ्वासों में भी गद्य से अधिक पद्य भाग ही है। गद्य

में प्रायः दीर्घ समास हैं तथापि कादम्बरी की तरह अ...
की भरमार नहीं है। पद्य भाग तो बिलकुल सरल है। ...
कोई टीका उपलब्ध नहीं है। इस चम्पू का वैलक्षण्य यह है ...
इसमें कवि ने अन्त में नाटक का एक दृश्य भी कथा के ...
से जोड़ा है।

श्रीकृष्ण कवि (ई० १७ श शतक)

श्रीकृष्ण कवि—विरचित ग्रन्थ मन्दार मरन्द चम्पू—यह काव्य ... है किन्तु अलङ्कार ग्रन्थ है—निवास स्थान—समय—इसका विरचित ग्रन्थ काव्य प्रकाश की टीका रस प्रकाश—मन्दारमरन्द चम्पू का परामर्श—इसकी प्रथम दो बिन्दुओं की व्याख्या।

इसका विरचित मन्दारमरन्द चम्पू यह काव्य ... किन्तु अलङ्कार का ग्रन्थ है। इस के विषय में विशेष कुछ ... नहीं है। ग्रन्थ के उपसंहार से मालूम होता है कि यह ... नाम से भी निर्दिष्ट है। यह वासुदेव योगीश्वर का शिष्य ... और गुहपुर का निवासी था। इसके ग्रन्थ में अलंकार ... बहुत से उदाहरण और लक्षण अप्पय दीक्षित के कुवलया... के हैं और इसमें विद्यानाथ से पाक-प्रकरण पूरा का पूरा ... है। इसलिये यह १७ श शतक का हो सकता है। इसकी ... चित काव्य-प्रकाश की टीका "रस-प्रकाश" नाम की है।

मन्दारमरन्द-चम्पूः—इसमें अलंकार शास्त्र के प्रायः ... विषय हैं। यह ११ बिन्दुओं में विभक्त है। ग्रन्थ का ... मरन्द या मकरन्द होने के कारण प्रकरणों का नाम ...

है। १ में वृत्त वा छन्द का वर्णन, २ में सार वा नायक ३ में श्लेष, ४ में चित्रयमक आदि ५ में अनेक बन्ध, गुण के भेद और गोप्य के भेद, ७ में नृत्य, ८ में नायक ९ में भाव और रस, १० में अलङ्कार और ध्वनि निरू- ११ में दोष, पाक, काव्य-भेद, कविकर्म आदि वर्णित हैं। इसमें छन्द, अलंकार और नाटक के प्रायः विषय आये यद्यपि इन विषयों की रचना शुद्ध और सशास्त्र नहीं है। होता है कि कवि ने इसमें अनेक ग्रन्थों से विषय एक- करने का प्रयत्न किया है। तो भी कवियों के लिये यह उपयोगी पुस्तक है। इसकी किसी गूढ़ पुरुष विरचित व्यञ्जनी व्याख्या केवल प्रथम दो विन्दुओं की उपलब्ध है।

पन्त विट्ठल (ई० १८५०)

विट्ठल—विरचित ग्रन्थ गजेन्द्र चम्पू—जीवन चरित्र—समय— चम्पू का विषय परामर्श—शैली—टीका।

इसका विरचित गजेन्द्र चम्पू काव्य है। यह महाराष्ट्र में कृष्णानदी के तीर पर करहाटक ग्राम का वासी था। के पुत्र, इस चम्पू के टीकाकार रघुवीर ने अपनी टीका के उपसंहार में कहा है कि पंतविठ्ठल आन्वीक्षिकी, श्रौत, व्याक- धर्मशास्त्र, साहित्य और वेदान्त का पण्डित होता हुवा भी रामचन्द्र का परम भक्त था। इसके पिता का नाम महादेव और माता का नाम गीता वा वाराणसी था। यह शाण्डिल्य गोत्री था। इसने २५ वर्ष की अवस्था में इस चम्पू की

रचना की थी। इसके पुत्र की टीका ई० १८६१ की; इसलिये इसका समय ई० १८५० मानना प्राप्त है।

गजेन्द्र-चम्पू:—इसमें ३ उल्लास हैं जिन में भागवत गजेन्द्रमोक्ष की कथा वर्णित है। इस ग्रन्थ की भाषा तथा मधुर है। शब्दालङ्कार विशेष हैं। गद्य में उत्कृष्ट नहीं है। पद्य में पाञ्चाली रीति का अनुसरण इसकी इसके पुत्र रघुवीर की विरचित टीका ई० १८ बनी है।

प्रकरण १०

नाटक

भारतीय नाट्य और नाटक का महत्व—नट और नाटक शब्दों की व्युत्पत्ति—संस्कृत नाटकों का वैलक्षण्य—भारतवर्ष के नाटक की उत्पत्ति और विकास के विषय में विद्वानों के मत—भरतनाट्यशास्त्र का मत—साहित्य क्षेत्र में नाटक का वैशिष्ट्य—भारतीय नाटक विभाग और उनका स्वरूप—नाटक का संविधानक।

नाटक[1] दृश्य काव्य है। श्रव्यकाव्य में भूतपूर्व घटनाओं का सुन्दर पद्य, गद्य वा दोनों में केवल वर्णन ही रहता है। परन्तु दृश्य काव्य में भूतपूर्व घटनाओं के वर्णन के साथ २ आल्हादकारक अभिनय भी रहता है। इस प्रकार के अभिनय में भूतकाल की वर्णित वा दृष्ट घटनाओं का वर्तमान काल में अनुकरण करने की चेष्टा की जाती है। यह अनुकरण जितना ही ठीक २ होता है उतना ही नट का कौशल विशेष रूप से प्रगट होता है और प्रेक्षकों को उतना ही अधिक आनन्द प्राप्त होता.

---

१ संस्कृत में दृश्य काव्य को रूपक कहते हैं और नाटक, रूपकों के दस भेदों में से एक है। परन्तु हिन्दी में नाटक शब्द सर्व प्रकार के अभिनयों के लिये रूढ़ है।

है। दृश्य काव्य में पाण्डित्य की ओर विशेष लक्ष न रख[illegible] उसे प्रेक्षकों को आनन्दसागर में मग्न कराने के योग्य ब[illegible] में ही अधिक यत्न किया जाता[1] है।

भारतवर्ष में नाट्य का दर्जा बहुत ऊँचा है। भारत[illegible] इसे वेद के सदृश पवित्र मानते हैं और इसी लिये इसे नाट्[illegible] वेद कहते हैं। नाट्य के अङ्ग भूत ताण्डव-लास्या[illegible] अभिनय, गीत, वाद्य आदि शङ्कर, पार्वती, ब्रह्मा व [illegible] आदिकों से सम्बद्ध हैं और उन २ देवताओं की उपास[illegible] इनका उपयोग किया जाता है।

संसार में नाटक का विलक्षण प्रभाव है। नाटक [illegible] ऐसी वस्तु है जिसे देख आबाल वृद्ध को चाहे वह अ[illegible] हो वा शिक्षित, उच्च कोटि का आनन्द प्राप्त होता है। [illegible] मनुष्य मात्र को अपनी ओर आकर्षित करने की अद्भुत [illegible] है। ऊँचे दर्जे के नाटकों से आनन्द के साथ २ अनेक उ[illegible] भी प्राप्त होते हैं जिनका सब के हृदय पर तात्कालिक प्र[illegible] पड़ता है। उपदेश के लिये नाटक के सदृश दूसरा कोई सा[illegible] नहीं है। कई बार वर्णन सुनने पर भी जो विषय सम[illegible] नहीं आते उनको एक बार रङ्गभूमि पर देखने से ही उ[illegible] यथार्थ ज्ञान हो जाता है। काव्यगत तथा अन्यान्य उपदे[illegible]

---

१ आनन्दनिस्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः।
योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नमः स्वादुपराङ्मुखाय।
दशरूपक [illegible]

ऐसा नाटक द्वारा प्राप्त उपदेश अधिक ओजस्वी तथा चिर-
होता है। काव्य के व्यवहारज्ञानादि सभी प्रयोजन
सुगमता से नाटकों से सिद्ध हो सकते हैं वैसे अन्य-
ओं से नहीं हो सकते। जिस प्रकार अच्छे २ नाटकों से
की मनोवृत्ति उन्नत अवस्था को प्राप्त हो सकती है
ही अनीतियुक्त नाटकों से मनुष्य मात्र के चित्त का अप-
भी सम्भावित है। इसीलिये भारतीय संस्कृत नाटककारों
नाटकों में सर्वत्र उदात्त ध्येय ही विद्यमान है।

नाट्य और नाटक शब्दों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों
मतभेद है। बहुत से पाश्चात्य और भारतीय विद्वान् 'नट'
को 'नृत्' धातु के प्राकृत अपभ्रंश से बना मानकर उससे
नाटक शब्द को व्युत्पन्न करते हैं। परन्तु पाणिनि के धातु-
में 'नट नृत्तौ' और 'नट अवस्यन्दने' ऐसे संस्कृत के स्वत-
धातु हैं। वैयाकरणों ने इन धातुओं से नाट्य और नाटक
की व्युत्पत्ति की है। इनके[1] कथनानुसार वाक्यार्थ का
अभिनय नाट्य है और पदार्थ का अभिनय ही नृत्य है। नृत्[2]
धातु गात्र विक्षेपार्थक होने से इस धातु से बने हुवे नृत्त, नृत्य

---

[1] वाक्यार्थाभिनयो नाट्यम्। पदार्थाभिनयो नृत्यम्। सिद्धान्त कौमुदी 'ध्ययोलिटि' सूत्र का व्याख्यान।

[2] अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्। भावाश्रयं नृत्यम्। नृत्तं ताललयाश्रयम्।
दशरूपक पृ० ३।

[3] नृती गात्रविक्षेपे। पाणिनि धातुपाठ।

और नर्तक शब्द आङ्गिक वाहुल्य (शरीर के अवयवों की हलचल) व्यक्त करते हैं। यदि इसी धातु से नट, नाट्य और नाटक शब्दों की व्युत्पत्ति की जाय तो नाट्य या नाटक में रहने वाला आङ्गिक किञ्चित् चलन (शरीर के अवयवों का सूक्ष्म हिलना) जो कि सात्त्विक वाहुल्य का द्योतक है इसका परिपोषक है, कदापि व्यक्त नहीं हो सकता। इसलिये नट शब्द को नृत् धातु के प्राकृत अपभ्रंश से बना मानना ठीक नहीं है।

अंग्रेजी साहित्य में नाटक के (Comedy) सुखपर्यवसायी और (Tragedy) शोक पर्यवसायी ये दो भेद माने गये हैं। परन्तु संस्कृत में जितने रूपक हैं वे सुखपर्यवसायी ही हैं। जिस प्रकार संस्कृत भाषा व्याकरण के नियमों से बद्ध है उसी प्रकार संस्कृत नाटक (रूपक) भी नाट्य शास्त्र के नियमों से नियन्त्रित हैं। नाट्य शास्त्र में रूपकों के नायक, अङ्क-विभाग आदि के विषय में नियम निर्दिष्ट हैं। संस्कृत नाटकों में रङ्ग-भूमि पर वध, युद्ध, विवाह, मृत्यु, रति, चुम्बनादि व्रीड़ाजनक कार्य आदि अनेक बातों का अभिनय निषिद्ध[1] है जो कि संस्कृतेतर भाषा के

१ दूराव्हानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लवः।
विवाहो भोजनं शापोत्सर्गौ मृत्यू रतं तथा॥
दन्तच्छेद्यं नखच्छेद्य मन्यद्व्रीडाकरञ्च यत्।
शयनाधरपानादि नगराद्युपरोधनम्॥
स्नानानुलपने चैभिर्वर्जितः ... .
साहित्यदर्पण षष्ठ परिच्छेद श्लो०

या जाता है। संस्कृत नाटकों के आरम्भ में पूर्वरङ्ग और तथा अन्त में भरतवाक्य अवश्य रहता है। संस्कृत केवल गद्य या केवल पद्य में नहीं रचे जाते किन्तु वे में रहते हैं। इन नाटकों में संस्कृत भाषा के साथ प्रकार की प्राकृत भाषाएँ भी रहती[1] हैं। स्त्री, शूद्र, आदि पात्रों का भाषण प्राकृत भाषा ही में रहता है। कृत भाषा भी सब पात्रों के लिये एक ही प्रकार की ती। पात्रों के अनुसार शौरसेनी, मागधी, पैशाची, आदि अनेक प्रकार की प्राकृत भाषाएँ प्रयुक्त रहती[2] हैं। रतवर्षीय नाटक की उत्पत्ति कैसे हुई? किन कारणों ? और मूल में किन उपादानों को लेकर विकासोन्मुख े सब बड़े जटिल प्रश्न हैं। बड़े २ विद्वानों ने इस पर र किया है तथा कर रहे हैं। उन में किसी का भी मत अभ्रान्त व पूर्णतया माननीय अभी तक देखने में नहीं है। वास्तविक बात तो यह है कि नाटक समाज के के सदृश होता है। जैसे २ समाज में नई धाराओं का , नई शक्तियों का संचार तथा नए भावों की जागृति होती है वैसे ही नाटकों के रूप में भी परिवर्तन होता जाता है।

---

1 त्रिवेन्द्रम् के अनन्त शयन ग्रन्थावलि में प्रकाशित भास कवि कृत नामका रूपक तथा प्रबोध चन्द्रोदयादि (Allegorical) नाटक संस्कृत ही में हैं।

2 साहित्य दर्पण षष्ठ परिच्छेद श्लो० १५८-१६१।

इससे स्पष्ट हो है कि इस समय को उपलब्ध सामग्री से ... के उत्पत्ति काल में वर्तमान समाज की स्थिति का ... करना जिस तरह दुष्कर है उसी प्रकार इस के आदि ... का निश्चय करना दुस्साध्य है।

कुछ विद्वानों ने ग्रीक नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध ... मेपोल (May Pole) नृत्य का उल्लेख किया है। उसी ... कर अन्य विद्वानों ने भारतीय नाटक के मूल कारणों ... दृश उत्सव तथा नृत्य को भी स्थान दिया है। मेपोल (... Pole) उत्सव के सदृश उन को भारत में इन्द्र ध्वज ... दिखाई पड़ा। इससे उनको यह कल्पना हुई कि ... का नाटकोत्पत्ति से अवश्य कुछ न कुछ सम्बन्ध है। ... विद्वानों[2] ने इस मत को ध्यान देने योग्य भी नहीं सम ... इन्द्रध्वज उत्सव नेपाल आदि देश में अभी तक प्रचलि ... उस का समय उसके अन्तर्गत भाव तथा उसकी ... रूढ़ि सब इस मत के विरुद्ध है।

डा० रिजवे (Ridgeway) का मत था कि नाटक ... की प्रवृत्ति, रुचि तथा स्फूर्ति, मृत वीर पुरुषों के प्रति ... दिखलाने की इच्छा से जागृत हुई। पहिले पहिल ... इस मत का प्रतिपादन ग्रीक ट्रेजेडी (Greek Trag...

---

1 जे० पी० ए० एस् बी० Vol. V 351 ff.

2. Keith's Sanskrit Drama page 41.

अधिकांश पाश्चात्य विद्वान् तथा भारतीय ऐतिहासिक भी नाटकों की उत्पत्ति वेद मूलक मानते हैं। ऋग्वेद में कुछ ऐसे सूक्त हैं जिनमें एक से अधिक वक्ता हैं। ऐसे सूक्तों को संवाद-सूक्त कहते हैं। प्राचीन काल में इनका क्या उपयोग था यह इस समय निश्चित करना दुष्कर है। इन विद्वानों के मतानुसार संसार में सब से प्राचीन ऋक्संहिता नामक ग्रन्थ के इन संवाद सूक्तों ही में नाट्य का बीज है। इस विषय में उन विद्वानों के भिन्न २ मत इस प्रकार हैं।

(क) श्रीदर[2] (Schroeder) महाशय का मत है कि अत्यन्त प्राचीन काल में नृत्य गीत, वाद्य का जो साहचर्य मिलता है उसका प्रभाव ऋग्वेद के ऋषियों पर पड़ा था और वे ऋक मन्त्रों के संवाद का गायन और नर्तन के साथ अभिनय किया करते थे। ग्रीस और मेक्सिको के लोगों की भाँति इनमें वीभत्स प्रकार नहीं थे और यह अभिनय केवल धर्मविषयक होता था। इस अभिनय का व्यावहारिक भाग आजकल 'यात्रा' में रूप ने अवशिष्ट है और धार्मिक भाग एकदम लुप्त हो गया है।

---

१ ऋक् संहिता—अगस्त्य लोपामुद्रा शिष्य संवाद १।१७९, विश्वामित्र नदी संवाद ३।३३, इन्द्रादितिवामदेव संवाद ४।१८, सपुत्रवसिष्ठेन्द्र संवाद ७।३३, इन्द्रवसुक्र संवाद १०।२८, यमयमी संवाद १०।१० इन्द्रेन्द्राणी वृषाकपि संवाद १०।८६, पुरूरवाउर्वशी संवाद १०।९५।

२ कीथ्स ड्रामा पृ० १६

अनुयायी लोग काले वस्त्र पहिने हुवे थे और क्रम
उनके अनुयायी लोग रक्त वस्त्र धारण किये हुवे थे।
कहना यह है कि इस वर्णन के द्वारा हेमन्त ऋतु पर
के ही विजय को दिखलाने का प्रयत्न किया गया है।
का विजय उद्भिजभूत (Vegetation spirit) को
का सांकेतिक स्वरूप है। इस मत के विरुद्ध अधिक
कोई आवश्यकता नहीं। स्वयं कीथ (Keith) महाशय
अपने पीछे के ग्रन्थों में इसको इतना महत्व नहीं दिया[1]

जर्मन विद्वान् पिशेल (Pischel) ने भी नाटकों
विषय में एक विलक्षण मत का प्रतिपादन किया[2] है।
कहना था कि पुत्तलिका नृत्य (Puppet show)
प्रथम भारतवर्ष में प्रकट हुवा और यहीं से अन्य देशों में
लित हुवा। पुत्तलिका नृत्य ही भारतीय नाटक
आदि रूप है और इसी से सूत्रधार स्थापकादि शब्द
आये हुवे हैं। इसी से धीरे २ वास्तविक नाटक का वि
हुवा। प्राचीन ग्रन्थों में तथा नाटकों में जहां २ पुत्त
नृत्य का वर्णन आया है उन सब स्थलों का उल्लेख
अपने मत के समर्थन के लिये सविस्तर किया है। पुत्त
नृत्य सब से प्रथम भारतवर्ष में उत्पन्न हुवा यह निर्विवाद
किन्तु इससे ही नाटक की उत्पत्ति हुई यह कहना सर्वथा

1. Keith's Sanskrit Drama page 45.
2. Die Heimat des Puppenspiels Hall 1900.

प्रतीत होता है। इस समय इस मत को मानने के लिये कोई भी तयार नहीं[1] है।

इसके सदृश ही एक दूसरा मत है। इसके भी आदि प्रवर्तक डा० पिशेल[2] (Pischel) ही हैं। किन्तु नाटकों के विकास में इसको एक आवश्यक कारण मानने वाले डा० ल्यूडर्स (Luiders) हैं। डा० कानो[3] (Konow) भी इस मत के समर्थक हैं। इस मत के अनुसार नाटकों की उत्पत्ति छाया नाटकों (Shadow play) से हुई। इस मत का समर्थन करने के लिये छाया नाटक के प्राचीन से प्राचीन उल्लेख खोज निकाले गये हैं। किन्तु ये सब सर्वथा अभ्रान्त तथा प्रामाणिक प्रतीत नहीं होते हैं। संस्कृत साहित्य में छाया नाटकों का महत्व जैसा इस मत के अनुसार होना चाहिये वैसा कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। दूताङ्गद आदि छाया नाटक न तो इतने प्राचीन न इतने विशेष महत्व के ही समझे जाते हैं। पाश्चात्य विद्वान् भी इस समय इस मत को बहुत करके नहीं मानते[4] हैं। पाश्चात्य विद्वानों के सिर पर ग्रीक संस्कृति का भूत

---

1. Keiths Sanskrit Drama page 54 ff.
2. R. Pischel Das altindische schattemspiel, SKAW, 1906 page 482 ff
3. DIE. Sanbhiks! SKPAW, 1916 page 698 ff
4. Das indische Drama pp. 45-46.
5. Keith's Sanskrit Drama page 56-57.

पहिले तो बहुत ही चढ़ा रहता था, अभी भी प्रबल प्रमा
सम्मुख उपस्थित रहने पर भी वे लोग उसके जाल से
मस्तिष्क को सर्वथा मुक्त नहीं कर सकते हैं। इसका
बड़ा निदर्शन उस मत प्रदर्शन में मिलता है जिसमें
यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि नाटक
भारतीयों ने ग्रीक लोगों से सीखी। इस मत के आद्य प्र
वेबर[1] (Weber) थे। अन्य युक्तियों के द्वारा इस म
समर्थन विण्डिश[2] (Windisch) ने किया। लेवी[3] (L
ने यद्यपि इनके मत को पूर्णतया नहीं माना तथापि घूम
कर उसी के समीप पहुंचे हुये दिखाते हैं। डा०
(Keith) छिपी भाषा में विण्डिश के मत का ही स
करते हुवे प्रतीत होते हैं। उनके कथन का सारांश यही
भारत में बिना बाह्य प्रभाव के ऐसे नाटक के विकास के
पर्याप्त सामग्री प्राप्त नहीं थी।

इस मत का प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानों[5] के द्वारा
खण्डन हो चुका है। कीथ आदि चाहे जो कुछ कहें, इस
के मानने वाले अब यदि कहीं हैं, तो वे अत्यल्प संख्यक ही

1. Indische Studien Vol 1 page 148.
2. Der griechische Einfluss im indischen Drama
3. Le theatre indian. page 343 ff.
4. Keith's Sanskrit Drama page 59 ff.
5. Macdonell's History of Sanskrit literature p
415-416.

...थ में किया था[1]। पीछे उन्होंने भारतीय नाटकों की ...ति निर्णय करने में इसी मत का उपयोग किया[2]। इस ...थ में रामलीला, कृष्णलीला आदि का निदर्शन करते ...न्होंने यद्यपि बड़े पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है तथापि ...ंगीय विद्वानों को भी उनका मत किसी प्रकार हृदयङ्गम ...प्रतीत हुआ[3]।

डा० कीथ (Keith) ने रिजवे के मत का खण्डन करते ...एक विचित्र मत प्रगट किया[3] है। उनका कहना है कि ...टकों को सब से पहिली प्रवृत्ति प्राकृतिक परिवर्तन को ...त्मक रूप में दिखलाने की अभिलाषा से हुई। इस ...ध में महाभाष्य में निर्दिष्ट कंसवध नाटक का वे ...लेख करते हैं। इस नाटक में लिखा है कि कंस तथा उसके

---

1 The origin of Tragedy.

2. Drama and Dramatic dances of non-European ...ces.

3. Keith J. R. A. S. 1912 page 411 ff.; 1917 ...ge 140 ff; G. Norwood's Greek Tragedy pages 2 ff.

4. Vedic Akhyana and the Indian Drama; JRAS. ...ge 979 ff. Origin of Tragedy and Akhyana: JRAS ...912 page 411. ff.; origin of the Indian Drama ZDMG. ...ff. L. 534.

(ख) हर्तेल (Hertel) महाशय का कथन है कि वैदिक संवादात्मक सूक्त गाये भी जाते थे। संवादों का गान एक ही गायक से होना असम्भव था क्योंकि ऐसा करने से संवाद करने वाले दो व्यक्तियों का भेद प्रतीत नहीं हो सकता था। इस प्रकार इसके मत में भी वैदिक संवादों में नाट्य का बीज है। ऋग्वेद के सुपर्णाध्याय में इसी बीज का विकास है। आज कल की यात्राओं में इसी प्राचीन प्रथा का अनुकरण है।

(ग) कीथ (Keith) महाशय कहते हैं कि ऋग्वेद के संवादों का गान होता था यह कहना उचित नहीं है। गाने के लिये सामवेद के मन्त्र रचे गये थे। इन साम गान करने वाले ऋषियों का नाम भी अलग (उद्गातृ) रक्खा गया है। ऋग्वेद के मन्त्रों का केवल शंसन होता था। ऋग्वेद में संवाद सूक्त अनेक प्रकार के हैं। कहीं संवाद तत्व विचार के सम्बन्ध में हैं कहीं ऐतिहासिक, कहीं प्रेत यात्रा के विषय में और कहीं वे द्यूत के दुष्परिणाम द्योतित करते हैं। ये सब व्यावहारिक हैं और इनमें नाट्य का बीज माना जा सकता है। धार्मिक संवादों का अनुकरण लुप्त हो गया यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि अनन्तर के आरण्यक और सूक्त ग्रन्थों में 'महाव्रत' और 'अश्वमेध' यागादि के समय में उनका अनुकरण विद्यमान है।

(घ) कुछ जर्मन विद्वान् विण्डिश (Windisch) ओल्देनबर्ग (Oldenberg) और पिशेल (Pischel)

संवादों के विषय में भिन्न विचार प्रगट करते हैं।
के मत से ये संवादसूक्त गद्य पद्य से मिश्रित थे। गद्य
पद्य भाग की भांति अक्षरशः प्रमाणभूत न होने के
धीरे २ लुप्त हो गया और केवल पद्य भाग ही रह
। अतः इन संवादों में नाटक का बीज मानना स्वाभाविक
पिशेल ने स्वच्छ कहा है कि नाटकों की गद्य पद्य की
इन्हीं संवादों के अनुकरण में हुई है। प्रो० ओल्देनवर्ग
मत को पुष्ट करते हुवे कहता है कि इस प्रकार के संवादों
ग्वेद ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेप की कथा के रूप में
शतपथ ब्राह्मण में पुरूरवा और उर्वशी की कथा के रूप में
श्रेडर महाशय ने इसके मत का खण्डन किया है।

इन सब मतों का सूक्ष्म विचार करने पर भी जैसा पहिले
जा चुका है, नाटक की उत्पत्ति का प्रश्न पूर्णतया हल
होता। केवल इतना ही आभास सा मिलता है कि भार-
इतिहास के प्राचीनतम काल में भी नाटकीय अंश किसी
किसी रूप में अवश्य विद्यमान थे। अब इसके अनन्तर यह
देखने का प्रयत्न किया जाता है कि नाटक के विषय में हमारे
ग्रन्थों में कहां २ और किस प्रकार का उल्लेख मिलता है।
ऋग्वेद के सूक्तों से मालूम होता है कि सोम विक्रय
समय में एक प्रकार का अभिनय हुवा करता था। अभि-
का प्रधान प्रयोजन अपने को और प्रेक्षकों को आह्ला-
करना ही था। इसलिये यह बहुत स्वाभाविक था कि

यज्ञ यागादि के समय में ऋषि लोग नृत्य, गीत और वा
द्वारा देवताओं का अभिनय करने का भी प्रयत्न किय
थे। यजुर्वेद में यद्यपि नट शब्द का साक्षात्प्रयोग न
तथापि उसमें शैलूष शब्द मिलता है जो कि नट
पर्याय[1] है। यजुर्वेद में नृत्य गीत का भी उल्ले
कौषीतकि ब्राह्मण[2] में संगीत को यज्ञयागादि का प्र
मान लिया है जो कि पारस्कर गृह्यसूत्र[3] में द्विजों
निषिद्ध बतलाया गया है। महाव्रत स्तोम के समय कु
अग्नि की परिक्रमा में नाचती, गाती थीं। ऐसा क
अपने पति के साथ बहुत दिन तक जीकर सन्तान प्रा
हैं ऐसी भावना थी। प्रेत यात्रा के समय भी नृत्य गा
करता था। श्रीमद्भागवत् में और पुराणों में अप्सरा, ग
का नृत्य, गीत, वाद्य प्रसिद्ध ही है। श्रीकृष्ण की रा
भी इसी की द्योतक है। इस तरह प्राचीन काल से न
का विकास बराबर होता आया है।

रामायण और महाभारत में नट व नर्तक शब्दों का
आया है। महाभारत में एक स्थान पर नाटककारों

---

१ शैलालिनस्तु शैलूषा जायाजीवाः कृशाश्विनः।
भरता इत्यपि नटाः ... अमरकोश ॥ शूद्रवर्ग श्लोक ॥

२ कौषीतकि ब्राह्मण २९।५।

३ पारस्कर गृह्य सूत्र २।७।३।

की कैसी गति होती है इसका भी वर्णन[1] मिलता है।
यह अनुमान किया जा सकता है कि रामायण महाभारत
में (ई० पू० ४ थं व ५ म शतक) नाटकों का अभिनय
था। ये दोनों ग्रंथ संस्कृत नाटक के संविधानक के
आधारभूत रहे हैं यह कहने की कोई आवश्कता नहीं है।
भारत के आरंभ में यह स्पष्ट कहा है कि कवियों को काव्य
नाटक बनाने की स्फूर्ति इसी सर्वोत्तम इतिहास द्वारा
है।[2]

पाणिनी की अष्टाध्यायी में शिलाली और कृशाश्व के नट
का उल्लेख है। किन्तु इन नट-सूत्र-ग्रन्थों में नाट्य-शास्त्र
प्रतिपादन किस प्रकार का था यह कहना असम्भव है।
भाष्यकार पतञ्जलि के समय नाटकों का अभिनय
रूप से होता था यह महाभाष्य में के 'कंस वध'
'बलि वन्ध' नाटकों से अनुमान किया जा सकता है।
भाष्यकार के समय नाटक के प्रयोग अच्छी तरह होने लगे
और बहुत सम्भव है कि उस समय नाट्य शास्त्र के नियम
बन चुके हों। भरत मुनि का नाट्य शास्त्र इसी समय के
का होने के कारण वह ग्रन्थ इस कथन का प्रमाण रूप है।
बौद्धों के समय में उस धर्म के अनुयायियों द्वारा लिखित

---

1 वैद्य का 'संस्कृत वाङ्मयाचा त्रोटक इतिहास' पृ० १३४।
2 इतिहासोत्तमा दस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः।
महाभारत आदिपर्व श्लोक।

नाटक ग्रन्थों में अश्वघोष के नाटक सबसे प्राचीन माने हैं। किन्तु इस धर्म के ललित-विस्तर और अवदानश आदि प्राचीन ग्रन्थों में नाटक का निर्देश प्राचीनत्वेन नि है। सद्धर्म-पुण्डरीक और महावंश आदि ग्रन्थों में तत्का समय में नाटकों का अभिनय होता था ऐसा उल्लेख है। ग्रन्थों में भी नाटकों का निर्देश इसी तरह का है। उस नाटकों की यद्यपि निन्दा की गई है तथापि धर्मोपदेश के नाटकों की सहायता ली है।

इतना पर्यालोचन करने के अनन्तर यह स्पष्ट सिद्ध है कि भारतवर्ष में नाटक बड़े ही प्राचीन काल से किसी रूप में अवश्य ही परिचित रहा है। इसकी उत्पत्ति विकास के लिये किसी भी अन्य देश की सहायता अपे क्षित समझने की क्या आवश्यकता है, यह साधारण वाले भारतीयों के किसी प्रकार भी बुद्धिगत नहीं है नाटक की उत्पत्ति भारतीय उपादानों को लेकर ही हुई भारतीय शक्तियों के द्वारा ही उसका विकास हुआ सिद्धान्त बिलकुल निश्चित और असंदिग्ध है। इसकी उ के उपादान अवश्य ही वेद से सम्बन्ध रखनेवाले रहे किन्तु उनका वास्तविक स्वरूप क्या था और किस प्र संचार द्वारा यह नाटकीय प्रवृत्ति चरितार्थ हुई, यह इस निश्चित रूप से कहना असाध्य नहीं तो दुस् अवश्यही है।

नाटकोत्पत्ति के विषय में भारतवर्ष में कुछ कथाएँ परम्परा से चली आई हैं। इनमें सब से प्राचीन वह प्रतीत होती है जो भारतीय नाट्यशास्त्र के आरम्भ में मिलती[1] है। यहां उसका सारांश दिया जाता है। सांसारिक मनुष्यों को अत्यन्त खिन्न देखकर इन्द्रादि देवताओं ने ब्रह्मा के पास जा कर ऐसा वेद निर्माण करने की प्रार्थना की जिस से, वेद के अनधिकारी स्त्री, शूद्र आदि सभी लोगों का मनोरंजन हो। यह सुन कर ब्रह्मा ने चारो वेदों का ध्यान कर ऋग्वेद से नृत्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर सर्व-शास्त्रार्थ-सम्पन्न, धर्म्य, अर्थ्य, यशस्य, उपदेश युक्त और सर्व शिल्प प्रदर्शक नाट्यवेद नामक पञ्चम वेद की रचना[2] की और इन्द्र से, कुशल, प्रगल्भ और जितश्रम देवताओं में इसका प्रचार करने को कहा। इन्द्र ने हाथ जोड़ कर कहा कि देवता लोग नाट्य कर्म में कुशल न होने से इसके अयोग्य हैं। वेदों के मर्म को जानने वाले, तपस्वी मुनि लोग ही इसका ग्रहण और प्रयोग करने में समर्थ हो सकते हैं। इन्द्र का यह उत्तर सुन कर ब्रह्मा ने भरत मुनि को कहा कि तुम अपने सौ पुत्रों के साथ इसका प्रयोग करो। भरत मुनि ने

---

१ भरतनाट्यशास्त्र अध्याय १-४।

२ जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदा त्सामभ्यो गीतमेवच।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।
भरतनाट्य शास्त्र १ अध्याय श्लो० १७।

तदनुसार, अपने शाण्डिल्य, वात्स्य, कोहल, दन्तिल, आदि सौ पुत्रों को इस वेद की शिक्षा दी और यथा योग्य काम दिया। यह प्रयोग भारती, सात्त्वती और आरभटी वृत्ति में शुरू हुवा। ब्रह्मा ने इसको देखकर भरत मुनि से कैशिकी वृत्ति की योजना करने की अनुमति दी। किन्तु इस वृत्ति की योजना स्त्री पात्रों के बिना असम्भव जानकर ब्रह्मा ने मञ्जुकेशी, सुकेशी आदि अप्सराओं की सृष्टि की और नारदादि गन्धर्वों के साथ इनको भरत मुनि को सौंप दिया। भरत मुनि ने इनकी सहायता से प्रयोग ठीक कर ब्रह्मा के पास जाकर आगे क्या करना है यह जानने की इच्छा प्रगट की। ब्रह्मा ने इन्द्र के ध्वजमह ध्वजोत्सव में इस नाट्यवेद का सर्व प्रथम प्रयोग करने की अनुमति दी। उस प्रयोग को देख देवता अत्यन्त प्रसन्न हुवे और प्रायः सभी ने भरत मुनि को ध्वजा, कमण्डलु आदि वस्तुएँ पारितोषिक रूप में दी। प्रयोग में देवों का उत्कर्ष और दैत्यों का अपकर्ष देखकर दैत्य अत्यन्त क्रुद्ध हुवे और विघ्न करने लगे। इन्द्र ने इन विघ्नों को जानकर अपनी ध्वजा से सब विघ्नों को जर्जर कर दिया और उसी समय से उस ध्वजा का नाम जर्जर पड़ा। इन विघ्नों से बचे रहने के लिये इन्द्र ने विश्वकर्मा को नाट्य गृह बनाने की आज्ञा दी। नाट्य गृह बनने पर ब्रह्मा ने भी आकर उसे देखा और प्रसन्न हुवे और उसकी तथा पात्रों की रक्षा के लिये अग्नि, चन्द्र आदि की, स्थापना की। इन देवताओं की स्थिति

के कारण ही अभी भी रङ्गमञ्च पर पुष्प वृष्टि की जाती है। देवताओं को सम्बोधित कर ब्रह्मा ने कहा कि यह नाट्यवेद देव और दैत्य दोनों के लिये है। इस में धर्म, क्रीड़ा, हास्य युद्ध आदि सभी विषय हैं। ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म नहीं है जो, नाट्य में न हो[1]। इस में सातों द्वीपों का अनुकरण हो सकता है। इस लिये तुम लोग देवों से क्रुद्ध न हो क्योंकि इसको मैंने ही रचा है। ब्रह्मा ने देवों को भी उपदेश देते हुवे कहा कि मर्त्य लोक में इस नाट्यवेद को बड़ा ही महत्व प्राप्त होगा। किन्तु स्मरण रक्खो कि रङ्ग का पूजन किये विना कभी भी प्रयोग न करना। ऐसा करने से तिर्यंयोनि प्राप्त होती है। ऐसा कहकर भरत मुनि को रङ्ग-स्थल की पूजा करने की आज्ञा दी। पूजन के अनन्तर देवताओं के सन्तोष के लिये ब्रह्मा द्वारा विरचित 'अमृत-मन्थन' नाम का समवकार खेला गया। ब्रह्मा की आज्ञा से भरत मुनि ने शङ्कर और पार्वती को नाट्य-गृह में रूपक देखने के लिये बुलाया और उनके सामने 'त्रिपुर-दाह' नामक डिम खेला गया। शङ्कर भगवान् इसे देख अत्यन्त प्रसन्न हुवे और रूपक में नृत्त का भी समावेश करने की अनुमति देकर उन्होंने भरत मुनि को तण्डु के द्वारा नृत्त के अनेक अङ्ग विक्षेपों का उपदेश कराया।

---

[1] नतज्ज्ञानं नतच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत् कर्म नाट्येऽस्मिन्यन्न दृश्यते।
भरत नाट्य शास्त्र १म अध्याय श्लो० ११२

संस्कृत वाङ्मय में जितनी विद्याएँ हैं वे सब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति के उपदेशों से भरी हैं। उपदेश के विषय में कहा जा चुका[1] है कि वे प्रभु-सम्मित, सुहृत्सम्मित और कान्तासम्मित होते हैं। प्रभु-सम्मित और सुहृत्सम्मित उपदेश वैसे मनोरंजक और हृदय-ग्राही नहीं होते जैसे कि कान्ता सम्मित होते हैं। कान्ता-सम्मित उपदेश देना काव्य ही का कार्य है। काव्य के श्रव्य और दृश्य-काव्य अर्थात् नाटक ये दो भेद हैं और दोनों से कान्ता-सम्मित उपदेश प्राप्त होता है। श्रव्य काव्य कर्ण सुखद होने से कर्णेन्द्रिय द्वारा आत्मा को आनन्द पहुँचाता है। किन्तु दृश्य काव्य कर्ण सुखद तो होता ही है और साथ २ नेत्रेन्द्रिय को भी तृप्त करता है। इस से जो आत्मा को आनन्द प्राप्त होता है वह कर्णेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय दोनों से जन्य होने के कारण श्रव्य काव्य जनित आनन्द से उच्च कोटि का रहता है। इसकी मनोरंजकता और हृदय-ग्राहिता श्रव्य-काव्य में भी बढ़ी है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि 'काव्येषु नाटकं रम्यं'।

संस्कृत नाट्य शास्त्र में--नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अङ्क और ईहामृग, ये दस रूपक[2] हैं। नाटक[3] में कम से कम ५ और ज्यादे से ज्यादे १०

---

१ महाकाव्य प्रकरण की भूमिका।

२ नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति। दशरूपक।

३ साहित्यदर्पण षष्ठ परिच्छेद श्लो० ७--११।

होते हैं। इसका संविधानक[1] कोई प्रसिद्ध कथानक रहता
इसमें पांच सन्धियाँ[2] रहती हैं जिनसे प्रधान कथा अन्य
कथाओं से परिपुष्ट की जाती है। इसका नायक कोई प्रसिद्ध,
प्रतापी राजर्षि रहता है। कभी २ नायक दिव्य भी
है। इसमें शृङ्गार वा वीररस प्रधान रहता है और
रस उसके अङ्गभूत होते हैं। जैसे-अभिज्ञान शाकुन्तल।
अङ्क के नाटक को महानाटक कहते हैं। जैसे-हनु-
नाटक। प्रकरण[3] में कवि कल्पित लौकिक कथानक रहता है
नायक नाटक के नायक के समान प्रख्यात नहीं होता।
प्रकरण में अङ्कों का नियम नहीं है तो भी प्रायः १०
होते हैं। जैसे-मृच्छकटिक, मालती माधव। भाण[4]
कल्पित धूर्त चरित रहता है और यह एक ही अङ्क का
है। जैसे-वसन्त तिलक पद्म ताडितकम्। प्रहसन में
रस रहता है और वह भी प्रायः एक ही अङ्क का रहता
जैसे-मत्तविलास। लटकमेलक। डिम[5] में हास्य और
इसके अतिरिक्त रस होता है और इसमें ४ अङ्क होते

---

1 Plot नाटकगतकथाप्रबन्ध।

2 अन्तैकार्थसम्बन्धस्सन्धिरेकान्वये सति।
साहित्य दर्पण षष्ठ परिच्छेद श्लो० ७५।

3 साहित्य दर्पण षष्ठ परिच्छेद श्लो० २२४--२२६

4 " " " २२७--२३०

5 " " " २४०--२४४

हैं जैसे-त्रिपुरदाह। व्यायोग[1] में डिम के सदृश हो रस ... है। किन्तु अङ्क एक ही होता है जैसे-सौगन्धिकाहरण ... मध्यम व्यायोग। समवकार[2] में नाटक के सदृश आमुख ... है किन्तु अङ्क तीन ही होते हैं जैसे-समुद्र मथन। वीथी[3] में ... प्रधानता से शृङ्गार रस सूचित रहता है और अन्य ... भाण के सदृश होते हैं जैसे-मालविका वीथी। अङ्क[4] में ... रस स्थायी और एक अङ्क रहता है। इसी को उत्सृष्टिकाङ्क भी कहते हैं जैसे-शर्मिष्ठा ययाति। ईहामृग[5] में दिव्य ... लौकिक दोनों प्रकार का मिश्रित कथानक रहता है और ... चार अङ्क होते हैं जैसे-रुक्मिणी परिणय।

इन रूपकों के अतिरिक्त, नाटिका त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्य रासक, प्रस्थान उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक श्री-गादित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश और भाणिका ये १८ उपरूपक ... नाटिका[6] में चार अङ्क होते हैं। इसमें स्त्री पात्र विशेष ... और नायक कोई प्रसिद्ध धीर-ललित राजा होता है ...

---

१ साहित्य दर्पण षष्ठ परिच्छेद श्लो० २३०--२३३

२ ,, ,, ,, २३३--२३९

३ ,, ,, ,, २५२--२५४

४ ,, ,, ,, २५०--२५२

५ ,, ,, ,, २४४--२५०

६ ,, ,, ,, २६९--३१२

...ती। विद्धशालभञ्जिका । त्रोटक में ५, ७, ८ वा ६ ...ते हैं और प्रत्येक अङ्क में विदूषक का प्रवेश अवश्य ...है जैसे-विक्रमोर्वशी । गोष्ठी में १ अङ्क, ६ वा १० प्राकृत ...त्र और ५, ६ स्त्री पात्र रहते हैं जैसे-रैवतमदनिका। ...में अङ्क के स्थान में जवनिका होती है। यह ४ जवनिका ...ता है। इसमें केवल प्राकृत भाषा ही प्रयुक्त रहती है। ...शृंगार मञ्जरी । नाट्य-रासक एक अङ्क का होता है। ...उदात्त नायक होता है और हास्यरस प्रधान रहता है ...विलासवती। प्रस्थान में दो अङ्क होते हैं और नायक ...दा, दास दासी रहते हैं। जैसे श्रृङ्गार तिलक। उल्लाप्य ...वा ३ अङ्क होते हैं। इसमें एक दिव्य व उदात्त नायक ...चार नायिकाएँ होती हैं जैसे-पार्थपाथेय देवी महादेव। ...में एक अङ्क और हास्य रस रहता है। इसमें स्त्री ही ...का कार्य करती है जैसे-यादवोदय। प्रेङ्खण में एक अङ्क ...हीन नायक होता है। इसमें सूत्रधार नहीं रहता। जैसे— ...वध। रासक में एक अङ्क और मूर्ख नायक होता है ...-मेनका हित। संलापक में ३ वा ४ अङ्क होते हैं। इसमें ...पाखण्डी और श्रृङ्गार करुणेतर रस रहता है। जैसे— ...कापालिक। श्रीगदित में १ अङ्क और प्रख्यात व उदात्त ...क रहता है। इसका संविधानक प्रसिद्ध होता है जैसे— ...रसातल। शिल्पक में ४ अङ्क और ब्राह्मण नायक होता है। ...में शान्त और हास्य रस नहीं होते। जैसे-कनकावती माधव।

विलासिका में एक अङ्क और हीन नायक होता है। इसमें शृङ्गार रस प्रधान रहता है। इसमें नायिका न रहने से इसे विनायिका भी कहते हैं। दुर्मल्लिका में ४ अङ्क और हीन नायक होता है। जैसे बिन्दुमती। प्रकरणी, नाटिका के सदृश होती है किन्तु इसका नायक सार्थवाह और नायिका भी समान कुल की होती है। हल्लीश में १ अङ्क और ७, ८, वा १० स्त्रियां होती हैं। जैसे—केलि रैवतक। भाणिका में एक अङ्क और उदात्त नायिका होती है जैसे-कामदत्ता।

उपर्युक्त रूपक तथा उपरूपकों के लक्षण विस्तार भय से यहां बहुत संक्षेप में दिये गये हैं। इनके पूर्ण लक्षणों के लिए साहित्य दर्पण का अवलोकन आवश्यक है।

रूपक के प्रारम्भ होने के पूर्व नट लोग नेपथ्य में पूजा, स्तुति आदि करते हैं उसीको पूर्व रङ्ग[1] कहते हैं। रंगभूमि में आरम्भ में मङ्गलाचरण और आशीर्वचनों से युक्त स्तुति[2] जो पूर्व रङ्ग के सिलसिले में होती है और इसीको नान्दी कहते हैं। नान्दी के बाद सूत्रधार प्रविष्ट होकर अपनी स्त्री वा किसी

---

१ यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते॥
प्रत्याहारादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि।
तथा प्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये॥

२ आशीर्वचन संयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देव-द्विज-नृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥

हते भाषण करते हुवे, प्रेक्षकों को उस रूपक के रचयिता
के विषय का परिचय कराता है और रूपक के किसी पात्र
प्रवेश कराकर चला जाता है। इसीको प्रस्तावना[1] या
मुख कहते हैं। उद्घात्यक[2], कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक
और अवलगित ये प्रस्तावना के पांच भेद माने गये हैं। जब
सूत्रधार कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है जिनका अर्थ
स्पष्ट नहीं होता और नेपथ्य में उसके हृदयस्थ अर्थ को अन्य
शब्दों से स्पष्ट करते हुवे किसी पात्र का रङ्गभूमि पर प्रवेश
होता है तब उद्घात्यक प्रस्तावना होती है जैसे-मुद्राराक्षस में
"क्रूर ग्रहः स" इत्यादि। जहां सूत्रधार के वचन वा उसके
अर्थ से पात्रप्रवेश होता है। उसे कथोद्घात प्रस्तावना कहते हैं।
जैसे रत्नावली में यौगन्धरायण का और वेणीसंहार में भीम-
सेन का प्रवेश। जब प्रस्तुत प्रयोग में अन्य प्रयोग की योजना
करके उससे पात्र प्रवेश होता है तब प्रयोगातिशय प्रस्तावना
होती है जैसे-कुन्दमाला में सीता का प्रवेश। जिसमें सूत्रधार
के प्रासङ्गिक वर्णन के अनुरूप किसी पात्र का प्रवेश होता है
उसे प्रवर्तक प्रस्तावना कहते हैं। जहाँ प्रचलित विषय के

---

१ नटी विदूषको वाऽपि पारिपार्श्वक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते।
चित्रै र्वाक्यैस्स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा।
२ साहित्य दर्पण षष्ठ परिच्छेद श्लो० ३३-३८

सन्दर्भ में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिससे उस विषय का सन्दर्भ बना रहता है और पात्र प्रवेश भी होता है उसे अवलगित प्रस्तावना कहते हैं जैसे-अभिज्ञान शाकुन्तल में दुष्यन्त का प्रवेश।

प्रस्तावना के बाद रूपक के दस भेदों के अनुसार निश्चित अङ्कों में निर्दिष्ट रसात्मक कथानक का अभिनय होता है। अङ्क के प्रारम्भ से समाप्ति तक रंगभूमि खाली नहीं रहती। कोई न कोई पात्र रंग भूमि पर अवश्य रहता है। नाटक के कथानक का विस्तार संक्षिप्त करने के लिये रंगभूमि पर प्रतिषिद्ध अतएव अप्रयुक्त प्रयोगों का वर्णन करने के लिये विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अङ्कावतार और अङ्कास्य इन पांच अर्थोपक्षेपकों[1] का प्रयोग किया जाता है। विष्कम्भक में भूत और भविष्य कथांशों का संक्षिप्त वर्णन रहता है। इसका प्रयोग किसी मध्यम वा नीच पात्र द्वारा अङ्क के आरम्भ में किया जाता है। प्रवेशक की योजना दो अङ्कों के मध्य में की जाती है। इसमें प्राकृत भाषी नीच पात्र ही होते हैं। पर्दे के भीतर से जो सूचना दी जाती है। उसे चूलिका कहते हैं। अङ्क के अन्त में पात्रों द्वारा जो अग्रिम कथा की सूचना दी जाती है उसे अंकावतार कहते हैं। एक ही अंक में सब अंकों की कथा की सूचना जिससे मिलती है उसे अंकास्य कहते हैं। इन पांच अर्थोपक्षेपकों से नाटकों को संक्षिप्त करने में सहायता

---

१ साहित्यदर्पण षष्ठ परिच्छेद श्लो० ५४-६०।

...तथा अनुचित वस्तुओं को प्रेक्षकों को केवल सूचना ...में बड़ी ही सहायता मिलती है। रूपक का उपसंहार भी ...र्वचन संयुक्त मङ्गल श्लोक से ही किया जाता है। इस ...न श्लोक को भरत-वाक्य कहते हैं। संविधानक के अर्थ-...ति, पञ्चसन्धि आदि अनेक विषय दशरूपक, साहित्य-...ण आदि ग्रन्थों में वर्णित हैं जिनका वर्णन विस्तारभय से ...यहाँ नहीं किया गया है।

सबसे प्राचीन नाटककारों में, जिनके ग्रन्थ उपलब्ध हैं, ...स, कालिदास और अश्वघोष की गणना होती है। इसलिये ...से प्रारम्भ कर प्रसिद्ध २ नाटक तथा उनके रचयिताओं ...इतिहास यहां संक्षेप में दिया जाता है।

नाटक

भास (ई० पू० ४ र्थ शतक)

काल देशनिर्धारण—इसके विरचित रूपक १ प्रतिज्ञायौगन्धरायण, ...स्वप्नवासवदत्ता, ३ प्रतिमा, ४ अभिषेक ५ पञ्चरात्र ६ बालचरित ...मध्यमव्यायोग ८ दूतवाक्य, ९ दूतघटोत्कच १० कर्णभार ११ ऊरुभङ्ग १२ ...चारुदत्त और १३ अविमारक—इनका विषय परामर्ष।

इसके विरचित अनेक नाटकों में से १३ नाटक उपलब्ध हैं। कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र नाटक के आरम्भ

में अपने पूर्ववर्ति प्रसिद्ध नाटककारों में भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि को माना है[1]। इससे यह स्पष्ट है कि कालिदास के समय भास का यश लोक में प्ररूढ़ था। भासके बाद २-४ कवि हुवे थे वे भी कालिदास के समय प्रसिद्ध थे। इससे यह अनुमान हो सकता है कि कालिदास के समय भासकवि अत्यन्त प्राचीन माना जाता था। प्रसिद्ध कवि बाण भट्टने भी अपने हर्ष चरित के आरम्भ में भास के नाटकों के विषय में जो उल्लेख किया है उससे भी भास के नाटकों के स्वरूप का बहुत कुछ बोध होता है। बाण ने कहा है 'सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकै र्बहुभूमिकैः। सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव' ॥ इससे यह स्पष्ट है कि भास के नाटकों का आरम्भ सूत्रधार से होता था। कालिदास के समय के नाटकों में प्रथम नान्दी श्लोक और उसके बाद सूत्रधार का प्रवेश मिलता है। बाण भट्ट के बाद भी वाक्पतिराज, राजशेखर जयदेव, जोनराज, शारदातनय, सन्ध्याकर इत्यादि ग्रन्थकार अपने २ ग्रन्थों में भास कविका निर्देश करते ही हैं। यह सब प्रपञ्च म० म० त० गणपति शास्त्री ने भास के स्वप्न वासवदत्त नाटक की भूमिका में सविस्तर लिखा है। पाठक उसको पढ़ें। राजशेखर के वचन से मालुम होता है

---

१ प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धान तिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमानः।

मालविकाग्निमित्र

नाटक संग्रह[1] माना जाता था और उसमें स्वप्न-
वदत्त सब से श्रेष्ठ था इसी वचन के आधार पर हाल में
में जो १३ रूपक उपलब्ध हुवे हैं वे महाकवि भास
कृत माने गये हैं। यदि देखा जाय तो उन ग्रन्थों पर भास
का कहीं नहीं मिलता है। नाटकों की भाषा, विषय आदि
त्व के द्योतक हैं।

भास के चरित्र के विषय में केवल नाम के अतिरिक्त
कुछ उल्लेख नहीं मिलता है। जब भास के नाटकों में
नाम तक नहीं मिलता है तब उसके जीवन चरित के
में कुछ मिलना कहां सम्भव है। इन नाटकों में के
तथा श्लोकों से भास के समय पर बहुत कुछ प्रकाश
है। मालविकाग्निमित्र के आरम्भ में कालिदास ने
कहा है कि—

मित्येव न साधु सर्वं न चाऽपि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥'

इससे यह बात झलकती है कि भास के नाटक यद्यपि
थे तथापि उनमें अनेक दोष थे ऐसा माना जाता था।
दास ने उनमें से अच्छे का ग्रहण कर बुरे का त्याग
था। यह बात भास और कालिदास के समान श्लोकों

---

[1] भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

सूक्तिमुक्तावलिः।

की तुलना से पाठकों को विदित हो सकती है। ये सब श्लो
म० म० टी० गणपति शास्त्री ने अपनी स्वप्नवासवदत्त
भूमिका में एकत्रित किये हैं। इस प्रकार का सादृश्य
दास और अश्वघोष के श्लोकों में भी है। यदि कालिदास
अश्वघोष का अनुकरण किया होता जैसा कि अनेक पाश्चात्य
विद्वान् मानते हैं तो कालिदास ने भासादि के साथ अश्व
का भी स्वच्छ निर्देश अवश्य किया होता। भास के 'प्रतिज्ञा
यौगन्धरायण' के एक श्लोक[1] के भाव को अश्वघोष ने अनेक
श्लोकों में अपने दोनों काव्यों में वर्णन करने की चेष्टा की।
यदि भास और कालिदास को अश्वघोष के वाद मानें तो
कालिदास की भास विषयक प्राचीनत्व की उक्ति सिद्ध नहीं
हो सकती है और अश्वघोष का अपने ग्रन्थों के अन्त
वचन कि "मैंने अच्छे कवियों का अनुकरण किया है"
भी सिद्ध नहीं हां सकता है। पंसा अनुमान हांता है कि
कालिदास ने भास के 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' और 'स्वप्न
वासवदत्त' को सामने रखकर ही अपने मालविकाग्नि
नाटक की रचना की थी। क्योंकि भास के उपर्युक्त दोनों
नाटकों का नायक उदयन-वत्सराज भास का उतना ही

---

१ काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसिद्धं नराणां मार्गारब्धास्सर्व यत्नाः फलन्ति॥
प्रतिज्ञा यौगन्धरायण १ अङ्क अन्तिम श्लोक और बु
१३।६० सौन्दरनन्द १६।९७, १७।२२, १२।३३,३४।

जितना अग्निमित्र कालिदास का था। इसीलिये वत्सराज की कीर्तिगान करने से जो यश भास को उसी यश की इच्छा से उस समय में सर्वसाधारण में अग्निमित्र की कीर्ति का वर्णन करना कालिदास स्वीकार किया।

भास के प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण में—

'नवं शरावं सलिलैस्सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य माभून्नरकञ्च गच्छेद्यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युद्धेत्॥'

यह श्लोक आया है जिसको कौटिल्य के अर्थ शास्त्र में के नाम से उद्धृत मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है यह नाटक कौटिल्य के अर्थ शास्त्र के रचना-काल में उपस्थित था। आर्य-पुत्र शब्द का प्रयोग कुमार अर्थ भास के नाटकों में मिलता है। ब्रह्मगिरी के अशोक के के शिलालेख में आर्य-पुत्र शब्द कुमार के अर्थ में अशोक द्वारा प्रयुक्त किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्यपुत्र शब्द कुमार अर्थ में अशोक के पूर्व तथा उसके समय प्रयुक्त होता था। परन्तु कालिदास के समय आर्यपुत्र शब्द प्रयोग पत्नी ही अपने पति के लिये कर सकती थी।

यदि भास ई० २य शतक का होता तो वह कौटिल्य के अर्थ शास्त्र तथा पतञ्जली के योगशास्त्र का निर्देश करता। किन्तु उसने इनका निर्देश न कर 'बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रम्' और 'माहेश्वरं योगशास्त्रम्' ऐसा लिखा है।

इन नाटकों के प्राचीनत्व के निर्णायक और भी अनेक प्रमाण हैं जो यहां स्थलाभाव से नहीं लिखे जा सकते। इन प्रमाणों से भास को ई० पू० ४ र्थ शतक का मानना आवश्यक प्रतीत होता है। इसी प्रकार से कालिदास का समय भी ई० पू० १ म शतक मानना प्राप्त होता है। पाश्चात्य विद्वान् कालिदास को ई० ४ र्थ शतक का और भास को ई० २ य वा ३ य शतक का मानते हैं और इन दोनों को इतना प्राचीन मानने के लिये कदापि तैयार नहीं क्योंकि ऐसा मानने से आज तक जो प्राचीन इतिहास निश्चित है उनमें अत्यन्त स्थित्यन्तर होने की सम्भावना है। अतः दृढ़ प्रमाणों के अभाव से इन दोनों के सम्बन्ध में विद्वानों में अवश्य मतभेद रहेगा।

भासके उपलब्ध १३ रूपकों में (१) प्रतिज्ञायौगन्धरायण (२) स्वप्नवासवदत्त, (३) प्रतिमा (४) अभिषेक (५) पञ्चरात्र (६) बालचरित (७) मध्यमव्यायोग (८) दूतवाक्य (९) दूतघटोत्कच (१०) कर्णभार (११) ऊरुभङ्ग (१२) चारुदत्त और (१३) अविमारक हैं।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण :-यह चार अंकों की नाटिका है। इसमें उज्जैन के प्रद्योत महासेन की रूपवती कन्या वासवदत्ता का हरण करने के लिये कौशाम्बी के वत्स-राज के मन्त्री यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा तथा वत्सराज को महासेन के बन्धन से छुड़ाने का और वासवदत्ता व वत्सराज का विवाहोत्सव वर्णित है।

स्वप्नवासवदत्ता वा स्वप्न-नाटक:—यह छ अंकों का नाटक है। इसमें वत्सराज की सार्व-भौमत्व प्राप्ति के लिये मगधराजकन्या पद्मावति से विवाह की आवश्यकता जानकर यौगन्धरायण का वासवदत्ता के साथ अग्नि में भस्म हो जाने का अपवाद फैलाकर वासवदत्ता को पद्मावति के यहां न्यास रूप से रखना, उदयन तथा पद्मावति का विवाह, संयोग से वासवदत्ता का पद्मावति के घर में सुप्त वत्सराज का खटिया से लटकते हुये हाथ को ठीक करने में राजा के जागने से भागना, राजा का विलाप और यौगन्धरायण के आने पर का वत्सराज को सर्व रहस्य का ज्ञान तथा वासवदत्ता के साथ सम्राट् होना वर्णित है।

प्रतिमा:—यह ७ अंकोंका नाटक है। इसमें रामायण के तीन काण्डों की कथा वर्णित है। इसका वैशिष्ट्य यह है कि इसमें रंगभूमि पर राजा दशरथ की मृत्यु नाट्यशास्त्रों के विरुद्ध दिखाई गई है और ई० पू० ६ ष्ठ शतक से ई० २ य शतक तक मृत राजाओं की मूर्तिस्थापन की प्रथा जो भारत में प्रचलित थी उसका प्राधान्य होने से इस नाटक का नाम ही 'प्रतिमा' रक्खा गया है। इसमें प्राचीनत्व द्योतक ऐसे २ अनेक स्थल हैं।

अभिषेक:—यह छः अंकों का नाटक है। इसमें रामायण के किष्किन्धा काण्ड से युद्धकाण्ड के समाप्ति तक की कथा तथा रामराज्याभिषेक वर्णित है।

पञ्चरात्रः—यह तीन अंक का समवकार है। इसमें महाभारत के पात्रों के आधार पर कल्पित कथा है। इसमें दुर्योधन का राजसूय यज्ञ कर द्रोण को यथेच्छ दक्षिणा मांगने की प्रार्थना, द्रोण का पाण्डवों के लिये आधा राज्य मांगना, शकुनी की राय से अज्ञातवासमें स्थित पाण्डवों का पांच दिन के अन्दर पता लगने पर आधा राज्य देना स्वीकार करना, द्रोण का भीष्म की सलाह से विराट् की गो-सम्पत्ति छीनने के लिये आक्रमण, पाण्डवों का पता लगना और अर्द्ध राज्य की प्राप्ति वर्णित है।

बालचरितः—यह ५ अंकों का नाटक है। इसमें कृष्ण की बाललीला वर्णित है।

मध्यमव्यायोगः—यह एक अंक का व्यायोग है। इसमें महाभारत के आधार पर एक ब्राह्मण की कथा अपनी कल्पना के अनुसार वर्णित है। इसमें ब्राह्मण के मध्यम पुत्र को घटोत्कच के मध्यम शब्द से पुकारने पर भीमसेन का अपने को मध्यम समझ कर आना और उन ब्राह्मणों को बचाने और हिडिम्बा से मिलने की कथा वर्णित है।

दूतवाक्यः—यह भी एक अंक का व्यायोग है। इसमें कृष्ण का कौरव पाण्डवों की सन्धि के लिये दूत होकर जाने की महाभारत की कथा वर्णित है।

दूतघटोत्कचः—यह भी एक अंक का व्यायोग है। इसमें कौरव सभा में घटोत्कच का पाण्डवों का दूत बनकर आना वर्णित है।

कर्णभारः—यह भी एक अंक का व्यायोग है इसमें इन्द्र ने सेनापति कर्ण से ब्राह्मण के रूप में कवच कुण्डल भिक्षा माँगने की महाभारत की कथा वर्णित है।

ऊरुभङ्गः—यह भी एक अंक का व्यायोग है। इसमें भीम दुर्योधन का गदा युद्ध तथा दुर्योधन का ऊरुभङ्ग वर्णित है।

चारुदत्तः—यह ४ अङ्कों का अपूर्ण नाटक है। इसकी कथा कवि कल्पित है। इसका नायक चारुदत्त और नायिका वसन्त-सेना है। यही ४ अङ्क कुछ भेद से शूद्रक के मृच्छकटिक नाटक के ४ प्रथम अङ्क हैं। इसीलिये 'मृच्छकटिक' 'चारुदत्त' का विस्तार माना जाता है।

अविमारकः—यह ६ अङ्कों का नाटक है। इसमें सौवीर के राजा कुन्ति-भोज की रूपवती कन्या कुरङ्गी का किसी अविमारक नाम के राजपुत्र से प्रच्छन्न विवाह वर्णित है।

भासके नाटकों में विद्यमान प्राकृत भाषा में प्राकृत-प्रकाश के शौरसेनी प्राकृत के लक्षण अधिकतर मिलते हैं।

कालिदास (ई० पू० १ म शतक)

इसके विरचित नाटक—१ मालविकाग्निमित्र, २ विक्रमोर्वशीय, ३ अभिज्ञान शाकुन्तल— इनका विषय परामर्ष व टीकाएँ।

इसके विरचित 'मालविकाग्नि मित्र' विक्रमोर्वशीय, और अभिज्ञान शाकुन्तल नामके नाटक हैं। इसके जीवन चरित और समय के सम्बन्ध में महाकाव्य प्रकरण में विचार किया जा चुका है।

मालविकाग्नि मित्रः—यह ५ अङ्कों का नाटक है। इसमें शुङ्ग वंश के राजा अग्नि मित्र का मालविका नाम की विदर्भ राज कन्या के साथ विवाह, प्रेम आदिका वर्णन है। यह कालिदास का प्रथम नाटक है। इस पर काटयवेम की विरचित कुमार-गिरि—राजीव और वीर-राघव विरचित दूसरी टीका है।

विक्रमोर्वशीयः—यह ५ अङ्कों का नाटक है। इसमें उर्वशी और पुरूरवा राजा का प्रणय वर्णन है। इसका कथानक महाभारत से लिया गया है। इस नाटक की दो प्रकार की हस्त लिखित पुस्तकें मिलती हैं। उत्तर भारत में उपलब्ध पुस्तकें देवनागरी और बंगाली अक्षरों में हैं और उनपर रंगनाथ की प्रकाशिका नामकी टीका ई० १६५६ की लिखी मिली है। इस पुस्तक का वैशिष्ट्य यह है कि नाटक के ४र्थ अङ्क में अपभ्रंश भाषा में विरचित श्लोकपंक्ति मिलती है जिसके साथ उसके संगीत की प्रणाली भी दी है। इसीलिये इसको त्रोटक कहते हैं। दक्षिण में उपलब्ध पुस्तक, नाटक के नाम से है और उसमें यह वैशिष्ट्य नहीं है। इसपर ४ टीकाएँ हैं। दक्षिण में उपलब्ध पुस्तक की टीका काटयवेम की ई० १४००के लगभग की है। काटयवेम, कोण्ड-विडुके कुमार-गिरि नाम के रेड्डी राजा का मंत्री था और इसने अपनी टीका का नाम इसीलिये 'कुमारगिरि-राजीव' रक्खा था। इसकी ४ टीकाओं में काटयवेम और रङ्गनाथ की टीकाएँ प्रसिद्ध हैं।

अभिज्ञान शाकुन्तल :—यह ७ अङ्कों का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इस नाटक का पाश्चात्य देशों में बड़ा ही आदर हुवा है। इसका अनुवाद प्रायः सभी भाषाओं में हुवा है। इसमें महाराजा दुष्यन्त और शकुन्तला की कथा बड़े ही रोचक तथा सुन्दर प्रकार से वर्णित है।

इस नाटक की ४ प्रकार की प्रतियाँ (१) बंगला, (२) देवनागरी (३) काश्मीरी और (४) दाक्षिणात्य उपलब्ध हैं। बंगला पुस्तक में २०-२५ श्लोक अन्य पुस्तकों से अधिक हैं और उसपर शङ्कर की रस चन्द्रिका और चन्द्रशेखर रचित टीका मिलती हैं। देवनागरी पुस्तक पर राघवभट्ट की 'अर्थद्योतनिका' नारायण भट्ट की 'प्राकृत विवृति' और रामभद्र श्रीनिवास भट्ट की टीकाएँ हैं। दाक्षिणात्य पुस्तक पर अभिरामभट्ट और काटयवेम की टीकाएँ हैं। इनके व्यतिरिक्त जगन्नाथ पञ्चानन और डमरू वल्लभ की भी टीकाएँ हैं। इस प्रकार इस नाटक पर कुल टीकाएँ १० हैं।

कालिदास के नाटकों में महाराष्ट्री प्राकृत भाषा का प्राधान्य है तथापि योग्य स्थलों में शौरसेनी और मागधी भी विद्यमान हैं।

शूद्रक (ई० २ य शतक)

जीवन चरित्र—समय निर्धारण—इसका विरचित मृच्छ कटिक नाटक—इसका विषय विचार व टीकाएँ।

इसका विरचित 'मृच्छकटिक' नाटक है। इसके सम्बन्ध

में मृच्छकटिक नाटक के प्रारम्भ में कहा है कि शूद्रक नाम
राजा अगाधसत्व और क्षत्रिय कवि था। यह ऋग्वेद, सामवेद,
गणित, कला, गायनवादन, हस्तिशिक्षा आदि में प्रवीण था।
इसने महादेव की तपस्या कर यह ज्ञान प्राप्त किया था। इसने
अन्त में अश्वमेध यज्ञ किया था और सौ वर्ष और दस दिन
की अवस्था में इसका देहान्त हुवा था। इस वर्णन से अनु-
मान होता है कि किसी कवि ने इस नाटक को लिखकर अपने
संरक्षक राजा के पिता, शूद्रक के नाम से प्रकाशित किया।
शूद्रक कहां का राजा था इस विषय में अनेक मतभेद हैं।
कल्हण की राजतरङ्गिणी में शूद्रक का नाम विक्रमादित्य के
साथ दिया हुवा है। स्कन्दपुराण में यह आन्ध्रभृत्य राजाओं
का प्रथम माना गया है। वेताल-पञ्चविंशति में शूद्रक की
आयु १०० वर्ष की निर्दिष्ट है। कादम्बरी में शूद्रक की राज-
धानी विदिशा बताई है। दण्डी ने अपने 'दशकुमार चरित'
में इसके अनेक जन्म जन्मान्तरों के साहसों का वर्णन किया
है। रामिल सेमिल ने 'शूद्रक' कथा लिखी थी ऐसी दन्तकथा
है। यदि यह ठीक हो तो कालिदास के पूर्व भी शूद्रक का
नाम प्रसिद्ध था ऐसा मानना पड़ता है। इस प्रकार के अनेक
मतभेदों से यही झलकता है कि शूद्रक केवल कल्पित व्यक्ति
है। तथापि विद्वानों ने शूद्रक को ऐतिहासिक सिद्ध करने की
चेष्टा की है।

म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने स्कन्द पुराण के आधार

वीर चरित और अभिनव राजशेखर के वचनों के अनु-
शूद्रक को आन्ध्रभृत्यों का प्रथम राजा शिप्रक, शिमुक वा
शुक ही माना है और यह राजा मौर्यसम्राट् अशोक के
हुवा था ऐसा कहा है क्योंकि अशोक के समय से
को भी वध दण्ड दिया जाने लगा था जिसका उल्लेख
नाटक में चारुदत्त के वध दण्ड में मिलता है। जीवानन्द
सागर अपनी इस नाटक की भूमिका में कहते हैं कि
कटिक के प्रथम अंक के शकार के भाषण में 'णाणक'[1]
का उल्लेख है और इसमें चाणक्य, महेन्द्र, रुद्र आदि
का निर्देश है इस लिये मृच्छकटिक का समय राजा
मन के पूर्व का नहीं हो सकता है क्योंकि मृच्छकटिक के
अङ्क के ३४ वे श्लोक में 'लुब्धे लाओ' यह निर्देश रुद्रदमन
लक्ष में है। रुद्रदमन का समय ई० १३० के लगभग का
जाता है और इसी के समकालिक काश्मीर के राजा
क के समय में जो नाणक मुद्रा प्रचलित थी उसी का
नाणक शब्द इसमें भी है। कानो (Konow) महाशय
कटिक में वर्णित राजकीय घटना अर्थात् पालक वध
आभीर कुलावतंस आर्यक का गद्दी पर आना, इतिहास
र्णित ई० २ य ३ य शतक की राजकीय घटना के अनुसार
के कारण इसका समय ई० २ य, ३ य शतक है ऐसा

[1] 'एशा णाणक मूशिका मशकिका मच्छाशिका लाशिके'।

मृच्छकटिक १ अङ्क २३ श्लोक।

मानता है। मृच्छकटिक की प्राकृत भाषा तथा इसकी भास के चारुदत्त नाटक के आधार पर रचना को देखकर यही ज्ञात होती है कि यह नाटक २ य, ३ य शतक[1] का ही है।

मृच्छकटिकः—यह दस अङ्कों का प्रकरण है। यह कहा जा चुका है कि इसके प्रथम ४ अंक कुछ भेद से भास के चारुदत्त के ही ४ अंक हैं। इसकी भूमिका में सूत्रधार संस्कृत में बोलते करते २ एकदम प्राकृतभाषी बनकर जहां से प्राकृत भाषा बोलना प्रारम्भ करता है वहीं से भास के चारुदत्त नाटक का प्रारम्भ है। इसका 'मृच्छकटिक' नाम रखने का कवि का आशय यही मालूम होता है कि वह इस नामसे यह सूचित करना चाहता है कि-इसके ५म अंक में मृच्छकटिका अर्थात् मिट्टी की बनी गाड़ी का जहां निर्देश है वहां से आगे उसने लिखा है और उसके पूर्व के चार अंक उसके विरचित नहीं हैं किन्तु चारुदत्त नामके नाटक के हैं और अन्तिम छ अंकों का आधार का मृच्छकटिका ही आधार है। इस नाटक से कवि की राज-नीति पटुता खूब झलकती है। इसकी कथा वही भास के चारु-दत्त की कथा से आरम्भ होती है। वसन्त सेना वेश्या चारुदत्त के गुणों से मोहित हो राजश्यालक शकार द्वारा दिये गये अनेक कष्टों तथा अड़चनों को झेलकर भी अन्य पुरुषों को न चाहकर अन्त में चारुदत्त को ही अपना स्वामी मानकर

---

[1] पाठकों को ध्यान रखना चाहिये कि ई० पू० १ म शतक के कालि-दास से यह नाटक अर्वाचीन है।

विहार करती है। इसीमें राजकीय घटनाओं को मिलाकर
सत्पक्ष का जय और असत्पक्ष का नाश खूब ही सफाई से
गया है। इन्हीं राजकीय घटनाओं के वर्णन में कवि ने
द्राविड़ भाषा प्रावीण्य और कर्णाट कलह परिचय,
तरह से व्यक्त किया है। इससे अनुमान होता है कि
कटिकका रचयिता दाक्षिणात्य ही होगा।

प्राकृत भाषा की दृष्टि से इस नाटक का बड़ा महत्व है।
जितने प्रकार की प्रकृत भाषाएँ प्रयुक्त हैं उतनी अन्य
रूपक में नहीं हैं। इसमें शौरसेनी, मागधी, अवन्तिका,
, शकारी, चाण्डाली और धक्की आदि प्राकृत भाषाएं हैं।
इन प्राकृत भाषाओं का प्रयोग भरत के नाट्य शास्त्र के
नुसार किया गया है। इसमें एक विशेषता यह है कि इसमें
राष्ट्री भाषा का प्रयोग बहुत ही कम है।

मृच्छकटिक नाटक की ४ टीकाएं हैं जिनमें पृथ्वीधर की
वृति नामकी टीका प्रकाशित तथा उपयुक्त है।

महेन्द्रविक्रमवर्मा (ई० ६००)

जीवनचरित्र—समय—विरचित ग्रन्थ—मत्त विलास प्रहसन—इसका
विचार।

इसका विरचित 'मत्तविलास' नाम का प्रहसन है। महेन्द्र
क्रम वर्मा काञ्ची के पल्लव राजा सिंह विष्णु वर्मा का
था। इसकी 'अवनि भाजन' 'गुणभर' 'मत्तविलास' आदि
उपाधियां हैं। इसका शासन ई० ७ म शतक के प्रथम पाद में

काञ्ची में था। इसके विरचित अनेक ग्रन्थों में केवल यह प्रह-
सन ही उपलब्ध है।

मत्तविलासः—यह एक प्रहसन है। सम्प्रति उपलब्ध
प्रहसनों में यह सब से प्राचीन है। यद्यपि यह एक अङ्क का ही
रूपक है तथापि इसमें अनेक प्राकृत भाषाओं का प्रयोग है
जिनमें शौरसेनी और मागधी प्रधान हैं। दो, एक संस्कृत
बोलने वाले पात्र भी इसमें हैं। इस नाटक की प्राकृत का
भासके रूपकों के प्राकृत से बहुत सादृश्य रखती है। इस
प्रहसन में कापालिक, पाशुपत, शाक्य-भिक्षु, उन्मत्त और
अनेक दाम्भिकों की परिहासकेलि हास्यरसके परिपोष में
वर्णित है। आदि और अन्त में नान्दी और भरतवाक्य हैं।

हर्षवर्द्धन (ई० ६०६—६४८)

इसके विरचित रूपक—१ रत्नावली २ प्रियदर्शिका और ३ नागानन्द
इनका संविधानक—टीकाएँ।

इसके विरचित रत्नावली और प्रियदर्शिका दो नाटिकाएँ
और नागानन्द नाटक हैं। इसके जीवन चरित्र तथा समय के
सम्बन्ध में इतिहास परिशिष्ट में कहा गया है।

रत्नावली:—यह एक नाटिका है। इसके ४ अङ्क हैं।
इसमें भास के स्वप्नवासवदत्त का ही कथानक है। केवल भेद
इतना है कि इसकी नायिका लंका की राजपुत्री रत्नावली है
और वासवदत्ता की मृत्यु की अफवाह केवल लंका के राजा
के लिये ही उड़ाई गई थी जब की वासवदत्ता वत्सराज के

के साथ ही थी। इसके नायक वत्सराज उदयन का स्व-
स्वप्नवासवदत्त के वत्सराज उदयन के स्वभाव से
है। स्वप्नवासवदत्त का नायक वासवदत्ता की जीवि-
या में दूसरा विवाह करना नहीं चाहता था परन्तु
नायक वासवदत्ता के रहते ही विवाह करना चाहता
इस नाटिका की रचना नाट्यशास्त्र के नियमों को
करने के लिये की गई थी क्योंकि इसके अनेक स्थल
क में उदाहरण में उद्धृत हैं। इसकी प्राकृत भाषा
दास के नाटकों के सदृश है। इसपर भीमसेन
टीका है।

प्रिय दर्शिका :—यह भी चार अङ्कों की नाटिका है।
कथानक रत्नावली से बहुत कुछ मिलता जुलता है।
'रत्नावली' के स्थान पर 'प्रिय दर्शिका' नायिका है।
प्राकृत रत्नावली सदृश है।

नागानन्द :—यह पांच अङ्कों का नाटक है। इसमें नान्दी
बुद्धदेव का वन्दन है। इसमें वृहत्कथा और वेतालपञ्च-
ति में की जीमूतवाहन की कथा वर्णित है। अन्तिम दो
में इस जीमूत वाहन की कथा बौद्धधर्म कथा के ढङ्ग पर
है। यज्ञ में होने वाली सर्प की हत्या दूर करने के लिये
सर्पों को जीवित करने के लिये वह अपने प्राणों का
दान करता है और गौरी और गरुड़ दोनों मिलकर सर्पों
और जीमूतवाहन को पुनः जीवित करते हैं। इसका प्राकृत

भी कालिदास के तरह श्लोकों में महाराष्ट्री और अन्यत्र
सेनी है। इसपर आत्माराम विरचित एक टीका है।

भट्टनारायण (ई० ६७५)

जीवनी—समय निर्धारण—इसका विरचित—वेणी-संहार
इसका संविधानक—टीकाएँ।

इसका विरचित 'वेणी-संहार' नाम का प्रसिद्ध नाटक
इसकी उपाधि 'मृगराज लक्ष्मन्' थी। वामन के 'काव्यालंकार
सूत्रवृत्ति' में और आनन्दवर्द्धनाचार्य के 'ध्वन्यालोक'
वेणीसंहार का नाम और श्लोक आने के कारण इसका
ई० ८०० के पूर्व है। टागोर कुल की परम्परा से यह
कि वंगदेश के एकादश राजाओं के वंश संस्थापक,
ने कान्यकुब्ज से पांच ब्राह्मण बुलवाये थे। उनमें भट्टनारायण
भी एक था। ये ग्यारह राजा वंग में ई० ७५० के पूर्व
करते थे क्योंकि ई० ७५० के बाद वहां पालवंश स्थापित
था। इस आदिशूर के विषय में माना गया है कि यह
के गुप्त राजाओं का वंशज था और यह मगध के
का पुत्र आदित्यसेन ही था जिसने कान्यकुब्ज को
किया था। यह आदिशूर आदित्यसेन ई० ६७१ में
था। इसलिये भट्टनारायण का भी करीब २ यही
सकता है। तथापि यह समय केवल काल्पनिक ही
चाहिये। इसके जीवन चरित्र के सम्बन्ध में विशेष
नहीं है।

वेणीसंहार :—यह छः अङ्कों का नाटक है। इसमें महा-
भारत में को भीम की दुःशासन के रक्त से द्रौपदी की वेणी
संहार करने की प्रतिज्ञा की प्रसिद्ध कथा वर्णित है। इसमें
कथा विस्तार इतना अधिक है कि रंगभूमि पर इसका प्रयोग
दर्शकों को रोचक नहीं होता है। कहीं २ इसके दृश्य अत्यन्त
दर्शनीय हैं। इसमें आदि से अन्त तक वीर रस की प्रधानता
है। द्वितीय अङ्क में वर्णित शृङ्गार रस अस्थान-प्रयुक्त है।
इसका पात्र-स्वभाव-वर्णन बहुत अच्छा है। बीच २ में करुण
और भयानक रस भी अच्छी तरह पुष्ट हैं। इसका संस्कृत
अनुकूल पाणिनि के नियमों के अनुसार है। इसका प्राकृत
शौरसेनी, मागधी और महाराष्ट्री है। इसपर प्रसिद्ध टीकाकार
जगद्धर की टीका है और प्राकृत की प्राकृत चन्द्रिका टीका है।

भवभूति (ई० ७४०)

जीवनचरित्र—समय निर्धारण—कान्यकुब्ज के यशोवर्मा का सभा-
पण्डित—इसके विरचित—रूपक १ मालतीमाधव, २ महावीरचरित व ३
उत्तररामचरित—इनका संविधानक—टीकाएँ मालतीमाधव प्रकरण में
कथासरित्सागर की कथा का सादृश्य।

इसके विरचित 'मालतीमाधव' 'महावीर चरित' और
'उत्तर-रामचरित' नाटक हैं। इसने अपने विषय में नाटकों की
प्रस्तावना में स्वयं कहा है। यह विदर्भ के पद्मपुर के उदुम्बर
वंश का ब्राह्मण था। इसका गोत्र काश्यप था और यह कृष्ण
यजुर्वेद का तैत्तिरीयशाखाध्यायी था। इसके पिता का नाम

नीलकण्ठ और माता का नाम जतुकर्णी था। इसके पिता का नाम भट्ट गोपाल था। इसका पूर्व नाम श्रीकण्ठ था। इसने अपने को वेदाध्यायी और उपनिषद्, सांख्य व योग वेत्ता कहा है। मालती—माधव की एक हस्तलिखित पुस्तक में 'यह कुमारिलका शिष्य था' ऐसा निर्देश है और उसका रचयिता उम्बेकाचार्य बताया है। उम्बेकाचार्य, मीमांसक कुमारिल भट्ट के ग्रन्थों का प्रसिद्ध टीकाकार है। इसने उसने अपने गुरु का नाम ज्ञाननिधि बताया है। यदि ज्ञाननिधि कुमारिल की ही उपाधि वा दूसरा नाम हो तो उम्बेक और भवभूति दोनों एक ही हो सकते हैं। 'परन्तु इसने अपने को मीमांसक कहीं नहीं कहा है। इसलिये इसका नाम उम्बेक हो तो भी यह प्रसिद्ध मीमांसक उम्बेकाचार्य नहीं हो सकता। कल्हण ने अपनी राजतरङ्गिणी में भवभूति के विषय में कहा है कि कान्यकुब्ज का राजा यशोवर्मा, काश्मीर के राजा मुक्तापीड ललितादित्य के साथ युद्ध करने गया था। उस समय भवभूति भी उसके साथ था। यशोवर्मा उस युद्ध में मारा गया था। यह समय ई० ७४० के लगभग माना जाता है। यशोवर्मा के सभापण्डित कवि वाक्पतिराजने, यशोवर्मा द्वारा किसी गौड़ राजा के वध के वर्णन में, प्राकृत में 'गौडवहो' नामका काव्य रचा था। यह गौड़ राजा का वध मुक्तापीड ललितादित्य के युद्ध से पूर्व हुवा था। इस प्राकृत काव्य में वाक्पतिराज ने भवभूति को अपना गुरु बताया है।

इसका समय ई० ८म शतक का पूर्वार्द्ध मान लेना आवश्यक
है। वामन के काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति (ई०८००ल०भ०) में
रामचरित का श्लोक मिलता है। इससे भवभूति का
समय और भी उपपन्न होता है। वाणभट्ट और चीन यात्री
(It sing) ने भवभूति का निर्देश नहीं किया है
लिये यह ई० ७०० से पूर्ववर्ती नहीं हो सकता है।

मालतीमाधवः—यह १० अङ्कों का प्रकरण है। इसमें
वति के राजा के मन्त्री भूरिवसु की कन्या मालती का
विवाह विर्दभ के राजा के मन्त्री देवरात के पुत्र माधव
थ अनेक आपत्तियों को दूर कर किस प्रकार हुआ इसका
है। इसपर ४ टीकाएँ हैं। जिनमें जगद्धर की टीका और
पुरारि सूरि की भावप्रकाशिका प्रसिद्ध और प्रकाशित है।
भावप्रकाशिका टीका ७ म अङ्क तक ही है। अवशिष्ट ३
ों की टीका त्रिपुरारि सूरि के शिष्य नान्यदेव की रचित
। अन्य दो टीकाओं में मानाङ्क की 'दुर्गमाशु बोधिनी' और
त्र भट्ट की टीका हैं।

महावीर चरितः—यह सात अङ्कों का नाटक है। इसमें
ायण के प्रथम छः काण्डों की कथा वर्णित है। इसपर
ाराम और वीर राघव विरचित दो टीकाएँ हैं।

उत्तर-रामचरितः—यह भी सात अङ्कों का नाटक है।
में रामायण के उत्तर काण्ड की कथा ग्रथित है। इसमें
ने अपना पाण्डित्य और नाट्य-कला-नैपुण्य अच्छी

तरह व्यक्त किया है। यह करुण रस प्रधान नाटक है। इसकी
४ टीकाएँ हैं। इनमें वीर राघव की टीका प्रकाशित है।
टीकाएँ—भावार्थ-दीपिका, भट्टनारायण का अपेक्षित
और राघवाचार्य की टीका हैं।

मालती माधव यद्यपि प्रकरण है तथापि उसके
कल्पना कथा-सरित्सागर में मिलती है। भवभूति ने
त्रुटित कथा को पूर्ण करने के लिये जो कोशिश की है
सफल हुई है। मालती माधव के ६ म अङ्क में विक्रमो
४ र्थ अङ्क का केवल अनुकरण ही नहीं किन्तु स्पर्धा भी
होती है। इसमें भवभूति ने करुण रस विशेष पुष्ट
किन्तु कालिदास की मनोहरता और सुन्दरता उसमें
इसी अङ्क में माधव का मेघ को दूत बनाना मेघदूत
करण ही है। इस प्रकरण में नाट्य-शास्त्र के अनुसार
दोष हैं। महावीर चरित में मालतीमाधव की कला
है। तथापि प्रसिद्ध रामायण की कथा को नवीन रूप
कर्षक करने का श्रेय कवि को अवश्य है। नाट्य शास्त्र
से उत्तर रामचरित इन दोनों से श्रेष्ठ है। भवभूति
क्रम पाठकों में आश्चर्य और अद्भुत रस उत्पन्न
उत्तर रामचरित का अन्तिम रामसीता-मिलन, कालि
दुष्यन्त शकुन्तला के अन्तिम संयोग से अधिक प्रभा
है। भवभूति के वर्णनों से यह भी ज्ञात होता कि वह
दास के सदृश विलासी परिडत नहीं था। यद्यपि

स्वतन्त्रता तथा स्वाभाविक जीवन-सुख भवभूति को नहीं था तथापि उसने ज्ञान और निश्चय के द्वारा उनको प्राप्त था। भवभूति भर्तृहरि के 'न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं धीराः' इस तत्व का पक्षपाती था यह, उत्तर रामचरित के सीता का स्वभाव वर्णन पढ़, समझा जा सकता है।
भूति की संस्कृत भाषा तो सुपरिष्कृत है ही परन्तु इसकी भाषा, प्राकृत व्याकरण के नियम के अनुसार ही बनाई है, अतएव स्वाभाविक नहीं है। इसके तीनों नाटकों में सभी अच्छे २ छन्दों के श्लोक हैं। इसके शिखरिणी के विषय में क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्त तिलक में कहा है कि—

"भवभूतेः शिखरिणी निरर्गल-तरङ्गिणी।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति॥

अनङ्ग हर्ष मात्र राज (ई०—८०० के पूर्व)

समयनिर्धारण—इसका विरचित तापस वत्सराज चरित—इसका कथानक।

इसका विरचित 'तापस वत्सराज चरित' नाम का नाटक । इसके पिता का नाम नरेन्द्र-वर्द्धन था। इसके जीवन चरित्र के विषय में कुछ पता नहीं लगता। इस नाटक का निर्देश ध्वन्यालोक में उसकी टीका लोचन में मिलने से इसका समय ई० ८०० के पूर्व है। इस नाटक का कथानक स्वप्न-वासवदत्त' और 'रत्नावली' के कथानकों के सदृश होने के कारण इसका समय ई० ६५० के पूर्व नहीं हो सकता है।

अतः मायुराज का समय ई० ६५० और ८०० के मध्य मानना आवश्यक है।

तापस वत्सराज चरितः—यह एक छोटा सा नाटक है। इसमें यौगन्धरायण की युक्ति से वासवदत्ता का गायब होना, उसके वियोग में वत्सराज का तपस्वी होना, पद्मावती का वत्सराज के साथ विवाह करने का निश्चय, वासवदत्ता और वत्सराज दोनों का प्रयाग में आत्म हत्या के लिये आना और रुमण्वान् नामक मन्त्री के द्वारा इष्ट हेतु-सिद्धि का प्रदर्शित कर उन दोनों का संयोग कराना वर्णित है।

मुरारि (ई० ८५० के पूर्व)

जीवन चरित्र—समय निर्धारण—विरचित ग्रन्थ—अनर्घ नाटक—इसका संविधानक—टीकाएँ।

इसका विरचित 'अनर्घ राघव' नाटक है। मुरारि ने अपने विषय में नाटक के आरम्भ में कहा है कि वह मौद्गल्य गोत्रीय श्रीवर्धमान और तन्तुमती का पुत्र था। श्रीवर्धमान भी कवि था। मुरारि को 'वाल्मीकि' कहा है। यह नाटककार था। इसके सम्बन्ध में किसी ने कहा है कि—

> 'मुरारिपदचिन्तायां भवभूतेस्तु का कथा।
> भवभूतिं परित्यज्य मुरारिमुररीकुरु'॥

अर्थात् भवभूति से मुरारि को श्रेष्ठ माना गया है।

> 'भवभूतिमनादृत्य निर्वाणमतिना मया।
> मुरारिपदचिन्तायामिदमाधीयते मनः'॥

इससे भी मुरारि की भवभूति से विशेषता प्रकट होती
भवभूति का मुरारि से पूर्ववर्तित्व भी इससे सिद्ध होता
रत्नाकर के हरविजय में अङ्क, नाटक, कवि और मुरारि
शब्द एक श्लोक में लाकर नाटककार मुरारि का
निर्देश किया[1] है। कॉनो (Konow) नाम का जर्मन
द्वान् इस श्लोक को मुरारि निदर्शक नहीं मानता है। तथापि
(ई० ११३५) के श्रीकण्ठ चरित काव्य में मुरारि, राज-
र का पूर्ववर्ती माना गया है और यह बात कॉनो (Konow)
मानी है। रत्नाकर का निर्देश अप्रामाणिक मानकर भी
नो (Konow) ने वही बात सिद्ध की है जो रत्नाकर के
श से सिद्ध होती है। रत्नाकर काश्मीर के चिप्पडजयपीड़
र अवन्ति वर्मा का सभापण्डित था। इसलिये रत्नाकर का
य ई० ६ म शतक का पूर्वार्द्ध है और राजशेखर का समय
१ म शतक का अन्त माना गया है। मुरारि को रत्नाकर का
कालिक मानकर भी उसका समय ई० ८५० के पूर्व मानना
चित नहीं है। यद्यपि मुरारि ने अपने निवासस्थान के
म्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा है तो भी उसके नाटक में कल-
री राजाओं की राजधानी माहिष्मती का विशेष वर्णन
रने से अनुमान होता है कि वह माहिष्मती के कलचूरि

---

[1] हर विजय काव्य ३८।६७ 'अङ्कोत्थनाटक इवोत्तमनायकस्य नाशं कविर्व्यधित यस्य मुरारिरित्थम्। आक्रान्तकृत्स्नभुवनः क्व गतः स दैत्यनाथो हिरण्यकशिपुस्सहबन्धुभिर्वः।'

वंश के किसी राजा का सभापण्डित था। यह माहिष्मती आजकल नर्मदा के तट पर मान्धाता या मण्डला के नाम से प्रसिद्ध है।

अनर्घराघवः—यह सात अङ्कों का नाटक है। इसमें विश्वामित्र का अपना यज्ञ राक्षसों से रक्षित रखने के लिये राजा दशरथ के पास राम को मांगने आने से प्रारम्भ करके राम राज्य तक की कथा वर्णित है। इसका कथानक अनेक नाटकों में होने के कारण इसमें यद्यपि नवीनता नहीं है तथापि कवि ने अपने ढङ्ग से इसमें वैशिष्ट्य उत्पन्न किया है। इसमें अतिशयोक्ति का विशेष प्रयोग है। इस नाटक से कवि के व्याकरण, कोष, पुराण इतिहास का सूक्ष्म ज्ञान प्रगट होता है। इसमें प्राकृत बोलने वाले पात्र कम होने से प्राकृत का अंश बहुत कम है। इसपर ८ टीकाएँ निर्दिष्ट हैं जिनमें रुचिपति, हरिहर, मिश्र भवनाथ, धनेश्वर, विष्णु भट्ट और शंकर उपाध्यायकी टीकाएँ प्रसिद्ध हैं। रुचिपति की टीका प्रकाशित है। धनेश्वर की 'यशोदर्पणिका' और विष्णु पण्डित की "तात्पर्यदीपिका" भी प्रकाशन के योग्य हैं।

विशाखदत्त (ई० ८५०)

जीवनी—समयनिर्धारण—इसके विरचित मुद्राराक्षसनाटक का कथानक—टीकाएँ।

इसका विरचित 'मुद्राराक्षस' नाम का नाटक है। विशाख-दत्त या विशाखदेव के विषय में नाटक की भूमिका से

मालूम होता है कि यह वटेश्वरदत्त का[1] पौत्र और महाराज
का पुत्र था। इसके निवास स्थान तथा समय के सम्बन्ध
में स्पष्ट उल्लेख नहीं है। मुद्राराक्षस के श्लोकों का उल्लेख
के दशरूपावलोक में और भोज के सरस्वती-कण्ठाभरण
के कारण यह ई० दशम शतक के पहिले था इसमें कोई
नहीं है। नाटक के आरम्भ में जो चन्द्रग्रहण[1] का निर्देश
है उसको लेकर जर्मन विद्वान् याकोबी ने ज्योतिष शास्त्र
आधार पर यह सिद्ध किया है कि इस तरह का ग्रहण
८६० के दिसम्बर के २ तारीख को लगा था। मुद्रा-
के अन्त में कुछ हस्तलिखित प्रतियों में चन्द्र गुप्त के
के स्थान में अवन्तिवर्मा वा रन्तिवर्मा का नाम निर्देश
ता है। ई० ८६० के लगभग में काश्मीर में अवन्ति वर्मा
(८५५–८८३) का शासन प्रचलित था यह इतिहास से
है। किन्तु नाटक में पाटली पुत्र का जो वर्णन है उससे
तत्व वेत्ताओं ने यह सिद्ध किया है कि उस समय
पुत्र अभी राजधानी थी और उसका अस्तित्व नष्ट नहीं
था। बंगाल में पालवंश की स्थापना होने के बाद यह
धानी नष्ट हो गई। यह समय ई० ८म शतक के पूर्व में है।
लिये दूसरे विद्वानों ने इस अवन्ति वर्मा को मौखारी राजा

---

[1] क्रूरग्रहः सकेतुश्चन्द्रमसं पूर्णमण्डलमिदानीम्।
अभिभवितुमिच्छति बलाद्रक्षत्येनं तु बुधयोगः।

मुद्राराक्षस १।६।

अवन्ति वर्मा माना है जिसके पुत्र ग्रहवर्मा को हर्षव
भगिनी राज्यश्री व्याही थी। यह समय ई० ७म शत
पूर्वार्द्ध होता है। विशाखदत्त का यह समय मानने वा
यह भी प्रमाण दिया है कि इस नाटक में बौद्धों का जो
आया है उससे यह प्रतीति होती है कि बौद्धधर्म उस
जीता जागता था। इतिहासज्ञ यह भी जानते हैं कि बौ
के वृक्ष पर कुमारिल भट्ट और शङ्कराचार्य ने ई० ८म श
कुठाराघात किया था। किन्तु इस मत के अनुसार मुद्रा
का समय यदि ई० ७ म शतक का आरम्भ मान लिया
यह प्रश्न हल नहीं होता है कि ई० ८ म वा ६ म श
आलङ्कारिकों ने ऐसे उत्तम नाटक के श्लोकों का
ग्रन्थों में उल्लेख क्यों नहीं किया। इसीलिये
(Jacobi) निर्धारित ई० ८६० ही इसका समय
प्राप्त होता है।

मुद्राराक्षसः—यह सात अङ्कों का नाटक है। इसमें
वंश के चन्द्रगुप्त राजा का चाणक्य की सहायता से
आना और नन्दवंशीय राजाओं का नाश वर्णित है।
यह नाटक अपना राजनीति-पाटव व्यक्त करने के लिये
है। इस नाटक का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें स्त्री
अभाव है। केवल चन्दन दास श्रेष्ठी की स्त्री वध्य
बार रंगमंच पर उपस्थित होती है। अतएव इसमें
प्रधान शृङ्गार रसका अभाव है। इसमें वीर और अद्भु

प्रधानता है। इस नाटक के विषय द्वारा भारत के प्राचीन
इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ा है। इसमें सत् वा असत्
प्रकार का नय, क्रम से राक्षस और चाणक्य के मिष से
तरह प्रकट किया है। चाणक्य की कूटनीति से उसका
बल और दूरदर्शिता साफ़ झलकती है। राक्षस वीर था।
प्रमाद और मार्दव के कारण उसकी नीति सफल न हो
और उसको अन्त में चन्द्रगुप्त के अधीन होना आवश्यक
। परन्तु यह उसकी बुद्धि का ही प्रभाव था कि वह चन्द्र-
के अमात्य पद को प्राप्त कर सका। इस नाटक की भाषा
ही योग्य है। यह इतना रोचक है कि इसके सात अङ्क
र भी प्रेक्षकों को यह अति दीर्घ नहीं प्रतीत होता।
प्राकृत भाषा शौरसेनी, महाराष्ट्री और मागधी है।
प्राकृत भाषा प्राकृत व्याकरण के अनुसार ही है। इसपर
टीकाएँ हैं जिनमें वटेश्वर का मुद्राराक्षस-प्रकाश और
राज व्यास यज्वन् की टीका प्रसिद्ध हैं। दुण्डिराज
की टीकाएँ तंजावर के महाराज शाहजी के भ्राता सरफोजी
से बनाई गई थी। यह टीका सम्प्रति प्रकाशित है।

राजशेखर (ई० ९००)

इनके विरचित ग्रन्थ—१ कर्पूरमञ्जरी २ बालरामायण, ३ बालभारत,
शालभञ्जिका—इनके संविधानक—टीकाएँ।

इनके विरचित कर्पूरमञ्जरी, बालरामायण, बालभारत
विद्धशालभञ्जिका ये चार रूपक हैं। इसके जीवन चरित्र

के विषय में अलङ्कार प्रकरण में कहा गया है।

कर्पूर मञ्जरी:—यह सट्टक है अर्थात् प्राकृत में लिखित ४ जवनिकान्तर की नाटिका है। यह सट्टक अपनी स्त्री अवन्तिसुन्दरी की प्रार्थना से लिखा राजशेखर ने इसमें अपने संरक्षक चण्डपाल वा महीपाल उसकी पत्नी कुन्तल महिषी का वर्णन किया है। इसमें का श्लोक सूत्रधार ही कहता है। इससे मालूम होता दक्षिण में यह प्रथा भास के बाद भी बहुत समय तक थी। इसमें अद्भुत रसका उपपादन है। इसकी प्राकृत अत्यन्त कोमल है। विशेष कर स्त्रियों की भाषा भाषा कोविदों के लिये आदर्श स्वरूप है। इसपर पांच (१) कामराज वा प्रेमराज की (२) कृष्णसूनु धर्मदास की (४) पीताम्बर की जलपति रत्नमञ्जरी वासुदेव की कर्पूरमञ्जरी प्रकाश हैं। इनमें अन्तिम प्रकाशित और प्रसिद्ध हैं। परन्तु कृष्ण सूनु की टीका अच्छी है।

विद्धशालभञ्जिका:—यह चार अङ्कों की नाटिका इसमें रत्नावली का बहुत कुछ अनुकरण है। इसका कर्पूरमञ्जरी के सदृश है। लाटका राजा चन्द्रवर्मा, होने से अपनी कन्या मृगाङ्कावली का मृगाङ्कवर्मन् विद्याधर मल्ल की महिषी के पास भेजता है। विद्याधर

१ विद्धशालभञ्जिका ४ अङ्क १। १९।

ओं को यह बात मालूम हो जाती है और वह राजा और
कुवली में प्रेम उत्पन्न करने की चेष्टा करता है। अन्त में
का विवाह होने से विद्याधर मल्ल भविष्य वक्ता की
के अनुसार सम्राट् होता है। यह नाटिका किसी युव-
की प्रार्थना से रची गई थी। कोई इस युवराज देव से
को मानते हैं किन्तु इस नाटिका के अन्त में कलचूरि
का उल्लेख होने से युवराजदेव से, चेदि का राजा
र्थ, युवराजदेव प्रथम वा द्वितीय युवराजदेव इन दोनों में
हो सकता है। इसपर महाराष्ट्र के निवासी नारायण
की टीका ई० १८ श शतक को प्रकाशित है।

रामायणः—यह दस अङ्कों का महानाटक[1] है। इसमें
की कथा वर्णित है। इसकी प्रस्तावना बहुत विस्तृत
इसका प्रत्येक अङ्क बहुत लम्बा है। इसमें के प्रायः सभी
बड़े छन्दों में रचे गये हैं। इसमें राजशेखर के प्रसिद्ध
विक्रीडित के २०३ श्लोक हैं। इसके शार्दूल विक्रीडित
की प्रशंसा क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार की है—

'शार्दूलक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः।
शिखरीव परं वक्रैः सोल्लेखैरुच्चशेखरः॥'

की रचना वाल्मीकि और भवभूति के आधार पर हुई है।

---

[1] एतदेव यदा सर्वैः पताकास्थानकैर्युतम्।
अङ्कैश्च दशभिर्धीराः महानाटकमूचिरे॥
साहित्य दर्पण ६। २२३, २२४।

बाल भारतः—इसका दूसरा नाम 'प्रचण्ड पाण्डव' ... यह खण्डित है । इसके केवल २ अङ्क उपलब्ध हैं। ... होने के कारण इसके पांच अङ्क होने चाहिये थे। इसकी ... महाभारत के आधार पर की गई है। प्रारम्भ में इसमें ... भारत के ३ श्लोक भी हैं। इसके प्रथम अङ्क में द्रौपदी ... और द्वितीय में द्यूतक्रीडा, द्रौपदी-केश-ग्रहण और ... का निर्वास वर्णित है।

क्षेमीश्वर (ई० ६१४)

जीवन चरित्र—समय निर्धारण—कन्नौज के राजा महीपाल ... सभापण्डित—इसके विरचित नाटक—१ चण्डकौशिक, २ नैषधानन्द ... इनके संविधानक ।

इसके विरचित चण्डकौशिक और नैषधानन्द दो ... हैं। इसका दूसरा नाम क्षेमेन्द्र भी मिलता है; किन्तु ... काश्मीर के प्रसिद्ध आलङ्कारिक क्षेमेन्द्र से भिन्न है। ... प्रपितामह विजयकोष्ठ वा प्रकोष्ठ था जिसकी ... आचार्य उपाधि थी। यह कन्नौज के राजा महीपाल का ... था। अतएव यह राजशेखर का समकालिक था। इसने ... नाटक में महीपाल को कर्णाटक विजय करने वाला ... वास्तव में कर्णाटक के तृतीय इन्द्र ने महीपाल को ... किया था। सियादोनी शिला लेखों से महीपाल का ... ई० ६१४ के लगभग का होता है।

चण्डकौशिकः—यह पांच अङ्कों का नाटक है। ...

र्कंडेय पुराण के हरिश्चन्द्र उपाख्यान की प्रसिद्ध हरिश्चन्द्र
था वर्णित है। इसकी भाषा सरल है तथापि इसकी गणना
नाटकों में नहीं हो सकती है। इसकी प्राकृत भाषा
नाटकों के सदृश शौरसेनी और महाराष्ट्री है।

नैषधानन्दः—यह सात अङ्कों का नाटक है। इसमें प्रसिद्ध
उपाख्यान वर्णित है।

कृष्णमिश्र (ई० १०४२)

जीवनी—समय निर्धारण—इसका विरचित प्रबोध चन्द्रोदय
—इसका संविधानक—टीकाएँ।

इसका विरचित प्रबोध—चन्द्रोदय नाम का नाटक है।
मिश्र दण्डी संन्यासी था। इसके विषय में कहा जाता है
इसके यहां वेदान्त का उपदेश होता था। किन्तु इसका
शिष्य ऐसा था कि जिसकी प्रवृत्ति सदैव काव्य, अलंकार
ओर ही झुकती थी और वेदान्त से बहुत घृणा करता था।
के उपदेश के लिये कवि ने यह वेदान्त गर्भ नाटक रचा।
इतिहासिक मानते हैं कि जेजक भुक्ति का चन्देल राजा कीर्ति-
, चेदि के कर्ण द्वारा ई० १०४२ के ल० भ० परास्त किया
था। इस कीर्तिवर्मा को गोपाल नामक सेनानी ने फिर से
पर बैठाया था। इस विषय का शिलालेख ई० १०९८ के लग-
का है। ई० १०६५ में कीर्तिवर्मा के दर्बार में प्रबोधचन्द्रोदय
खेला गया था। इसलिये इस नाटक का रचना काल ई०
के बाद और ई० १०६५ के पहिले मानना आवश्यक है।

प्रबोधचन्द्रोदयः—यह छ अङ्कों का नाटक है। यह
राद्वैत मत प्रतिपादक वैष्णव ग्रन्थ है। इसमें प्रकृति
पुरुष के अथवा ब्रह्म और माया के अनेक जीव, विवेक,
प्रवोध, विद्या, दम्भ, श्रद्धा इत्यादि तत्वों को पुरुष और
पात्र कल्पित कर उनके द्वारा रंगभूमि पर से प्रेक्षकों
अध्यात्मविद्या का उपदेश करने का कवि ने श्लाघ्य प्र
किया है। इस दृष्टि से इसका बहुत महत्व है। यह नहीं
जा सकता कि इस प्रकार का प्रथम नाटक यही था।
अश्वघोष के समय से बौद्धोंमें इस प्रकारके नाटक की
थी और ऐसे नाटक भी रचे गये होंगे ऐसा अनुमान कि
सकता है। परन्तु इस प्रकार का सफल नाटक सर्व प्रथम
है। इसके पश्चात् ऐसे अनेक नाटक रचे गये किन्तु वे
समान लोक प्रिय न हो सके। इसपर ८ टीकाएँ हैं
नाण्डिल्लगोपप्रभु विरचित चन्द्रिका और भट्ट विनायक
रामदास दीक्षित विरचित प्रकाश—ये दो टीकाएँ मुद्रित
उपरोक्त ८ टीकाओं में अप्पय दीक्षित और मथुरानाथ
वागीश की भी टीकाएँ हैं।

कुलशेखर (ई० १०००-११५६ का मध्य)

जीवन चरित्र—समय—इसके विरचित ग्रन्थ—१ तपती संवरण २
सुभद्राधनञ्जय, ३ आश्चर्य मञ्जरी, ४ मुकुन्द माला—तपती संवरण
सुभद्राधनञ्जय का संविधानक—टीकाएँ।

इसके विरचित 'तपती संवरण' और, सुभद्रा धनं

दो नाटक हैं। यह कुलशेखर वर्मा केरल के महोदय पुर का
जा था। यह परम वैष्णव था यह बात इसके विरचित
संवरण तथा टीकाकारों के कथन से सिद्ध होती है।
का यह महोदयपुर चूर्णी नदी के किनारे पर है। आज
कोचीन प्रान्त में कोडंगल्लूर के पास तिरुवञ्चिकलं ग्राम
पहिले महोदय पुर था और चूर्णी नदी को आजकल पेरि-
कहते हैं। कुलशेखर के समकालिक एक तोल नामक
क ब्राह्मण ने इसके दोनों नाटकों पर व्यङ्ग्य-व्याख्या
नी है यह बात तपती-संवरण की शिवराम विरचित टीका
ज्ञात होती है। उस व्यङ्ग्य व्याख्या में धनञ्जय के दश रूपक
निर्देश मिलता है। इसलिये कुलशेखर वर्मा ई० १००० के
का नहीं हो सकता। इसका विरचित गद्य ग्रन्थ 'आश्चर्य-
री' नाम का था ऐसा तपती-संवरण नाटक की भूमिका से
त होता है। 'आश्चर्य मञ्जरी' का एक वचन लेकर अमरकोष
टीकासर्वस्व में वन्द्यघटीय सर्वानन्द ने अपने समय का
निर्देश किया है जो ई० ११५९ के बराबर[1] है। इसलिये
कुलशेखर का समय ई० १००० और ११५९ के बीच में
मान लेना आवश्यक है। इसका विरचित 'मुकुन्द माला'
स्तोत्र भी प्रसिद्ध है।

तपतीसंवरण:—यह छः अंकों का नाटक है। इसमें महा-
भारत के आदि पर्व के अध्याय १७१ – १७३ में वर्णित कुरुके

[1] तपतीसंवरण की भूमिका पृ० ४ – ५।

पिता संवरण और माता तपती की प्रणय कथा है। यह नाटक केरल में विरचित होने के कारण इसको सरिख भास के नाटकों के सदृश है। इसका उपक्रम, उपसंहार और प्राकृत भाषा भासका ही अनुकरण करती है। कुलशेखर के दर्बार के तोल नामक विदूषक ब्राह्मण ने इसपर व्यङ्ग्यव्याख्या नाम की टीका लिखी है और उस टीका के आधार से शिवराम ने तपती-संवरण विवरण' नाम की टीका लिखी है जा अनन्त शयन ग्रन्थावली में मुद्रित है।

सुभद्राधनञ्जयः—यह ५ अंकों का नाटक है। इसमें महाभारत की प्रसिद्ध सुभद्रा हरण कथा वर्णित है। इसमें शृं रस प्रधान है। इसपर भी शिवराम की 'विचार-तिलक' नाम की टीका है।

हनुमन्नाटक वा महानाटक (ई० ११ श शतक)

मधुसूदन मिश्र व दामोदर मिश्र के हनुमन्नाटक—नाटक के सम्बन्ध में दन्त कथा—समयनिर्धारण—हनुमन्नाटक का संविधानक—टीकाएँ

इस नाटक की दो पुस्तकें उपलब्ध हैं। प्रथम ६ वा अंकों की पुस्तक मिश्र श्री मधुसूदन कवि विरचित है। द्वितीय १४ अंकों की पुस्तक दामोदर मिश्र विरचित है।

इस नाटक के विषय में ऐसी दन्त कथा है कि वाल्मीकि रामायण के समय हनूमान् ने भी रामकथा वर्णन पर नाटक लिखा था। किन्तु वाल्मीकि मुनि की प्रार्थना से जिस महाशिला पर वह नाटक लिखा गया था उसको हनुमान

समुद्र में डुबो दिया। राजा विक्रमादित्य ने उसको समुद्र में से निकलवा कर मोमपर उसके वर्णों को मुद्रित कर प्रगट किया। कोई राजा भोज को ही समुद्र से इस शिला को निकलवाने वाला मानते हैं। मोम पर भी इस नाटक के प्रगट होने के कारण मधुसूदन मिश्र व दामोदर मिश्र ने रामायण, रघुवंश, वीरचरित, उत्तर रामचरित, अनर्घ राघव, प्रसन्न राघव, छलित राम, बालरामायण आदि नाटकों से अनेक पद्यों को उद्धृत कर इसका सन्दर्भ ठीक किया। ये सब ग्रन्थ ई० १००० के पूर्व के होने के कारण भोजराज की यह किंवदन्ती कथा प्रामाणिक मालूम होती है। इस नाटक के श्लोक आनन्दवर्द्धनाचार्य के ध्वन्यालोक में राजशेखर की काव्य मीमांसा में और धनिक के दशरूपकावलोक में आये हैं। इस नाटक के कुछ श्लोक जयदेव के प्रसन्नराघव में भी विद्यमान हैं। प्रसन्नराघव-कार का समय ई० १२०० के बाद का होनेसे ये श्लोक जयदेव के हैं वा जयदेव ने दूसरे से लिये हैं यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। मधुसूदन मिश्र और दामोदरमिश्र में कौन अधिक प्राचीन कौन है इसका भी निश्चय नहीं हो सकता। परन्तु मधुसूदन मिश्र से दामोदर मिश्र प्राचीन माना जाता है। मधुसूदन का नाटक १० अंकों का होने पर भी उसकी श्लोक संख्या ७३० है। दामोदर मिश्र के १४ अंक के नाटक में केवल ५८१ श्लोक हैं। इन दोनों में समान श्लोक ३०० हैं।

इस नाटक के आरम्भ में नान्दी के श्लोकों के बाद

'स्थापना' नहीं है। इसमें रामायण की कथा कुछ संक्षेप
वर्णित है। इसमें प्राकृत भाषा नहीं है। संस्कृत गद्य भी बहुत
ही कम है। इसीलिये इसको नाटकाभास वा छायानाटक
मानते हैं। दामोदर मिश्र की पुस्तक पर चन्द्रशेखर, नारायण,
बलभद्रमिश्र और रामतारण शिरोमणि की टीकाएं हैं जिनमें
रामतारण की टीका प्रकाशित और स्वच्छ है।

रामचन्द्र (ई० १२ शतक का २ य ३ य पाद)

इसके विरचित ग्रन्थ—१, निर्भय भीम व्यायोग, २, सत्यहरिश्चन्द्र, ३
कौमुदी मित्रानन्द, ४ रघुविलास, ५ नलविलास, ६ वनमालिकानाटिका, ७
यदुविलास, ८ मल्लिकामकरन्द—जीवनी व समय—राजा ...
सामयिक—कौमुदी मित्रानन्द व सत्यहरिश्चन्द्र के संविधानक-

इसके विरचित ८ रूपक हैं। जिन में 'निर्भय-भीमव्यायोग,
सत्यहरिश्चन्द्र' और कौमुदी मित्रानन्द ये प्रकाशित हैं, 'रघु-
विलास' व 'नलविलास' की हस्त लिखित प्रतियां उपलब्ध हैं
और 'वनमालिका नाटिका' 'यदुविलास' और 'मल्लिका-
मकरन्द' इनका केवल नाम ही मालूम हुआ है। हमीर...
मर्दन की १ हस्त लिखित प्रति[1] में "रामचन्द्रकृतं प्रबन्ध...
द्वादशरूपकनाटकादिस्वरूपज्ञापकम्" ऐसा वचन मिलता है।
अन्यत्र भी 'प्रबन्धशतकर्तृ-महाकवि-रामचन्द्र' ऐसा उल्लेख
मिलता है। इससे अनुमान होता है कि इसके विरचित...
प्रबन्ध थे। यह प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र का शिष्य था।

१ गायकवाड सीरीज के 'पार्थ-पराक्रम' की भूमिका।

चन्द्र के बाद यह अणहिल वाड़ के जैनाचार्य की गद्दी पर था। हेमचन्द्र के संरक्षक और शिष्य कुमारपाल के काल में ई० ११७३ से ई० ११७६ के मध्य में इसकी हुई थी।

कौमुदी मित्रानन्दः—यह दस अङ्कों का प्रकरण है। में यह प्रकरण नहीं है क्योंकि इसमें कवि कल्पित अनेक ओं का संग्रह है जो कि रासधारियों के उपयोग की हैं। नायिका और नायक, कौमुदी और मित्रानन्द हैं। इसके त रसके वर्णन से ही इस प्रकरण को महत्व है।

सत्यहरिश्चन्द्रः—यह छः अङ्कों का नाटक है। इसमें महा-त की प्रसिद्ध राजा हरिश्चन्द्र की कथा वर्णित है। रचयिता जैन होने के कारण नान्दी श्लोक में नाभेय वंश का वर्णन है। इसमें कालिदास का विशेष अनुकरण पड़ता है।

वत्सराज (ई० ११५०-१२२५)

समय—कलिञ्जर के राजा परमर्दिदेव का अमात्य—अन्य वत्सराज—के विरचित ग्रन्थ—१ किरातार्जुनीय व्यायोग, २ रुक्मिणी हरण, ३ ह, ४ समुद्र मथन, ५ कर्पूर चरित्र, ६ हास्य चूड़ामणि—इनके नक—भास से तुलना।

इसके विरचित छः रूपक गायकवाड़ ग्रन्थावली में मुद्रित । जिनमें व्यायोग, भाण, डिम, ईहामृग, प्रहसन और सम-कार हैं। यह कलिञ्जर के राजा परमर्दिदेव का अमात्य था।

यह परमर्दिदेव, मदनवर्मदेव का उत्तराधिकारी था और गुजरात के सिद्धराज से युद्ध में परास्त किया गया था। ई० ११८३ में पृथ्वीराज ने परमर्दिदेव को परास्त किया था। परमर्दिदेव का उत्तराधिकारी त्रैलोक्यवर्मदेव था। इसी की आज्ञा से वत्सराज विरचित 'किरातार्जुनीय-व्यायोग' खेला गया था। त्रैलोक्यवर्मदेव ई० १२०३ में गद्दीपर आया था। परमर्दिदेव का शासन ई० ११६३ से १२०३ तक था। परमर्दिदेव के पिता मदन वर्मा की आज्ञा से इस कवि के अन्य रूपक भी खेले गये थे। इसलिये वत्सराज का समय ई० ११५० से १२२५ तक मानना आवश्यक है। त्रैलोक्यवर्म का शासन ई० १२५० तक जारी था।

वत्सराज ने अपने रूपकों का कथानक पुराणों से और अपने अनुभवों से लिया है।

यह वत्सराज ई० १०९७ के महीश्वर पुत्र वत्सराज से जो के कीर्तिवर्मा के अमात्य से तथा परमर्दिदेव के विष्णु मंदिर के निर्माता द्वितीय वत्सराज नामक अमात्य से भिन्न है।

किरातार्जुनीय व्यायोग :—यह एक अंक का व्यायोग है। इसमें भारवि के किरातार्जुनीय महाकाव्य का कथानक अर्जुन का तपश्चरण, किरातार्जुन-युद्ध और अर्जुन की पाशुपतास्त्र प्राप्ति वर्णित है।

रुक्मिणी-हरण :—यह ४ अंकों का ईहामृग है। इसमें द्वारा रुक्मिणी हरण की कथा तथा रुक्मि-कृष्ण-युद्ध वर्णित

त्रिपुरदाह :—यह ४ अंकों का डिम है। इसमें महादेव
त्रिपुरासुर की नगरी का दहन पौराणिकी कथा के
र वर्णित है।

समुद्र-मथन :—यह ३ अंकों का समवकार है। इसमें देव-
ओं का समुद्र मन्थन और विष्णु-लक्ष्मी विवाह वर्णित
इसकी और त्रिपुरदाह की रचना भरतनाट्यशास्त्र के
नों के अनुसार की गई है।

धूर्त चरित्र :—यह एक अंक का भाण है। इसमें विलास,
द्यूत और वेश्या प्रणय वर्णित हैं।

हास्य चूड़ामणि :—यह एक अंक का प्रहसन है। इसमें
ण-संप्रदाय की और उसके केवली विद्या की निन्दा
ई है।

इस के वाद अनेक प्रकार के रूपकों को रचने वाला यही
दिखाता है। इसके श्लोक सुभाषित ग्रन्थों में भी मिलते
इसका भाषा पाण्डित्य तथा विचार शक्ति इसके ग्रन्थों से
झलकती है।

विल्हण (ई० ११६३-१२१३)

इसकी—विरचित नाटिका कर्ण सुन्दरी—इसका संविधानक।
इसकी विरचित ' कर्ण-सुन्दरी ' नाम की नाटिका है।
के जीवन चरित्र तथा समय के सम्बन्ध में महाकाव्य प्रक-
में लिखा जा चुका है।

कर्ण-सुन्दरी :—यह ४ अंकों की नाटिका है। इसमें
हिलवाड़ के कर्णदेव-त्रैलोक्य-मल्ल (ई० १०६४-१०९४)
कर्णाटक के राजा जयकेशिन् की कन्या मियाणल्लदेवी के
साथ उतरती अवस्था में प्रणय और विवाह वर्णित है। यह
नाटिका ई० १०८०-९० के मध्य में रची गई है। इसका कथा-
नक राजशेखर की विद्धशाल-भञ्जिका के कथानक से
सादृश्य रखता है। इसमें कालिदास के मालविकाग्निमित्र
और हर्षदेव की रत्नावली का अनुकरण है।

प्रह्लादनदेव (ई० १२०८)

जीवन चरित्र—समय—चन्द्रावती के राजा यशोधवल का
पुत्र—इसके विरचित 'पार्थपराक्रम' व्यायोग का संविधान—
कवियों के कुछ व्यायोग।

इसका विरचित 'पार्थ-पराक्रम' नाम का व्यायोग है। यह
चन्द्रावती के राजा यशोधवल का कनिष्ठ पुत्र था। यशोधवल
का ज्येष्ठ पुत्र धारावर्ष जब गद्दीपर था तब प्रह्लादन
युवराज था। चन्द्रावती संस्थान आजकल जोधपुर राज्य
के नाम से प्रसिद्ध है और चन्द्रावती के राजा आबू के
राजा कहाते थे और ये गुजरात के राजा के महामण्डलेश्वर
(सामन्त) थे। धारावर्ष का शासन इतिहास में प्रसिद्ध है।
इसने इतना दिग्विजय किया था कि वास्तव में उस

१ पार्थ-पराक्रम की भूमिका।

गुजरात का राजा कहलाता था। धारावर्ष इतना अच्छा राज था कि कोई विद्वान् इसको साम्हर का पृथ्वीराज ही ते हैं। इसने जाङ्गल राजा अजयपाल को ई० ११७९ में त किया था। इसके विषय का एक शिलालेख ई० ११६३ मिला है। आबू के पहाड़ पर ई० १२२९ में जब लूनिगवस्ती नींव डाली गई थी तब धारावर्ष जीवित थी। देहली के लमानों के विरोध में इसी समय में इसने वस्तुपाल (ई० शतक) को सहायता दी थी। प्रह्लादनदेव युवराज स्था में ही मृत हुआ था इसलिये गद्दी पर न आ सका। लालेख से ज्ञात होता है कि यह प्रह्लादनदेव ई० ११६३ में राज उपाधि से भूषित था और ई० १२०९ तक यह जीवित । यह गुजरात के प्रसिद्ध कवियों में माना जाता है। आबू ड़ की प्रशस्ति में सोमेश्वर ने इसको सरस्वती का अव- र कहा है। कीर्ति कौमुदी में इसको सरस्वती का पुत्र हा है और अन्यत्र यह भी कहा है कि मुंज और भोज के सरस्वती का शोक इसी ने दूर किया था। इसके विर- त श्लोक जल्हण की ' सूक्ति मुक्तावलि ' और 'शार्ङ्गधर- ति' में मिलते हैं। धारावर्ष का उत्तराधिकारी सोमसिंह ने चाचा प्रह्लादनदेव का शिष्य था। प्रह्लादनदेव ' भारी द्धा दानी और विद्वान् था। गुजरात के पालनपुर संस्थान राजधानी प्रह्लादनपुर की स्थापना इसीने की थी जो पालनपुर के नाम से प्रसिद्ध है।

पार्थ-पराक्रमः—यह एक अंक का व्यायोग है। इसमें
वर्णित द्वन्द्व युद्ध स्त्री के कारण से नहीं हुआ है। इसमें
पात्र भी कम हैं। इसका कथानक महाभारत के विराट्पर्व
गोग्रहण से उद्धृत है। इसका नायक अर्जुन है।

अन्य कवियों के विरचित भी व्यायोग हैं जैसे प्रह्लाद
चार्य का धनञ्जय-विजय, रामचन्द्र का निर्भय-भीम, वत्सराज
का किरातार्जुनीय, धर्म पण्डित का नरकासुर-विजय, मोक्षा
दित्य का भीम-पराक्रम और विश्वनाथ का सौगन्धिकाहरण

जयसिंह सूरि (ई० १२१६)

समय—अमात्य वस्तुपाल का समकालिक—अन्य जयसिंह
इसका विरचित हम्मीरमदमर्दन नाटक—इसका संविधानक।

इसका विरचित 'हम्मीरमदमर्दन' नाम का नाटक है।
यह भरुकच्छ वा भरोंच के मुनि सुव्रत के मन्दिर के आ
वीर-सूरि का शिष्य था। एक बार जब तेजःपाल इस मं
की यात्रा के लिये आया था तब जयसिंह सूरि ने एक
सुनाया था और अम्बड़ के शकुनिक विहार में २५ देवकु
को सुवर्ण वेत्र के साथ नियुक्त करने की प्रार्थना की थी।

१ एकाहचरितैकाङ्को गर्भामर्शविवर्जितः।
अस्त्रीनिमित्तसंग्रामो नियुद्धस्पर्धनोद्धतः॥
स्वल्पयोषिज्जनः ख्यातवस्तुर्दीप्तरसाश्रयः।
अदित्योऽभूपतिः स्वामी व्यायोगो नायिकां विना॥
नाट्यदर्पण

ने वस्तुपाल की सम्मति से यह प्रार्थना स्वीकार की थी।
सिंह सूरि अमात्य वस्तुपाल का समकालिक होने के
ई० १२१६ के पूर्व का नहीं हो सकता और ई० १२२९
एक हस्त लिखित 'हम्मीर मद मर्दन' की प्रति उपलब्ध
के कारण इसका समय ई० १३ श शतक का पूर्वार्द्ध मान
उचित है।

ई० १३६५ में विरचित न्यायसागर टीका और कुमारपाल
की टीका के कर्ता, महेन्द्र शिष्य और कृष्णर्षिगच्छ के
सिंह सूरि से यह जयसिंह सूरि भिन्न है।

हम्मीरमदमर्दन:—यह पांच अंकों का नाटक है। इसमें
रात के यवनों का आक्रमण उनके अधिपति हम्मीर की
तथा राजा वीरधवल तेजःपाल और यशःपाल की
का वर्णन है।

यशःपाल (ई० ११२९ के ल० भ०)

जीवनचरित्र—अणहिलवाड़ के अभयपाल राजा का मन्त्री—समय
—इसका विरचित नाटक मोहराज पराजय व इसका संविधानक।

इसका विरचित 'मोहराज पराजय' नाम का नाटक है।
मोढ़ बनिया मन्त्री धनदेव और रुक्मिणी का पुत्र था।
पाल अणहिल वाड़ के चालुक्य राजा कुमारपाल के उत्त-
राधिकारी चक्रवर्ती अभयदेव वा अभयपाल का मन्त्री था।
अभयपाल का शासन काल ई० १२२९से १२३२ माना गया है।
इसलिये यशःपाल ने यह नाटक इसी समय के लगभग रचा है।

मोहराज-पराजयः—यह ५ अंकों का नाटक है। कृष्ण मिश्र के प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक का अनुकरण है। कुमारपाल के मोह को दूर कर उसके गुरु हेमचन्द्र का दीक्षा तथा अहिंसा व्रत देने का वर्णन है। इसमें कुमारपाल हेमचन्द्र और विदूषक को छोड़कर अन्य पात्र अच्छे और गुणों के नाम पर कल्पित पात्र हैं। यह नाटक महावीर उत्सव के समय कुमारपाल निर्मित कुमार-विहार नामक मन्दिर में खेला गया था। यह कुमार विहार थाराप्रद जोकि यशःपाल की निवास भूमि हो सकती है। इस नाटक उस समय का गुजरात का इतिहास और कुमारपाल के मन में जैन धर्म का महत्व वर्णित हैं। इसका प्राकृत मागधी अर्ध मागधी है जो हेमचन्द्र के व्याकरण के नियमानुसार

रविवर्मदेव (ई० १२६६ के बाद)

जीवनचरित्र—केरल के कोलम्बपुर का राजा—समय—इसके लि प्रद्युम्नाभ्युदय का संविधानक।

इसका विरचित 'प्रद्युम्नाभ्युदय' नाम का नाटक है। केरल के कोलम्बपुर का राजा था। चन्द्रवंश के यादव साथ इसका सम्बन्ध माना जाता है। यह यदुकुल के का पुत्र माना गया है। यह अच्छा गायक और कवि इसका इष्टदेव यादवकुल दैवत पद्मनाथ था। प्रद्युम्नाभ्यु नाटक पद्मनाथ के यात्रोत्सव में पहिले पहिल खेला गया अलंकार सर्वस्व की समुद्रबन्ध की टीका से ज्ञात होता है

ग्रन्थ के पूर्व रविवर्मदेव ने अलंकार-सर्वस्व को स्पष्ट किया था जिसके आधार से इसने टीका लिखी थी। रविवर्मदेव को कूमपकसार्वभौम भी कहा है। यह कोलम्बपुर, जो आजकल ट्रावंकोर में क्वीलत के नाम से प्रसिद्ध है, पहिले इस प्रान्त की राजधानी थी। इसने काञ्चीतक दिग्विजय कर अपना यश फैलाया था। शिला-लेखों से ज्ञात होता है कि यह ई० १२६५ में जन्मा[1] था। इसकी वीरता के कारण लोग इसे 'संग्रामधीर' कहते थे।

प्रद्युम्नाभ्युदयः—यह पांच अंकों का नाटक है। इसमें कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न की हरिवंश की कथा वर्णित है। यह नाटक केरल का होनेपर भी इसका उपक्रम भासके नाटकों के समान नहीं है।

जयदेव (ई० १२०० व १३०० के मध्य में)

इसका विरचित प्रसन्न राघव नाटक—इसका संविधानक।

इसका विरचित 'प्रसन्न-राघव' नामक नाटक है। इसके जीवन चरित्र तथा समय का उल्लेख 'अलंकार प्रकरण' में किया गया है।

प्रसन्नराघवः—यह सात अंकों का नाटक है। इसमें रामायण की कथा कुछ परिवर्तित रूप में वर्णित है। इसके प्रथम चार अंकों में रामायण के अयोध्याकाण्ड की कथा, सीता स्वयम्वर, परशुराम पराभव आदि नये ढंगसे वर्णित हैं।

1 प्रद्युम्नाभ्युदय की भूमिका—अनन्तशयन-ग्रन्थावलि।

रावण के साथ बाणासुर भी धनुष्यभङ्ग में वर्णित है। ... और सुग्रीव की कथा गङ्गा, यमुना और सरयू के संवाद ... वर्णित है। रामचन्द्र का मारीच रूपी कपट मृगानुसरण ... द्वारा निवेदित है। गोदावरी और सागर के संवाद में ... हरण, जटायु-मृत्यु और ऋष्य-मूक-पर्वत पर जानकी ... आभूषण त्याग कहा गया है। षष्ठ अङ्क में राम-विलाप ... है। सप्तम में युद्धकाण्ड की कथा है। इस नाटक की ... अत्यन्त मनोहर है।

वेदान्तदेशिक वा वेंकटाध्वरिन् (ई० १२६८-१३...

इसके विरचित—'संकल्प सूर्योदय' नाटक का—संविधानक-...

इसका विरचित 'संकल्प सूर्योदय' नाटक है। इसके ... चरित्र तथा समय के सम्बन्ध में महाकाव्य प्रक... निर्दिष्ट हैं।

संकल्प सूर्योदय:—यह १० अंकों का महानाटक है। ... नाटक के आरम्भ में कहा है कि—

'न तच्छास्त्रं न सा विद्या न तच्छिल्पं न ताः कलाः।
नाऽसौ योगो न तद्ज्ञानं नाटके यन्न दृश्यते'॥

और कवि ने इसी कथन के अनुसार इस नाटक में ... शास्त्र और अध्यात्म ज्ञान अपने विशिष्टाद्वैत मतानुसार ... के अन्तःकरण पर प्रतिबिम्बित करने की चेष्टा की है। ... प्रबोधचन्द्रोदय का पूर्ण अनुकरण है। इस नाटक का ... सूर्योदय नाम भी प्रबोधचन्द्रदोय इस नाम का अनुकरण ...

...द होता है। इस नाटक का प्रधान रस शान्त है। इस रस
...प्रशंसा[1] नाटक में कवि ने की है। इसके प्राकृत श्लोक
...न्त प्रौढ़ हैं। कहीं २ व्यास और वाल्मीकि के अनुष्टुप्
...के श्लोकों के भावों को स्वविरचित बड़े २ छन्दों में बड़े
...र्य से अलंकारिक भाषा में प्रगट किया है। इसपर चार
...यें हैं जिनमें अहोबल और कौशिक कुल तिलक ताताचार्य
...टीकाएँ प्रसिद्ध हैं।

विद्यानाथ (ई० १४ श शतक प्रारम्भ)

इनके विरचित 'प्रताप रुद्र कल्याण' नाटक का संविधानक।

...इसका विरचित 'प्रतापरुद्रकल्याण' नाम का नाटक है।
...के जीवन चरित्र तथा समय के लिये अलंकार प्रकरण
...खिये।

...प्रतापरुद्रकल्याण:—यह नाटक विद्यानाथ विरचित प्रताप-
...यशो भूषण नामक अलङ्कार ग्रन्थ में के उल्लेखों से ज्ञात
...इसमें कवि ने अपने संरक्षक वरङ्गल के राजा प्रताप
...देव (ई० १३००) की प्रशंसा की है।

वामन भट्ट बाण (ई० १४१५)

इनके विरचित १ शृङ्गारभूषण भाण २ पार्वती परिणय नाटक—इनके
...धानक।

---

[1] शमस्तु परिशिष्यते शमितचित्तखेदो रसः।
...प्रकर्षगुणो यस्मिन्नाट्ये रसोनत्रमस्थितः॥

इत्यादि। संकल्प-सूर्योदय।

इसका विरचित शृङ्गार भूषण भाण है। 'पार्वती परि
नाटक भी इसीका विरचित माना जाता है। इसके सम्ब
'खण्ड काव्य' प्रकरण में लिखा गया है।

पार्वतीपरिणयः—यह पांच अङ्कों का नाटक है। इस
शिव और पार्वती का विवाह वर्णित है। इसकी प्रस्ताव
कवि ने अपने विषय में कहा है ,अस्ति कवि-सार्व
वत्सान्वय-जलधि-सम्भवो बाणः'। इससे अनेक प्र
विद्वानों ने इस नाटक को ई० सातवी सदी के बाण भ
बनाया माना है। किन्तु आधुनिक विद्वानों ने इस नाट
भवभूति आदि अर्वाचीन कवियों का अनुकरण देखकर इ
वामन भट्ट बाण रचित माना है। वामन भट्ट-बाण की र
प्रसाद व माधुर्य गुण युक्त होनेके कारण और दोनों क
व गोत्र भी एक होने से यह भ्रम होना स्वाभाविक है।

शृङ्गारभूषण भाणः—यह एक अङ्क का भाण है। इ
नायक विलासशेखर है। इसमें विप्रलम्भ शृङ्गार का
जनक वर्णन है। इसकी प्रस्तावना में कवि ने अपने को
भट्ट बाण, सुकवि और साहित्य-चूड़ामणि कहा है।
'पार्वती परिणय' के सदृश केवल बाण भट्ट, कवि-सार्व
ऐसा निर्देश नहीं है। किन्तु 'वेम-भूपाल-चरित' में
अपने को अवश्य 'गद्य-सार्वभौम' कहा है।

कविकर्णपूर (ई० १५४२)

समय निर्धारण—नीलगिरि के राजा गजपति—प्रता

...क- इसका विरचित चैतन्य चन्द्रोदय नाटक– इसका संविधानक।

...का विरचित 'चैतन्यचन्द्रोदय' नाटक है। इसके जीवन ...तथा समय के सम्बन्ध में चम्पू प्रकरण में लिखा गया है। ...चैतन्य चन्द्रोदय की प्रस्तावना में कविने कहा है कि यह ...कपिलेश्वर देव के पौत्र, पुरुषोतम देव के पुत्र, नीलगिरी ...राजा गजपति-प्रताप-रुद्र की आज्ञा से रचागया। इस ...के रचना काल के विषय में विद्वानों में मतभेद है। ...का रचना-काल द्योतक

"शाके चतुर्दशशते रविवाजियुक्ते (१४०७)
गौरो हरिर्धरणिमण्डल आविरासीत्।
तस्मिंश्चतुर्नवतिभाजि तदीयलीला-
ग्रन्थोऽयमाविरभवत्कतमस्य वक्त्रात्"।

इस श्लोक के 'तस्मिंश्चतुर्नवतिभाजि' को 'चतुर्दशशते' ...साथ लेकर राजेन्द्र लाल मिश्र, हरि मोहन प्रामाणिक और ...का अनुकरण कर सुशील कुमार दे ने भी चैतन्य चन्द्रोदय ...रचना काल शके १४६४ अर्थात् ई० १५७२ माना है। किन्तु ...-माला में मुद्रित चैतन्य चन्द्रोदय की भूमिका मे ...केदारनाथ ने 'तस्मिन्' का सम्बन्ध 'गौरेहरौ' से लगाकर ...नाटक का रचना काल ७ वर्ष आगे (१४०७+६४= ...१ शक अर्थात् ई० १५७६) माना है। यह समय तभी ठीक

१ चैतन्य चन्द्रोदय भूमिकाएँ, ८७काव्यमाला वा [illegible]

२ और सुशील कुमार दे का अलङ्कार का इतिहास भाग १ पृ० २५७।

हो सकता है जब चैतन्यदेव ६३ की अवस्था में जीवित
किन्तु चैतन्य देव इसके ५० वर्ष पूर्व ही इस लोक से चले
थे। अतः इस श्लोक का प्रथम अर्थ ही अधिक उपपन्न है।

चैतन्यचन्द्रोदयः—यह दस अंकों का महा-नाटक है।
इसमें प्रबोध चन्द्रोदय के सदृश कलि, अधर्म, अद्वैत, वि
मैत्री, भक्ति आदि कवि कल्पित पात्र भी हैं। इसमें ग्रन्थ
चैतन्य देव की महिमा तथा कृति वर्णित है। कवि को
प्रकार की रचना करने की इच्छा अवश्य ही प्रबोध चन्द्रो
नाटक को देख ही कर हुई होगी। रूप गोस्वामी ने चैत
देव की बृहज्जीवनी लिखी है जिसे 'करछा' कहते हैं।
इसी करछा के आधार पर इस नाटक की रचना हुई है।
नाटक पहिले पहिल जगन्नाथ के चन्दनोत्सव के अवसर
गजपति प्रताप रुद्रदेव के दर्बार में खेला गया था।

शेषकृष्ण (ई० १५६०)

इसके विरचित ग्रन्थ—१ कंसवध २ मुरारिविजय ३
परिणय ४ सत्यभामाविलास—कंसवध का संविधानक।

इसके विरचित कंसवध, मुरारिविजय, सत्यभामा
णय और सत्यभामा-विलास नाटक हैं। इसके जीवन
आदि के विषय में चम्पू प्रकरण में कहा गया है।

कंसवधः—यह ७ अङ्कों का नाटक है। इसमें
बालचरित्र और श्रीमद्भागवत की कृष्णलीलान्तर्गत कंस
का वध वर्णित है। कवि ने यह नाटक अकबर बादशा

टोडरमल के पुत्र के लिये लिखा था।

काञ्चनाचार्य (अज्ञात-समय)

शैली—समयकल्पना—इसका विरचित धनञ्जय विजय व्यायोग व संविधानक।

काञ्चन पण्डित विरचित 'धनञ्जय विजय' नामका व्यायोग
ह कवि मुनिकुल के नारायण-वादीश्वर का पुत्र था।
व्यायोग किसी जयदेव राजा की आज्ञा से रंगभूमि पर
या था। उस अवसर पर गदाधर प्रभृति सभ्य उपस्थित
ला इस व्यायोग की भूमिका से विदित है। यह गदाधर
बंगाल के प्रसिद्ध नैयायिक गदाधर भट्टाचार्य हों तो
समय ई० १७ श शतक का पूर्वार्द्ध हो सकता है।
र, नारायण-वादीश्वर आदि नाम कवि की देशीयता
करते हैं। सम्भव है कि यह कवि वंग का ही
हो।

ञ्जय विजयः—यह एक अङ्क का व्यायोग है। इसमें
के उत्तर गोग्रहण के समय कौरवों के विरुद्ध अर्जुन के
म का और उसके पराक्रम से प्रसन्न होकर विराट् का
कन्या उत्तरा का अभिमन्यु को विवाह में देने का
है।

उद्दण्डिन् (ई० १६५० ल० भ०)

शैली—समय—इसका विरचित मल्लिकामारुत प्रकरण—

उद्दण्डिन् अथवा उद्दण्डनाथ विरचित 'मल्लिकामारुत'

नाम का प्रकरण है। इसका पूर्ण नाम उद्दण्ड रङ्गनाथ है।
तुण्डीरमण्डल के लाटपुर का 'इरुगमनाथ' भी इसका
थी। यह कृष्ण का पुत्र और गोकुलनाथ का पौत्र था।
केरल के उत्तर में कुक्कुट कोड (Calicut) के किसी
दार का यह आश्रित था। कुछ काल तक मङ्गा कवि
और यह कवि एक ही माने जाते थे किन्तु अब यह ई० १
शतक के मध्य में था ऐसा माना जाता है।

मल्लिका मारुतः—यह दस अंकों का प्रकरण है। इसकी
नायिका मल्लिका और नायक मारुत हैं। इसका कथानक
भवभूति के मालती-माधव के बिलकुल सदृश है।

महादेव (ई० १७ श शतक का अन्त)

समय—इसका विरचित अद्भुत दर्पण नाटक—इसका संक्षेप

इसका विरचित 'अद्भुत दर्पण' नाटक है। यह कृष्ण
का पुत्र था और रामभद्र दीक्षित का समकालिक था।
लिये इसका समय ई० १७ वां सदी का उत्तरार्द्ध
उचित है।

अद्भुत दर्पण:—यह दस अंकों का नाटक है। इसका
कथानक जयदेव के प्रसन्नराघव के कथानक का अनुकरण
इसमें अङ्गद के दौत्य से आरम्भ कर रामचन्द्र के राज्याभिषेक
तक की रामायण की कथा है। रामचन्द्र के वर्णन में जो
नाटक लिखे गये हैं उनसे इसमें विशेषता यह है कि
विदूषक का पात्र है जो अन्य नाटकों में नहीं है।

आनन्दराय मखी (ई० १७२६-३६)

जीवन चरित्र—समय—तँजोर के राजा शाहीराय सरभाजी का प्रधान मन्त्री—इसके विरचित १ विद्यापरिणय नाटक २ जीवानन्दन नाटक—विद्यापरिणय का संविधानक।

इसका विरचित 'विद्यापरिणय' नाम का नाटक है। इसकी उपाधि 'वेदकवि' नाम से थी। यह नृसिंह राय अध्वरी का पुत्र और त्र्यम्बक दीक्षित का भतीजा था। तँजोर नगर के राजा शाहीराय सरभाजी ने इसको अपना प्रधान मन्त्री बनाया था। सरभाजी शाहीराय और तुकोजी भोसले ई० १७२६-१७३६ में राज्य करते थे। इसलिये इस कवि का भी यही समय मान लेना उचित है। यह भारी शैव विद्वान् तथा सरस्वती का उपासक था। इसका विरचित 'जीवानन्दन' नाम का दूसरा नाटक भी है।

विद्यापरिणय नाटक:—यह ७ अंकों का नाटक है। इसकी भूमिका में स्पष्ट कहा है कि 'कृष्णमिश्र' 'व्यङ्कट देशिक' और 'श्रीनिवासतीर्थ' प्रभृति ने 'प्रबोधचन्द्रोदय', 'संकल्पसूर्योदय' और 'भावना-पुरुषोत्तम' नाटक लिखे हैं ऐसी अवस्था में 'विद्यापरिणय' नाटक की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। इसके उत्तर में कहा है कि उनमें केवल मोक्षमार्ग का ही प्रतिपादन वर्णित है और त्रिवर्गफलसम्पत्ति को उन लोगों ने तिरस्कृत किया है और उन नाटकों में कुछ अश्लीलता भी आ गई है। किन्तु इस नाटक में अद्वैत वस्तु प्रतिपादन

रहने पर भी शृङ्गार रस विद्यमान है। अश्लीलता दोष का इसमें अभाव रहने के कारण यह नाटक आवश्यक है। इसमें 'शिवभक्ति, एक कवि कल्पित पात्र है जिसके द्वारा शिवजी की भक्ति की महिमा वर्णित है। चार्वाक, बौद्धों के चार मत—वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक, तान्त्रिक आदि अनेक मतों का प्रतिपादन तथा खण्डन इसमें किया है। इसका विरचित 'जीवानन्दन' नाटक भी इसी प्रकार का है।

उपर्युक्त नाटक व नाटककारों के अतिरिक्त अनेक छोटे मोटे नाटक व नाटककार हैं जिनका इस संक्षिप्त इतिहास में समावेश करना असम्भव है।

प्रकरण ११

अलङ्कार शास्त्र

अलङ्कारशास्त्र का महत्व व प्रयोजन—अलङ्कार के आदि प्रयोग—अलङ्कारशास्त्र का प्रादुर्भाव व विकास—अलङ्कारशास्त्र के कुछ प्रश्न और उनके अनुसार उनके मतोंका वर्गीकरण—रसमत—अलङ्कारमत—रीतिमत—वक्रोक्तिमत—ध्वनिमत—काव्यालङ्कार, अलङ्कारशास्त्र, साहित्य आदि शब्दों का अर्थ व प्रयोग—अलङ्कारशास्त्र के विषय।

संस्कृत साहित्य में अलंकारशास्त्र भी अत्यन्त महत्व का है। सब से प्राचीन वेद ग्रन्थों से लेकर साधारण ग्रन्थों के अर्थ परिज्ञान में यह शास्त्र अत्यन्त उपकारक है। राजशेखर ने इसका महत्व देखकर ही इसको सप्तम वेदाङ्ग[1] कहा है। इतना ही नहीं, उसने आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति इन चारों विद्याओं का अलङ्कारशास्त्र निचोड़[2] है ऐसा कहकर इस शास्त्र का पूर्ण महत्व प्रगट किया है। भाषा का प्रयोग

---

[1] उपकारकत्वादलङ्कारः सप्तममङ्गमिति यायावरीयः।
ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानाद्वेदार्थानवगतिः।
यथा 'द्वा सुपर्णा' इत्यादि। काव्यमीमांसा। २ उद्देश।

[2] आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तादण्डनीतयश्चतस्रो विद्या इति कौटिल्यः।
पञ्चमी साहित्यविद्या इति यायावरीयः।
सा हि चतसृणामपि विद्यानां निष्यन्दः। काव्य मीमांसा। २ उद्देश।

मनुष्य मात्र कर सकता है परन्तु भणिति वैचित्र्य और भा
सौष्ठव अलङ्कारशास्त्र को जानने वालों की ही भाषा में पा
जाता है। भाषा को, चाहे वह गद्य में हो वा पद्य में, अधि
सुखद और मनोरंजक बनाना अलङ्कार शास्त्र ही का कार्य है।
कविता बनाने की शक्ति उपार्जन करने में इस शास्त्र का
परमावश्यक है। यद्यपि काव्य मात्र कर्ण तथा नेत्र को सुख दे
वाला है तथापि उसमें क्या २ गुण और दोष हैं इसका सू
परिज्ञान अलङ्कार शास्त्र के विना नहीं हो सकता। इ
कारणों से यह पांचवी विद्या मानी गई है।

प्राचीन परम्परा[1] में अलङ्कारशास्त्र की उत्पत्ति के विष
माना जाता है कि पहिले पहिल इस शास्त्र का उपदेश शि
ने अपने ६४ शिष्यों को किया था जिनमें ब्रह्मा और वि
प्रधान थे। ब्रह्मा ने तत्पश्चात् अपने मानस पुत्र वा शिष्
इसकी शिक्षा दी। इन शिष्यों में सरस्वती का पुत्र
पुरुष भी था। इसी काव्यपुरुष से यह शास्त्र संसार में
हुवा। आधुनिक विद्वान् इसको महत्व दें वा न दें

---

१ अथातः काव्यं मीमांसिष्यामहे।
यथोपदिदेश श्रीकण्ठः परमेष्ठिवैकुण्ठादिभ्यः चतुष्षष्टये शिष्
सोऽपि भगवान्स्वयम्भूरिच्छाजन्मभ्यः स्वान्तेवासिभ्यः।
तेषु सारस्वतेयो वृन्दीयसामपि वन्द्यः काव्यपुरुष आसीत्।
तञ्च सर्वरूमर्यविदं ... ... प्रजासु हितकाम्यया प्रजापति
काव्यविद्याप्रवर्तनायै प्रायुङ्क्त। काव्यमीमांसा।

तो यह अवश्य मानना पड़ेगा कि प्राचीनतम वेद ग्रन्थों में आलङ्कारिक भाषा के अनेक प्रयोग हैं। जैसेः—'मा नो मघेव निष्षपी परा दाः' (ऋग्वेद १। १०४। ५)। इस ऋचा में उपमा अलंकार है। 'अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियम्' (ऋग्वेद १।५१।१) इस ऋचा में रूपक अलंकार है। 'द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य। (ऋग्वेद १।१६४।११) इसमें रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरेकः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभि चाकशीति' (ऋग्वेद १।१६४।२०) इसमें अतिशयोक्ति अलंकार है। इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक अलंकार ऋग्वेद में पाये जाते हैं। उपनिषदों में भी आलंकारिक भाषा के अनेक प्रयोग मिलते हैं।

ई० पू० १००० के पूर्ववर्ती गार्ग्य आदि आचार्यों ने उपमा, (…)र्मादि अलंकारों के लक्षण बनाने की चेष्टा की थी। निरुक्तकार यास्क ने गार्ग्य के उपमा[1] लक्षण की समालोचना करते हुए निरुक्त के ३ य अध्याय के १३ वें खण्ड में अनेक उपमा अलंकार युक्त ऋचाओं को एकत्रित किया है और उपमा के सिद्धोपमा, भूतोपमा, रूपोपमा आदि अनेक भेद बताये हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी[2] के समय में उपमान और उपमेय

---

[1] अथात उपमा यदतत् तत्सदृशमिति गार्ग्यः।

[2] उपमानानि सामान्यवचनैः पा० २।१।५५ उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे पा० २।१।५६ तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् पा० २।३।७२।

आदि अनेक अलंकार शास्त्र के शब्द श्लोक में रूढ़ हो चुके
कात्यायन के 'लुब्राऽऽख्यायिकाभ्यो बहुलम्' इस वार्तिक
स्पष्ट है कि उस काल ही में आख्यायिका नामक काव्य
एक भेद मान लिया गया था। रामायण और महाभारत को
देखने से तो स्पष्ट प्रतीति होती है कि उन समयों में अलंकार
शास्त्र का अच्छी तरह प्रसार हो चुका था। इस प्रकार यद्यपि
अलङ्कार शास्त्र का विकास वैदिक काल से ही अवगत होता
है तथापि उस काल का कोई स्वतन्त्र अलङ्कार शास्त्र का ग्रन्थ
उपलब्ध नहीं है।

अलङ्कार शास्त्र के उपलब्ध ग्रन्थों में भरतनाट्यशास्त्र
सब से प्राचीन है। इस ग्रन्थ के सोलहवें अध्याय में काव्य को
नाट्य का एक अङ्ग[1] मानकर उसके गुण दोष अलङ्कार आदि
का विचार किया गया है। भामह, दण्डी आदि प्राचीन आलं-
ङ्कारिकों के समय में अलंकारशास्त्र का प्रतिपादन नाट्य
शास्त्र से पृथक्, स्वतन्त्र रूप से किया गया है। नाट्य

---

१ जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदादित्यादि श्लोक में पाठ्य पद से भरत
ने काव्य लिया है। अभिनवगुप्ताचार्य ने अपनी अभिनवभारती नामक
भरतनाट्यशास्त्र की टीका में भरत मुनि के आशय को स्पष्ट करते
कहा है कि—

'काव्यं तावद्मुख्यतो दशरूपकात्मकमेव ... सर्गबन्धादौ हि
नायिकाया अपि संस्कृतैवोक्तिरित्यादिबहुतरमनुचितम्।

अभिनवभारती, पृ०

प्रतिपादित इन दोनों शास्त्रों का अङ्गाङ्गीभाव कब से दूर यह कहना कठिन है। मालूम होता है कि प्राचीन आचार्यों के मत से पूर्ण रसास्वाद केवल नाटकों में ही सम्भव और काव्य में केवल शब्द और अर्थ के चमत्कार ही आवित थे। इसीलिये भामह, दण्डी आदि के अलंकार ग्रन्थों में शब्द और अर्थजन्य चमत्कार का ही विस्तृत वर्णन मिलता है और रस को अलंकार का अङ्ग मान कर उसको स्थान दिया गया है। अलंकार शास्त्र में भी आनन्दवर्धनाचार्य के ध्वनि-मार्ग-प्रतिपादन के साथ २ रस का व्यञ्जना के द्वारा स्थापित हुवा। तभी से आलंकारिकों की प्रवृत्ति नाट्यशास्त्र को ही अलंकार शास्त्र का एक अङ्ग मानने में हुई। यह बात साहित्यदर्पण आदि ग्रन्थों को देखने से स्पष्ट हो सकती है।

उपर्युक्त अलंकार शास्त्र का विकास आगे किस प्रकार उन्नत होता गया यह आगे दिये हुवे आलंकारिकों के भिन्न मतों से स्पष्ट हो जायगा।

'विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्' अर्थात् किसी प्रकार की विशिष्टतायुक्त शब्द और अर्थ ही काव्य है। यद्यपि यह सर्वसम्मत है तथापि शब्दार्थ का किस प्रकार का वैशिष्ट्य मानना, इस विषय में विद्वानों में मतभेद[1] है। इन सब बातों का वर्गीकरण तीन विभागों में किया जा सकता है। इस वैशिष्ट्य को

[1] राजानक रुय्यक के अलङ्कार सर्वस्व की समुद्रबन्ध की टीका पृ० ३-४

कोई धर्ममूलक, कोई व्यापारमूलक और कोई व्यङ्ग्यमूलक
मानते हैं। धर्ममूलक वैशिष्ट्य अनित्य और नित्य के भेद से
दो प्रकार का है। अनित्य धर्ममूलक वैशिष्ट्य को मानने वाले
भामह और उद्भट हैं। इन आलङ्कारिकों का मत अलङ्कार मत
कहाता है। क्योंकि अलङ्कार शब्दार्थ का अनित्य धर्म है।
नित्य धर्ममूलक वैशिष्ट्य को मानने वाले वामन और उनके
अनुयायी आलङ्कारिकों का मत गुण वा रीति मत कहाता है।
गुण वा रीति शब्दार्थ का नित्य धर्म होने के कारण वामन ने
रीति को ही काव्य की आत्मा[1] माना है। व्यापारमूलक वैशि-
ष्ट्य भी दो प्रकार का है। शब्दमूलक व्यापार वैशिष्ट्य अर्थात्
भङ्गिभणिति-वैचित्र्य मानने वाले वक्रोक्ति जीवितकार कुन्तक
हैं। अर्थमूलक व्यापार वैशिष्ट्य को भोगकृत्व मानकर भट्ट
नायक ने उसका प्रतिपादन किया है। शब्दमूलक व्यापार
वैशिष्ट्य मानने वालों का मत वक्रोक्ति मत कहाता है और
भट्टनायक का मत रस मत में अन्तर्भूत है। व्यङ्ग्यमूलक वैशिष्ट्य
अर्थात् व्यञ्जना व्यापार का प्रतिपादन करने वाले ध्वनि मत के
प्रवर्तक आनन्दवर्द्धनाचार्य और उनके अनुयायी आलङ्कारिक
हैं। इसी मत को ध्वनि मत कहते हैं। यह नाट्यगत रस को
काव्य में भी चरितार्थ करने वाला एक विशिष्ट मत है। इस
मत को ठीक २ समझने के लिये प्राचीन रस मत का ज्ञान
अत्यन्त आवश्यक है। इसलिये यहां क्रम से रस मत, ...

---

[1] रीतिरात्मा काव्यस्य—वामन का काव्यालङ्कारसूत्र।

...र मत, रीति मत, वक्रोक्ति मत, और ध्वनि मत का संक्षेप
...र्णन दिया जाता है।

रसमतः—यह मत आलंकारिकों के अन्य सब मतों से
...ीन व अत्यन्त महत्व का है। इस मत के अनुसार काव्य
...आत्मा[1] रस मानी गई है और गुण, रीति व अलंकार रस
...परिपोषक माने गये हैं। यद्यपि इस मत के आद्य प्रवर्तक
...मुनि माने जाते हैं तथापि भरत नाट्यशास्त्र के समय में
...मत का पूर्ण विकास हो चुका था। वैदिककाल में काव्य
...नाट्य गत रस की ठीक २ कल्पना थी वा नहीं यह नहीं
...जा सकता। ऋक् संहिता तथा अन्य संहिता व ब्राह्मण-
...ों में रस शब्द प्रायः सोमरस, हवि, दूध, जल आदि
...ों में प्रयुक्त है। तैत्तिरीय उपनिषद् में रस पद से आनन्द-
...स्वरूप[2] परब्रह्म का बोध कराया है। सम्भव है कि बाद के
...कियों ने इसी अर्थ का अवलम्बन कर काव्य और नाट्य के
...आनन्दातिशय को भी रस शब्द से निरूपित किया हो। ध्वनि-
...प्रवर्तक आचार्यों ने रस का आद्य प्रवर्तक वाल्मीकि को
...ना है। क्योंकि क्रौञ्च मिथुन में से एक का वध देखकर और
...को वियोगज दुःख से अत्यन्त अभिभूत जानकर ही

---

[1] रस आत्मा परे मनः। अलङ्कारशेखर पृ० ६। रस एवाऽत्र
...जीवितम्। अग्निपुराण।

[2] रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति।
तैत्तिरीय उपनिषद् २।७।

उस ऋषि के हृदय में जो अत्यन्त शोक उत्पन्न हुआ, वह स्थायिभाव—

" मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्"॥

इस श्लोक रूप करुण रस में परिणत हुवा। वाल्मीकि ने स्वयं कहा है कि "शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा" अर्थात् शोक से पीड़ित मेरे मुख से निकला हुवा यह श्लोक कभी अन्यथा नहीं हो सकता अर्थात् शोक रूप ही है। वाल्मीकि के बाद और भरतनाट्य शास्त्र के पूर्व रस मत का विकास कैसे हुवा था यह कहना कठिन है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में शिलाली और कृशाश्व नाम के नटसूत्रकारों का निर्देश मिलने से यह कहा जा सकता है कि भरतनाट्य शास्त्र के रचनाकाल के बहुत पूर्व नाट्य शास्त्र के ग्रन्थ बन चुके थे। किन्तु सम्प्रति रसमत-प्रतिपादक सब से प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ भरतनाट्यशास्त्र ही है।

रस मत का मूल सूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' है। इस सूत्र का व्याख्यान अलङ्कार शास्त्र के प्रधान ग्रन्थों का मुख्य विषय हुवा है। इसका सीधा अर्थ यही है कि कारणरूप आलम्बन तथा उद्दीपन, कार्यरूप हाव भावादि अनुभाव और निर्वेद, ग्लानि आदि व्यभिचारी भावों के संयोग से रस उत्पन्न होता है। इस का विशदीकरण स्थानाभाव से यहां नहीं किया जा सकता।

और उनके स्थायिभाव किसी के मत में आठ[1] और
के मत में नव[2] माने जाते हैं। रस शब्द 'रस आस्वादन
योः' इस धातु से बना है। इसका अर्थ 'रसनाद्[3] रसः'
'रस्यते[4] असौ इति रसः' इन दोनों प्रकार से किया
है। अर्थात् उपभुज्यमान रत्यादि स्थायिभाव वा
दि स्थायिभावों का उपभोग ये दोनों रस पद से गृहीत
मनुष्य मात्र के हृदय में कुछ भाव ऐसे स्थिर रूप से स्थित
जो निमित्त को पाकर प्रगट होते हैं। उन भावों को
यिभाव कहते हैं। प्रत्येक रस के भिन्न २ स्थायि-भाव
हैं। शृङ्गार का रति, हास्य का हास, करुण का शोक,
का क्रोध, वीर का उत्साह, भयानक का भय, बीभत्स का
प्सा, अद्भुत का विस्मय और शान्त का निर्वेद स्थायि-
व है। शान्तरस को नाट्यशास्त्र में स्थान नहीं दिया गया
क्योंकि नाट्य अभिनेय होने के कारण उसमें शान्त रस
कोई मुख्य प्रयोजन नहीं है। रुद्रट ने अपने काव्या-

---

[1] शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।
रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा। जुगुप्सा विस्मयश्चेति
स्थायि भावाः प्रकीर्तिताः।—काव्य प्रकाश।

[2] निर्वेदः स्थायिभावोस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः—काव्य प्रकाश।

[3] रुद्रटका काव्यालङ्कार। १२—४।

[4] रस तरङ्गिणी ६ ष्ठ तरङ्ग।

लङ्कार१ में 'प्रेयान्' नामक दशम रस माना है। साहित्य...
कार ने वात्सल्य रस भी माना है। रस तरङ्गिणी'२ में वात्स...
लौल्य, भक्ति और कार्पण्य को भी रस माना है। "उज्...
नीलमणिकार रूपगोस्वामी ने माधुर्य वा भक्ति रस को
उज्वल रस कहा है। विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस
निष्पत्तिः" इस सूत्र के अनुसार रस का आस्वादन मनुष्य
मात्र के अन्तःकरण में किस प्रकार हो सकता है। इस विषय
में भिन्न २ आचार्यों के चार प्रकार के मत रूढ़ हैं।

(१) भट्ट लोल्लटादि आचार्य रस को कार्य रूप मानते
हैं। इनके मत में रस राम का वेष धारण करने वाले नट
वास्तव में न रहकर राम ही में रहता है किन्तु राम के स्वरूप
अनुसन्धान करने के कारण नट में वह रस केवल प्रतीत
होता है। इस मत में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारि भावों
के संयोग को रस का कारक हेतु माना है। इस लिये
'निष्पत्ति' पद का अर्थ उत्पत्ति' है।

(२) शङ्कुक आचार्य ने इस मत का खण्डन करके
अनुमाप्य अनुमापक भाव सम्बन्ध से रस की निष्पत्ति अर्थात्
अनुमिति होती है ऐसा माना है। यह अनुमिति सामाजिकों
में अभ्यास पटुता से होती है।

(३) भट्ट नायकादि आचार्यों ने शङ्कुक का मत ...

---

१ काव्यालङ्कार १२। ३।
२ रसतरङ्गिणी—षष्ठतरङ्ग।

करते हुवे भोज्य भोजक भाव सम्बन्ध से रसकी निष्पत्ति अर्थात् भोग होता है ऐसा सिद्ध किया है। इनके मत में अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व इन तीन व्यापारों को मानने की आवश्यकता पड़ती है।

(४) इस मत के प्रतिपादक आचार्यों में अभिनव गुप्त प्रधान हैं। इसमें सब मतों का खण्डन करते हुवे यह सिद्ध किया गया है कि साधारणी-करण व्यापार से अभिव्यक्त रस, पानक-रस-न्याय से चर्व्यमाण होने के कारण अलौकिक आनन्द को देनेवाला है। यह रस अलौकिक होने के कारण कार्य तथा ज्ञाप्य है भी और नहीं भी है।

अभिनव गुप्त के बाद के आलङ्कारिकों में कुछ ही भट्ट नायक के मत को मानते हैं। अन्य सब अभिनव गुप्त के मत का अवलम्बन करने वाले हैं।

अलङ्कार मतः—अलङ्कार मत के प्रधान प्रवर्तक भामह और उद्भट हैं। दण्डी और रुद्रट भी इसी मत के प्रतिपादक कहे जा सकते हैं। अलंकार मत प्रवर्तक उपर्युक्त आचार्यों को रसमत ज्ञात नहीं था यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इन्होंने अपने ग्रन्थों में रस का प्रतिपादन किया है चाहे वह गौण ही रूप से क्यों न हो। दण्डी ने आठ रस[1] और उनके

---

[1] इह त्वष्टरसायत्ता रसवत्ता स्मृता गिराम्। काव्यादर्श २।२९२।
प्राक्प्रीतिर्दर्शिता सेयं रतिः शृङ्गारतां गता।
काव्यादर्श २।२८१।

आठ स्थायिभाव भी माने हैं। परन्तु उनका समावेश रसवत् अलंकार में किया है। इन आचार्यों के मत में काव्य मार्ग में रसको प्राधान्य नहीं है। ये लोग रस की उत्पत्ति अलंकारों द्वारा ही मानते हैं। इन्होंने गुणों को भी अलंकारों में ही अन्तर्भूत[1] किया है। ये लोग ध्वनि और गुणीभूतव्यङ्ग्य शब्दों का अपने ग्रन्थों में यद्यपि प्रयोग नहीं करते हैं तथापि प्रतीयमान अर्थ का निर्देश इनके ग्रन्थों में मिलता है। अप्रस्तुत प्रशंसा, समासोक्ति, आक्षेप इत्यादि अलंकारों में प्रतीयमान अर्थ को व्यक्त करने का इन्होंने प्रयत्न किया है। पर्यायोक्त अलंकार में ध्वनि का भी ये अन्तर्भाव करते हैं। इन्होंने यद्यपि स्पष्ट रूपसे ध्वनि का नाम नहीं लिया है तोभी इनका वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति का वर्णन ध्वनि का ही वर्णन है। इनके ग्रन्थों में अलंकारों का ही प्रधानतया प्रतिपादन है। इनका प्रभाव अन्य मतावलम्बियों पर इतना पड़ा कि उनके ग्रन्थों में अलंकारेतर मत का प्राधान्य रहने पर भी अलंकारों का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है।

भरत के नाट्यशास्त्र में उपमा, दीपक और रूपक अर्थालङ्कार और यमक शब्दालङ्कार—इन चार अलङ्कारों का ही निर्देश है। दण्डी के ग्रन्थ में अलंकारों की संख्या ३५ हुई है।

---

१ उद्भटादिभिस्तु गुणालङ्काराणां प्रायशःसाम्यमेव सूचितम्—अलङ्कार सर्वस्व पृ० ३। तदेवमलङ्कारा एव काव्ये प्रधानमिति प्राच्यानां मतम्। अलङ्कार सर्वस्व पृ० ७०।

भामह ने ३६ अलंकार माने हैं। उद्भट ने भामह के कुछ अलं-
कारों को न मानकर अपने कुछ नवीन अलंकार माने हैं।
इनकी संख्या ४० है। वामन ने केवल ३३ अलंकार ही दिये
क्योंकि उसने रसालंकारों का प्रतिपादन नहीं किया है।
रुद्रट के ग्रन्थ में ५२ से अधिक अलंकार हैं। मम्मट ने ६७
अलंकार दिये हैं जिनमें ६ शब्दालंकार और ६१ अर्थालंकार
। अलंकार सर्वस्व में अलंकारों की संख्या ८१ तक पहुँची है
इसमें ६ शब्दालंकार और ७५ अर्थालंकार हैं। कुवलयानन्द
अलंकारों की संख्या १२४ है। इसमें जयदेव के चन्द्रालोक
१०० अलंकारों में २४ अलंकार और जोड़े गये हैं। सब से
अधिक अलंकारों की संख्या कुवलयानन्द ही में मिलती है।

रीतिमत:—रीति मत का प्रधान प्रतिपादक वामन है।
इस मत में रीति को ही काव्य की आत्मा[1] माना है। दण्डी
ने रीति का प्रतिपादन विस्तार पूर्वक किया और अनन्तर
आलंकारिक भी रीति के विषय में चुप नहीं हैं। गुण और
अलंकारों को भिन्न २ मानने वालों में प्रथम वामन है। इसने
शब्द के व अर्थ के दस २ गुण अलग २ माने हैं। भरत के
नाट्यशास्त्र में भी दस गुणों का निर्देश मिलता है। दण्डी ने
इन दस[2] गुणों को वैदर्भी रीति के लिये आवश्यक माना है।

---

[1] रीतिरात्मा काव्यस्य,विशिष्टा पदरचना रीतिः, विशेषो गुणात्मा।
काव्यालङ्कार सूत्र १।२।६।८ सूत्र।

[2] इति वैदर्भमार्गस्य प्राणाः दशगुणा स्मृताः।
एषां विपर्ययः प्रायो दृश्यते गौडवर्त्मनि॥ काव्यादर्श १।४२।

वैदर्भी रीति के दस गुणों के विपरीत गुण गौड़ी रीति के लि
आवश्यक बताये गये हैं। वामन के मत से वैदर्भी रीति के
लिये दस गुण आवश्यक हैं किन्तु गौडी के लिये ओज और
कान्ति आवश्यक हैं और पाञ्चाली में माधुर्य और
विद्यमान चाहियें। इस रीति मत में गुणों का ही प्राधान्य है।
प्रायः सभी आलंकारिक ३ रीतियां मानते हैं। परन्तु रु
और विश्वनाथ लाटी रीति सहित ४ रीतियां मानते हैं।
भोज ने अपने शृंगार प्रकाश में अवन्ती और मागधी सहित
६ रीतियां मानी हैं।

वक्रोक्तिमतः—वक्रोक्ति शब्द का प्रयाग अलङ्कार
में प्राचीन समय से दीख पड़ता है। बाण भट्ट ने अपनी
कादम्बरी में इस शब्द का उपयोग 'क्रीडालाप'[1] वा 'परि
जल्पित' इन अर्थों में किया है। अमरु शतक में भी इस
में इस शब्द का प्रयोग[2] है। दण्डी ने अलंकारों के दो भि
कर स्वभावोक्ति के अन्तर्गत अलंकारों के अतिरिक्त
अलंकारों को वक्रोक्ति के अन्तर्भूत माना है और दोनों

---

१ वक्रोक्ति निपुणेन विलासिजनेन। कादम्बरी।

एषाऽपि बुद्ध्यत एवैतावतीर्वक्रोक्तीः।

इयमपि जानात्येव परिहासजल्पितानि॥ कादम्बरी।

२ सापत्युः प्रथमापराधसमये सख्योपदेशं विना।

नो जानाति सविभ्रमांगवलनावक्रोक्तिसंसूचनम्॥

अमरु शतक श्लो

ोक्ति का पोषक बताया[1] है। भामह ने वक्रोक्ति को सब
कारों के लिये आवश्यक माना है। वक्रोक्ति-जीवितकार
क ने पहिले पहिल वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा माना।
क ने शब्द और अर्थ को अलङ्कार्य मानकर वक्रोक्ति को
दोनों का अलङ्कार माना और वक्रोक्ति का लक्षण 'वक्रो-
क्तिः वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते' ऐसा किया है। वामन ने
ोक्ति को बिलकुल भिन्न अर्थ में अलंकार माना है। वामन
क्रोक्ति का लक्षण 'सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः' ऐसा किया
। रुद्रट ने वक्रोक्ति को शब्दालंकार कह कर उसके 'काकु-
वक्रोक्ति' और 'श्लेषवक्रोक्ति' ये दो भेद माने हैं। रुद्रट का
नुकरण अनन्तर के प्रायः सभी आलंकारिकों ने किया है।
राजानक रुय्यक ने वक्रोक्ति को शब्दालंकार न मानकर अर्था-
लंकार माना है। वक्रोक्ति, जो कि दण्डी के समय में अलंकार
मात्र के लिये उपयोगी मानी जाती थी और जो कुन्तक द्वारा
काव्य की आत्मा मानी गई थी वह रुद्रट व रुय्यक के समय
शब्दालंकार और अर्थालंकार विशेष के लिये ही रह गई।
वक्रोक्ति मत को एक स्वतन्त्र मत न मानकर अलंकार-मत

---

१ श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्।
भिन्नं द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्॥
काव्यादर्श २।३६३।

२ वक्रोक्तिशब्दश्चालंकारसामान्यवचनोपीहालंकारविशेषे संज्ञितः।
अलंकार सर्वस्व पृ० १७७।

के अनुयायी लोग रसात्मक काव्य को उत्तम काव्य मानते हैं। इनके मत में रस कभी भी वाच्य नहीं है। वह सदैव व्यङ्ग्य रहता है। अतिशय चमत्कारकारी व्यङ्ग्य जिस काव्य में हो वही काव्य इनके मत से श्रेष्ठ गिना जायगा[1]। जैसे आत्मा का सर्वत्र अस्तित्व रहने पर भी जीवात्मा विशिष्ट व्यक्तियों ही में रहती है उसी प्रकार व्यञ्जना व्यापार प्रत्येक काव्य में किसी न किसी रूप से रहने पर भी काव्य किसी विशिष्ट शब्द रचना को ही कहा जा सकता[2] है। ध्वन्यालोक में चमत्कारकारी व्यङ्ग्य वा ध्वनि के रस-ध्वनि, वस्तु-ध्वनि और अलंकार ध्वनि ये ३ भेद दिये[3] हैं। इस मत में वस्तुतः रस ध्वनि ही काव्य की आत्मा है परन्तु वस्तु ध्वनि और अलंकार ध्वनि का पर्यवसान रस में ही होने के कारण वे वाच्यार्थ से उत्कृष्ट माने गये हैं। इसीलिये सामान्य रूप से काव्य की आत्मा ध्वनि मानी गई[4] है। इस ध्वनिमत के अलंकार ग्रन्थों में काव्य के, ध्वनि वा उत्तम काव्य, गुणीभूत व्यङ्ग्य वा मध्यम काव्य और चित्र वा अधम काव्य ये तीन भेद किये गये हैं। केवल रस गङ्गाधरकार ने उत्तमोत्तम नाम का चतुर्थ भेद भी माना है। इस मत में काव्य की आत्मा ध्वनि, शब्दार्थ

---

[1] ध्वन्यालोक पृ० १८१।१८२ व २३९।

[2] लोचन पृ० २८।

[3] ध्वन्यालोक २ उद्द्योत।

[4] लोचन पृ० २७।

शरीर, अलंकार, शब्दार्थ रूपी शरीर के आभूषण, और
यादि गुण ध्वनि रूप आत्मा के धर्म माने गये हैं।

काव्य में ध्वनि मत का प्रादुर्भाव होने के पूर्व यह
शब्द व्याकरण दर्शन में स्फोट रूप से ज्ञात था।
ध्वनि का अस्तित्व मानने के लिये आनन्दवर्द्धनाचार्य
पूर्ववर्ती आलंकारिक तय्यार नहीं थे। कुछ तो
ध्वनि का अभाव ही मानते थे, दूसरे ध्वनि को
गतार्थ करते थे, और अन्य ध्वनि को सहृदयहृदय
अतएव अवर्णनीय कहकर छोड़ देते थे। इन सब
खण्डन कर आनन्दवर्द्धनाचार्य ने ध्वनि का स्वरूप
पहिल ध्वन्यालोक में स्थापित किया जिसका अनु
अनन्तर के प्रायः सभी आलंकारिकों ने किया है।
गुप्त पादाचार्य ने ध्वन्यालोक पर 'लोचन' नाम
लिखकर इस मत को और भी दृढ़ किया। व्यक्ति विवे
महिम भट्ट ने ध्वनि व्यापार को स्वतन्त्र न मानकर
अन्तर्भाव अनुमान में करने की चेष्टा की थी। किन्तु
प्रकाश-कार ने उसका खण्डन कर इस मत को सुदृ
रस गङ्गाधर कार तो इसके पूर्ण अनुयायी हैं।

---

१ काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः।
तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये॥
केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्वमूचु स्तदीयम्।
तेन ब्रूमस्सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम्॥ ध्वन्यालोक।

संस्कृत वाङ्मय में साहित्य शब्द काव्य, नाटक और
ंकार के लिये ही रूढ़ है । साहित्य शास्त्र से अलंकार
का ही बोध होता है। प्रसिद्ध आलंकारिक राजशेखर
ने साहित्य शब्द का अर्थ 'शब्दार्थयोर्यथावत्सहभावेन
साहित्यविद्या' ऐसा किया है । इसके अनुसार शब्द
अर्थ का यथावत् अर्थात् शास्त्रीय सहभाव प्रतिपादन ही
हित्य-शास्त्र अर्थात् अलंकार-शास्त्र का विषय है। यद्यपि
दश वा अष्टादश विद्याओं में साहित्य-विद्या की गणना
रीति से नहीं की गई है तथापि साहित्य विद्या का
त्व बहुत प्राचीन काल से है, यह बात पूर्व में प्रमाणित
जा चुकी है। साहित्य शास्त्र के भामह, वामन, रुद्रट आदि
चित प्राचीन ग्रन्थ काव्यालंकार के नाम से प्रसिद्ध हैं।
न्येन व्यपदेशा भवन्ति' इस न्याय के अनुसार इन ग्रन्थों
अलंकार का प्रतिपादन ही प्रधान रहने से इन ग्रन्थों का
काव्यालंकार" नाम करण यथार्थ है। अलंकार शब्द के दो
र अर्थ किये गये हैं। 'अलङ्करणं अलङ्कारः' और
ंक्रियते अनेन इति अलङ्कारः'। वामन ने प्रथम अर्थ को
न मानकर अपने ग्रन्थ में दूसरा अर्थ उपमा आदि अलं-
रों में उपचरित माना[1] है । अलंकार शास्त्र के ग्रन्थों के

---

[1] काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्—सौन्दर्यमलङ्कारः ।
काव्यालंकार सूत्र १।१।१२ (वृत्तिः) अलङ्कृतिः अलङ्कारः ।
करण व्युत्पत्या पुनरलंकारशब्दोऽयं उपमादिषु वर्तते ।

लिये साहित्य शब्द का प्रयोग बहुत अर्वाचीन है। जहाँ
मालूम होता है साहित्य शब्द का आलंकारिक ग्रन्थों के
प्रयोग राजानक रुय्यक[1] तथा विश्वनाथ[2] कविराज के
किसी ने नहीं किया है। किन्तु ग्रन्थों के नाम करण के
व्यतिरिक्त साहित्य शब्द का प्रयोग काव्य नाटक आदि
लिये प्राचीन काल से ही उपलब्ध[3] है। भामह ने साहि
शब्द का प्रयोग 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' ऐसा काव्य
लक्षण करते हुवे 'काव्य' के लिये किया है। राजशेख
साहित्य विद्या का पूर्वोक्त लक्षण बनाकर उसको
विद्याओं के साथ गणना होने के लिये अपनी काव्य मीमांसा
श्लाघ्य प्रयत्न किया है। अलंकार शास्त्र के ग्रन्थों का
करण ध्वनि, रस और अलंकार पद से युक्त भी हैं। जैसे
ध्वन्यालोक, रसगङ्गाधर, अलंकारसर्वस्व आदि। इस
के ग्रन्थों में काव्य का ही प्रधानतया विचार रहने
इनका नामकरण 'काव्यादर्श' काव्य-प्रकाश, काव्य
काव्यदर्पण, काव्यमीमांसा आदि भी किया गया है।

---

१ साहित्य मीमांसा।

२ साहित्य दर्पण।

३ साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
भर्तृहरी का नीति

साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं कर्णामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः।
विल्हण का विक्रमांकदेव

ग्रन्थ के प्रधान विषय को व्यक्त करते हैं। जैसे वक्रोक्ति-जीवित, व्यक्ति विवेक आदि। इस प्रकार अलंकार-शास्त्र प्रतिपादन करने वाले भिन्न २ नाम के अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं।

इस अलंकार-शास्त्र का विषय अत्यन्त विस्तृत है। इसके अन्तर्गत काव्य सम्बन्धी सभी विषय आते हैं। पाश्चात्य देशों में काव्य का शास्त्रीय विचार Æsthetics, Criticism, Poetics, Rhetorics इत्यादि विषयों के अन्तर्गत है। हमारे अलङ्कार-शास्त्र में ये सभी अन्तर्भूत हैं। कुछ ग्रन्थ अवश्य ऐसे भी हैं जिनमें अलंकार शास्त्र के केवल एक अंग का ही मुख्यतया विचार किया गया है। जैसे—रसमञ्जरी और रसतरङ्गिणी में केवल नायक नायिका भेद ही वर्णित है। कुवलयानन्द व अलंकार-कौमुदी में केवल अलंकारों का ही वर्णन है। अलङ्कार शास्त्र के अधिकांश सर्वाङ्गीण ग्रन्थों में विषय विभाग करीब २ एक सा ही है। काव्य का लक्षण व प्रयोजन बताते हुवे काव्य के हेतु का प्रतिपादन सर्वत्र ग्रन्थ के आरम्भ ही में है। काव्य के लक्षण[1] तथा हेतु[2] के विषय में

---

[1] शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्—भामह। तैश्शरीरञ्च काव्यानामलंकाराश्च दर्शिताः। शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली—दण्डी। इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली काव्यं स्फुटदलंकारं गुणवद्दोषवर्जितम्—अग्निपुराण। ननु शब्दार्थौ काव्यम्—रुद्रट। शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि। बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि—कुन्तक।

ग्रन्थकारों में बड़ा मत भेद है। ग्रन्थ विस्तार भय से इस मत भेद का विशदीकरण यहां नहीं किया गया है। काव्य लक्षण, शब्द और अर्थ पर अवलम्बित रहने के कारण शब्द और अर्थ के अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना व्यापार तथा उन व्यापारों के अवान्तर भेदों का प्रतिपादन प्रायः ग्रन्थकारों ने काव्यलक्षण आदि के बाद ही किया है। न्याय और मीमांसा में केवल अभिधा और लक्षणा ये दो ही वृत्तियां मानी गई हैं

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वाऽपि—मम्मट। अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्—हेमचन्द्र। शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालंकारौ काव्यम्—वाग्भट। वाक्यं रसात्मकं काव्यम्—विश्वनाथ कविराज। रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्—जगन्नाथ पण्डित राज।

२ काव्यन्तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावतः......शब्दाभिधेये विज्ञाय कृत्वा तद्विदुपासनाम्। विलोक्यान्यनिबद्धांश्च कार्यः काव्यक्रियादरः—भामह। नैसर्गिकीच प्रतिभा श्रुतञ्च बहुनिर्मलम्। अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः—दण्डी। त्रितयमिदं व्याप्रियते शक्ति व्युत्पत्तिरभ्यासः—रुद्रटः शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्। काव्यज्ञशिक्षयाऽभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे—मम्मट। सा शक्तिः केवलं काव्ये हेतुः—राजशेखर। प्रतिभैव च कवीनां काव्यकरणकारणम्। व्युत्पत्त्यभ्यासौ तस्या एव संस्कारकारकौ न तु काव्यहेतू—वाग्भट। तस्य च कारणं कविगता केवला प्रतिभा—जगन्नाथ पण्डितराज।

[...]त्पर्या नामक तीसरी वृत्ति की कल्पना वैयाकरणों से साहित्य [...]ली है। इस वृत्ति के मानने से साहित्य शास्त्र में नवीन [...]व का संचार हुवा है। इसके अनन्तर काव्य के भेद वर्णित [...]काव्य भेद के विषय में भी ग्रन्थकारों में मतभेद है। वहुत [...]ग्रन्थों में दृश्य काव्य नाटकादि और श्रव्य काव्य-गद्य [...]आदि का एकत्र विचार किया हुवा है। केवल दृश्यकाव्य का [...]चार करने वाले दशरूपकादि नाट्य शास्त्र के ग्रन्थ वहुत [...] हैं। अलङ्कार शास्त्र के प्रायः सभी सर्वाङ्गीण ग्रन्थों में गद्य- [...]के अलंकार, गुण, दोष आदि का परामर्श है।

उपर्युक्त विषय विभाग का प्रतिपादन अलंकार ग्रन्थों [...] सामान्य कल्पना होने के लिये संक्षेप में किया गया है। [...]लंकार शास्त्र के प्रधान २ ग्रन्थों का विशेष वर्णन कालक्रम [...] आगे दिया गया है।

अलङ्कार-ग्रन्थ

अग्निपुराण

अग्निपुराण के विषय में अर्वाचीन आलंकारिकों का अभिप्राय— [...]ग्निपुराण का विषय—समय निर्धारण।

प्राचीन परम्परा में अर्थात् ई० दशम शतक के बाद जो [...]ग्रन्थकार[1] हुवे थे उनके मत से अग्निपुराण, अलङ्कार-शास्त्र

---

[1] महेश्वर के काव्यप्रकाशादर्शका उपक्रम और विद्याभूषण की [...]साहित्य कौमुदी की टीका कृष्णानन्दिनी।

का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है और भरत मुनि ने इसी पुराण से अलङ्कार शास्त्र को लेकर कारिकाओं में उसका संक्षेप से वर्णन किया।

अग्निपुराण के ३३६ से ३४६ तक १० अध्यायों में अलंकार शास्त्र का विवरण मिलता है। इन १० अध्यायों के श्लोक ३६२ हैं। अग्निपुराण में रामायण ७ काण्ड, हरिवंश, पिङ्गल, पालकाप्य, शालिहोत्र, धन्वन्तरि और सुश्रुत का निर्देश है। ३८० अध्याय में भगवद्गीता का सारांश और ३५९ से ३६६ तक के अध्यायों में अमरकोष शब्दशः मिलता है। यह कहना असम्भव है कि गीता, अमरकोष आदि ग्रन्थ अग्निपुराण से लेकर बनाये गये प्रत्युत यह कह सकते हैं कि पुराण में सब शास्त्रीय ग्रन्थों का संग्रह करना आवश्यक समझा गया था। इसलिये अग्निपुराण के रचना समय में अमरकोष की रचना हो चुकी थी ऐसा मानना पड़ता है। अमरकोष का समय ५म या ६ ष्ठ शताब्दि मानी गई है। अग्निपुराण में भरत नाट्य शास्त्र के अनेक श्लोक शब्दशः मिलते हैं। ध्वन्यालोक के अनुसार ध्वनि मार्ग का भी निर्देश वहां मिलता है। भामह, दण्डी, वामन, उद्भट, आनन्दवर्द्धन आदि आलंकारिकों ने अग्निपुराण का निर्देश अपने ग्रन्थों में कहीं नहीं किया है प्रत्युत दशम शतक के बाद के विश्वनाथ प्रभृति आलंकारिकों ने अग्निपुराण को प्रमाण माना है। इसलिये यह मानना पड़ता है कि अग्निपुराण का साहित्य और कोष का भाग,

...से १० म शतक तक के अनेक ग्रन्थों से लेकर इसमें ...त किया गया है ।

भरत मुनि का नाट्य शास्त्र (ई० पू० २ य शतक)

...विद्यमान नाट्य शास्त्र के ग्रन्थों में सबसे प्राचीन ग्रन्थ—भरतमुनि ...का वर्णन—नट विशेष कुशीलव भरत कहलाते थे—नाट्य शास्त्र के ...मुनि विरचित होने में सन्देह—समयनिर्धारण—नाट्यशास्त्र का ...परामर्श और उसकी टीकाएँ ।

वर्तमान नाट्यशास्त्र ग्रन्थ भरतमुनि विरचित माना जाता ...विद्यमान नाट्य और अलंकार शास्त्र के ग्रन्थों में सबसे ...चीन ग्रन्थ यही है इसमें कोई सन्देह नहीं। क्योंकि रस ...का पहिले पहिल इसी में मिलता है और अलंकार शास्त्र ...दूसरे भी विषय इसी में सबसे पहिले प्रतिपादित हैं।

यद्यपि यह नाट्य शास्त्र सब ग्रन्थों से प्राचीन है तथापि ...इतना प्राचीन नहीं है कि भरत मुनि का विरचित मान ...जाय। प्राचीन परम्परा में भरत-मुनि ब्रह्मा के पुत्र[1] माने ...हैं। काव्य-प्रकाश में भरत-मुनि के उल्लेख "विभावानु-...व्यभाचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः" से मालूम पड़ता है कि ...न विरचित नाट्य शास्त्र का ग्रन्थांसूत्रबद्ध ही होगा। ...इस मत के दृढ़ी करण में विद्यमान नाट्य-शास्त्र में "अत्र ...अनुवद्धे आर्ये भवतः" ऐसे २ निर्देश मिलते हैं। पाणिनि के

[1] ...रूपक १,४ श्लोक और राजशेखर का बालरामायण३ अंक१ २श्लो०
[2] भरत नाट्यशास्त्र ६ । ६४—६८ ७ । ७३ ।

समय, अष्टाध्यायी के निर्देश से मालूम होता है कि भरत
विद्यमान थे। भवभूति ने अपने उत्तररामचरित में भरतमुनि
को तौर्य्यत्रिक[2] सूत्रकार बताया है। इसलिये यह कारिका
नाट्य शास्त्र पाणिनि से अर्वाचीन माना गया है। भरत के
विषय में विद्वानों का मत है कि ये कोई ऐतिहासिक [illegible]
नहीं हैं किन्तु इनको पौराणिक मानना ही समुचित है। [illegible]
विशेष कुशीलव, भरत कहलाते थे। यह संज्ञा उनके भरतमुनि
विरचित शास्त्र के पढ़ने से होती थी वा भरत संज्ञक
कुल था जिसमें उत्पन्न होने से उनकी भरत संज्ञा पड़ी।
यह ठीक २ नहीं कहा जा सकता। विद्यमान नाट्य शास्त्र
भरत-मुनि विरचित नहीं है इसमें यह भी प्रमाण है कि उस
ग्रन्थ में यह निर्दिष्ट है कि कोहल, वत्स, शाण्डिल्य और धूर्तिल
ये नाट्य शास्त्र के रचयिता थे और भरत के नाट्य शास्त्र का
प्रचार इन लोगों ने संसार में किया था।

इस नाट्य शास्त्र के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा
मतभेद है। म० म० पं० हरप्रसाद शास्त्री[3], प्रो० काणे[4] और
बहुत से भारतीय विद्वान्, नाट्यशास्त्र का समय ई० पू० २
शतक तक मानते हैं। पाश्चात्य विद्वानों की प्रवृत्ति इसे

---

१ अष्टाध्यायी ४।३।११०, १११।

२ उत्तर रामचरित ४ अंक २२ श्लो०

३ J. A. S. B. १९१३ पृ० ३०७

४ काणेकी साहित्यदर्पण की भूमिका पृ० ८।

को ई० ६ ष्ठ तक मान लेने की ओर है। मुग्धानल[1] (Macdonell) महाशय के मत से इसका समय ई० ६ ष्ठ है। सुशील कुमार दे[2] इस ग्रन्थ के निर्माण समय की अवधि ईसवीय शतक का आरम्भ और परावधि ई० ८ म मान लेते हैं। परन्तु प्रो० लेवीने[3] नाट्य शास्त्र के कई अवलम्ब कर इसका समय शकक्षत्रप के समकालिक ई० १ म वा २ य शतक सिद्ध किया है। तथापि काणे ने सा० द० की भूमिका में तथा अन्यत्र[4] यह दिखाया कालिदास से लेकर अनन्तर के सभी कवि, नाटककार आलंकारिक भरत के नाट्यशास्त्र को अच्छी तरह जानते थे उसको प्रमाण भी मानते थे। ऐसी अवस्था में नाट्यशास्त्र समय ई० १ म वा २ य शतक के बाद कदापि नहीं हो सकता। दास का समय ई० पू० १ म शतक सिद्ध हो जाने पर समय ई० पू० ३ य या ४र्थ शतक मानना आवश्यक होगा।

भरतनाट्यशास्त्रः— यह नाट्यशास्त्र काव्यामालासीरीज बहुत अशुद्ध छपा रहने के कारण हि० वि० वि० के संस्कृत सरद्वय[5] ने इसको पुनः छपवाया है। इसमें ३७ अध्याय हैं

---

[1] मुग्धानल (Macdonell) सं० सा० का इतिहास पृ० ४३४।
[2] एस्० के० दे का सं० अलङ्कारशास्त्र—जिल्द १ पृ० ३६।
[3] इण्डियन आण्टिक्वरी जिल्द ३३ पृ० १६३।
[4] " " " ४६ (ई० १९१७) पृ० १७१—१८३।
[5] पं० बटुकनाथ शर्मा एम्० ए०, साहित्याचार्य और पं० बलदेव उपाध्याय एम्० ए०, साहित्यशास्त्री।

और श्लोक संख्या ५००० के करीब है। यह शास्त्र अनुष्टुप् छन्द में ही है। कई अध्यायों में बीच २ में गद्य थोड़े श्लोक आर्या तथा अन्य छन्दों में भी हैं। ये आर्या के अनुसार रचे गये हैं ऐसा उसीमें कहा है। इसमें में कहा है कि नाट्य-शास्त्र पंचम वेद है जिसको भरत का सिखाया था। नाट्य-मण्डप की रचना, रंगभूमि अधिष्ठात्री-देवताओं की पूजा, ताण्डवनृत्य, पूर्वरङ्ग, और स्थापना ये सब विषय आरम्भ के अध्यायों में लिखे इसके अनन्तर रस, भाव, अभिनय, चारी आदि १२ तक वर्णित हैं। १३ अध्याय से १५ अध्याय तक प्रवृत्तियां छन्द वर्णित हैं। १६ वे में काव्य-लक्षण, दोष, गुण, अलं निरूपण है। सप्त दश में प्राकृत विचार, १८ श में दश का विषय. १९ वे में कथानक, पंचसधियां और उनके उक्त हैं। २० वे में ४ वृत्तियां, २१में नेपथ्य वा वस्त्र-भूषा हावभाववर्णन, प्रेम की दश अवस्थाएँ और अष्ट-नायिका २३ में प्रणय सूचक उपाय; २४ में नायिकानायक भेद, विदूषक कर्तव्य और २५ से ३७ तक के अध्यायों में और संगीत की अन्य आवश्यक बातें बतलाई गई हैं।

इस नाट्यशास्त्र की ९ टीकाएँ थी ऐसा निर्देश है। किन्तु उनमें से ४ सन्दिग्ध हैं। शेष पांचों में अभिनव की अभिनव-भारती हाल ही में अनन्त-शयन-ग्रन्थावली मुद्रित हुई है।

भामह (ई० ५०० ल० भ०)

जीवनचरित्र—गोमिन् शब्द—समयनिर्धारण—इसका विरचित छन्द कोई ग्रन्थ—काव्यालङ्कार का विषय परामर्श।

इसका विरचित अलंकार का प्रसिद्ध ग्रन्थ काव्यालङ्कार अति प्राचीन आलंकारिकों में इसकी गणना की जाती इसके चरित के सम्बन्ध में विशेष कुछ ज्ञात नहीं होता काव्यालंकार के अन्तिम श्लोक[१] से ज्ञात होता है कि के पिता का नाम रक्रिल गोमिन् था। चान्द्रव्याकरण में गोमिन्पूज्ये" ऐसा सूत्र है जिससे गोमिन् शब्द नामान्त में त्व द्योतित करता है। प्राचीन काल में यह शब्द बौद्धों में प्रयुक्त होता था। ग्रन्थारम्भ में इसने सार्वसर्वज्ञ का भी किया है। इन कारणों से अनेक विद्वानों का यह कि यह बौद्ध मतावलम्बी था। किन्तु इसके ग्रन्थ में अनेक कथाओं का निर्देश मिलता है वह बौद्ध ग्रन्थों का न रामायण महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों का है। इसके में वैदिक यज्ञ यागादि की बड़ी प्रशंसा की गई है और पाल की स्तुति भी मिलती है। इस लिये अन्य विद्वान्[२]

---

१ अवलोक्य मतानि सत्कवीनां, अवगम्य स्वधिया च काव्यलक्ष्म।
सुजनावगमाय भामहेन ग्रथितं रक्रिलगोमिसूनुनेदम्।

२ भामह और उसका काव्यालंकार— पं० वटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय विरचित पृ० ६—११ और काणे की सा० द० की भूमिका पृ० १८

इसको वैदिक—धर्म्मावलम्बी मानते हैं। इसके पिता के
से मालूम होता है कि यह काश्मीर निवासी था।

आलङ्कारिकों में भामह का प्रत्यक्ष निर्देश करने
आनन्द वर्धनाचार्य (ई० ८५०) हैं। ई० ८०० के
भट्टोद्भट ने भामह के काव्यालङ्कार पर विवरणनाम की
लिखी थी। इसलिये भामह का समय ई० ८०० के बाद
नहीं हो सकता। भामह ने अपने काव्यालङ्कार में "शिष्य
मात्रेण न्यासकारमतेन वा" कहकर न्यासकार का उल्लेख कि
है। अनेक विद्वानों ने यह न्यासकार काशिकावृत्ति पर न्यास
लिखने वाला जिनेन्द्र बुद्धि ही है, ऐसा मानकर भामह
जिनेन्द्र बुद्धि (ई० ७००) के बाद का मान लिया है। कि
पण्डितद्वय[1] पं० बटुकनाथ शर्मा तथा पं० बलदेव उपा
ने यह स्पष्ट रीति से दिखलाया है कि न्यासग्रन्थ अने
और ई० सप्तम शतक के बाणभट्ट ने भी अपने हर्ष चरि
न्यासग्रन्थ का निर्देश किया है। इसलिये निर्दिष्ट न्
ग्रन्थ, जिनेन्द्र बुद्धि विरचित ही न्यासग्रन्थ है ऐसा मा
अनावश्यक है। दण्डी और भामह के अलङ्कार ग्रन्थों में
वचन अक्षरशः एक ही हैं और इन दोनों के पौर्वापर्य के वि
में विद्वानों में तीव्र मत भेद होने के कारण यह कहना
है कि इन दोनों ने ये वचन किसी प्राचीन परम्परा से
ग्रन्थों में उद्धृत किये हैं। भट्टि के और भामह के

---

१ भामह और उसका काव्यालङ्कार भूमिका। पृ० २१-२५।

ओं के[1] विषय में भट्टि का समय निरूपण करते हुवे यह
ताया जा चुका है कि भट्टि ने ही भामह का अनुकरण
ता है। भामह के ग्रन्थ[2] से यह भी सिद्ध होता है कि भामह
लिदास के मेघदूत को और भास के प्रतिज्ञा यौगन्धरायण
क को और गुणाढ्य की बृहत्कथा को अच्छी तौर से
नता था। इसलिये यह कालिदास और भास का पूर्ववर्ती
हीं हो सकता। भामह, भट्टि का पूर्ववर्ती था ऐसा मानने के
ये दूसरा प्रमाण यह है कि आनन्द वर्द्धनाचार्य के ध्वन्या-
लोक[3] में भामह और बाणभट्ट के ग्रन्थों के वचन उद्धृत कर
को अलङ्कार की दृष्टि से तुलना की गई है जिससे यह
झलकता है कि आनन्द-वर्द्धनाचार्य के मत से भामह
भट्ट का पूर्ववर्ती था। इस बात को प्रायः सभी विद्वानों
स्वीकार[4] कर लिया है। भामह के काव्यालंकार में प्रत्यक्ष-
ण का लक्षण 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढं[5] ततोऽर्थादिति केचन'
वाक्य में दो प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिकों का कथन उद्धृत किया
वाचस्पति मिश्र ने बतलाया है कि 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढं'

---

[1] इसी पुस्तक में पृष्ठ १३९।

[2] काव्यालङ्कार १'४२-४४; तथा ४'३९-४६;।

[3] ध्वन्यालोक ४ थं उद्योत पृ० २३६।

[4] काणे की सा० द० भूमिका पृ० ३९ और भामह और उसका काव्यालङ्कार पृ० ३८, ३९।

[5] काव्यालङ्कार अ० ५।६।

यह लक्षण दिग्नाग का और 'ततोऽर्थादिति केचन' यह वसु-
बन्धु का है। 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढं' यह लक्षण बहुतसे विद्वानों
ने प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक धर्मकीर्ति का है ऐसा माना है किन्तु
यह असंगत है। क्योंकि धर्मकीर्ति के 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढ-
मभ्रान्तं' इस लक्षण में 'अभ्रान्त' पद विशेष होने के कारण
पूर्वोक्त भामह का लक्षण दिग्नाग के ग्रन्थ का ही हो सकता
है। ऐसी अवस्था में यह न्याय प्राप्त है कि भामह को धर्म-
कीर्ति के पूर्व और दिग्नाग के बाद का माना जाय। धर्मकीर्ति
और बाण के समय में केवल १०-२० वर्षों का अन्तर रहने के
कारण भामह धर्मकीर्ति का पूर्ववर्ती था इसमें कोई सन्देह नहीं
हो सकता और दिग्नाग का पश्चाद्वर्ती था यह भी निश्चित है
इसलिये भामह का समय ई० ४०० और ६०० के मध्य में
अर्थात् ई० ५०० के लगभग मान लेना प्राप्त है।

काव्यालङ्कार के अतिरिक्त भामह विरचित अन्य कोई
ग्रन्थ प्रसिद्ध नहीं है। वररुचि विरचित प्राकृत-प्रकाश की
प्राकृत-मनोरमा नाम की टीका किसी भामह की विरचित है
वह टीकाकार काव्यालङ्कारकार ही था ऐसा कहने में कोई
प्रमाण नहीं है। वृत्तरत्नाकर में भामह के नाम से कई श्लोक
उद्धृत हैं उनसे ज्ञात होता है कि भामह विरचित छन्द का
कोई ग्रन्थ अवश्य था जो सम्प्रति अनुपलब्ध है।

काव्यालंकार :—यह अलङ्कार का प्रसिद्ध प्राचीन ग्रन्थ

१ काणे की सा० द० भूमिका पृ० ४०।

... का विरचित है। इसमें ६ परिच्छेद हैं और कुल श्लोक संख्या ४०० है। कवि ने अपने ग्रन्थ का विषय विभाग[1] श्लोक संख्या के साथ स्वयं बतलाया है। प्रथम परिच्छेदों में ६० श्लोकों में काव्य के शरीर का विचार किया है जिसमें काव्य लक्षण, प्रयोजन, भेद आदि हैं। २ य, ३ य परिच्छेद में ६० श्लोकों में अलङ्कार वर्णित हैं जिनमें शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों ही का समावेश है। ४ र्थ परिच्छेद में ५० श्लोकों में दोष निरूपण, ५ म परिच्छेद में ७० श्लोकों में न्याय ... -प्रमाण और पञ्चावयव-वाक्य-विचार है। षष्ठ परिच्छेद में ६० श्लोकों में व्याकरण की अशुद्धियों से बचने के ... (सौशब्द्य का) उपदेश किया है। यह ग्रन्थ प्रायः अनुष्टुप् छन्द में ही विरचित है। बीच २ में कहीं २ अन्य छन्द मिलते हैं।

दण्डी (ई० ७ म शतक का उत्तरार्द्ध)

जीवन चरित्र—समय निर्धारण—समय के सम्बन्ध में अनेक मत—विरचित अन्य ग्रन्थ दशकुमार चरित व अवन्ति सुन्दरी कथा—सम्बन्ध में मतभेद—काव्यादर्श का विषय परामर्श व टीकाएँ।

इस महाकवि का विरचित अलङ्कार-शास्त्र का ग्रन्थ

---

[1] षष्ट्या शरीरं निर्णीतं शतषष्ट्या त्वलङ्कृतिः।
पञ्चाशता दोषदृष्टिः सप्तत्या न्यायनिर्णयः॥
षष्ट्या शब्दस्य शुद्धिः स्यादित्येवं वस्तुपञ्चकम्।
उक्तं षड्भिः परिच्छेदैर्भामहेन क्रमेण वः॥

'काव्यादर्श बहुत प्रसिद्ध है। इसके जीवन चरित के विषय में
अवन्ति सुन्दरी कथा में कुछ कहा है। उससे पता चलता
कि यह किरातार्जुनीय के कर्ता महाकवि भारवि के
दामोदर का प्रपौत्र था[1]। इसका पिता वीरदत्त अपने
मनोरथ के ४ पुत्रों में सब से छोटा था। यह दार्शनिक
दण्डी की माता का नाम गौरी था। दण्डी के माता
बाल्यावस्था ही में मर गये थे। इसका निवास स्थान
पुरी थी। किसी किंवदन्ती से ऐसा पता चलता है कि
राजा के पुत्र को शिक्षा देने के लिये दण्डी ने काव्यादर्श
रचना की थी। कई विद्वानों ने काव्यादर्श में उल्लिखित
वर्मा को काञ्ची का शासक पल्लवराज नरसिंह
मान लिया है। यह राजा शैवधर्म का उत्तेजक था
६९०-७२५ तक शासन करता था। इसलिये दण्डी का
अवन्ति सुन्दरी की कथा के अनुसार तथा अन्य प्रमाणों
अनुसार सप्तम शतक का अन्तिम पाद होता है। इसके
में यह भी कहा जाता है कि काव्यादर्श में कालिदास
बाण के बचनों के सदृश उक्तियां हैं। प्रो० पाठक के मतानुसार
काव्यादर्श में निर्वर्त्य, विकार्य तथा प्राप्य हेतु का
वाक्यपदीयकार भर्तृहरि (ई० ६५०) के समान
है। किन्तु काणे महाशय ने अपनी सा० द० की भूमिका

---

१ कोई भारवि का नाम ही दामोदर मानकर दण्डी को भारवि का
प्रपौत्र मानते हैं।

अनेक प्रमाणों को उद्धृत कर दण्डी को भामह का पूर्ववर्ती सिद्ध करने की चेष्टा की है। यहां इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि काणे महाशय के मत में भामह का समय ई० ६०० के बाद का है। किन्तु यह पहिले कहा जा चुका है कि भामह का समय ई० ६०० के अनन्तर कदापि नहीं हो सकता। प्रत्युत ई० ५०० के लगभग अथवा उससे भी कुछ पूर्व मानने में भी कुछ दोष नहीं है।

दण्डी के विषय में काणे महाशय का मत विचारार्ह है। क्योंकि अवन्ति सुन्दरी कथा का प्रामाण्य अभी विद्वानों को ऐकमत्य से स्वीकार नहीं है। काणे महाशय उपर्युक्त मत का खण्डन करते हुवे कहते हैं कि शार्ङ्गधर पद्धति में १ श्लोक आया है जो कवयित्री विज्जका वा विज्जा (विद्या) के नाम से निर्दिष्ट है। उसमें काव्यादर्श का उल्लेख है। वह श्लोक यह है:—

"नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती"॥

इससे यह भी सिद्ध होता है कि काव्यादर्श का रचयिता दण्डी ही है। विज्जका के अनेक श्लोक १० म और ११ श शतक के आलङ्कारिक मुकुल-भट्ट और मम्मटभट्ट ने अपनी 'अभिधावृत्ति-मातृका' और 'शब्द-व्यापार-विचार' में उद्धृत किये हैं। इसलिये विज्जका का समय ई० ८५० के पूर्व है। जल्हण की सूक्तिमुक्तावलि में राजशेखर का श्लोक मिलता है

जिससे मालूम होता है कि कर्नाटक में विजयांका नाम की कोई कवयित्री सरस्वती[1] के सदृश थी। विजका ही विजयाङ्का थी और यही यदि २ य पुलकेशी के पुत्र चन्द्रादित्य की रानी विजय-भट्टारिका ही हो तो इसका समय ई० ६६० के लगभग है[2]। इस प्रकार काणे महाशय के मत से दण्डी का समय ई० ६०० के करीब और पूर्व मत के अनुसार इसका समय ई० ७ म शतक का उत्तरार्द्ध होता है। इन दो मतों में पूर्वोक्त मत ही अधिक प्रशस्त मालूम होता है।

दण्डी विरचित ग्रन्थों के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। राजशेखर के श्लोक[3] से ज्ञात होता है कि दण्डी के विरचित तीन प्रबन्ध प्राचीन काल से माने जाते हैं। परन्तु ये तीन ग्रन्थ कौन हैं इसका भी ठीक पता नहीं चलता। कोई इन तीनों में से दो, काव्यादर्श और दशकुमार चरित अथवा काव्यादर्श और अवन्तिसुन्दरी कथा मानते हैं। काव्यादर्श को छोड़ कर अन्य ग्रन्थों के सम्बन्ध में अभी मतभेद ही है। दशकुमार

---

१ सरस्वतीव कार्णाटी विजयाङ्का जयत्यसौ।
या विदर्भगिरां वासः कालिदासादनन्तरम् ॥
(शार्ङ्गधर-पद्धति श्लोक १८०)

२ काणे की साहित्यदर्पण की भूमिका पृ० ४०-४१।

३ त्रयोऽग्नयस्त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयो गुणाः।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥
शार्ङ्गधर-पद्धति श्लोक १७४।

विषय में अवन्तिसुन्दरी कथा की अपेक्षा अधिक मतैक्य है। कोई दण्डी विरचित ३ य ग्रन्थ 'छन्दोविचिति' मानते हैं। परन्तु अन्य विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि 'छन्दोविचिति' कोई किसी ग्रन्थ का नाम नहीं है किन्तु छन्दस् शास्त्र का पर्याय शब्द है।

काव्यादर्श:—इस अलङ्कार ग्रन्थ के ४ परिच्छेद हैं। कोई २ तीन ही परिच्छेद मानते हैं। तीसरे परिच्छेद का २ विभाग करके ही ४ परिच्छेद माने गये हैं। इसकी रचना अनुष्टुप् छन्द में है। श्लोक संख्या कहीं ६६० और कहीं ६६३ मिलती है। प्रथम परिच्छेद में काव्य का लक्षण, भेद, प्रभेद, भाषाभेद रीतियां, दशगुण, अनुप्रास का लक्षण व उदाहरण और काव्य-हेतु आदि वर्णित हैं। द्वितीय परिच्छेद में अलंकार-लक्षण और ३५ अलंकार उदाहरण के साथ निर्दिष्ट हैं। तृतीय में शब्दालंकार विस्तृत रूप से वर्णित हैं। चतुर्थ में दोषों का निर्देश है। यह ग्रन्थ रीतिमार्ग का प्रस्थापक है। साथ ही साथ अलंकार मार्ग का भी प्रतिपादन करता है। इस प्रकार यह ग्रन्थ भामह का अनुसरण करने वाला और वामन का मार्ग प्रदर्शक है। काव्यादर्श में उल्लिखित स्थानों के नामों[1] से यह भासता है कि इसका रचयिता अवश्य दाक्षिणात्य था। काव्यादर्श की भाषा भामह के काव्यालंकार के तरह तर्क

---

[1] मलयानिल, (२।१७४; ३।१६५) कावेरी ३।१६६, काञ्ची ३।११४, चोल ३।१६६, कलिङ्ग ३।१६५ आदि।

शास्त्र-प्रचुर नहीं है तथापि सौन्दर्य और माधुर्य युक्त है।

काव्यादर्श की टीकाएँ (१) तरुण वाचस्पति की व्याख्या, (२) अज्ञात रचयिता की हृदयङ्गमा, (३) म० म० हरि... की मार्जन टीका, (४) कृष्णकिङ्कर तर्कवागीश की ... तत्व-विवेचक-कौमुदी (५) वादि घंगल की श्रुतानुपालिनी और (६) जगन्नाथ पुत्र मल्लिनाथ की वैमल्यविधायिनी हैं। इनमें प्रथम दो मुद्रित हैं।

उद्भट (ई० ८०० लं० भ०)

जीवनचरित्र—समयनिर्धारण— इसका विरचित ग्रन्थ अनुपलब्ध ... कुमारसम्भव— काव्यालङ्कार संग्रह या अलङ्कार संग्रह का विषय ... व टीकाएँ।

इसका विरचित अलंकार का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अलंकारसार संग्रह' या काव्यालङ्कार संग्रह है। इसके नाम से ही मालूम होता है कि यह काश्मीर का रहने वाला था। कल्हण की राज तरङ्गिणी[1] से पता चलता है कि भट्टोद्भट काश्मीर के राजा जयापीड़ (ई० ७७९ से ८१३) का सभापति था। याकोबी (Jacobi) महाशय के मत से इसका जयापीड़ की सभा में निवास जयापीड़ के शासन काल के पूर्वार्द्ध में था क्योंकि जयापीड़ ने अपने शासन काल के अन्त में ब्राह्मणों से द्वेष करना प्रारम्भ किया था। इसलिये उद्भट का समय आठवें शतक का अन्तिम भाग ही माना गया है। ६म शतक के आरम्भ ...

---

[1] राजतरङ्गिणी ४—४९५ श्लोक।

जयापीड़ का सभापति न होते हुये भी यह जीवित रहा
। इसके जीवन चरित के विषय में अन्य कुछ ज्ञात नहीं
वह वामन का समकालिक था ऐसा कहा जा सकता है।
जयापीड़ के मन्त्रियों में से था। यही काव्यालङ्कार-सूत्र-
का कर्ता हो सकता है। भट्टोद्भट की विरचित भामह के
लङ्कार की भामह-विवरण नाम की टीका का अनन्तर के
कारों ने अपने ग्रन्थों में उल्लेख किया है परन्तु वह
ब्ध नहीं है। उद्भट ने काव्यालङ्कार-संग्रह में अपने विर-
कुमारसम्भव काव्य के ही श्लोक उदाहरण के रूप में
हैं परन्तु वह कुमारसम्भव काव्य उपलब्ध नहीं है।
कुमार-सम्भव कालिदास के कुमारसम्भव के सदृश ही था।

काव्यालङ्कारसंग्रह वा अलंकार-सार-संग्रहः--

इस अलंकार-शास्त्र के ग्रन्थ के ६ वर्ग हैं। कुल का-
रिकाएँ ७९ हैं जिनमें ४१ अलंकार वर्णित हैं। १०० के करीब
उदाहरण हैं। टीकाकार प्रतिहारेन्दुराज[1] के कथन से ज्ञात
होता है कि उद्भट ने अपने कुमारसम्भव से ही ये सब
उदाहरण दिये हैं। इस ग्रन्थ के अलंकार का क्रम भामह के
काव्यालंकार के सदृश है। प्रतिहारेन्दुराज के कथनानुसार
यह ग्रन्थ भामह विवरण का संक्षेप है और इसीलिये भामह के
ग्रन्थ से इसका इतना सादृश्य है। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि के

1 'अनेन ग्रन्थकृता स्वोपरचितकुमारसम्भवैकदेशोऽत्रोदाहरणत्वेनो-
पन्यस्तः'। पृ० १५।

बाद भामह का काव्यालंकार पठन पाठन से उठ गया। यह ग्रन्थ भामह के काव्यालंकार के सदृश माना जाता भी इसमें और उसमें बड़ा भेद है। उद्भट का यह अलंकार-मार्ग का प्रस्थापक माना गया है।

इस ग्रन्थ की सब से प्राचीन टीका मुकुल भट्ट के प्रतिहारेन्दुराज[1] विरचित लघुवृत्ति नाम की ई० करीब की है। इस प्रतिहारेन्दु राज का नाम भी था। यह कोंकण का ब्राह्मण था और इसने विद्याभ्यास किया था। यह टीका विद्वत्तापूर्ण और है। जयरथ की विमर्शिनी[2] से मालुम होता है कि काव्य संग्रह की दूसरी भी एक टीका उद्भट विवेक-विचार थी जिसका अनुकरण अलङ्कारसर्वस्व में है।

वामन (ई० ८०० ल० भ)

समय निर्धारण—काव्यालङ्कार सूत्र व उसकी वृत्ति विषय विचार व टीकाएँ—रीति मत का प्रधान प्रवर्तक।

इसका विरचित अलङ्कार का काव्यालङ्कार सू उसकी वृत्ति कविप्रिया है। वामन के व्यक्तिगत विषय में उसके ग्रन्थ में कोई भी उल्लेख नहीं है। काव्यालंकार-सूत्र-वृत्ति में उत्तररामचरित का श्लोक

---

१ विद्वदग्र्यान्मुकुलकादधिगम्य विविच्यते।
प्रतिहारेन्दुराजेन काव्यालङ्कारसंग्रहः॥

२ जयरथ की विमर्शिनी प० ११५, १२४, २०५।

इसलिये वामन का यह ग्रन्थ ई० ७४० के बाद का है। शेखर ने अपनी काव्य मीमांसा[1] में वामन के वचन उद्धृत हैं और वामन के सम्प्रदाय के विषय में "वामनीयाः" प्रयुक्त किया है। इससे अनुमान होता है कि ई० ६०० के वामनीय सम्प्रदाय प्रचलित था। ई० ८५० के करीब ध्वनिकार के—

"अनुरागवती[2] संध्या दिवसस्तत्पुरस्सरः।
अहो दैवगतिः कीदृक् तथापि न समागमः"॥

श्लोक की टीका में लोचन का अभिप्राय यह है "वामना भिप्रायमाक्षेपः, भामहाभिप्रायेण तु समासोक्तिः, इत्यमुम- हृदये गृहीत्वा समासोक्त्याक्षेपयोरिदमेकेवोदाहरणं ग्रन्थकृत्" इससे यह स्पष्ट है कि लोचन कार के मत में ध्वनिकार के अर्थात् ई० ८५० के पूर्ववर्ती था। श्री राजतरङ्गिणी से यह अवगत है कि वामन नामक काश्मीर के राजा जयापीड़ (७७६—८१३) के मन्त्रियों[3] एक था। इस वामन मन्त्री का और काव्यालङ्कार सूत्र के वामन का समय लगभग एक ही होने के कारण

---

[1] काव्यमीमांसा पृ० १४।

[2] ध्वन्यालोक पृ० ३७।

[3] मनोरथशंखदत्तश्चटकस्सन्धिमांस्तथा।
बभूवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मन्त्रिणः॥

राजतरङ्गिणी ४—४९७।

विद्वानों ने इन दोनों को एक ही मानकर इसका समय
के लगभग मानलिया है। इस तरह यह उद्भट भट्ट का
शार्थी और समकालिक सिद्ध होता है। परन्तु यह
ध्यान देने योग्य है कि इन दोनों ने अपने २ ग्रन्थों में एक
का उल्लेख नहीं किया है। काशिका-वृत्तिके रचयिता
का समय इससे बहुत प्राचीन होने के कारण ये दोनों
भिन्न थे इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु ये दोनों वामन
वैयाकरण थे और उनका व्याकरण के विषय में एक
वामन विरचित अन्य कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

काव्यालंकार सूत्र और उसकी कवि-प्रिया वृत्ति
ग्रन्थ के तीन भाग सूत्र, वृत्ति और उदाहरण हैं।
विषय में वामन कहता है—

'प्रणम्य परमं ज्योतिर्वामनेन कविप्रिया।
काव्यालङ्कारसूत्राणां स्वेषां वृत्तिर्विधीयते॥'

यह ग्रन्थ सूत्र ग्रन्थ के सरणि पर लिखा गया है
इसोलिये इसके पांच विभाग, अधिकरण कहे गये हैं
अधिकरण में दो या तीन अध्याय हैं। इस प्रकार कुल
१२ हैं। इसकी सूत्र संख्या ३१९ है। प्रथम शारीर
में काव्य का प्रयोजन, आत्मा, रीति, रीति के
वैदर्भी, गौडी पाञ्चाली और काव्य के भेद हैं। द्वितीय
दर्शनाधिकरण में पद, वाक्य, वाक्यार्थ के दोष प्रतिपादित
तृतीय गुण विवेचनाधिकरण में गुण और अलङ्कार

...र्णित कर शब्द और अर्थ के दश गुण वर्णित हैं। चतुर्थ ...ङ्कारिक अधिकरण में यमक, अनुप्रास, उपमा और उपमा ...के दोष, और अन्य अलङ्कार जो उपमाजीवित हैं, प्रतिपा-...त हैं। पञ्चम प्रायोगिकाधिकरण में शब्दप्रयोग साधुत्व ...व्याकरण की दृष्टि से विचार किया गया है।

वामन रीति मार्ग का प्रवर्तक माना जाता है। 'रीतिरात्मा ...व्यस्य' यह काव्यालंकार का सूत्र है। यह विशिष्ट[1] पद-...ना ही रीति और विशेष गुणात्मा[2] है ऐसा मानता है। ...व्यालंकार सूत्र का टीका कार सहदेव कहता है कि वामन ...यह सम्प्रदाय लुप्त हो चला था जिसका पुनरुद्धार मुकुल-...ने ई० ९२५ के लगभग किया।

"वेदिता सर्व शास्त्राणां भट्टोभून्मुकुलाभिधः।
लब्ध्वा कुतश्चिदादर्शं भ्रष्टाम्नायं समुद्धृतम्"॥
काव्यालंकारशास्त्रं यत्तेनैतद्वामनोदितम्।
असूया तत्र कर्तव्या विशेषालोकिभिः क्वचित्"॥

काव्यालंकार सूत्र वृत्ति पर १५ श शताब्दि में विरचित ...न्द्र तिप्प भूपाल की कामधेनू नाम की टीका प्रसिद्ध है। ...टीका से ज्ञात होता है कि उसके पूर्व में काव्यालंकार-सूत्र ...टीकाकार कोई भट्ट गोपाल नाम का था। इसके अतिरिक्त ...क की सूची में महेश्वर का साहित्यसर्वस्व, और सहदेव ...टीका भी हैं।

---

[1] विशिष्टा पदरचना रीतिः।
[2] विशेषो गुणात्मा। काव्यालङ्कार सूत्र।

रुद्रट (ई० ८५० के ल० भ०)

जीवनचरित्र—समयनिर्धारण—शृङ्गारतिलक का रचयिता रुद्र—काव्यालङ्कार का विषय परामर्श व टीकाएँ।

इसका विरचित काव्यालंकार नाम का अलंकार ग्रन्थ इसका दूसरा नाम शतानन्द था। इसका पिता भट्ट था। यह सामवेदी था काश्मीर इसका निवास-स्थान इसने ग्रन्थ के आदि में गणेश और गौरी का और भवानी, मुरारि और गजवक्त्र की स्तुति की है। ई० करीब के राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में नामतः निर्देश किया है[२] और रुद्रट के काव्यालंकार के अध्याय का ४र्थ श्लोक भी उद्धृत किया है। राजशे अनन्तर के ग्रन्थकार धनिक और लोचनकार ने भी निर्देश किया है। इसलिये रुद्रट का समय ९०० के बाद हो सकता। ध्वनिकार ने रुद्रट का कहीं भी निर्देश नहीं है। वामन और उद्भट भी इसको नहीं जानते थे। ग्रन्थ में भी कहीं प्राचीन ग्रन्थकारों का स्पष्टतया उल्ले मिलता है। इसलिये अलंकार-प्रतिपादन के द्वारा यह माना है कि यह वामन के बाद का था। भामह

---

१ शतानन्दापराख्येन भट्टवामुकसूनुना।
साधितं रुद्रटेनेदं सामाजा धीमतां हितम्॥
अध्याय ५ श्लो० १२—१

२ काव्य मीमांसा पृ० ३१ और पृ० ५७।

...के साथ इसका अलंकार-प्रतिपादन बहुत सदृश रहने के ...यह ध्वनिकार के समकालिक अर्थात् ई०८५० के ...का अथवा किञ्चित् पूर्ववर्ती मान लिया गया है। यह ...रतिलक के रचयिता रुद्रट वा रुद्र से भिन्न है।

...व्यालंकारः—यह अलंकार का विस्तृत ग्रन्थ है। ...१६ अध्याय हैं। इसमें अलंकार-शास्त्र के प्रायः सभी ...हैं। इसकी रचना आर्या छन्द में है परन्तु अध्यायों के ...में अन्य छन्द भी हैं। इसमें सम्पूर्ण उदाहरण कवि विर-...हैं। कुल पद्य संख्या ७३४ है। १२ अध्याय की १४ आर्याएँ ...नायिका-भेद-प्रभेद वर्णित है, प्रक्षिप्त मानी गई हैं। ...अध्याय में काव्य का प्रयोजन उद्देश, और कवि सामग्री, ...य में पांच शब्दालंकार, ४ रीतियां, संस्कृत सहित ६ ...एँ, अनुप्रास को ५ वृत्तियां, तृतीय में यमक का विस्तृत ...पादन, चतुर्थ में श्लेष और उसके ८ भेद, पंचम में चित्र-...प्रतिपादन, षष्ठ में पद-वाक्य-दोष, सप्तम में आर्यालंकार ...र मूल-आधार और वास्तव (वस्तु स्वरूप कथन) पर ...म्बित २३ अलंकार, अष्टम में औपम्य के २१ अलंकार, ...में अतिशय के १२ अलंकार, दशम में शुद्ध अर्थ श्लेष के ...भेद और संकर के दो भेद, एकादश में अर्थ दोष और ...के ४ दोष, द्वादश में दस रस, शृङ्गार का लक्षण और ...नायक के गुण, नायक नायिका भेद, त्रयोदश में संभोग-...र, देशकाल भेद से नायिका-व्यापार-भेद, चतुर्दश में

विप्रलम्भशृङ्गार, उसकी दस अवस्थायें, खण्डिता के अ... के ६ उपाय, पंचदश में वीररस और अन्य रसों का प्रति... और षोड़श में काव्य-भेद कथा आख्यायिका आदि ... उनका विशेष वर्णित है।

काव्यालङ्कार की टीका शालिभद्र के शिष्य श्वेताम्ब... नामि साधु की विरचित है। यह टीका प्राचीन तथा ... और ई० १०६८—६९ में विरचित है। इससे भी प्राचीन ... वल्लभदेव (९५० ल० भ०) विरचित थी, परन्तु दुर्भाग्य... वह उपलब्ध नहीं है। इसकी तीसरी टीका जैन आ... विरचित ई० १२४० के करीब की है।

आनन्दवर्द्धनाचार्य (ई० ८५० ल० भ०)

जीवनचरित्र—ध्वनिमार्ग का प्रधान प्रवर्तक—समयनिर्धारण— विरचित अन्य ग्रन्थ—अर्जुनचरित, विषमबाणलीला, धर्मोत्त... देवीशतक व तत्वालोक—ध्वन्यालोक का विषय परामर्श व टीका...

यह प्रसिद्ध ध्वनिमार्ग प्रवर्तक आचार्य, 'ध्वन्यालोक' ... रचयिता था। अलंकार-शास्त्र में यह उतना ही पूज्य ... जाता है जैसा व्याकरण में पाणिनि वा वेदान्त में ... रायण। रस-गङ्गाधर-कार पण्डित-राज जगन्नाथ[1] ने ... "अलङ्कार-सरणि-व्यवस्थापक" कहा है। काश्मीर ... निवास स्थान था। इसके जीवन चरित्र के विषय में ...

१ रस गङ्गाधर पृ० ४२५—'ध्वनिकृतामालङ्कारिकसरणि... कत्वात्'

मालूम हो सका है। ध्वन्यालोक के (इण्डिया आफिस लाइब्रेरी) विवरण में कहीं नोणोपाध्यायात्मज और कहीं ...पाध्यायात्मज ऐसा मिलता है। इसके विरचित देवीशतक के अन्तिम श्लोक से यह स्पष्ट है कि इसके पिता का नाम ... था। हेमचन्द्र ने भी अपनी टीका में "नोणसुत श्रीमदानन्दवर्द्धन-नामा" ऐसा लिखा है। ध्वन्यालोक की कारिकाओं और वृत्ति दोनों का रचयिता यही था या कारिकाओं का अन्य ... था इस विषय में विद्वानों में मत भेद है। मालूम होता है इसकी जीवितावस्था में ही वा मरण समय के पहले ही ... प्रसिद्धि हो गई थी। ई० ९०० के राजशेखर का १ श्लोक ... की प्रशंसा में जल्हण की सूक्ति-मुक्तावलि में मिलता है।

"ध्वनिनाऽतिगभीरेण काव्यतत्त्वनिवेशिना।
आनन्दवर्द्धनः कस्य नासीदानन्दवर्द्धनः॥"

कल्हण की राजतरङ्गिणी के श्लोक से इसके समय पर ... कुछ प्रकाश पड़ता है—

"मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्द्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात्साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः॥"

इससे यह मालूम होता है कि यह अवन्ति वर्मा (...-८८३) का सभापण्डित था। अन्य प्रमाणों से भी ... समय सिद्ध हो सकता है। इसने अपने ग्रन्थ में उद्भट (ई० ८००) का उल्लेख किया है और राजशेखर (ई० ९००) ने इसका उल्लेख किया है। इसलिये इसका समय ई० ८४० से

८७० के मध्य में माना जा सकता है। ध्वन्यालोक के अतिरिक्त इसके विरचित (१) अर्जुन चरित (२) विषमबाणलीला (३) धर्मकीर्ति के प्रमाण-विनिश्चय की टीका धर्मोत्तमा (४) देवी शतक और (५) तत्वालोक हैं।

ध्वन्यालोकः—यह ध्वनि मार्ग का प्रमाण-ग्रन्थ है। यह तीन भागों में विभक्त है। (१) कारिका (२) वृत्ति व (३) उदाहरण। इसके ४ उद्योत हैं। यद्यपि कुछ विद्वान् लोग इस की कारिका और वृत्ति को भिन्न २ व्यक्ति द्वारा विरचित मानते हैं परन्तु यथार्थ में ये दोनों आनन्दवर्द्धनाचार्य विरचित हैं। इस ग्रन्थ की भाषा बड़ी ओजस्वी और प्रसाद-गुण-युक्त है। प्रथम उद्योत में ध्वनि-मार्ग के अनेक मत, वाच्य प्रतीयमान अर्थ का विवेचन, प्रतीयमान के तीन मुख्य भेद और ... ध्वनि के दो भेद और ध्वनि का लक्षण में अनन्तर्भाव, द्वितीय में अविवक्षित-वाच्य के दो भेद, विवक्षितान्य-परवाच्य के भेद, असंलक्ष्य-क्रम-व्यङ्ग के प्रकार, गुण और अलङ्कार ... ३, गुण संलक्ष्य-क्रम के दो भेद, अर्थ-शक्ति-मूल के भेद ... इनके उदाहरण, तृतीय में व्यञ्जक के प्रकारः अविवक्षित-वाच्य—पदप्रकाश वा वाक्यप्रकाश, विवक्षितान्य-परवाच्य के दो भेद, असंलक्ष्यक्रम के उपकारी वर्ण, पद; वाक्य आदि का कथन, संघटना और उसकी आवश्यकता, रस का ... और गुणीभूतत्व, चित्र-काव्य के प्रकार और रीति ... का प्रतिपादन. चतुर्थ में कविप्रतिभा और उसका ध्वनि ...

गुणीभूत काव्य में उपयोग, शान्तरस का प्राधान्य, काव्य-संसार का आनन्त्य आदि प्रतिपादित हैं।

इस ग्रन्थ की प्रसिद्ध टीका अभिनव-गुप्तपादाचार्य रचित लोचन नाम की है। इसी लोचन से ज्ञात होता है कि अभिनव गुप्त के पूर्वज की विरचित चन्द्रिका नाम की भी एक टीका थी। किन्तु लोचन के निर्माण के बाद उसका प्रचार जाता रहा। इस विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है। "किं लोचनं विनालोको भाति चन्द्रिकयापिही" यहां लोचन, आलोक और चन्द्रिका इन तीनों शब्दों में श्लेष है। अर्जुन चरित और विषम-बाण-लीला ये दोनों काव्य, नाटक-ग्रन्थ हैं। धर्मोत्तमा, धर्मकीर्ति के प्रसिद्ध बौद्धन्याय-ग्रन्थ की टीका है। तत्त्वालोक, काव्यनय और शास्त्रनय का विवरण करने वाला ग्रन्थ है। देवी शतक यह स्तोत्रकाव्य है।

राजशेखर (ई० ६१० ल० भ०)

जीवनचरित्र—समय निर्धारण—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ, बालरामायण, विद्धशालभञ्जिका, प्रचण्डपाण्डव वा बालभारत, कर्पूर-मञ्जरी, हरविलास महाकाव्य और भुवनकोष—काव्यमीमांसा का विचार।

इसका विरचित अलङ्कार का प्रसिद्ध ग्रन्थ काव्यमीमांसा है। यह यायावर कुल में उत्पन्न महाराष्ट्र था। इसका प्रपितामह महाराष्ट्र चूड़ामणि अकाल-जलद, पितामह मन्त्री दुर्दुक और माता शीलवती थी। बालरामायण में इसने अपने को

वाल्मीकि[1] का अवतार कहा है। कान्यकुब्ज का महेन्द्र राजा निर्भय वा महेन्द्रपाल का यह गुरु था। चौहान कुल की अवन्ति-सुन्दरी नाम की विदुषी से इसका विवाह हुआ था। काव्य मीमांसा में इस अवन्तिसुन्दरी का मत[2] अनेक स्थलों पर दिया मिलता है। कर्पूर-मञ्जरी में राजशेखर की बालकवि और कविराज ये उपाधियां मिलती हैं। महेन्द्रपाल के पुत्र नरेन्द्र-देव को प्रचण्ड-पाण्डव अथवा बालभारत में इसने अपना संरक्षक कहा है। महेन्द्रपाल का समय ई० ८ से ९०७ तक और महीपाल का समय ई० ९१४ से ९१७ तक लेखों से सिद्ध किया गया है। इसलिये इसका समय दशम शतक का प्रथम पाद है। इसने अपने ग्रन्थों में उद्भट (ई० ८००) और आनन्द वर्द्धन (ई० ८५०) का उल्लेख किया है और ई० ९६० में विरचित 'यशस्तिलक' में और ई० के करीब विरचित तिलक-मञ्जरी में राजशेखर का उल्लेख है। इसके विरचित बाल-रामायण से ज्ञात होता है कि बालरामायण के पूर्व इसके बनाये ६ ग्रन्थ थे। किन्तु आज मिलते में बालरामायण, विद्धशाल भञ्जिका, प्रचण्ड-पाण्डव या बाल-भारत, कर्पूरमञ्जरी, हरविलास महाकाव्य, और भुवनकोश

१ बभूव वल्मीकभवः पुरा कविस्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्। स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः। बाल० अङ्क १। १२ श्लोक।

२ काव्य मीमांसा पृ० २०, ४६, ५७।

काव्य मीमांसाः—यह ग्रन्थ अन्य अलङ्कार ग्रन्थों से भिन्न है। इसमें रस, गुण और अलङ्कार का निरूपण नहीं है। किन्तु अलङ्कारिकों के लिये यह उपदेश ग्रन्थ है। इसमें १८ अध्याय हैं। प्रथम में शास्त्र-संग्रह, द्वितीय में शास्त्र-निर्देश, तीसरे में काव्य-पुरुषोत्पत्ति और उसका वर्णन, चौथे में पद-वाक्य-विवेक और काव्यहेतु, पञ्चम में काव्यपाककल्प, कविभेद और अवस्थाएँ षष्ठ में पद-वाक्य-विवेक, सप्तम में पाठ प्रतिष्ठा, देवता अप्सरा और पिशाचों की भाषाएँ,रीतियां आदि,अष्टम में काव्यार्थ-द्वादश-योनि, नवम में अर्थ प्राप्ति, दशम में कविचर्या व राजचर्या, एकादश से त्रयोदश तक पूर्व कवियों के अनुकरण के प्रकार का विचार, १४—१६ तक कवि समय, सप्तदश में देश-विभाग और अष्टादश में काल-विभाग है। राजशेखर का, काव्य मीमांसा को १८ विभागों में लिखने का संकल्प था। उनमें से यह एक उपलब्ध है। कुछ श्लोक अन्य ग्रन्थों में आये हैं जो राजशेखर के उपलब्ध ग्रन्थों में नहीं मिलते हैं। इसलिये अनुमान होता है कि इस विभाग के अतिरिक्त अन्य विभाग भी इसने लिखे थे। ये सब विभाग पूर्ण-रूप से लिखे गये थे या नहीं, यह कहना कठिन है।

मुकुल भट्ट (ई० ९२०)

जीवन चरित्र—समयनिर्धारण—अभिधावृत्तिमातृका का विषय विमर्श।

इसका विरचित 'अभिधा-वृत्ति-मातृका' अलंकार का ग्रन्थ

है। इसके पिता का नाम भट्टकल्लट था। भट्ट कल्लट काश्मीर के अवन्ति वर्मा (ई० ८५५—८८३) का सभा पण्डित था। राजतरङ्गिणी[1] में—

"अनुग्रहाय लोकानां भट्टाः श्रीकल्लटादयः।
अवन्ति-वर्मणः काले सिद्धा भुवमवातरन्" ॥

यह श्लोक मिलता है। इसलिये मुकुल भट्ट का समय दशम शतक का प्रथम-पाद माना गया है। माणिक्यचन्द्र के काव्य-प्रकाश-संकेत (ई० ११६०) में मुकुलभट्ट का निर्देश बार २ मिलता है।

अभिधावृत्ति मातृकाः—यह छोटा सा ग्रन्थ १५ कारिकाओं का है। इन कारिकाओं की वृत्ति भी कर्ता की ही रचित है। इसमें मुख्य और लाक्षणिक दो ही प्रकार के वाच्यार्थों का विचार है। लक्षणा का प्रतिपादन विस्तृत है जिसमें उसके अवान्तर भेद और उदाहरण हैं। काव्य प्रकाश में भी लक्षणा का निरूपण इसी ग्रन्थ के आधार पर किया गया है। इसमें उद्भट, कुमारिलभट्ट, ध्वन्यालोक, भर्तृमित्र, महाभाष्य, विज्ञानवाद, वाक्य-पदीय, शवर-स्वामी आदि नाम मिलते हैं।

भट्ट तौत (ई० ९६०—९९०)

जीवनचरित्र—समयनिर्धारण—इसका विरचित काव्य कौतुक (अनुपलब्ध)

इसका विरचित "काव्य कौतुक" नाम का अलङ्कार

1 राजतरङ्गिणी ५ तरङ्ग ६६ श्लो०।

यह प्रसिद्ध अभिनव-गुप्त-पादाचार्य का गुरु था क्षेमेन्द्र अपनी 'औचित्य-विचार-चर्चा' में और हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन' में इसका उल्लेख किया है। हेमचन्द्र ने अपने विवेक' में यह भी कहा है कि भट्ट तौत का मत शंकुक के अनुकरण रूपो रसः' के विरुद्ध है। इसने शान्त रस को नवम रस माना है। इसका समय ई० ९६० से ९९० तक है।

काव्य-कौतुकः—यह अलङ्कार का ग्रन्थ है परन्तु यह ग्रन्थ नहीं है। 'लोचन' से ज्ञात होता है कि इसकी टीका विवरण' नाम की अभिनव-गुप्त की रची थी।

अभिनव गुप्त (ई० १००० ल० भ०)

जीवन चरित्र—समय निर्धारण—इसके विरचित २० से अधिक ग्रन्थों में मुख्य २ ग्रन्थ (१) प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी बृहती वृत्ति, २ भैरवस्तोत्र, काव्य कौतुक विवरण, ४ अभिनवभारती, ५ ध्वन्यालोक लोचन—लोचन विषय परामर्श।

इसकी विरचित ध्वन्यालोक की टीका 'लोचन' नाम की प्रसिद्ध है। यह भारी दार्शनिक, सूक्ष्म-तत्व-विवेचक और महान् था। यह काश्मीर के शैवागम का भारी आचार्य था। इसने अपने परात्रिंशिका-विवरण में कहा है कि काश्मीरक इसका पिता और वराह गुप्त पितामह था। इसके भाई का नाम मनोरथ गुप्त था। 'प्रत्यभिज्ञा-विमर्शनी' का रचयिता इसका परम गुरु था। आगम में इसका गुरु लक्ष्मण- और काव्य में भट्ट तौत और भट्टेन्दु राज थे। इसकी

विरचित 'प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी-बृहती-वृत्ति' ई० १०१५ में लिखी गई थी। भैरवस्तोत्र ई०९९३ में लिखा गया था। इसलिये इसका ग्रन्थ रचना समय ई० ९९० से १०१५ तक है। इसके विरचित अलङ्कार ग्रन्थ २—३ हैं। ध्वन्यालोक की टीका के अतिरिक्त काव्यकौतुक की टीका विवरण और भरत-नाट्य-शास्त्र की अभिनव-भारती टीका हैं। प्रत्य-भिज्ञा-शैव-आगम के ग्रन्थ इसके विरचित हैं। दो एक स्तोत्रों की टीका भी इसकी विरचित है। इसके विरचित कुल ग्रन्थ २० से भी अधिक हैं।

लोचनः—इसको सहृदयालोक-लोचन, ध्वन्यालोक-लोचन और काव्यालोक-लोचन भी कहते हैं। कोई विद्वान् इसको 'आलोचन' बतलाते हैं परन्तु यह भूल है। क्योंकि

> "किं लोचनं विना लोको भाति चन्द्रिकयाऽपि हि।
> तेनाभिनवगुप्तोऽत्र लोचनोन्मीलनं व्यधात्"॥

इस श्लोक से यह सिद्ध होता है कि इसका नाम लोचन है। अलंकार ग्रन्थों में इसका स्थान ठीक वैसा ही है जैसा व्याकरण में पतञ्जलि का भाष्य और वेदान्त में शाङ्कर भाष्य का स्थान है। यह लोचन टीका मूल ग्रन्थ से भी अधिक विद्वत्ताप्रचुर और दुर्बोध है। इसमें स्थान २ पर ध्वन्यालोक की कारिका और वृत्ति के अनेक पाठ भेद भी दिये हैं। यह आनन्दवर्द्धनाचार्य के ध्वन्यालोक की केवल टीका ही नहीं है किन्तु ध्वनिमार्ग को स्थापित करने वाला और दृढ़ करने वाला स्वतन्त्र व्युत्पादक ग्रन्थ ही है। इस टीका से मालूम होता है

ध्वन्यालोक के पूर्व ध्वनि मार्ग का विवेचन करने वाला दूसरा कोई ग्रन्थ न था। यह ध्वनि की उत्पत्ति वैयाकरणों के स्फोट-वाद से हुई है। इसमें रचयिता विरचित श्लोक भी मिलते हैं।

कुन्तक वा कुन्तल (ई० १०२५)

वक्रोक्ति जीवितकार—समय निर्धारण—वक्रोक्ति जीवित का विषय समस्यां।

इसका विरचित 'वक्रोक्ति जीवित' नाम का अलंकार ग्रन्थ है। इसकी उपाधि 'राजानक' होने के कारण यह काश्मीर का निवासी मालूम पड़ता है। इसके जीवन-चरित्र के विषय में कुछ भी पता नहीं चलता। अलंकार ग्रन्थों में यह 'वक्रोक्ति जीवितकार' पद से निर्दिष्ट है। वक्रोक्ति-जीवित में राजशेखर के श्लोकों का उल्लेख मिलने से यह ई० ९२५ के बाद का है। अभिनव गुप्त पादाचार्य ने अपने साहित्य के ग्रन्थों में इसका प्रत्यक्ष निर्देश नहीं किया है। ११श शतक के द्वितीय पाद में विद्यमान राजानक महिमभट्ट ने कुन्तक और उसके ग्रन्थ का निर्देश[1] अपने व्यक्ति विवेक में किया है। इससे मालूम होता है कि कुन्तक, महिमभट्ट का समकालिक और किञ्चित पूर्ववर्ती था। महिमभट्ट ने लोचन-कार[2] का भी ऐसा ही

---

[1] व्यक्ति विवेक पृ० ८८।

"सहृदयमानिनः केचिदाक्षते"।

[2] 'अत्र केचिद्विद्वन्मानिनः........ यदाहुः'

व्यक्ति विवेक पृ० १९।

उल्लेख किया है। इसलिये कुन्तक का समय ई० ६५०
और ई० १०२५ के पूर्व मान लेना आवश्यक है।

वक्रोक्ति जीवितः—इस अलङ्कार-ग्रन्थ में वक्रोक्ति
काव्य की आत्मा वा जीवित स्थापित किया है। ध्वनि
व्यङ्ग्य को स्वतन्त्र रूप से काव्य की आत्मा न मानकर वक्रोक्ति
में उसका अन्तर्भाव किया है। यह बहुत प्रौढ़ और
ग्रन्थ है। इसके ४ उन्मेष हैं और प्रति उन्मेष में कारिका, वृत्ति
और उदाहरण हैं। इसमें उदाहरणों की पूर्ण संख्या
ऊपर है। प्रथम उन्मेष में सरस्वती का वन्दन कर काव्य
प्रयोजन, लक्षण, शब्दालङ्कार और काव्यालङ्कार
वक्रोक्ति का लक्षण और उसका महत्व, वैचित्र्य,
प्रसादादि ५ गुण, ३ मार्ग आदि प्रतिपादित हैं। द्वितीय
वर्ण-विन्यास-वक्रत्व का विवरण, वृत्तियां, पदपूर्वार्द्ध
अनेक भेद, विशेषण वक्रता और संवृति वक्रता
प्रतिपादन, वृति-वैचित्र्य-वक्रता आदि अनेक भेद हैं।
में वाक्य-वैचित्र्य-वक्रता का उपपादन है। इसमें वस्तु
का समावेश है। रसवत् प्रेय, ऊर्ज्जस्वी आदि का अलङ्कार
निषेध और अलङ्कार्यत्व साधन और २० प्रधान शब्दालङ्कार
का विवरण है। चतुर्थ में प्रकरण और प्रबन्धवक्रता का
दन है। इसकी कोई टीका अभीतक उपलब्ध नहीं है।

धनञ्जय और धनिक (ई० १००० ल० भ०)

जीवन चरित्र—मुञ्जराज के सभापण्डित—समय निर्णय

विरचित संस्कृत व प्राकृत के काव्य तथा काव्य निर्णय—दश रूपक
अवलोक का विषय परामर्श ।

धनञ्जय विरचित 'दश रूपक' और धनिक विरचित
की 'अवलोक' नाम की वृत्ति है। ये दोनों विष्णु के पुत्र
के कारण भाई माने जाते हैं। धनञ्जय धनिक दोनों राजा-
(ई० ९७४—९९४) के दर्बार में थे। धनञ्जय सभा-
था और धनिक महा-साध्य-पाल के अधिकार पर
। धनिक ने 'अवलोक' नाम की दशरूपक की टीका मुञ्ज-
के उत्तराधिकारी सिन्धु राज (ई० ९९४-१०१८) के
काल में लिखी थी। क्योंकि अवलोक में नवसाहसाङ्क
के कर्ता पद्मगुप्त का निर्देश है जो कि सिन्धु राज का
पण्डित था। ई० १४ श शतक के साहित्य दर्पणकार
नाथ ने और प्रताप-रुद्रयशो-भूषणकार विद्याधर ने
की कारिकाएँ धनिक के नाम से उद्धृत की हैं। पर-
भूल है। धनञ्जय विरचित अन्य कोई ग्रन्थ ज्ञात नहीं
न्तु धनिक विरचित अनेक संस्कृत, प्राकृत काव्य और
निर्णय नाम का अलङ्कार ग्रन्थ है।

दश-रूपकः—यह एक नाट्य-शास्त्र का ग्रन्थ है। यह
मुनि के नाट्य शास्त्र के आधार पर रचा गया है। इसमें
नाट्य-शास्त्र के अन्य विषयों को छोड़कर केवल नाट्य-
लेकर उसका संक्षेप में बड़ी ही खूबी के साथ वर्णन है।
वर्णन इतना रोचक हुवा है कि आगे के ग्रन्थकारों ने नाट्य

विषय में इसी को प्रमाण माना है। इसमें ४ प्रकाश हैं और
३०० कारिकाएँ हैं। प्रथम प्रकाश में दस प्रकार के रू
पञ्च सन्धियां और उनके अङ्ग, विष्कम्भ, चूलिका, अङ्कमुख
अंकावतार और प्रवेशक के लक्षण हैं। द्वितीय में नायक
नायिका भेद, उनका स्वभाव व मित्र वर्णन, चार वृत्तियाँ
उनके अङ्ग, तृतीय में नाटक की स्थापना, दस रूपकों
लक्षण, चतुर्थ में सविस्तर रस-निरूपण है। धनञ्जय
कारिकाओं की टीका "अवलोक" है और अवलोक सं
कारिकाओं की ३ टीकाएँ हैं।

अवलोकः—यह धनञ्जय की कारिकाओं की टीका
यह वृत्तिऔर उदाहरण रूप है। उदाहरणों के श्लोक १०
अधिक हैं जिनमें से २० से अधिक प्राकृत और संस्कृ
श्लोक धनिक विरचित ही हैं। इसी अवलोक से धनिक
चित काव्य-निर्णय का पता चलता है जिसके कई श्लोक
उद्धृत हैं। इसका रस-निरूपण भट्ट-नायक का अनुकरण

महिमभट्ट (ई० १०२५)

जीवन चरित्र—समय निर्धारण-व्यक्ति विवेक का विषय
और उसकी टीकाएँ।

इसका विरचित 'व्यक्ति विवेक' नाम का अलंकार
है। इसकी उपाधि राजानक थी और यह काश्मीर का नि
था। इसके पिता का नाम श्री धैर्य था और महाकवि
इसका गुरु था। यह बड़ा भारी नैयायिक और आलं

...इसने प्रसिद्ध आनन्द-वर्द्धनाचार्य का घोर विरोध किया ...इसीलिये सम्भवतः इसके मत का आगे के अलंकारिकों ने ...न ही किया है। व्यक्ति विवेक के मतों का संग्रह राजा... ...य्यक ने अपने 'अलंकार सर्वस्व' में किया है। काव्य... ...के सरस्वती तीर्थ तथा अन्य टीकाकारों ने यह मान... ...है कि मम्मट भट्ट ने अपने पञ्चम उल्लास में व्यक्ति... ...का खण्डन किया है सप्तम उल्लास में दोष के उदाह... ...यक्ति-विवेक के नमूने पर दिये हैं। इसलिये ई० १०६० के ...व्यक्तिविवेक विद्यमान था। व्यक्तिविवेक में बालरामा... ...के श्लोक और वक्रोक्ति जीवित तथा लोचन का खण्डन ...इसलिये यह ग्रन्थ ई० १००० के पूर्व का नहीं हो सकता। ...इस ग्रन्थ का तथा महिम भट्ट का समय ई० १०२० से ... तक माना जाता है।

...व्यक्ति-विवेकः--यह एक अलंकार का ग्रन्थ है। इसमें ...न्यालोक के ध्वनि मार्ग का खण्डन करने का प्रयत्न किया ...और व्यञ्जना-व्यापार को अनुमान में गतार्थ किया है। ...रसको काव्य की आत्मा इसमें भी माना है। इसके ३ ...र्श हैं। १ म विमर्श में ध्वनि का लक्षण तथा उसका अनु... ...न में अन्तर्भाव; २ य में अनौचित्य विचार-उसके भेद, ...रङ्ग-औचित्य, बहिरङ्ग-अनौचित्य-उसके ५ दोष और ...के उदाहरण। ३ य में ध्वन्यालोक के ४० उदाहरणों का ...मान के अन्तर्गत सिद्ध करने का प्रयत्न। अनन्त शयन-

ग्रन्थ माला में व्यक्ति विवेक को आधी ही टीका मुद्रित [illegible] टीकाकार का नाम नहीं दिया है। सम्भवतः यह ग्रंथ अलं कार सर्वस्व के वृत्तिकार की ही विरचित है। क्योंकि इस टीकाकार ने स्पष्ट कहा है कि हर्ष[1] चरित-वार्तिक, [illegible] मीमांसा और नाटक-मीमांसा ये स्वविरचित ग्रन्थ हैं जो अलं कार सर्वस्व की वृत्ति में वृत्तिकार विरचित कहे गये [illegible] अलंकार सर्वस्व के टीकाकार जयरथ ने व्यक्ति विवेक [illegible] टीका का नाम 'व्यक्ति विवेक विचार' बताते हुये इसे अलंकार सर्वस्व के वृत्तिकार विरचित भी कहा है[2]। [illegible] टीका बहुत अच्छी और व्युत्पादक है। इसमें विशेषता यह है कि व्यक्ति-विवेक की टीका होते हुये भी इसमें [illegible] खण्डन और ध्वन्यालोक का मण्डन है।

भोजराज (ई० १०१८-५६)

जीवन चरित्र—इसके विरचित अन्य ग्रन्थ—१ धारेश्वर, [illegible] मार्तण्ड, ३ शब्दानुशासन, ४ राज मृगाङ्क (वैद्यक), ५ [illegible] (ज्यौतिष) ६ नाम मालिका (कोष), ७ शालि होत्र ८ समराङ्गण [illegible] धार—समय निर्धारण—सरस्वती कण्ठाभरण तथा शृंगार प्रकाश [illegible] विषय परामर्श और टीकाएँ।

इसके विरचित 'सरस्वती-कण्ठाभरण' तथा शृं[illegible]

---

१ व्यक्ति-विवेक-टीका पृ० ४४,३२।

२ 'व्यक्तिविवेकविचारे हि मयैवैतद्वितत्य निर्णीतमिति भाव' [illegible]

अलङ्कार-सर्वस्व-विमर्शिनी पृ० [illegible]

ये दो अलंकार के ग्रन्थ हैं। यह धारा नगरी का राजा
इसके पिता का नाम सिन्धुराज वा सिन्धुल था। यह
विद्वान् था वैसा ही विद्वत्प्रेमी भी था। इसकी राजकार्य-
के सम्बन्ध में इतिहास के प्रकरण में कहा जा चुका है।
विरचित दर्शन के अनेक ग्रन्थ हैं। धर्म शास्त्र के विषय
जीमूत-वाहन का दाय-भाग और विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा
जदेव और उसका विरचित 'धारेश्वर' नाम का ग्रन्थ
माने गये हैं। कमलाकर ने 'विवाद-ताण्डव' में भोजदेव
ही मत दिये हैं जो मिताक्षरा में धारेश्वर के नाम से
हैं। इसलिये भोजराज विरचित धारेश्वर ग्रन्थ धर्म-
की दृष्टि से प्राचीन काल ही से माना जाता है इसमें
सन्देह नहीं है। राज मार्तण्ड नाम की योग-सूत्र की टीका
संहार से निश्चित होता है कि यह भोजराज विरचित
। राज मार्तण्ड के आरम्भ के श्लोक[1] से ज्ञात होता है
राज विरचित, व्याकरण का शब्दानुशासन, योग सूत्र वा
दर्शन का राज-मार्तण्ड और वैद्यक का राजमृगांक
हैं और इन ग्रन्थों से पतञ्जलि की तरह भोजराज ने अपने

---

१ शब्दानामनुशासनं विदधता पातञ्जले कुर्वता।
वृत्तिं राजमृगाङ्कसंज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके।
वाक्चेतोवपुषां मलः फणभृतां भर्त्रेव येनोद्धृतः।
तस्य श्रीरणरंगमल्लनृपतेर्वाचो जयन्त्युज्ज्वलाः।

राजमार्तण्ड श्लो० ४।

वाणी, अन्तःकरण और शरीर का मालिन्य दूर किया
राजमृगांक ई० (१०४२) नाम का एक ज्योतिष ग्रन्थ
इसका विरचित है। आफ्रेक्त की सूची में भोज विरचित
अधिक ग्रन्थ दिये हैं उनमें ज्योतिष, वैद्यक और धर्म शास्त्र के
और भी ग्रन्थ हैं। नाम-मालिका नाम का कोष ग्रन्थ
इसका बनाया माना जाता है। कलाग्रन्थों में 'शालिहोत्र'
'समराङ्गण सूत्रधार' भी इसी के हैं।

भोजराज के उत्तराधिकारी जयसिंह का सन् १०५५
का शिलालेख विद्यमान है जिससे यह सिद्ध होता है
भोजराज का शासन ई० १०५५ के बाद नहीं था।

सरस्वती-कण्ठाभरणः—यह एक अलंकार विषयक
विस्तृत ग्रन्थ है। इसके ५ परिच्छेद हैं। १ म परिच्छेद में
पद दोष, १६ वाक्य दोष, १६ वाक्यार्थ दोष, २४ शब्द गुण
और २४ वाक्यार्थ गुण प्रतिपादित हैं। २ य में २४ शब्दा-
लंकार विस्तृत रूप से वर्णित हैं। ३ य में २४ अर्थालंकारों के
नाम निर्देश लक्षण और उदाहरण हैं। ४ र्थ में २४ उभयालंकार
(शब्द और अर्थ) हैं। ५ म में रस, भाव नायक नायिका
उनके भेद–लक्षण, पञ्च सन्धियां, ४ वृत्तियां और अन्य
भी प्रतिपादित हैं। इसमें दण्डि के काव्यादर्श के करीब
श्लोक आये हैं। प्राचीन कवियों के करीब १५०० श्लोक
उद्धृत हैं। इसकी ५ टीकाएँ हैं जिनमें म० म० रत्नेश्वर मिश्र की
रत्नदर्पण नाम की टीका ई० १४ श शतक में तिरहुत के

नरसिंह देव के कहने से रची हुई सर्व श्रेष्ठ है।

इसका विरचित शृङ्गार-प्रकाश नाम का दूसरा अलङ्कार ग्रन्थ भी अत्यन्त महत्व का है।

क्षेमेन्द्र (ई० १०२५–८०)

इसके विरचित अलङ्कार ग्रन्थ १ औचित्य-विचार चर्चा व २ कवि-कण्ठाभरण—इनका विषय परामर्श व टीकाएँ।

इसके विरचित 'औचित्य विचार चर्चा' व 'कवि कण्ठाभरण,' दो अलंकार के ग्रन्थ हैं। इसके विरचित ग्रन्थ तथा जीवन चरित्र के विषय में खण्ड-काव्य के प्रकरण में लिखा जा चुका है।

औचित्य-विचार-चर्चाः—यह अलङ्कार का ग्रन्थ है। इसकी कारिकाएँ और वृत्ति दोनों क्षेमेन्द्र विरचित हैं। इसमें उदाहरण के श्लोक क्षेमेन्द्र के तथा अन्य कवियों के ग्रन्थों से लिये हैं। इस ग्रन्थ का प्रधान अभिधेय यह है कि औचित्य, रस का जीवित है और वह चमत्कार को उत्पन्न कराकर आनन्दानुभव का विषय होता[1] है। औचित्य का लक्षण

'उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावः तदौचित्यं प्रचक्षते'॥

क्षेमेन्द्र ने ऐसा किया है। इस औचित्य का सम्बन्ध पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, गुण, अलङ्कार, रस, क्रिया, कारक, लिङ्ग,

---

[1] औचित्यस्य चमत्कारिणश्चारुचर्वणे रसजीवित—
भूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना। औचित्य-विचार-चर्चा-कारिका ३।

वचन, काल, देश आदि के साथ माना है। इसके प्रतिपादन में क्षेमेन्द्र ने ध्वन्यालोक का अनुकरण किया है। इसकी 'सहृदय-तोषिणी' नाम की टीका है।

कवि-कण्ठाभरणः—यह भी एक अलङ्कार का ग्रन्थ है। इसमें ५ सन्धियां हैं। इसकी कुल ५५ कारिकाएँ हैं। इसका विषय क्षेमेन्द्र ने स्वयं इस प्रकार बताया है।

'अत्राकवेः कवित्व प्राप्तिः, शिक्षाप्राप्तगिरः कवेः,
चमत्कृतिश्चशिक्षाप्तौ, गुणदोषोद्गतिस्तथा,
पश्चात्परिचयप्राप्तिरित्येते पञ्चसन्धयः'।

इसमें शिष्यों के ३ भेद और कवि के ५ भेद माने हैं। कवियों को काव्य के गुण-दोष-विचार के विषय में और नाट्य, व्याकरण और तर्क के विषय में उपदेश किया है। इसके अन्त में रचयिता ने कहा है कि इस ग्रन्थ की रचना अनन्तराज[1] (१०२८–६३) के समय काश्मीर में की गई थी। इसकी कोई टीका उपलब्ध नहीं है।

मम्मट भट्ट (ई० १०५० से ११००)

जीवन चरित्र—इसके विरचित अलङ्कार ग्रन्थ १ काव्य प्रकाश शब्द व्यापार विचार—समय निर्धारण—काव्य प्रकाश का विषय-विचार और उसकी टीकाएँ।

इसका विरचित प्रसिद्ध अलङ्कार ग्रन्थ 'काव्य प्रकाश' है

---

१ राज्ये श्रीमदनन्तराजनृपतेः काव्योदयोऽयं कृतः।
कविकण्ठाभरण—उपसंहार।

इसकी राजानक उपाधि थी और यह काश्मीर का निवासी था। इसके चरित्र के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। भीमसेन अपनी 'सुधा-सागर' टीका में लिखता है कि महाभाष्य-प्रदीपकार कैयट और ऋक्-प्रातिशाख्य के भाष्यकार उव्वट इन दोनों का मम्मट ज्येष्ठ भ्राता था और इसके पिता का नाम जैयट था। यद्यपि मम्मट का जन्म काश्मीर में हुआ था तो भी इसका अध्ययन काशी में हुवा था और वहीं इसने अपने भाइयों को भी पढ़ाया था। यह भीमसेन की टीका सं० १७०० के लगभग की है। अतः इतने समय के बाद लिखा हुआ मम्मट का वृत्तान्त विश्वासार्ह नहीं माना जा सकता। उव्वट ने ऋक् प्रातिशाख्य के भाष्य में अपने पिता का नाम वज्रट और आनन्द पुर निवास-स्थान बताया है। उव्वट ने 'वाजसनेय-संहिता-भाष्य' भोजराज के शासनकाल में लिखा। (भोजे राज्यं प्रशासति)। इसलिये यह अनुमान हो सकता है कि मम्मट भट्ट उव्वट का भ्राता था किन्तु वह कैयट का भाई नहीं हो सकता जिसके पिता का नाम जैयट था। काश्मीर की परम्परा में मम्मट भट्ट नैषधकार श्री हर्ष का मातुल माना गया है। मम्मट बड़ा भारी विद्वान्, बहुश्रुत और अच्छा वैयाकरण था। इसने अपने ग्रन्थ में महाभाष्य और वाक्यपदीय के अनेक वचन उद्धृत किये हैं। इसके ग्रन्थ में व्याकरण का अच्छा परिचय मिलता है। इसका विरचित अन्य ग्रन्थ 'शब्द-व्यापार-विचार' नाम का अभिधा और लक्षणा के व्यापार-

विचार पर है।

मम्मट ने अपने ग्रन्थ में अभिनव गुप्त (ई० १०१५) और नवसाहसाङ्क चरित (ई० १०११) का उल्लेख किया है। इसने भोजराज धाराधिप का उदात्तालङ्कार के उदाहरण में स्व विरचित श्लोक से वर्णन किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि वह भोजराज का समकालिक वा किञ्चित्पश्चाद्वर्ती था। भोजराज का अन्तिम समय ई० १०५५ है। इसलिये काव्य प्रकाश की रचना ई० १०५० के पूर्व की नहीं हो सकती। काव्य प्रकाश की प्रथम टीका 'माणिक्य चन्द्र का संकेत' ई० ११६० को विरचित है। राजानक रुय्यक के अलङ्कार-सर्वस्व में काव्यप्रकाश का निर्देश मिलता है। इसलिये काव्य प्रकाश का समय ई० ११५० के बाद नहीं हो सकता। अतएव यह सम्भव है कि काव्य प्रकाश की रचना ई० ११०० के लगभग हो चुकी थी।

काव्य-प्रकाशः—यह अलङ्कार का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। अलङ्कार शास्त्रमें इस ग्रन्थ का वही स्थान है जैसा वेदान्तमें शारीरक भाष्य वा व्याकरण में महाभाष्य का है। इसका वैशिष्ट्य यह है कि विषय प्रतिपादन संक्षिप्त होता हुवा भी पूर्ण है। इसकी १४२ कारिकाएँ सूत्र-वत् मानी जाती हैं। इनमें अलङ्कार के सब विषय समाविष्ट हैं। इसके १० उल्लास हैं और प्रत्येक उल्लास में कारिका, वृत्ति और उदाहरण हैं। इसमें के उदाहरण प्रायः अन्य ग्रन्थों ही से लिये हैं। कवि विरचित उदा

...क्रम हैं। प्रथम उल्लास में काव्य हेतु, लक्षण, प्रयोजन और उसके भेद, २ य में वाचक, लाक्षणिक और व्यञ्जक शब्द और वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य अर्थ और तात्पर्यार्थ का निरूपण लक्षणा व्यञ्जना के भेद, ३ य में अर्थ-व्यञ्जकता-निरूपण, और उनका व्यञ्जना-व्यापार निरूपण, ४ र्थ में ध्वनि के भेद और प्रभेद, रसस्वरूप, स्थायी और संचारी भाव आदि, रस ...ों का निरूपण, ५ म में काव्य के गुणी-भूत व्यङ्ग्य का ...चार और उसके ८ प्रभेद, षष्ठ में अधम वा चित्र काव्य ...रूपण व उसके भेद, ७ म में पद, वाक्य व अर्थ दोषों का ...विचार, ८ म में गुण और अलङ्कार भेद, दश गुणोंका ३ गुणों ...अन्तर्भाव और उनका लक्षण, गुण-परिपोषक वर्णों का निरू... ९ म में वक्रोक्ति अनुप्रासादि शब्दालङ्कार और वृत्तियाँ ...र्थात् रीतियां व शब्दालङ्कार का प्रकार, १० म में अर्था-...ङ्कार हैं। इसमें नाट्य का विषय छोड़कर अलङ्कार शास्त्र के ...विषय हैं। इसमें अन्य ग्रन्थों से करीब २,६०० श्लोक ...उद्धृत हैं। इसकी ७० से अधिक टीकाएँ है। इन टीकाकारों ...सर्व प्रकार के दार्शनिक भी हैं। उनमें नैयायिक जगदीश, ...वैयाकरण नागोजी भट्ट, मीमांसक कमला कर भट्ट, वैष्णव ...देव विद्याभूषण और तान्त्रिक गोकुल नाथ हैं। इस ग्रन्थ ...की लोक प्रियता, इसके रचना काल से ५० वर्ष के भीतर ही ...श्वर माणिक्य चन्द्र की टीका बनने से सिद्ध ही है।

अनेक टीकाकारों का मत है कि कारिकाएँ भरतमुनि

विरचित हैं और मम्मटभट्ट केवल वृत्तिकार हैं। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि (१) कई कारिकाएँ नाट्यशास्त्र के श्लोकों के सदृश हैं। (२) इसकी प्रथम कारिका की वृत्ति में 'ग्रन्थकृत्परामृशति' इसमें प्रथम पुरुष का निर्देश (३) दशम उल्लास की रूपक की कारिका 'समस्त-वस्तु-विषयं श्रौता आरोपिता यदा' इसमें बहुवचन का प्रयोग है और वृत्ति में 'बहुवचनं अविवक्षितम्' कहा है। यदि कारिका और वृत्तिकार एक ही होता तो कारिका हो को शुद्ध कर देता, वृत्ति में क्यों ऐसा कहता।

अन्य टीकाकार इसका खण्डन इस प्रकार करते हैं कि (१) भरत-नाट्यशास्त्र की कारिकाएँ इन १४२ कारिकाओं में केवल २-३ हैं। सम्भव है कि ये कारिकाएँ मम्मट ने भरत नाट्यशास्त्र से ली हों। क्योंकि वामन और आनन्दवर्द्धन के इसी प्रकार अनुकरण के श्लोक काव्य प्रकाश में मिलते हैं। (२) प्राचीन ग्रन्थकार आत्मश्लाघा से दूर रहने के लिये उत्तम पुरुष का निर्देश न कर प्रथम पुरुष का ही निर्देश किया करते थे। कुल्लुक और मेधातिथि के ग्रन्थों में ऐसा ही निर्देश मिलता है। (३) समस्त-वस्तु-विषयरूपक में प्रायः आरोप्यमाण बहुत होते हैं। इसीलिये कारिका में बहुवचन का विधान है। वृत्ति में भी पहिले उसका स्पष्टीकरण बहुवचन ही से किया है। जहां 'बहुवचनं अविवक्षितम्' कहा है वहां आरोप्यमाण केवल दो ही होने के कारण भी समस्त-वस्तु-विषय-

क हो सकता है यही ग्रन्थकार का अभिप्राय है। प्रत्युत कारिका और वृत्ति मम्मटभट्ट की ही है इसके भी प्रमाण मिलते हैं।

(१) यदि वृत्ति भिन्न-कर्तृक होती तो उसके प्रारम्भ में अवश्य मङ्गलाचरण होता। परन्तु ऐसा नहीं है। (२) यदि भरतमुनि कारिकाओं के रचयिता होते तो ४ थं उल्लास की वृत्ति में 'तदुक्तं भरतेन' आदि पृथक् वचन लिखने की कोई आवश्यकता न पड़ती। (३) दशम उल्लास की मालारूपक की कारिका 'साङ्गमेतन्निरङ्गं तु शुद्धं माला तु पूर्ववत्' में पूर्ववत् शब्द से जो मालारूपक का निर्देश है वह वृत्ति में प्रतिपादित मालोपमा के उपलक्ष्य में है यह कारिकाकार और वृत्तिकार का अभेद प्रतिपादन करती है। (४) प्राचीन टीकाकार भी भेद नहीं मानते हैं।

काव्य प्रकाश के अन्त में एक श्लोक[1] है जिसकी प्राचीन टीकाओं से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ को मम्मटभट्ट समाप्त नहीं कर सके थे और मम्मट ने परिकरालङ्कार तक ही यह ग्रन्थ रचा था। उसके आगे अलक अथवा अल्लट भट्ट ने रचकर इसकी समाप्ति की। इसीलिये अनेक टीकाकार 'कृती राजानक-मम्मटालकयोः' ऐसा निर्देश भी करते हैं।

---

[1] इत्येष मार्गो विदुषां विभिन्नोऽप्यभिन्नरूपः प्रतिभासते यत्।
नतद्विचित्रं यदमुत्र सम्यग्विनिर्मिता संघटनैव हेतुः॥

काव्य प्रकाश का अन्तिम श्लोक।

रुय्यक (ई० १२ श शतक)

जीवन चरित्र—समय निर्धारण—इसके ग्रन्थ—१ अलङ्कार सर्वस्व, २ अलङ्कारानुसारिणी, ३ काव्य प्रकाश संकेत, ४ नाटक मीमांसा, ५ व्यक्ति विवेक विचार, ६ श्री कण्ठ स्तव, ७ सहृदयलीला, ८ साहित्य मीमांसा, ९ हर्ष चरित वार्तिक, १० अलङ्कार मञ्जरी, ११ अलङ्कार वार्तिक—अलङ्कार सर्वस्व का विषय परामर्श व टीकाएँ।

इसका विरचित 'अलङ्कार सर्वस्व' नाम का प्रसिद्ध अलङ्कार-ग्रन्थ है। इसका दूसरा नाम रुचक भी है। इसके पिता का नाम राजानक तिलक था। इसने साहित्य का अध्ययन अपने पिता के पास ही किया था। इसका निवास-स्थान काश्मीर था। रुय्यक ने अपने गृन्थ में विक्रमाङ्कदेव-चरित (ई० १०८५) के श्लोक उद्धृत किये हैं और व्यक्ति विवेक तथा काव्यप्रकाश का खण्डन किया है। इसलिये इसका समय ई० ११०० के बाद का है। राजानक रुय्यक मंख वा मंखक का गुरु था जो काश्मीर के राजा जयसिंह (ई० ११२८-४६) का सन्धि-विगृहिक था। मंख का श्रीकण्ठ चरित ई० ११३५ और ११४५ के मध्य में विरचित है। श्रीकण्ठ चरित के कई श्लोक अलङ्कार-सर्वस्व की वृत्ति में मिलते हैं। इसलिये इसका समय ई० ११५० के पूर्व नहीं हो सकता। ई० ११५९-६० के माणिक्य चन्द्र के काव्यप्रकाश-संकेत में अलङ्कार-सर्वस्व का निर्देश कई बार आया है। इसलिये अलङ्कार-सर्वस्व की रचना ई० ११५० व ११६० के मध्य की है।

विरचित अन्य ग्रन्थ 'अलङ्कारानुसारिणी' काव्य प्रकाश-
नाटक-मीमांसा, व्यक्ति-विवेक-विचार, श्रीकण्ठ स्तव,
लीला, साहित्य-मीमांसा, हर्ष-चरित-वार्तिक, अलङ्कार-
और अलङ्कार-वार्तिक हैं।

अलङ्कारसर्वस्वः—यह अलङ्कार शास्त्र का एक प्रसिद्ध
है। यह ग्रन्थ ध्वनि मार्ग का अनुयायी है। इसमें प्राचीन
कारिकों के मतों का संग्रह है। इसमें काव्य-प्रकाश से
अलङ्कार हैं और उनका विवरण भी विस्तृत है। इसमें
वृत्ति और उदाहरण हैं।

अलङ्कार-सर्वस्व की वृत्ति के रचयिता के विषय में भी
किया जाता है। इस ग्रन्थके दो टीकाकारोंकी दो प्रतियां
हुई हैं। जिनमें प्रथम जयरथ है जो काश्मीर का रहने
था और जिसने रुय्यक के बाद ५० वर्ष के भीतर अपनी
नाम की टीका लिखी थी जो संप्रति काव्यमाला में
है और द्वितीय केरल के समुद्र-बन्ध की विरचित
है। काव्यमाला में प्रकाशित पुस्तक के प्रथम श्लोक में
अलङ्कारसूत्राणां वृत्त्या तात्पर्यमुच्यते' ऐसा वाक्य है।
सार जयरथ ने निज शब्द से रुय्यक का गृहण किया है।
के टीकाकार और गृन्थकार भी यही मानते हैं।
बन्ध की टीका ई० १३०० के लगभग की है अर्थात्
के बहुत बाद की है। इस पुस्तक में उपरि-निर्दिष्ट
"गुर्वलङ्कारसूत्राणां वृत्त्या तात्पर्य-मुच्यते" ऐसा है।

इसके व्याख्यान में समुद्र-बन्ध ने लिखा है कि वृत्ति
राजानक रुय्यक का शिष्य मंखक था जिसने अपने गुरु
निर्देश किया है। दक्षिणात्य-परम्परा समुद्र-बन्ध के मत
अनुसरण करती है। तथापि आधुनिक विद्वान् समुद्र-बन्ध
को दूर देश का रहने वाला होने से तथा जयरथ से भी
अर्वाचीन होने के कारण, इस बात को नहीं मानते हैं।
है कि रुय्यक के प्रधान शिष्य मंख ने इसका संशोधन
हो। उपरोक्त दो टीकाओं के व्यतिरिक्त विद्या-चक्रवर्ती
अलंकार-संजीवनी नाम की तीसरी भी इसकी टीका है।

वाग्भट (ई० ११४०)

जीवन चरित्र—जयसिंह सिद्ध राज का महामात्य—समय निर्देश
इसके विरचित ग्रन्थ १ वाग्भटालङ्कार २ नेमिनिर्वाण काव्य—
लङ्कार का विषय परामर्श व टीकाएँ।

इसका विरचित अलंकार का ग्रन्थ 'वाग्भटालंकार'
अलंकार-शास्त्र में दो वाग्भट प्रसिद्ध हैं उनको पृथक्
जानना आवश्यक है। वाग्भटालंकार का रचयिता
प्राचीन है। काव्यानुशासन और उसकी वृत्ति, अलंकारतिलक
का कर्ता वाग्भट बाद का है। इसका निर्देश इस पुस्तक
'द्वितीय वाग्भट' किया गया है। ये दोनों जैन थे।
वाग्भट का प्राकृत नाम बहाड़ था और इसके पिता का
सोम था। यह अणहिल-पट्टण के चालुक्य वंशीय जयसिंह
सिद्धराज (ई० १०९४–११४३) का महा अमात्य था

लंकार के टीकाकार सिंह-देव-गणी के कथन से ज्ञात है। प्रभाचन्द्र सूरि के प्रभावक चरित से मालूम होता है थम वाग्भट ई० ११२३ और ई० ११५७ में जीवित था। प्रथम वाग्भट का ग्रन्थ रचना काल ई० १२ श शतक का मान लेना ठीक है। द्वितीय वाग्भट अपने ग्रन्थ नुशासन में प्रथम वाग्भट को प्रमाण मानता है। ये दोनों ग्रन्थों में नेमि-निर्वाण महाकाव्य के श्लोक उद्धृत करते न श्लोकों में प्रायः जयसिंह सिद्धराज की स्तुति मिलती सलिये विद्वानों ने अनुमान किया है कि नेमि-निर्वाण काव्य का रचयिता प्रथम वाग्भट था। सिंह-गुप्त का वाग्भट जो आयुर्वेद में प्रसिद्ध है वह इन दोनों से भिन्न नके वाग्भटालंकार और नेमि-निर्वाण काव्य के अतिरिक्त न्थ उपलब्ध नहीं है।

वाग्भटालंकार:—यह अलंकार का विस्तृत ग्रन्थ है। ५ परिच्छेद हैं। जिन में २६० उदाहरण के श्लोक हैं। ये श्लोक अनुष्टुप् छन्द में हैं किन्तु प्रति परिच्छेद के में अन्य छन्द के भी श्लोक हैं। १म परिच्छेद में काव्य का , प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यासका लक्षण, और कविके नियम; २ य में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और पैशाची में निर्मिति-सम्भावना, काव्य के भेद, पद और वाक्य के दोष और अर्थ दोष; ३ य में दस गुणों के लक्षण, और , ४ र्थ में ४ शब्दालंकार और उनके भेद, ३५ अर्था-

लङ्कार, वैदर्भी और गौडी दो वृत्तियां, ५ म में नव रसों
निरूपण और नायक नायिका भेद और उनके सम्बन्धी
हैं। इसकी ८ टीकाएँ है जिनमें जिन-वर्द्धन-सूरि (ई० १४१
और सिंह-देवगणि की टीकाएँ प्रसिद्ध हैं और प्रकाशित हैं।

हेमचन्द्र (ई० १०८८-११७२)

इसका विरचित ग्रन्थ १ काव्यानुशासन व अलङ्कार चूड़ामणि
की वृत्ति २ प्रमाण मीमांसा (जैन न्याय)—काव्यानुशासन का
विचार व टीका।

इसका विरचित 'काव्यानुशासन और उसकी वृत्ति अ
ङ्कार-चूड़ामणि है। इसके जीवन-चरित के विषय में
काव्य प्रकरण में लिखा जा चुका है। इसके विरचित
अलंकार, व्याकरण और योग-दर्शन के ग्रन्थ हैं। यह जैन न्या
का भारी आचार्य था। जैन न्यायमें इसकी उपाधि 'कलि
सर्वज्ञ' है। इसका विरचित जैन न्याय का ग्रन्थ 'प्रमा
मीमांसा' है जिसकी टीका भी इसी ने लिखी है।

काव्यानुशासनः—यह तथा इसकी वृत्ति अलंकारचू
मणि अलंकार का संग्रह-ग्रन्थ है। इसमें काव्य मीमांसा,
प्रकाश, ध्वन्यालोक और लोचन से विषय संगृहीत हैं।
भी सूत्र, वृत्ति और उदाहरण हैं। काव्यानुशासन, सू
अलंकार-चूड़ामणि, वृत्ति और विवेक, वृत्ति की टीका है।
८ अध्याय हैं। १ म अध्याय में काव्य का प्रयोजन व
प्रतिभा के सहकारी अभ्यास आदि, काव्य के लक्षण,

और मुख्य, गौण वा लक्ष्य और व्यङ्ग्य अर्थों का विचार; रस, स्थायी भाव, व्यभिचारी भाव और सात्त्विक भाव; शब्द, वाक्य, अर्थ और इनके दोष निरूपण, ४ र्थ में गुण और उनके पोषक-वर्णों का निरूपण; ५म में छ शब्दालंकारों का निरूपण; ६ ष्ठ में २९ अर्थालंकार जिनमें संकर, पर्याय, परिवृत्ति आदि; ७ म में नायक व नायिका ८ म में काव्य के भेद तथा प्रभेद वर्णित हैं।

इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य यह है कि वृत्ति और टीका में भिन्न २ ग्रन्थ कारों के १५०० उदाहरण उद्धृत हैं। हेमचन्द्र ने यह ग्रन्थ अपने 'सिद्ध-हेमचन्द्र-शब्दानुशासन' इस व्याकरण-ग्रन्थ के बाद लिखा था।

रामचन्द्र और गुणचन्द्र (ई० ११००-११७५)

रचयिताओं की जीवनी—समय निर्धारण—सिद्धराज, कुमारपाल अजयपाल के सभा पण्डित—विरचित ग्रन्थ द्रव्यालङ्कार वृत्ति, ग्रंथ—नाट्य दर्पण का विषय परामर्श—टीका।

इनका विरचित नाट्य-दर्पण[1] है। ये दोनों हेमचन्द्र के शिष्य थे। हेमचन्द्र ने अणहिल वाड़ के सिद्धराज के पूछने पर रामचन्द्र को ही अपना उत्तराधिकारी होने योग्य बताया था। रामचन्द्र को 'आचार्य-पाद' की उपाधि ई० ११०० में मिली थी इसलिये रामचन्द्र का समय ई० ११०० से ११७५ तक

[1] यह ग्रन्थ गायक वाड़ सीरीज् में १९२९ में २ विभागों में प्रकाशित हुआ है।

३२

मान लिया गया है। यह सिद्धराज (ई० १०९३-११४३) कुमारपाल (११४३—११७२) और अजयपाल (११७२-११७५) इन तीनों राजाओं के समय विद्यमान था। रामचन्द्र का वध उससे क्रुद्ध होकर अजयपाल ही ने कराया था। इसकी जन्म-भूमि गुजरात ही मानी जाती है। रामचन्द्र 'प्रबन्धशतकर्ता' कहाता है। इसके विरचित ११ नाटकों का नाट्य-दर्पण में निर्देश मिलता है। गुणचन्द्र के विषय में विशेष कुछ भी ज्ञात नहीं है। द्रव्यालंकार-वृत्ति और नाट्य-दर्पण लिखने में इसने रामचन्द्र की सहायता की थी।

नाट्यदर्पणः—यह नाट्य-शास्त्र का ग्रन्थ है। इसमें विवेक नामक ४ प्रकरण हैं। प्रथम नाटक-निर्णय-विवेक में नाटक का सम्पूर्ण वर्णन है। द्वितीय, प्रकरणाद्येकादशरूपक-निर्णय-विवेक में एकादश रूपकों का वर्णन है। इस ग्रन्थ में नाटिका और प्रकरणी के साथ बारह रूपक माने गये हैं। तृतीय वृत्तिरस-भावाभिनय-विचार-विवेक में वृत्तियां, रस, भाव और अभिनय का विचार है। चतुर्थ सर्वरूपक-साधारण-लक्षण-निर्णय-विवेक में रूपकों के साधारण लक्षण बताये हैं। इसपर इन्हीं की विरचित टीका है।

अरिसिंह (ई० १२४२)

जीवन चरित्र—वस्तुपाल अमात्य और वीसलदेव का समकालीन।

समयनिर्धारण—इसके विरचित ग्रन्थ १ कविता रहस्य, २ सुकृत...

संकीर्तन—कविता रहस्य का विषय परामर्श व टीकाएँ।

इसका विरचित 'कवितारहस्य वा काव्य-कल्पलता' अलङ्कार का ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ अरिसिंह द्वारा पूर्ण न हो सका। अरिसिंह के गुरुबन्धु अमर-चन्द्र ने इसकी पूर्ति काव्य-कल्पलता-परिमल नाम से की। अरिसिंह, लावण्यसिंह वा लावण्यसिंह का पुत्र था। यह धोलका के राणा वीर-धवल के प्रसिद्ध जैन-अमात्य वस्तुपाल का आश्रित था। इसने वस्तुपाल की प्रशंसा में 'सुकृत-संकीर्तन' नाम का महाकाव्य लिखा है। इस काव्य का समय ई० १२४२ के लगभग है। यही अरिसिंह, वीर-धवल के पुत्र वीसल देव की सभा में भी विद्यमान था।

कवितारहस्य वा काव्य-कल्पलता:—इसमें कविता बनाने के नियम तथा उपदेश हैं। इस पर चन्द्र विरचित 'कवि-शिक्षा-वृत्ति' नाम की टीका है और अन्य टीका 'मकरन्द' नाम की है।

अमरचन्द्र (ई० १२५०)

जीवन चरित्र—समय निर्धारण—वस्तुपाल अमात्य व वीसलदेव राजा का समकालिक—इसके विरचित कुछ ग्रन्थ १ अलङ्कार प्रबोध, २ जिनेन्द्र चरित वा पद्मानन्द काव्य, ३ बालभारत, ४ स्यादिशब्दसमुच्चय ५ सूक्तावली, ६ कलाकलाप, ७ छन्दो रत्नावली—देवेश्वर की कवि-कल्पलता।

इसका विरचित 'अलङ्कार-प्रबोध' नाम का अलंकार ग्रन्थ है। इसने अरिसिंह विरचित काव्य-कल्पलता को पूर्ण किया

था। यह वायड्गच्छ के जिनदत्त सूरि का शिष्य था। 'विवेक-विलास' कार जिनदत्त सूरि ई० १३ श शतक के मध्य में जीवित था। जैन राजशेखर के प्रबन्ध-कोष से मालूम होता है कि अमरचन्द्र, अरिसिंह का सतीर्थ्य, वीरधवल और उसके अमात्य वस्तुपाल तथा वीरधवल के उत्तराधिकारी वीसल-देव के शासनकाल के समय जीवित था। इसलिये इसका समय ई० १३ श शतक का मध्य मान लिया गया है। इसके विरचित अनेक ग्रन्थ हैं उनमें जिनेन्द्र-चरित वा पद्मानन्द-काव्य, बालभारत, स्यादिशब्द-समुच्चय नाम का व्याकरण-ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। सूक्तावली और कलाकलाप भी इसके विरचित हैं ऐसा राजशेखर के प्रबन्ध-कोष से ज्ञात होता है। इसका विरचित छन्दो-ग्रन्थ 'छन्दोरत्नावली' नाम का संग्रह उल्लिखित है।

अलंकार-प्रबोध :—इसका केवल उल्लेख काव्यकल्पलता की वृत्ति में मिलता है। यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

ई० १४ श शतक के आरम्भ के देवेश्वर की विरचित 'कविकल्पलता' अरिसिंह व अमरचन्द्र की काव्यकल्पलता का अनुकरण है।

शारदातनय (ई० १३ श शतक)

जीवन चरित्र—समय निर्धारण—इसके विरचित ग्रन्थ १ शारदीय संगीत २ भाव प्रकाशिका—भाव प्रकाशिका का विषय विचार व टीका।

इसका विरचित भावप्रकाश, भावप्रकाशन या भावप्र...

...नाम का नाट्यशास्त्र का ग्रन्थ है। यह काश्यपगोत्री
...था। इसका प्रपितामह लक्ष्मण, पितामह कृष्ण और
...भट्ट गोपाल थे। भट्ट गोपाल को शारदा की आराधना से
...पुत्र हुआ था इसलिये इसका नाम शारदा-तनय रक्खा
...था। इसने अपना निवास आर्यावर्त के मेरूत्तर(Meerut)
...क्षिण भाग में माठर-पूज्या ग्राम बनाया है। कोई मेरूत्तर
...रठ और अन्य मद्रास प्रान्त में विद्यमान उत्तरमेरु मानते
...भट्ट गोपाल के पिता ने वाराणसी में महादेव की आरा-
...की थी। शारदा-तनय संगीत का भी आचार्य था। इसका
...ग्रन्थ 'शारदीय-संगीत' है। इसका नाटक-गुरु दिवाकर
...वासी था। भाव प्रकाश को शारदा-तनय ने भोजराज
...शृङ्गार-प्रकाश' के आधार पर रचा था। भाव-प्रकाश का
...सिंह भूपाल ने अपने 'रसार्णव सुधाकर' में किया है।
...लिये इसका समय ई० ११०० और १३०० के मध्य में माना
...है। किन्तु गायकवाड सीरीज् के भाव-प्रकाश की
...का में यह बताया गया है कि इसमें संगीत-रत्नावली-
...सोमेश्वर का निर्देश मिलने से यह ग्रन्थ ई० ११७५ के
...का है और भाव-प्रकाशन ग्रन्थ का निर्देश 'अल्लराज'
'रस-रत्न-दीपिका' में मिलने से यह ई० १२५० के बाद का
...हो सकता है। इसलिये इसका समय ई० ११७५ व
...के मध्य में मानना उचित है।

भाव-प्रकाशिका:—यह एक नाट्यशास्त्र का ग्रन्थ है।

इसमें कोहल, मातृगुप्त, सुबन्धु आदि नाट्याचार्यों का उल्लेख मिलता है। इसके दस अधिकार हैं। प्रथम साढ़े पाँच अधिकारों में भाव, रस तथा उनके सम्बन्ध का निरूपण है; ६ ष्ठ में शब्दार्थ सम्बन्ध भेद प्रकार; ७ म में नाट्य इतिवृत्त आदि का लक्षण; ८ म में दशरूपक लक्षण; ९ म में वृत्ति भेद स्वरूप लक्षण और १० म में नाट्य प्रयोग भेदस्वरूप वर्णित है। इसकी कोई टीका उपलब्ध नहीं है किन्तु पीटर्सन (Peterson) की रिपोर्ट में इसकी १ व्याख्या का निर्देश मिलता है।

जयदेव (ई० १३ श शतक)

जीवन चरित्र—समय निर्धारण—इसके विरचित ग्रन्थ १ प्रसन्न राघव २ चन्द्रालोक—चन्द्रालोक का विषय परामर्श व टीकाएँ।

इसका विरचित 'चन्द्रालोक' नाम का प्रसिद्ध अलंकार ग्रन्थ है। इसके पिता महादेव[1] और माता सुमित्रा थीं। प्रसन्न राघव-कार जयदेव के माता पिता के भी येही नाम थे। इस लिये ये दोनों जयदेव एक ही हो सकते हैं। प्रसन्न-राघव की भूमिका से ज्ञात होता है कि यह तार्किक[2] भी था। यह

---

१ महादेवः सत्रप्रमुखमखविघ्नैकचतुरः।
सुमित्रा तद्भक्तिप्रणिहितमतिर्यस्य पितरौ। चन्द्रालोक

२ ननु अयं प्रमाणप्रवीणोऽपि श्रूयते—
सूत्रधारः—येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती।
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते।
प्रसन्न-राघव-भूमिका १।१८।

गीतगोविन्द-कार जयदेव से भिन्न है। क्योंकि इसके
पिता रामादेवी और भोजदेव नाम के थे और उसका
वास स्थान किन्दु विल्व था। चन्द्रालोककार जयदेव बंग
निवासी प्रतीत नहीं होता है। इसकी उपाधि 'पीयूष'[1]-
थी'। चन्द्रालोक के टीकाकार गागा-भट्ट ने अपनी
गम' टीका में स्पष्ट कहा है कि 'जयदेवस्यैव पीयूष-वर्ष
नामान्तरम्' अर्थात् जयदेव का ही पीयूष-वर्ष यह दूसरा
था। प्रसिद्ध नैयायिक पक्षधर-मिश्र वा जयदेव-मिश्र
चन्द्रालोककार जयदेव दोनों एक ही थे ऐसा कोई
द्वान् मानते हैं परन्तु यह बात प्रमाणित नहीं है।

अलङ्कार-शेखरकार केशव-मिश्र ने अपने ग्रन्थ में प्रसन्न-
व का 'कदली कदली करभः करभः' यह श्लोक उद्धृत
या है। इसलिये जयदेव का समय ई० १६ श शतक से पूर्व
। इसकी दृढ़ता चन्द्रालोक की प्रद्योतन भट्ट विरचित शर-
गम टीका से जो ई० १५८३ में रची गई थी, स्थिर होती है।
१३६३ में विरचित शार्ङ्गधर-पद्धति में प्रसन्न-राघव के कई
क उद्धृत हैं। ई० १३३० में विद्यमान शिङ्ग भूपाल ने भी
ने 'रसार्णव सुधाकर' में प्रसन्न-राघव का निर्देश किया है।
सलिये जयदेव ई० १३ श शतक से अर्वाचीन नहीं हो सकता
। जयदेव ने अपने ग्रन्थ में रुय्यक के अलङ्कार-सर्वस्व के

[1] चन्द्रालोकमयं स्वयं वितनुते पीयूषवर्षः कविः।

चन्द्रालोक १।२।

अनेक लक्षण लिये हैं। विकल्पालङ्कार का,जो कि रुय्यक से ही कल्पित था, शब्दशः उल्लेख इसने किया है। इसलिये जयदेव का समय ई० ११६० के पूर्व नहीं हो सकता है। अतएव इसका समय ई० १२ श तथा १३ श शतक के मध्य में माना गया है। यह विदर्भ के कुण्डिनपुर का निवासी था।

चन्द्रालोकः—यह अलङ्कार का प्राथमिक शिक्षा के योग्य ग्रन्थ अनुष्टुप छन्द में है। इसमें कवि विरचित ही उदाहरण हैं। इसके १० मयूख और ३५० श्लोक हैं। ग्रन्थ की सरणि मोहक और सरल है। भाषा अस्खलित और श्रुति-पुटपेय है। प्रथम मयूख में काव्य का लक्षण, हेतु और शब्द के तीन प्रकार; २ य में शब्द, अर्थ, वाक्य आदि के दोष; ३ य में कवि की स्व-काव्य लोकप्रिय होने के लिये युक्तियाँ; ४ र्थ में दसगुण; ५ म में शब्दालङ्कार और १०० अर्थालङ्कार; (अर्थालङ्कार के आरम्भ में यहां फिर से कवि ने मङ्गल किया है)। ६ ष्ठ में रस, भाव, तीन रीति और ५ वृत्तियों का प्रतिपादन; ७ म में व्यञ्जना और ध्वनि के भेद; ८ म में गुणी-भूत-व्यङ्ग्य के प्रकार; ६ म में लक्षणा और १० म में अभिधा वर्णित है।

इस चन्द्रालोक के पञ्चम मयूख में जो अर्थालङ्कार का भाग है उसी को शब्दशः लेकर अप्पय-दीक्षित ने उसकी वृत्ति लिखी है जो कुवलयानन्द नाम से प्रसिद्ध है।

इसपर ६ टीकाएँ हैं जिनमें प्रद्योतन भट्ट की चन्द्रालोक-प्रकाश-शरदागम ई० १५८३ की, गागाभट्ट वा विश्वेश्वर की

वित राकागम वा सुधा और वैद्यनाथ पायगुण्डे विरचित
नाम की टीका प्रसिद्ध हैं। आफ्रेक्त महाशय ने वैद्यनाथ
गुण्डे की 'रमा' टीका को'हरि-लोचन-चन्द्रिका' कहा है।

भानुदत्त (ई० १४ श शतक का आरम्भ)

के विरचित अलङ्कार ग्रन्थ १ रस मञ्जरी २ रसतरङ्गिणी—
विषय विचार व टीकाएँ।

सकी विरचित 'रस-मञ्जरी' और रस-तरङ्गिणी' हैं।
के जीवन चरित्र के सम्बन्ध में 'खण्ड काव्य' प्रकरण में
ा गया है।

रसमञ्जरी:—इसमें ३ भाग में केवल नायिका भेद ही
स्तर वर्णित हैं। शेष ग्रन्थ में दूती, शृङ्गार के नायक व
के भेद, नायक मित्र, आठ सात्विक गुण, शृङ्गार के दो भेद
र विप्रलम्भ की दस अवस्थाएँ वर्णित हैं। इसकी ११
एँ हैं जिनमें गोपालाचार्य की 'विलास' वा विकास नाम
टीका (ई० १४२८), अनन्त-पण्डित (ई० १६३६) की
र्थ कौमुदी, शेष चिन्तामणि (ई० १६७५) की
मल' और नागेश की 'प्रकाश' प्रसिद्ध हैं।

रसतरङ्गिणी:—इस अलङ्कार ग्रन्थ के ८ तरङ्ग हैं। इसमें
विषय हैं जो रसमञ्जरी में नहीं हैं। प्रथम तरङ्ग में भाव का
और स्थायी भाव के प्रकार; २ य में विभाव का लक्षण
र भेद; ३ य में अनुभाव; ४र्थ में आठ सात्विक भाव; ५म में
भिचारी भाव; ६ ष्ठ में रस और शृङ्गार रस का सविस्तर

निरूपण; ७ म में हास्य तथा अन्य रस, ८ म में स्थायिभाव
व रसजा दृष्टि हैं।

इसपर १० टीकाएँ हैं जिनमें वेणीदत्त तर्क-वागीश भट्टा-
चार्य (ई० १५५३) की 'रसिकरञ्जनी', जीवराज विरचित
सेतु (ई० १६७१), गङ्गा-राम जड़े (ई० १७३८) की नौका
और नागेश की टीका प्रसिद्ध हैं।

इन दोनों ग्रन्थों में प्रायः कवि ने अपने विरचित ही उदाह-
रण दिये[1] हैं। तथा इनमें 'रसमञ्जरी' पूर्व विरचित है।

विद्याधर (ई० १४ श शतक आरम्भ)

समय निर्धारण—कलिङ्ग के केसरी नरसिंह और प्रतापरुद्र
राजाओं का सभा-पण्डित इसके विरचित ग्रन्थ १ एकावलि २ केलिरहस्य
एकावलि का विषय विवरण व टीका।

इसका विरचित 'एकावली' नाम का प्रसिद्ध अलङ्कार
ग्रन्थ है। त्रिवेदी महाशय ने अपनी 'एकावली' की भूमिका
राजाओं की वंशावलि देकर सप्रमाण यह सिद्ध किया है कि
विद्याधर ने अपनी एकावलि में कलिंग वा उत्कल के
नृसिंह-देव की स्तुति की है वह नृसिंह-देव, केसरी नरसिंह

[1] अवगाहस्व वाग्देवि दिव्यां रसतरङ्गिणीम्।
अस्मत्पद्येन पद्मेन रचय श्रुतिभूषणम्॥
रसतरङ्गिणी ८

पद्येन स्वकृतेन तेन कविना श्रीभानुना योजिता।
रसमञ्जरी अन्तिम, श्लो

ई० १२९२-१३०७) और प्रताप नरसिंह (ई०१३०७-१३२७)
थे। इसलिये एकावलि की रचना ई० १४ श शतक के आर-
म्भ में मानी गई है। ई० १३३० में विरचित सिंह भूपाल के
'रसार्णव सुधाकर'[1] में एकावलि का निर्देश मिलता है। इससे
इसका समय और भी दृढ़ हो जाता है। इसकी उपाधियां महा-
कवीश्वर और वैद्य थीं। इसके जीवन-चरित्र के विषय में कोई
विवरण नहीं मिलता है। इसका विरचित अन्य-ग्रन्थ 'केलि-
रहस्य' काव्य है।

एकावलिः—इस अलङ्कार-ग्रन्थ के कारिका, वृत्ति और
उदाहरण ये तीन विभाग हैं। इसका वैशिष्ट्य यह है कि इसके
सब उदाहरण-श्लोक स्व-विरचित हैं और वे सब नृसिंह देव
की प्रशंसा परक हैं। विद्याधर ने भी यही बात—

'एष विद्याधरस्तेषु कान्तासंम्मितलक्षणम्।
करोमि नरसिंहस्य चाटुश्लोकानुदाहरन्' ॥

इस श्लोक में कही है। इसके ८ उन्मेष हैं। प्रथम उन्मेष में
काव्य का हेतु और लक्षण और प्राचीन आलङ्कारिक भामह,
उद्भट भट्ट आदि के मतों का विचार; २ य में वाचक, लाक्ष-
णिक और व्यञ्जक शब्द और अभिधा, लक्षणा व व्यञ्जना

---

[1] उत्कलाधिपतेः शृङ्गाररसाभिमानिनो नरसिंहदेवस्य चित्तमनुवर्त-
मानेन विद्याधरेण कविना बाढमभ्यन्तरीकृतोऽसि—
एवं खलु समर्थितमेकावल्यामनेन।

रसार्णव सुधाकर पृ० ३०६।

व्यापार का विचार; ३ य में ध्वनि के भेद, प्रभेद; ४ र्थ में गुणीभूत व्यङ्ग्य निरूपण; ५ म में तीन गुण और रीतियां; ६ ष्ठ में दोष; ७ म में शब्दालङ्कार और ८ म में अर्थालङ्कार हैं। इसके प्रथम उन्मेष में ध्वन्यालोक का पूर्ण अनुकरण है। अर्थालङ्कार में अलङ्कार-सर्वस्व का तथा अन्यत्र सर्वत्र काव्य-प्रकाश का अनुकरण है।

इसपर प्रसिद्ध टीकाकार कोलाचल-मल्लिनाथ-विरचित 'तरला' नाम की टीका है।

विद्यानाथ (ई० १४ श शतक आरम्भ)

समय निर्धारण—आन्ध्र राजा प्रताप रुद्रदेव का सभा पण्डित—इसके विरचित ग्रन्थ १ प्रताप रुद्रयशोभूषण २ प्रताप रुद्र कल्याण—प्रताप रुद्रयशोभूषण का विषय विचार व टीका।

इसका विरचित 'प्रताप-रुद्रयशोभूषण' नाम का अलंकार ग्रन्थ है। इसका दूसरा नाम विद्यानिधि भी है। इसके जीवन चरित्र के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चलता। एकावली के सदृश यह प्रताप-रुद्रयशोभूषण भी राजा प्रताप-रुद्रदेव के यशो वर्णन में रचा गया था। प्रताप-रुद्र को वीररुद्र वा रुद्र भी कहते थे। यह प्रताप-रुद्रदेव काकलीय वंश का सप्तम राजा था जिसका शासन त्रिलिङ्ग वा आन्ध्रदेश में एक-शिला वा वरङ्गल नगर में ई० १२९५ से १३२३ तक था। इसके विषय के शिला-लेख ई० १२९८ और १३१७ के मध्य के मिले हैं। इस राजा ने देवगिरि के राजा रामदेव को परास्त किया था जिस

ई० १२७१ से १३०६ तक माना जाता है। अतः विद्या-
का समय ई० १४ श शतक का आरम्भ माना गया है।
नाथ ने इसी राजा के उपलक्ष्य में 'प्रताप-रुद्र-कल्याण'
का नाटक भी रचा है।

प्रताप-रुद्रयशोभूषणः—इस अलङ्कार-ग्रन्थ की दक्षिण में
प्रसिद्धि है। इसमें भी कारिका, वृत्ति और उदाहरण हैं
उदाहरण प्रताप-रुद्र राजा के यशोवर्णन[1] में हैं। इसके
प्रकरण हैं जिनमें क्रम से नायक, काव्य, नाटक, रस, दोष,
शब्दालंकार, अर्थालंकार और मिश्रालंकार हैं। तृतीय
प्रकरण में प्रताप-रुद्र-कल्याण नाटक के उदाहरण दिये
। यह ग्रन्थ काव्यप्रकाश और अलंकार-सर्वस्व के आधार
रचा गया है। इसपर मल्लिनाथ के पुत्र कुमार स्वामी की
रचित 'रत्नापण' नाम की टीका है। दूसरी 'रत्नशाण' टीका
है परन्तु वह अपूर्ण ही उपलब्ध है।

शिंघ वा सिंह भूपाल (ई० १३३०)

जीवन चरित्र—समय—राजकोंडा का राजा—इसके विरचित अन्य
१ रसार्णव सुधाकर, २ नाटक परिभाषा ३ शिंघ भूपालीय अलङ्कार-
र्णव सुधाकर का विषय परामर्श।

---

[1] प्रतापरुद्रदेवस्य गुणानाश्रित्य निर्मितः।
अलङ्कारप्रबन्धोऽयं सन्तः कर्णोत्पलोऽस्तु वः॥
प्रतापरुद्रयशोभूषण १।९।

इसका विरचित 'रसार्णव-सुधाकर' नाम का आंशि
ग्रन्थ है। इसके नाम भूपाल शब्द के पर्याय भेद से अने
मिलते हैं। जैसे शिंग धरणीश, शिंगधरणी सेन, शिंगभू
शिंगमहीपति इत्यादि। यह दक्षिण के व्यंकट-गिरि का रा
शिंगम नायडू ही माना गया है जिसका समय ई० १३३०
लगभग माना गया है। मल्लिनाथ और उसका पुत्र कुमा
स्वामी दोनों ही अपने ग्रन्थों में इसका निर्देश करते हैं। इस
रसार्णव-सुधाकर में अपने विषय में जो कहा है उससे ज्ञा
है कि यह रेचर्ल वंश में जन्मा था। इस वंश के राजा
विनय और श्रीशैल के मध्य-वर्ति प्रदेश पर शासन करते थे
जिसकी राजधानी राजाचल वा राजकोंडा थी। इसके पि
माता अनन्त और अन्नमाम्बा थे। इसका पितामह सिंग
नायक वा सिंग प्रभु, और प्रपितामह याचम नायक था। इस
सर्वज्ञ उपाधि थी और यह विद्वानों का आश्रयदाता था
इसका विरचित 'नाटक परिभाषा और शिंग-भूपालीय-शृ
ङ्गार' ये दो ग्रन्थ माने जाते हैं।

रसार्णव-सुधाकरः—यह नाट्य शास्त्र का ग्रन्थ जो
शृङ्गार-प्रकाश और शारदा-तनयके भाव-प्रकाशन के आधार
रचा गया है। रस और नाट्य के प्रकरणों में भरत, धनं
और दश-रूपक आदि प्रधान ग्रन्थकारों के ग्रन्थों का भी
लग मिलता है। इसमें अनेक नाटकों का नाम-निर्देश है।

विश्वनाथ कविराज (ई० १४ श शतक)

जीवन चरित्र—समय निर्धारण—इसके विरचित ग्रन्थ १ साहित्य दर्पण, २ राघव विलास काव्य ३ कुवलयाश्व चरित्र, ४ प्रभावती—परिणय नाटक, ५ प्रशस्ति रत्नावली, ६ चन्द्रकला नाटिका, ७ नरसिंह विजय काव्य, ८ काव्य प्रकाश दर्पण—साहित्यदर्पण का विषय परामर्श व उसकी टीकाएँ।

इसका विरचित अलङ्कार का अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ 'साहित्य दर्पण' है। इसने अपने जीवन चरित के विषय में बहुत कुछ कहा है। यह महाकवि चन्द्रशेखर का पुत्र था। यह चन्द्रशेखर विद्वान् था और उत्कल वा कलिङ्ग के राजा का 'सान्धिविग्रहिक' दर्बारी था। यह गौड़ ब्राह्मण था। इसके प्रपितामह और पितामह नारायण[1] नाम के थे। चन्द्रशेखर विरचित 'पुष्प-माला' और 'भषार्णव' उपलब्ध हैं। विश्वनाथ ने अपनी काव्य-प्रकाश की टीका में कई संस्कृत शब्द उत्कल पर्याय से बोधित किये हैं। इसलिये यह अनुमान होता है कि यह उत्कल का निवासी था। विश्वनाथ की

---

1 तत्राणत्वञ्चास्मद्वृद्ध-प्रपितामह-सहृदय-गोष्ठीगरिष्ठ—कविपण्डितमुख्य-श्रीमन्नारायणपादैरुक्तम्।

साहित्य दर्पण ३।२३।

यदाहुः श्रीकलिङ्गभूमण्डलाखण्डल-महाराजाधिराजश्रीनरसिंहदेवस-भायांमध्यं स्थगयतः ·· अस्मात्पितामह-श्रीमन्नारायणदासपादाः।

काव्य-प्रकाश भूमिका पृ० २५।

उपाधि भी 'सन्धि-विग्रहिक-महापात्र' थी। साहित्य-दर्पण के प्रथम परिच्छेद के अन्तमें और अन्तिम परिच्छेद के अन्तमें

'श्रीमन्नारायण-चरणारविन्द-मधुव्रत' अथवा

'काव्याद्धर्म-प्राप्तिर्भगवन्नारायण-चरणारविन्द-स्तवादिना'

ऐसे वचन मिलने से यह वैष्णव था ऐसा अनुमान किया गया है। काव्य-प्रकाश की टीका 'दीपिका' का कर्ता चण्डीदास विश्वनाथ के पितामह का कनिष्ठ भ्राता था। यद्यपि साहित्य-दर्पण में रुय्यक और मम्मट का नाम निर्देश नहीं है तथापि विद्याधर व विद्यानाथ के सदृश उनके ग्रन्थों से बहुत कुछ लिया गया है। साहित्य-दर्पण में गीतगोविन्दकार जयदेव और नैषधकार श्री हर्ष का निर्देश है। इसलिये विश्वनाथ का समय ई० १२०० के पूर्व का नहीं है। साहित्यदर्पण की एक हस्तलिखित प्रति जम्बू में ई० १३८० की उपलब्ध हुई है। साहित्यदर्पण के ४ थे परिच्छेद के एक श्लोक में देहली के अलाउद्दीन नृपति का निर्देश है। यह अलाउद्दीन प्रसिद्ध सुलतान अलाउद्दीन खिलजी था जिसके प्रसिद्ध सेनापति मलिक-काफर ने दक्षिण-भारत में आक्रमण कर वारंगल (एक-शिला) को स्वायत्त किया था। अलाउद्दीन की मृत्यु ई० १३१६ में हुई। विश्वनाथ ने इस श्लोक की रचना अला-

---

१ सन्धौ सर्वस्वहरणं विग्रहे प्राणनिग्रहः।
अलावदीन-नृपतौ न सन्धिर्न च विग्रहः॥
साहित्यदर्पण

के जीवितावस्था में की थी ऐसा भी मान लें तो भी
का समय ई० १३०० के बाद का ही होता है। इसलिये
नाथ का समय ई० १३०० और १३५० के मध्य में मान
उचित है। इसके विरचित अनेक ग्रन्थ राघव-विलास-
, कुवलयाश्व चरित (प्राकृत काव्य), प्रभावती-परिणय-
टक, प्रशस्ति-रत्नावलि (सोलह भाषाओं का करम्भक)
कला-नाटिका, नरसिंह-विजय-काव्य, और काव्य-प्रकाश
टीका काव्य-प्रकाश-दर्पण हैं।

साहित्य-दर्पण:—इसके दस परिच्छेद हैं। प्रथम परि-
द में मङ्गलाचरण के बाद काव्य-प्रयोजन, काव्य-लक्षण-
खण्डन, काव्य-लक्षण-निर्णय और उदाहरण; २ य में वाक्य-
लक्षण व शब्द के तीन व्यापार; ३ य में रस, भाव आदि
का विचार; ४ र्थ में काव्य के दो भेद ध्वनि और गुणी-
भूत व्यङ्ग्य और उसके प्रभेद, ५ म में व्यञ्जना वृत्ति की
स्थापना और उसको न मानने वालों का खण्डन; ६ष्ठ में नाट्य-
का पूर्ण प्रतिपादन, ७ म में काव्य के दोष, ८ म में गुण
विचार, ९ म में ४ रीतियां और १० में शब्दालङ्कार और
अर्थालङ्कार का निरूपण है।

यद्यपि इसमें नवीन किसी विषय का प्रतिपादन नहीं है
तो भी काव्य और नाट्य का एकत्र सुन्दर प्रतिपादन है। इसकी
शैली सरल और मनोहर है। इसमें प्रायः सर्व प्राचीन ग्रन्थों
की उक्तियां हैं और विशेषतया ध्वन्यालोक काव्य-प्रकाश

और अलङ्कार-सर्वस्व की उक्तियां हैं। इसमें विश्वनाथ
चित श्लोक २० के करीब हैं।

इसपर केवल ४ टीकाएँ हैं जिनमें रामचरण तर्कवागीश
की ई० १७०१ में विरचित 'विवृति' नाम की टीका प्रसिद्ध है।

रूपगोस्वामी (ई० १६ श शतक पूर्वार्द्ध)

इसके विरचित ग्रन्थ १ नाटक चन्द्रिका २ उज्वल नीलमणि
चन्द्रिका का विषय विवरण व टीकाएँ।

इसका विरचित उज्ज्वलनीलमणि नाम का अलङ्कार
और नाटक-चन्द्रिका नाम का नाट्य ग्रन्थ है। इसके
चरित्र तथा समय के विषय में 'स्तोत्रकाव्य' प्रकरण में
गया है।

नाटकचन्द्रिकाः—इसके आरम्भ में रचयिता ने
कि इसकी रचना में भरत नाट्य शास्त्र और रसार्णव सु
कर की सहायता ली गई है और साहित्यदर्पण में प्रति
नाट्य प्रकरण, भरत-नाट्यशास्त्र के विरुद्ध होने के कारण
है। इसमें ८ प्रकरण हैं। प्रथम प्रकरण में रूपक व नाटक
सामान्य लक्षण; २ य में नायक निरूपण; ३ य में रूपक के
४ र्थ में पञ्च सन्धियां और उनके प्रभेद; ५ म में अर्थोप
और उसके भेद; ६ ष्ठ में अङ्क और प्रवेश का विभाग; ७
भाषा विधान, ८ म में नाटक ग्रन्थ की वृत्तियां और रस
पोषण में उनका ग्रथन है। यह विस्तृत ग्रन्थ है और
उदाहरण वैष्णव ग्रन्थों से लिये हैं। उज्ज्वलनीलमणि

...ता ने सब उदाहरण स्वविरचित नाटिका तथा अन्य ...से दिये हैं। जिनमें उद्धवदूत, विदग्ध-माधव, दानकेलि-...नी, रसामृत-शेष आदि हैं। इसकी ४ टीकाएँ हैं जिनमें ...गोस्वामी की 'लोचन-रोचनी', विश्वनाथ चक्रवर्ती की ...-चन्द्रिका वा किरण प्रसिद्ध हैं।

कवि कर्णपूर (ई० १५२४ के बाद) [१]

...वन चरित्र—समय निर्धारण—इसके विरचित ग्रन्थ १ अलङ्कार ...,२ चैतन्य चन्द्रोदय नाटक, ३ गौराङ्ग गणोद्देश दीपिका, ...द वृन्दावन चम्पू व उसकी टीका चमत्कार चन्द्रिका, ५ बृहत्क-...द्देश दीपिका, ६ वर्ण प्रकाश—अलङ्कार कौस्तुभ का विषय ... व टीकाएँ।

...सका विरचित अलङ्कार-ग्रन्थ 'अलङ्कार-कौस्तुभ' है। ...वि कर्णपूर वा कर्णपूर गोस्वामी पहिले परमानन्द दास ...नाम से प्रसिद्ध था। इसके पिता का नाम शिवानन्द सेन ...इसका गुरु श्रीनाथ था। यह बंगाल के वैद्यकुल में उत्पन्न ...था। यह वैष्णव था। इसका पिता शिवानन्द सेन चैतन्य ...का शिष्य था। कवि कर्णपूर विरचित चैतन्य चन्द्रोदय ...ई० १५७२ का है। इस नाटक की भूमिका में कहा है ...यह कवि कर्णपूर नदिया के काञ्चन पल्ली में ई० १५२४ में ...ा था। इसका विरचित 'गौराङ्ग गणोद्देश दीपिका' ...१५७६ की है। इसका पुत्र कवि चन्द्र बड़ा भारी कवि था। ...कर्णपूर विरचित अन्य ग्रन्थ 'आनन्द-वृन्दावन चम्पू और

उसकी टीका, चमत्कार-चन्द्रिका, वृहत्कृष्ण गणोद्देश-दीपि
और वर्णप्रकाश हैं। वर्णप्रकाश, यह कोष ग्रन्थ अमर-माणि
के पुत्र राजधर के लिये लिखा था।

अलङ्कार-कौस्तुभः—इसके दस किरण हैं। प्रथम किर
में काव्य लक्षण; २ य में शब्दार्थ; ३ य में ध्वनि; ४ र्थ में गु
भूतव्यङ्ग्य; ५ म में रस, भाव और उनके भेद; ६ ष्ठ में गु
७ म में शब्दालंकार; ८ म में अर्थालङ्कार; ९ म में रीति
१० म में दोष हैं। यह रूप गोस्वामी के उज्ज्वल-नीलमणि
अधिक विस्तृत ग्रन्थ है और इसमें वैष्णव धर्म का
प्रकाश नहीं है। तथापि प्रमुख उदाहरण श्री कृष्ण की
के ही हैं। इसमें काव्य-प्रकाश का अनुकरण है। इसपर चा
टीकाएँ हैं जिनमें स्वविरचित 'किरण', विश्वनाथ चक्र
विरचित 'सार बोधिनी' और वृन्दावनचन्द्र तर्कालङ्कार
वर्ती विरचित 'दीधिति-प्रकाशिका' प्रसिद्ध हैं।

अप्पय दीक्षित (ई० १५२०-१५९३)

**जीवन चरित्र—समय निर्धारण—वेलूर के चिन्नतिम्म, चिन्न
पेरुकोण्डा के वेङ्कट पतिदेवराय का सभापण्डित—इसके विविध
ग्रन्थों में अलङ्कार ग्रन्थ, १ वृत्तिवार्तिक, २ चित्र मीमांसा, ३ कु
नन्द—इनका विषय विवरण व टीकाएँ।**

इसके विरचित वृत्तिवार्तिक, चित्रमीमांसा और 'कु
यानन्द' नाम के अलंकार ग्रन्थ हैं। अप्पय्य दीक्षित के
तीन प्रकार से लिखे मिलते हैं-(१) अप्पय्य दीक्षि

अप्पय दीक्षित (२) अप्पय दीक्षित (३) अप्पय दीक्षित।
मधुसूदन सरस्वती ने अप्पय दीक्षित को 'सर्वतन्त्र स्वतन्त्र'
कहा है। अप्पय दीक्षित बड़ा भारी लेखक था। इसके विरचित
१०३ ग्रन्थ माने जाते हैं। इसका पिता रङ्गराज अध्वरी था
और इसका पितामह आचार्य दीक्षित वा वक्षस्थहाचार्य था।
वक्षस्थहाचार्य विजयानगर के कृष्णदेव राय (ई० १५०९-२८)
का समकालिक था। इसका गोत्र भारद्वाज था। अप्पय
दीक्षित के भ्रातुष्पौत्र नीलकण्ठ दीक्षित विरचित 'शिवलीला-
र्णव' काव्य से ज्ञात होता है[1] कि अप्पय दीक्षित ७२ वर्ष तक
जीवित था और इसने १०० से अधिक ग्रन्थ लिखे थे। यह
७२ वर्ष का समय ई० १५२० से १५९३ तक अप्पय दीक्षित के
उल्लिखित राजाओं के प्रमाण से सिद्ध होता है। व्यङ्कटदेशिक
के यादवाभ्युदय काव्य की टीका अप्पय दीक्षित ने वेलूर के
चिन्नतिम्म नायक के कहने से लिखी थी ऐसा टीका में कहा
है। यह प्रायः अप्पय दीक्षित का विरचित प्रथम ग्रन्थ हो
सकता है। चिन्नतिम्म का समय ई० १५४२ से १५५० माना
गया है। इसके बाद अप्पय दीक्षित ने शिवार्कमणि-दीपिकादि,
ग्रन्थ चिन्नबोम्म नायक के समय में लिखे थे। चिन्नबोम्म
का समय ई० १५५० से १५८२ तक माना गया है। इस अवधि

---

1 कालेन शम्भुः किल तावताऽपि कलाश्चतुष्षष्टिमिताः प्रणिन्ये।
द्वासप्ततिं प्राप्य समाः प्रबन्धाञ्छतं व्यधादप्पयदीक्षितेन्द्रः॥
शिवलीलार्णव १ म सर्ग।

में अप्पय दीक्षित ने अनेक ग्रन्थ लिखे थे। अप्पय दीक्षित का कुवलयानन्द ग्रन्थ, उसके अन्तिम संरक्षक पेन्कोण्डा के वेङ्कट पति देवराय के समय लिखा गया था। यह वेङ्कटपति ई० १५८५ में गद्दी पर आया था। इसी राजा के समय में मीमांसा का प्रसिद्ध ग्रन्थ विधिरसायन भी इसने लिखा था। भट्टोजी दीक्षित अपनी सिद्धान्त-कौमुदी की रचना के बाद काशी से दक्षिण में अप्पय्य दीक्षित के पास अध्ययन करने के लिये गया था और व्यङ्कट पति के कहने से भट्टोजी दीक्षित ने तत्वकौस्तुभ ग्रन्थ लिखा था जिसमें उसने अपने गुरु अप्पय्य दीक्षित का वन्दन किया है। पण्डित राज जगन्नाथ का और अप्पय्य दीक्षित का विरोध जो परम्परा में माना गया है वह इस समय के अनुसार सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि जगन्नाथ का ग्रन्थ रचना काल ई० १६३० के बाद माना जाता है।

इसके विरचित ग्रन्थ अनेक शास्त्रों के हैं। अद्वैत वेदान्त में ब्रह्मसूत्र की टीका न्यायार्कमणि और सिद्धान्त-लेशसंग्रह, वैष्णव विशिष्टाद्वैत में 'नयमयूख-मालिका, शैव विशिष्टाद्वैत में शिवार्क-मणि-दीपिका वा श्रीकण्ठभाष्य, द्वैत वा माध्व वेदान्त में ब्रह्मसूत्र की टीका न्यायमुक्तावलि, अलङ्कार में उपरिनिर्दिष्ट ३ ग्रन्थ, मीमांसा में विधिरसायन और उसकी

---

१ अमुं कुवलयानन्दमकरोदप्पदीक्षितः ।
नियोगाद्व्यङ्कटपतेर्निरुपाधिकृपानिधेः ॥
कुवलयानन्द—अन्तिम श्लोक।

...सुखोपयोगिनी, व्याकरण में वादनक्षत्रावलि, पुराण इतिहास में रामायण-तात्पर्य-निर्णय और महाभारत-तात्पर्य निर्णय, प्राकृत व्याकरण की प्राकृत-चन्द्रिका, शङ्कर, रामानुज, श्रीकण्ठ, माध्व दर्शनों का सामान्य ग्रन्थ मतसारार्थ-संग्रह और नामसंग्रह-माला नाम का कोष, ये प्रधान हैं।

वृत्ति-वार्तिकः—इसके दो परिच्छेद हैं। इसमें शब्द के अभिधा और लक्षणा व्यापार का विचार है। अभिधा के योग, रूढ़ी, और योग रूढ़ी ये तीन प्रकार माने हैं। लक्षणा के शुद्धा और गौणी दो भेद मानकर उसके निरूढ़ और फल ये दो भेद और इनके अवान्तर भेद माने हैं।

चित्र-मीमांसाः—इसमें वृत्तिवार्तिक से कुछ अधिक विषय प्रतिपादित हैं। इसमें पहिले कारिका देकर गद्य में दूसरों के मतों का विचार किया है और आवश्यकतानुसार उनका खण्डन भी किया गया है। इसमें पहिले काव्य के तीन भेद ध्वनि, गुणीभूत-व्यङ्ग्य और चित्र प्रतिपादित हैं और कहा है कि शब्द-चित्रकाव्य चमत्कार शून्य होता है इसलिये इस ग्रन्थ में अर्थ चित्र का ही विशेष रूप से प्रतिपादन है। अनन्तर उपमा अलङ्कार पर निर्भर २२ अलङ्कार बताये हैं। यह अलङ्कार प्रकरण अतिशयोक्ति तक ही है। चित्र मीमांसा के अन्य वचनों से और कुवलयानन्द के चित्र-मीमांसा के उल्लेख से ज्ञात होता है कि चित्र मीमांसा ग्रन्थ सम्प्रति सम्पूर्ण उपलब्ध नहीं है। जगन्नाथ पण्डितराज का चित्र-

मीमांसाखण्डन ग्रन्थ भी अपन्हुति अलङ्कार तक ही उपलब्ध है। इसकी ३ टीकाएँ हैं जिनमें धरानन्द की सुधा और बाल-कृष्ण पायगुण्डे की गूढ़ार्थ-प्रकाशिका ये प्रसिद्ध हैं।

कुवलयानन्दः—यह अलङ्कार के प्राथमिक ज्ञान के लिये उपयुक्त ग्रन्थ है। इसमें प्रायः लक्षण और उदाहरण 'चन्द्रा-लोक'[1] के ही दिये हैं। इतना ही नहीं किन्तु जैसा पहिले कहा जा चुका है, यह चन्द्रालोक के अलङ्कार प्रकरण की एक प्रकार की टीका ही है। इसमें टिप्पणी अप्पय दीक्षित की है और उदाहरण दूसरों के हैं। चन्द्रालोक से इसमें २४ अलङ्कार अधिक हैं। भीमसेन ने 'कुवलयानन्द खण्डन' नाम का ग्रन्थ लिखा था। भीमसेन तथा जगन्नाथ पण्डितराजके चित्रमीमांसा खण्डन के विरोध में अप्पय दीक्षित का समर्थन करने के लिये नीलकण्ठ दीक्षित ने 'चित्रमीमांसा-दोषधिक्कार' नाम का ग्रन्थ लिखा था। कुवलयानन्द की ९ टीकाएँ हैं जिनमें आशा-धर की 'दीपिका' और वैद्यनाथ तत्सत् की अलङ्कार-चन्द्रिका प्रकाशित हैं। नागोजी भट्ट की 'अलङ्कारसुधा' और 'विषम-पद व्याख्यान-सत्पदानन्द' ये प्रकाशित नहीं हैं। गंगाधर वाजपेयी की 'रसिकरञ्जिनी' अधिक विश्वसनीय टीका है जिसमें अप्पय दीक्षित के समय की परम्परा मिलती है।

---

१ येषां चन्द्रालोके दृश्यन्ते लक्ष्यलक्षणश्लोकाः
प्रायस्त एव तेषामितरेषान्त्वभिनवा विरच्यन्ते॥
कुवलयानन्द।

केशवमिश्र (ई० १६ श शतक का उत्तरार्द्ध)

निर्धारण—कोट कांगरा के राजा माणिक्य चन्द्र का सभा
—इसके विरचित अलङ्कार के ७ ग्रन्थों में से १ अलङ्कार शेखर,
ङ्कार सर्वस्व, ३ काव्यरत्न—अलङ्कारशेखर का विषय विवरण—
त्ति की कारिकाएँ ।

सका विरचित 'अलङ्कार शेखर' नाम का अलङ्कार ग्रन्थ
सके वंश और जीवनचरित्र के विषय में कहीं उल्लेख
मिलता है किन्तु केशव मिश्रने अलङ्कार शेखर की भूमिका
अन्त में कहा है कि उसने यह ग्रन्थ धर्म-चन्द्र के पुत्र
क्य चन्द्र राजा के कहने से लिखा था। धर्मचन्द्र राम-
का पुत्र था जो कि सुशर्मा वंश का संस्थापक था और जिसने
ी के अफ़गान राजा को परास्त किया था। पुराण वस्तु-
न से ज्ञात होता है कि कोट कांगरा का राजा माणिक्य-
धर्मचन्द्र के बाद ई० १५६३ में गद्दी पर आया था।
ये केशव मिश्र का ग्रन्थ-रचना-काल और विशेष कर
ङ्कारशेखर का रचनाकाल ई० १६ श शतक का तृतीय पाद
त्तरार्द्ध है। इसके विरचित अन्य 'अलंकार ग्रन्थ' ७ थे
केशव मिश्र ने स्वयं कहा है जिनमें 'अलंकार-सर्वस्व'
र 'वाक्यरत्न वा काव्यरत्न' नामतः निर्दिष्ट हैं।

अलंकार-शेखर:—यह ग्रन्थ कारिका वृत्ति और उदाहरण
में है। केशव मिश्र के कथनानुसार कारिका का रचयिता

'शौद्धोदनि१ था। यह शौद्धोदनि वास्तव में कारिका का रच-
यिता था वा और किसी बौद्ध ग्रन्थ-कार ने इन कारिकाओं को
रचकर भगवान् बुद्ध के नाम से प्रकाशित किया था यह कहना
कठिन है। यह ग्रन्थ अलंकार के काव्य-प्रकाशादि ग्रन्थों के
आधार पर लिखा गया है। इसमें ८ रत्न और २२ मरीचियाँ
हैं। प्रथम मरीचि में काव्य का लक्षण और हेतु; २य में तीन
रीतियाँ और उक्ति व मुद्रा के प्रकार; ३य में शब्द के तीन
व्यापार; ४र्थ में आठ पददोष; ५म में बारह वाक्यदोष;
६ष्ठ में आठ अर्थदोष; ७म में पांच शब्दगुण; ८म में [illegible]
अर्थगुण; ९म में दोषों का गुणत्वेन निरूपण; १०म में [illegible]
शब्दालंकार; ११श में चौदह अर्थालंकार; १२श में [illegible]
प्रभेद; १३श में अन्य अलङ्कार; १४श में नायक निरूपण प्रकार;
१५श में कवि समय निरूपण और सादृश्य वाचक शब्द;
१६श में विषय निरूपण; १७श में निसर्ग के अनेक पदार्थों
का वर्णन; १८श में संख्यावाचक शब्द निरूपण; १९ति में
समस्यापूरण; २०ति में नवरस, नायक-नायिका-प्रभेद और
अनेक भाव; २१ति में रसदोष; और २२ति में रसों के
वर्ण निरूपण है।

शौद्धोदनि की कारिकाएँ ई० १२श शतक के बाद [illegible]

---

१ अलङ्कारविद्यासूत्रकारो भगवान् शौद्धोदनिः परमकारुणिकः
स्वशास्त्रे प्रवर्त्तयिष्यन् प्रथमं काव्यस्वरूपमाह।
अलङ्कार शेखर पृ॰ [illegible]

रचित हैं। इस काव्य का लक्षण 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' इसने रस को काव्य की आत्मा मानी है। महीम भट्ट का विवेक और वाग्भटालंकार का निर्देश इसमें मिलता है।

जगन्नाथ–पण्डितराज (१६२०–१६६०)

जीवन चरित्र—समय निर्धारण—दिल्लीपति शाहजहाँ के और पुत्र दारा शिकोह का सभापण्डित—इसके विरचित ग्रन्थ १ रस-गंगाधर, २ जगदाभरण, ३ आसफ़ विलास, ४ चित्र मीमांसा खण्डन, कामिनी विलास, ६ गङ्गालहरी. ७ अमृत लहरी, ८ सुधालहरी, ९ करुणालहरी, १० लक्ष्मी लहरी, ११ प्राणाभरण काव्य, १२ यमुना भरण, १३ मनोरमा कुचमर्द्दन—रस गंगाधर का विषय विवरण व टीका।

इसका विरचित अलंकार का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रस गंगाधर' यह तैलंग ब्राह्मण था। इसके पिता का नाम पेरुभट्ट वा भट्ट और माता का नाम लक्ष्मी था। यह वेगिनाड़ वंश में उत्पन्न हुवा था। जगन्नाथ ने अपने पिता के सम्बन्ध में कहा कि पेरंभट्ट ने ज्ञानेन्द्र भिक्षु से वेदान्त का, महेन्द्र पण्डित न्याय वैशेषिक, पूर्व मीमांसा खण्डदेव के पास और शेष वीरेश्वर के पास महाभाष्य का अध्ययन किया था। जगन्नाथ ने अपना अध्ययन अपने पिता के पास और उसके बाद शेष वीरेश्वर के पास किया था। जगन्नाथ के विषय में यद्यपि अनेक परम्पराएँ हैं तो भी उसके विषय में ऐतिहासिक ज्ञान बहुत कम है। जगन्नाथ को दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ ने 'पण्डित राज' उपाधि दी थी। इसके

विरचित 'जगदा भरण' और 'आसफ़ विलास' से ज्ञात होता है कि शाहजहाँ का ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोह और शाहजहाँ के अफ़सर आसफ खां इसके संरक्षक थे जिनकी स्तुति में उ-युक्त दो काव्य इसने रचे थे। आसफ़ खां का देहान्त ई० १६४१ में हुवा था और ई० १६५७ में दारा शिकोह मारा गया था। जगन्नाथ विरचित 'चित्र मीमांसा खण्डन' की हस्त लिखित पुस्तक ई० १६५२-५३ की उपलब्ध है। 'रस गंगाधर' 'चित्र मीमांसा खण्डन' के पूर्व का है। इसलिये ये दोनों ग्रन्थ ई० १६४१ और १६५० के बीच में रचे गये हैं। ये दोनों ग्रन्थ जगन्नाथ की प्रौढ़ावस्था के ग्रन्थ हैं। इसलिये इसका ग्रन्थ रचना काल ई० १६२० से १६६० के मध्य में मान लेना उचित है। इसके विरचित करीब १५ ग्रन्थ हैं। भामिनी विलास, गंगालहरी, अमृत लहरी, सुधा लहरी, पीयूष लहरी, लक्ष्मी लहरी, प्राणाभरण काव्य, यमुना भरण चम्पू और व्याकरण का मनोरमा कुचमर्दन ये प्रसिद्ध हैं।

रसगंगाधरः—यह अलंकार का तथा साहित्य का प्रामाणिक ग्रन्थ है। ध्वन्यालोक और काव्य प्रकाश के बाद अलंकार शास्त्र में इसी को प्रमाण माना है। इस ग्रन्थ की शैली बड़ी प्रभाव शाली है। इसका वैलक्षण्य यह है कि जैसा इसका विषय नये ढंग पर प्रतिपादित है वैसे ही इसके उदाहरण

---

१ निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं काव्यं मयाऽत्र निहितन्नपरस्य किञ्चित्।
किं सेव्यते सुमनसां मनसाऽपि गन्धः कस्तूरिकाजननशक्तिभृता मृगेण॥
रस गंगाधर भूमिका।

स्वयं ही जगन्नाथ द्वारा विरचित हैं। उदाहरण के श्लोकों
भाषा बहुत प्रासादिक, अस्खलित और आकर्षक
इससे कवि का काव्य-रचना-चातुर्य व्यक्त होता है।
सर्वत्र प्रथम विषय निरूपण कर, उसको उदाहरणों से
कर बाद में प्राचीन मतों पर अपना विचार प्रगट किया
इसकी गद्य भाषा अस्खलित और जोशिली है और न्याय-
की भाषा के सदृश है। स्थान २ पर इसने पूज्य आचार्यों
भी खण्डन किया है। इसका सब से बड़ा प्रतिस्पर्धी
य दीक्षित था।

रस गङ्गाधर में उत्तरालङ्कार तक ही वर्णन है। अनेक
णों से यह सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ और आगे भी
खा गया था किन्तु वह आगे का भाग सम्प्रति उपलब्ध
हीं है।

इसके दो आननों में प्रायः अलङ्कार शास्त्र का सर्व विषय
या है। अलङ्कार प्रकरण में ७० अलङ्कारों का निरूपण है।
त्र मीमांसा खण्डन' इसके बाद रचा गया था।

इसकी नागेशभट्ट, विरचित 'गुरुमर्मप्रकाशिका' नाम की
सिद्ध टीका 'उत्तर' अलङ्कार तक ही है।

नरसिंह कवि (ई० १८ श शतक का पूर्वार्द्ध)

रचयिता की जीवनी—समय—चिक्क कृष्णराज का समकालिक—
राज यशो भूषण का विषय परामर्श।

इसका विरचित नञ्जराज-यशोभूषण नाम का अलङ्कार

ग्रन्थ है। यह मैसूर के राजा चिक्क कृष्णराज (१७३४-१७६६) के मन्त्री नंजराज का आश्रित था। इसका पिता शिवराम सनगर ब्राह्मण था और भारी विद्वान् था। इसके धार्मिक गुरु योगानन्द संन्यासी थे। यह आलूर के तिरुमल कवि का मित्र था। इसने अपने को नव कालिदास[1] कहा है।

नञ्जराज यशोभूषणः—यह ग्रन्थ 'प्रताप-रुद्र-यशो-भूषण' का अनुकरण है। कहीं २ इसमें अक्षरशः अनुकरण किया गया है। इसके ७ विलास हैं जिनमें क्रम से नायक, काव्य, ध्वनि, रस, दोष गुण, नाटक प्रकरण, अलङ्कार का निरूपण है। कवि विरचित उदाहरणों में नंजराज का यश वर्णित है।

---

१ आलूरतिरुमलकवेरभिनवभवभूतिनामविदितस्य।
सुहृदा नृसिंहकविना कृतिरकृत नवीनकालिदासेन।
अन्तिम श्लोक।

प्रकरण १२

कोष[1] ।

कोष का महत्व व प्रयोजन—कोषशब्द का अर्थ—कोष का स्वरूप—उत्पत्ति व विकास—(संस्कृत) साहित्य और कोष का परस्पर सम्बन्ध ।

संसार की कोई भी भाषा, उस भाषा के अच्छे २ कोषों के अभाव में कदापि चिरस्थायिनी नहीं हो सकती है। इस परिवर्तन शील संसार में अन्य सब वस्तुओं के साथ भाषा में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। वैदिक काल से प्रारम्भ कर आधुनिक काल तक की संस्कृत भाषा का सूक्ष्म निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में प्रयुक्त असंख्य शब्दों का प्रयोग आधुनिक काल की भाषा में कहीं भी दीख नहीं पड़ता है। इन प्राचीन शब्दों को बताने वाले वैदिक निघण्टु और अन्य प्राचीन तथा अर्वाचीन कोष यदि न होते तो उन शब्दों का अर्थ समझना असम्भव ही होता। संस्कृत साहित्य में शब्दों का लिङ्ग ज्ञान कराना व्याकरण के साथ २ कोष का भी कार्य है। एक शब्द के अनेक अर्थों का परिज्ञान कोष ही से होता है। इसलिये वैदिक भाषा का तथा लौकिक-

[1] इस कोष शब्द को तालव्य शकार से भी लिखने की परिपाटी है।

संस्कृत का सुगमता से परिज्ञान होने के लिये विद्यार्थियों को
प्रारम्भिकावस्था में ही वैदिकनिघण्टु तथा अमरकोष अथवा
अन्य कोई कोष कण्ठस्थ करा देने की परिपाटी अनादि
प्रचलित है। संस्कृत भाषा-कोविदों में इस बात की प्रसिद्धि
है कि जिसने ककारत्रयी अर्थात् काव्य, कौमुदी और कोष का
अच्छी तरह अध्ययन नहीं किया है वह संस्कृत भाषा में
कदापि परिनिष्ठित नहीं हो सकता है।

कोष शब्द 'कुष निष्कर्षे' धातु से बना है। अमरकोश[1] में
इस शब्द के चार अर्थ कहे हैं—पुष्पकलिका, म्यान, खजाना
और शपथ। प्रकृत स्थल में इन चार अर्थों में से 'खजाना'
यही अर्थ उपयुक्त है। यद्यपि इस शब्द का विशिष्ट अर्थ धन
संचय अर्थात् खजाना है तथापि सामान्यतः संचय या समूह
के अर्थ में इसका प्रयोग होता है। जब यह शब्द ग्रन्थ के
लिये प्रयुक्त होता है तब इससे साहित्य गत शब्द का होना
होता है। शब्द और अर्थ का नित्य साहचर्य होने से कोष
ग्रन्थों का शब्द संग्रह उन शब्दों के अर्थ बोधन करा देने के लिये
ही अभिप्रेत है।

वैदिक काल के कोष-ग्रन्थों के स्वरूप का अनुमान उस काल
के उपलब्ध एकमात्र कोष से किया जा सकता है। यह कोष
निघण्टु नाम से प्रसिद्ध है। इसमें एकार्थक और अनेकार्थक

---

१ कोषोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघदिव्ययोः।
नानार्थ वर्ग श्लो० २२१।

शब्दों का समाम्नाय मात्र है। यह ग्रन्थ श्लोक-बद्ध है। प्राचीन काल में कोषों का स्वरूप चिरकाल तक ऐसा रहा यह बात धन्वन्तरि-निघण्टु से दृढ़ होती है। परन्तु संस्कृत के कोष प्रायः श्लोक-बद्ध ही मिलते हैं। इनमें किसी २ में लिङ्ग बोधन कराने के लिये स्त्री, पुम्, आदि हैं और किसी २ में शब्दों के रूपों से ही लिङ्ग बोध देने की चेष्टा दीख पड़ती है। कई कोषों में केवल र्थक वा एकाक्षर शब्दों का ही संग्रह मिलता है। कोषकारों ने पाठकों के सुभीते के लिये द्व्यक्षर आदि क्रम से ही कोष रचना की है। नानार्थक कोषों में किसी २ में अधिक अर्थ वाले शब्दों को पहिले कह कर में क्रम से कम अर्थ वाले शब्दों का समावेश है। कोष-कारों ने विशेष कर अनुष्टप्छन्द ही का प्रयोग किया है। किसी २ कोष में अन्य छन्द भी हैं। वर्णदेशना नाम का एक कोष भी उपलब्ध है। पाश्चात्य संसर्ग से अत्यन्त अर्वा-चीन कोषों की रचना छन्दोंवद्ध न होकर पाश्चात्यों के कोषों सदृश वर्णक्रम से ही हुई है।

प्राचीन काल में वैदिक ऋषियों को मन्त्रों का साक्षात्कार[1] था इसलिये उनको मन्त्रों का अर्थ अवगत होना स्वाभा-विक ही था। बाद के ऋषियों को यह साक्षात्कार न होने के

[1] साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः।
यास्क का निरुक्त १।२०।२

कारण उनको उपदेश द्वारा मन्त्र सिखाये जाते थे। किन्तु इनको उन शब्दों से पूर्ण परिचय रहने से मन्त्रों का अर्थ समझने में विशेष दिक्कत न होती थी। परन्तु ज्यों २ समय बीतता गया त्यों २ नवीन २ अध्येताओं को ये शब्द अपरिचित होने लगे। इसलिये विद्वान् अध्यापकों ने वेदों के कठिन शब्दों को एकत्रित किया जो संग्रह 'निघण्टु' नाम से प्रसिद्ध है। निघण्टु के कठिन शब्दों का अर्थ विशद करने के उद्देश से जो ग्रन्थ रचे गये उनको 'निरुक्त' कहते हैं। छः वेदाङ्गों में निरुक्त की भी गणना है। निघण्टु का स्वरूप वर्णन यास्काचार्य ने निरुक्त के इतिहास में सविस्तर किया गया है। उसी निरुक्त ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि इस प्रकार के अनेक निर्वचन ग्रन्थ इसके पूर्व में हो चुके थे। यास्काचार्य के बाद उनके निरुक्त जैसा ऐसा दूसरा ग्रन्थ न हो सका। इससे यह मालूम होता है कि कोष-निर्वचन का प्रयत्न वैदिककाल से बराबर होता आया है। आयुर्वेद के कोष-ग्रन्थ प्रायः निघण्टु नाम से ही प्रसिद्ध हैं। इनमें धन्वन्तरि का निघण्टु ग्रन्थ सब से प्राचीन है। क्षीर स्वामी की टीका से स्पष्ट है कि धन्वन्तरि, अमरसिंह से बहुत प्राचीन थे। इनका बनाया निघण्टु वैदिक-निघण्टु का अनु[illegible]। करण करता हुआ संस्कृत वैद्यक के कोष ग्रन्थों का एक नमूना है। इस प्रकार के कोषग्रन्थ संस्कृत के अन्य विषयों में भी रचे गये थे। अमरकोष की क्षीरस्वामी की टीका से ज्ञात होता है

१ अमरकोष की क्षीरस्वामी की टीका—वनौषधि वर्ग श्लो० ५०।

अमरकोष के पूर्व में व्याडि, वररुचि, भागुरि और धन्व-
न्तरि—ये कोषकार और त्रिकाण्ड, उत्पलिनी, रत्नकोष और
माला—ये कोषग्रन्थ उपस्थित थे। उपर्युक्त कोष-ग्रन्थ उपलब्ध
न होने से यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उनमें
वैदिक शब्द भी थे या नहीं। किन्तु यह बात निःसन्देह मान ली
जा सकती है कि ये कोष वैदिक और लौकिक संस्कृत कोषों के
बीच के वाले ग्रन्थ थे। अमरकोष के अनन्तर तो कोषों का
अच्छा ही विकास हुआ जो पाठकों को आगे दिये हुवे विवरण
से भलीभांति अवगत हो सकता है।

साहित्य और कोष का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। साहि-
त्य की वृद्धिपर ही कोष की वृद्धि अवलम्बित रहती है। यदि
किसी भाषा का साहित्य संकुचित है तो उसके कोष भी संकु-
चित ही रहेंगे। किसी साहित्य की उन्नत वा अवनत अवस्था
का ज्ञान उसके कोष ग्रन्थों से हो सकता है। इतना ही नहीं
किन्तु कोषग्रन्थ सदैव अपने साहित्य की रक्षा करते हैं। यदि
वैदिक निघण्टु आज दिन उपलब्ध न होता तो वेदों के अधि-
कांश मन्त्रों का अर्थ लगाना अत्यन्त कठिन वा असम्भव ही
होता। किसी भाषा का साहित्य समझने के लिये उस भाषा
के कोष ग्रन्थों का अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। जिसको उस
भाषा के कोष का ज्ञान नहीं है वह उस भाषा के साहित्य का
आनन्द नहीं प्राप्त कर सकता है। संस्कृत-साहित्य का
यथार्थ ज्ञान और आनन्द उसीको प्राप्त हो सकता है जिसे

संस्कृत के कोष-ग्रन्थों का पूर्ण परिज्ञान होगा। कवि
वक्तृता वा निबन्ध लिखने वालों के लिये भी कोष
आवश्यक है। कवि-प्रतिभा रहने पर भी शब्द ज्ञान के बिना
कविता बनाना असम्भव ही है।

यास्क (ई० पू० ७००)

समयनिर्धारण—वैदिक निघण्टु का विषय वर्णन—निरुक्त
का विषय विभाग—निघण्टु और निरुक्त के टीकाकार और उनके ग्रन्थ

इसका विरचित 'वैदिक निघण्टु' का निर्वचन
टीका ग्रन्थ 'निरुक्त' नाम का है। यास्क वा यास्काचार्य
ध्यायी के निर्माता पाणिनि से भी प्राचीन माने गये हैं। पाणिनि
का समय पाश्चात्यों के मतानुसार ई० पू० ४ र्थ शतक
परन्तु उनमें गोल्ड स्टूकेर (Gold Stucker) प्रभृति
सर भाण्डारकर प्रभृति भारतीय संशोधक पाणिनि का समय
गौतम बुद्ध (ई० पू० ४७६) के पूर्व ६ ष्ठ शतक मानते
इसलिये इन विद्वानों के मत से यास्क का समय ई० पू०
शतक मान लेना आवश्यक होता है। किन्तु जो विद्वान् पाणिनि
को ई० पू० ४ र्थ शतक का मानते हैं वे यास्क को ई० पू०
शतक का कहते हैं। यह अत्यन्त प्राचीन होने के कारण
जीवनचरित्र के सम्बन्ध में ज्ञात होना असम्भव है।

वैदिक निघण्टुः—यह प्राचीन काल से प्रचलित मुख्य
वैदिक शब्दों का संग्रह है। इसमें तिङन्त और सुबन्त
हैं। इसके विषय में निरुक्त के प्रारम्भ में कहा है—

"समाम्नायः समाम्नातः स व्याख्यातव्यः ।
तमिमं समाम्नायं निघण्टव इत्याचक्षते"

अर्थात् समाम्नाय जो वैदिकों ने गुरु-परम्परा से प्राप्त किया है उसका व्याख्यान करना आवश्यक है और इसीको निघण्टव कहते हैं। निघण्टव शब्द 'निगन्तव' से बना है ऐसा निरुक्त में पहिले ही कहा है। इस वचन से यह भी अनुमान होता है कि इस तरह के निघण्टु यास्काचार्य के पूर्वकाल में अनेक थे जिनका आज पता नहीं चलता। विद्यमान वैदिक निघण्टु केवल शब्दों की सूचि है। इसके ५ अध्याय हैं। प्रथम ३ अध्यायों में सुबन्त और तिङन्त शब्दों के पर्याय-वाचक शब्द दिये हैं। ४ थं में वेदके कठिन २ शब्दों का जिस तरह वेद में है वैसाही रूप है और ५ म में देवता वाचक शब्दों को सूचो है। इसका कोई एक रचयिता नहीं हो सकता। सम्भव है कि यास्क के पूर्व में कई विद्वानों ने थोड़ा २ कर इसको पूरा किया हो। यही कारण है कि इसका 'समाम्नाय' नाम पड़ा है।

निरुक्तः—यह वैदिक-निघण्टु का निर्वचन वा टीका है। इसमें वेद के सन्दर्भ को बताते हुये वैदिक शब्दों का व्याख्यान किया है। यह केवल व्याख्यान-ग्रन्थ हो नहीं है किन्तु इसमें शब्द व्युत्पत्ति का याज्ञिक और वैयाकरण मत से विमर्श है। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक प्राचीन परम्पराएँ भी मिली हैं। ये परम्पराएँ १८ सम्प्रदायों की हैं। जिनमें

नैरुक्त, ऐतिहासिक, वैयाकरण, याज्ञिक, नैदान आदि प्रधान हैं। इसके १२ अध्याय हैं। प्रति अध्याय के ३ से ७ तक पाद हैं। अन्त में दो परिशिष्ट भी हैं। किन्तु इन दो परिशिष्टों के रचयिता के सम्बन्ध में सन्देह है। निरुक्त के १२ अध्याय ३ काण्डों में संगृहीत हैं। प्रथम से तृतीय तक नैघण्टु-काण्ड कहाता है। यह निघण्टु के तीन अध्यायों की व्याख्या है। ४ र्थ से ६ ष्ठ तक नैगम-काण्ड है जो निघण्टु के ४ र्थ अध्याय की व्याख्या है। ७ म से १२ श तक दैवत-काण्ड है जो निघण्टु के देवताध्याय की टीका है। यास्क की बृ... निरुक्त नाम की वैदिक निघण्टु की टीका अति संक्षिप्त होने के कारण ई० १२ श शतक में देवराजयज्वा ने ... वैदिक निघण्टु की विस्तृत टीका लिखी है। यास्क के निरु... पर ५ टीकाएँ हैं जिनमें दुर्गाचार्य और स्कन्द स्वामी की टीकाएँ प्रकाशित हैं।

भास्कर राय (ई० १७३०)

जीवन चरित्र—समयनिर्धारण—इसके विरचित १ ललित नाम सह...) का भाष्य और २ गुप्तवती के अतिरिक्त अन्य १५ ग्रन्थ—वैदिक कोष विषय परामर्ष।

इसका विरचित 'वैदिक कोष' है। यह बड़ा भारी वैदिक और शास्त्री था। इसका निवासस्थान दक्षिण में बीड़सांगली था। अध्ययन के बाद यह सांगली से पूना और पूना से बनारस में गया था। करीब १५० या २०० वर्ष हुवे होंगे कि

के पेशवा-सरदार परशुराम-भाऊ-पटवर्धन ने अपनी कन्या के पुनर्विवाह के लिये इसको काशी से बुलाया इसने अपने 'ललिता-सहस्र-नाम-भाष्य' के आदि और में अपने सम्बन्ध में कहा है कि यह विश्वामित्र गोत्रीय राज का पुत्र था। इसकी माता कोणाम्बा थी। इसके का नाम नरसिंह था। 'ललिता-सहस्र-नाम-भाष्य' का काल ई० १७६३ है। वैदिक कोष का रचना काल ई० १७७५ नागेश भट्ट की सप्तशती टीका का खण्डन इसने सप्तशती अपनी 'गुप्तवती' नाम की टीका में किया है। नागेशभट्ट का ई० १७१३ है। इसलिये इसका समय ई० १७२५ से १७७५ मानना आवश्यक है। इसके विरचित कुल १५ ग्रन्थ हैं। वैदिक कोषः—इसमें वैदिक निघण्टु के शब्द और उनका अनुष्टुप्छन्द में देने का कवि ने श्लाघ्य प्रयत्न किया है।

अमरसिंह (ई० ६०० के पूर्व)

अमरसिंह की जीवनी—समयनिर्धारण—नामलिङ्गानुशासन (अमर-कोष) का विषय वर्णन—टीकाएँ।

इसका विरचित 'नामलिङ्गानुशासन' वा 'अमरकोष' है। अमरकोष के मङ्गलश्लोक से और इसकी टीकाओं के व्याख्यान से यह सिद्ध होता है कि यह बौद्धधर्मावलम्बी था। इसके माता पिता और निवास के सम्बन्ध में कहीं भी उल्लेख नहीं है। परम्परा से अमरसिंह का नाम विक्रमादित्य के दर्बार के नवरत्नों में मिलता है। किन्तु इस विक्रमादित्य का ही

समय निश्चित न होने से अमरसिंह के समय निर्धारण में
इसका कोई उपयोग नहीं है। अमरकोष का चीन, और तिब्बती
भाषा में ई० ६ ष्ठ शतक में अनुवाद हुवा है। चीन भाषा का
अनुवाद उज्जैनी के गुणरात ने किया था। जब ई० ६ ष्ठ शतक
में इसका अनुवाद चीनभाषा में हुवा तब यह अवश्य ही
वर्ष पूर्व में रचा गया होगा। अमरसिंह ने बौद्ध-धर्मानुयायी
होने पर भी बौद्ध चन्द्रगोमिन् के व्याकरण का कहीं भी
अनुसरण नहीं किया[2] है। इससे अनुमान किया गया है कि
अमरकोष के रचनाकाल में चन्द्रगोमिन् का व्याकरण
रचा नहीं गया था। चन्द्रगोमिन् से वसुरात ने व्याकरण का
अध्ययन ई० ४८० के लगभग किया था। इसलिये चन्द्रगोमिन्
का व्याकरण रचना काल ई० ४७० के करीब माना गया है।
यह अनुमान यदि ठीक हो तो अमरसिंह का समय ई० ४
शतक मानना आवश्यक होता है। इसीका दृढ़ीकरण अ
कोष के दूसरे वचनों से किया गया है। अमरकोष के प्र
काण्ड के कालवर्ग में "द्वौ द्वौ मार्गा[3] (माघा) दि

---

१ मेक्समूलर की "India, what can it teach us" 1st ed.
पृ० ३२८।

२ "शालार्थोऽपि परा राजा मनुष्यार्थादराजकात्"।

क्षीरस्वामि की टीका ३ य काण्ड लिङ्ग-संग्रह वर्ग श्लोक

३ 'मार्गादि' और 'माघादि' दोनों पाठ मिलते हैं। क्षीरस्वामी
'माघादि' पाठ लिया है। परन्तु आगे मार्गशीर्ष से गणना प्रारम्भ
'मार्गादि' पाठ ही ठीक प्रतीत होता है।

...तुस्तैरयनं त्रिभिः'' इसी वचन के अनुसार अमरसिंह के और उसके पूर्व काल्य के समय में भी हेमन्तऋतु से ...आरम्भ होता था ऐसी प्रतीति होती है। गणितशास्त्र ...सार यह समय आज से १५०० वा १६०० वर्ष पूर्व का ...होता है। इसलिये ई० ४ थं शतक अमरसिंह का समय ...रता है।

...मलिङ्गानुशासनः—इसीको 'अमरकोष' कहते हैं। ...३ काण्ड हैं। प्रत्येक काण्ड में अनेक वर्ग हैं। सम्पूर्ण ...प्राय: अनुष्टुप् छन्द ही में है। इसकी रचना में पूर्व के ...ग्रन्थों की सहायता ली गई है। अमरकोष के प्राचीन ...कार क्षीरस्वामी और सर्वानन्द ने अमरकोष के पूर्ववर्ति ...तथा उनके रचयिताओं में, व्याडि की उत्पलिनी, कात्या-...का कात्यकोष, वाचस्पतिका शब्दार्णव, भागुरि का त्रिका-...र, विक्रमादित्य का संसारावर्त, धन्वन्तरि का निघण्टु, ...दत्त की अमरमाला, वररुचि की लिङ्ग-विशेष-विधि ...का उल्लेख किया है। इन सब कोषों के गुणों को लेकर ...कोष की रचना की गई है। इसलिये अमरकोष में कोई ...त्रुटि नहीं है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि अमरकोष ...रचना के बाद उसके पूर्ववर्ति सब कोषों को लोग भूलने ...और अमरकोष के बाद विरचित कोषों में भी कोई इतना ...द तथा लोकप्रिय न हो सका। इसकी लोकप्रियता इसकी

...कृष्णाजी गोविन्द ओक के अमरकोष की भूमिका।

बहुसंख्याक टीकाओं से भी सिद्ध हो सकती है। इसपर ५० से अधिक टीकाएँ हैं जिनमें क्षीरस्वामी का 'अमरकोषोद्घाटन' और वन्द्यघाटीय सर्वानन्द का 'टीका-सर्वस्व' प्राचीन हैं। महेश्वर का 'अमरकोष-विवेक' और भानूजी दीक्षित की 'व्याख्यासुधा' वा 'सुबोधिनी' अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इन टीकाकारों में सुभूतिचन्द्र सदृश बौद्ध, आशाधर पण्डित व नाच[illegible] राज सदृश जैन, मल्लिनाथ व अप्पय्य दीक्षित सदृश ब्राह्मण भी हैं।

शाश्वत (ई० ६०० ल० भ०)

समय निर्धारण—'अनेकार्थसमुच्चय' कोष ग्रन्थ का विषय वि[illegible]

इसका विरचित 'अनेकार्थ समुच्चय' नाम का कोष [illegible] इसके जीवन-चरित्र के विषय में भी कुछ ज्ञात नहीं है। इ[illegible] समय भी अभीतक ठीक २ निश्चित नहीं हो सका है। [illegible] अपने कोष के अन्त में कहा है कि "खुड्डु[1] सदृश वि[illegible] और कवि ने जो विद्या विलास राजा के सभ्य थे, वरा[illegible] महाबल सदृश कवियों की सम्मति से, इस ग्रन्थ को [illegible] था।" पुरातत्त्व संशोधक विद्वानों ने इस वराह को ई० [illegible] शतक के वराह मिहिर को ही माना है। शाश्वत कोष [illegible] श्लोक और श्लोकार्थ अमरकोष के श्लोकों के शब्दशः [illegible] हैं और शाश्वत के कोष का नाम 'अनेकार्थ समुच्चय' है।

---

१ महाबलेन कविना वराहेण च धीमता।
सह सम्यक् परामृश्य निर्मितोऽयं प्रयत्नतः। इत्यादि।

अनुमान होता है कि इसने अमरकोष के नानार्थ-वर्ग को संक्षिप्त जानकर उसीको विस्तार करने का प्रयत्न किया है। इसका समय अमरसिंह के बाद और वराह मिहिर के या समकालिक माना गया है।

अनेकार्थसमुच्चयः—इसीको 'शाश्वत कोष' कहते हैं। केवल अनेकार्थक शब्दों का संग्रह है। इसमें अनुष्टुप् के ८०० श्लोक हैं जो छ विभागों में विभक्त हैं। प्रथम विभागों में प्रत्येक शब्द का अर्थ क्रम से ४, २ और १ चरणों दिया है। अर्थात् ऐसे नानार्थवाची शब्द हैं जिनका अर्थ श्लोक में, आधे में और एक पाद में होता है। चतुर्थ में चरण में नानार्थबोधक शब्द हैं। पञ्चम और षष्ठ में य हैं।

भट्ट हलायुध (ई० १० म शतक)

अभिधान रत्नमाला कोष ग्रन्थ का विषय विभाग—हलायुध टीका। इसका विरचित 'अभिधान रत्नमाला' नाम का कोष है। के जीवन चरित व समय के विषय में खण्ड काव्य प्रकरण लिखा गया है।

अभिधानरत्नमालाः—यह कोष है। इसके ५ काण्ड हैं। प्रथम ४ काण्ड स्वर्, भूमि, पाताल और सामान्य काण्ड हैं इनमें शब्दों के पर्यायवाचक अनेक शब्द हैं। पञ्चम अनेकार्थ काण्ड है जिसमें नानार्थक तथा अव्यय शब्दों का संग्रह है। इसमें लिङ्ग बोध के लिये कोई शब्द न रखकर केवल

शब्दों के रूपभेद से ही लिङ्ग ज्ञान कराया है। अन्य विषयों में
यह अमरकोष के सदृश है किन्तु इसमें अनेक छन्दों के करीब
६०० श्लोक हैं। इस कोष में अमरदत्त, वररुचि, भागुरि और
गोपालित कोषकारों का निर्देश[1] है। गोपालित व हलायुध
कोष द्वादश शतक से आगे प्रमाण माने गये हैं। मंख ने अपने
कोष में भी इसको प्रमाण माना है। इसकी श्रीमद्राज
विरचित टीका 'हलायुध टीका' के नाम से ज्ञात है।

यादव प्रकाश (ई० १०५५—११३७)

यादवप्रकाश का जीवन चरित्र—समयनिर्धारण—वैजयन्ती कोष के
विषय विभाग।

इसका बनाया 'वैजयन्ती' नाम का कोष है। पहिले यह
प्रसिद्ध विशिष्टाद्वैत मत प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य का गुरु
किन्तु अन्त में इसने उससे धर्मदीक्षा ली थी। इसके समय के
सम्बन्ध में २ मत प्रचलित हैं। कोई इसका समय ई०१०१७ से
११३७ और अन्य ई० १०५५ से ११३७ मानते हैं। वैजयन्ती
का निर्माण काल ई० १०५० के लगभग माना गया है। इसकी
जन्मभूमि काञ्चीनगरके पास तिरुपुत्कुली अथवा गृध्रसरस मानी
जाती है। यह पहिले शङ्कराचार्य के अद्वैतमत का अनुयायी था।

वैजयन्तीः—इस कोष के दो भाग हैं। प्रथम में पर्याय

---

१ यममरदत्तवररुचिभागुरि-वोपालितादि-शास्त्रेभ्यः।
अभिधानरत्नमाला कविकण्ठविभूषणार्थमुद्ध्रियते॥
अभिधान रत्नमाला २ प्रास्ताविक श्लोक।

शब्दों का संग्रह है। दूसरे में नानार्थक शब्दों का संग्रह प्रथम भाग स्वर्, अन्तरिक्ष, भूमि, पाताल और सामान्य-काण्डों में विभक्त है। द्वितीय भाग के-द्व्यक्षर, त्र्यक्षर और—ये तीन काण्ड हैं। प्रत्येक काण्ड में कई अध्याय अध्याय अमरकोष के वर्गों से विस्तृत हैं। इसके शब्दों के अध्यायों में शब्दों की योजना आरम्भ के क्रम से की गई है। इसमें काण्डों का अध्याय-विभाग के अनुसार किया गया है। इसकी परिभाषाएँ अमर-के सदृश ही हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमें वैदिक भी हैं और इसका प्रामाण्य भी विशेष है।

महेश्वर (ई० ११११)

श्वर का जीवन चरित्र—समय निर्धारण—इसका विरचित ग्रन्थ —। साहसाङ्कचरित—विश्वप्रकाश कोष का विषय विवरण—भेद प्रकाश कोष का विषय विवरण।

इसके विरचित 'विश्व-प्रकाश' और 'शब्द-भेद-प्रकाश' हैं। यह श्रीब्रह्म का पुत्र और कृष्ण का पौत्र था। इसका वैद्यों के कुल में हुवा था। यह स्वयं वैद्यक शास्त्र का विद्वान् था। साहसाङ्क राजा का राजवैद्य और चरक का प्रसिद्ध टीकाकार हरिचन्द्र[1] इसका पूर्व-पुरुष था।

---

[1] श्रीसाहसाङ्कनृपतेरनवद्यवैद्यविद्यातरङ्गपदमद्वयमेव विभ्रत्।
चन्द्रचारुचरितो हरिचन्द्रनामा स्वव्याख्यया चरकतन्त्रमलञ्चकार।

विश्वकोष प्रस्तावना श्लो० ५।

विश्वकोष की प्रस्तावना में ग्रन्थकर्ता ने हरिचन्द्र से प्रारम्भ कर अपने सब पूर्वजों का वर्णन किया है। इसने विश्वप्रकाश का निर्माण काल[1] ई० ११११ उस ग्रन्थ के अन्त में दिया है। इसका विरचित 'साहसाङ्क चरित' काव्य भी था ऐसा निर्देश विश्वप्रकाश की प्रस्तावना में मिलता है।

विश्वप्रकाशः—यह नानार्थ शब्दों का कोष है। इसमें अमरकोष के सदृश अन्तिम वर्णानुक्रम से शब्दों की योजना है। इसमें भी प्रत्येक अध्याय में एकाक्षर द्व्यक्षर त्र्यक्षरादि क्रम से सात अक्षर तक के शब्दों का क्रम से संग्रह है और उसीके अनुसार कैकक, कद्विक, कत्रिक, आदि अध्यायों के नाम हैं। अन्त में अव्ययों का संग्रह है। इसमें अमरकोष के सदृश स्त्री पुमान् आदि शब्दों का उपयोग न कर शब्दों की पुनरुक्ति से ही लिङ्गभेद प्रकट किया है। आदि और अन्त के श्लोकों को छोड़कर सर्वत्र अनुष्टुप् छन्द का ही प्रयोग है। इसमें भोगीन्द्र, कात्यायन, साहसाङ्क, वाचस्पति, व्याडि, विश्वरूप, अमर, मङ्गल, शुभाङ्ग, गोपालित और भागुरि का निर्देश[2] है जिनके ग्रन्थों के आधार से इस कोष की रचना

---

१ रामानलव्योमरूपैः (१०३३) शककालेऽभिलक्षिते।
कोषं विश्वप्रकाशाख्यं निरमाच्छ्रीमहेश्वरः॥

२ भोगीन्द्र-कात्यायन-साहसाङ्क-वाचस्पति-व्याडि-पुरस्सराणाम्।
सविश्वरूपामरमङ्गलानां शुभांग-वोपालित-भागुरीणाम्।
कोषाऽवकाशादित्यादि प्रास्ताविक श्लोक १६, १७।

गई थी। इस कोष की प्रसिद्धि उसी शतक में भारतवर्ष में हो गई थी क्योंकि बंगाल के वन्धघाटीय सर्वानन्द ने (...६) और गुजरात के हेमचन्द्र ने (१०८८—११७२) ...२ ग्रन्थ में इसका निर्देश किया है। इस कोष का महत्व भी संस्कृत साहित्य के विद्वानों में है।

शब्द-भेद प्रकाशः—यह विश्व प्रकाश का परिशिष्ट ही है। ...४ निर्देश शब्दभेद, वकारभेद, ऊष्मभेद और लिङ्गभेद ...स शब्दभेद प्रकाश पर ई० १५६८ में ज्ञानविमलमणि द्वारा ...चित टीका प्रसिद्ध है।

मङ्ख (ई० १२ श शतक)

अनेकार्थकोष की विषय विवृति—टीका।

इसका विरचित 'अनेकार्थ कोष' है। इसके जीवन चरित ...के विषय में महाकाव्य प्रकरण में लिखा जा चुका है।

अनेकार्थ कोषः—इसमें नानार्थक शब्दों का एकत्रीकरण ...विश्वरूप कोष के सदृश इसमें भी शब्दों की योजना अन्त्य-...नुक्रम के अनुसार है। इसमें १००७ श्लोक हैं। इसका ...र विशेष कर काश्मीर ही में दिखाता है। इसकी टीका ...निर्देश हेमचन्द्र के अनेकार्थ-संग्रह के टीकाकार महेन्द्र-...रि ने किया है। यह टीका स्वयं मंख की वा उसके किसी ...ष्य की बनाई है।

अजयपाल (ई० ११४० के पूर्व)

समयनिर्धारण—नानार्थ संग्रह कोष का विषय विचार।

इसका बनाया 'नानार्थ संग्रह' नाम का कोप है। यह बौद्ध
धर्मावलम्बी था। गणरत्न महोदधि (ई० ११४०) में इसका
निर्देश मिलता है। सर्वानन्द (ई० ११५६) के टीका-सर्वस्व
में और केशव स्वामी (ई० १२-१३ वी सदी) के नानार्थार्णव-
संक्षेप में भी इसका उल्लेख है। इसलिये इसका समय
ई० ११४० के पूर्ण ही है।

नानार्थ संग्रहः— इसमें अनेक अर्थ वाले शब्दों का संग्रह
है। इसमें १७३० के लगभग शब्द हैं। इसके अधिकांश शब्द
शाश्वतकोष अर्थात् अनेकार्थ समुच्चय में मिलते हैं। इसमें
शब्द योजना भी उसी कोष के अनुसार है। इसमें अव्ययों को
अलग न देकर प्रति अध्याय के अन्त में दिया है।

धनञ्जय (ई० १२ श शतक)

नाम माला कोष का वर्णन—इस नाम के अन्य कोप।

इसका रचित 'नाम माला' कोष ग्रन्थ है। इसके विषय में
विस्तार पूर्वक महाकाव्य प्रकरण में लिखा गया है।

नाम मालाः—यह कोष बनारस में 'द्वादश कोश संग्रह' में
छपा है। इसमें २०० श्लोक हैं ऐसा अन्तिम ५ श्लोकों में
रचयिता ने स्वयं कहा है। इसमें नानार्थक शब्द नहीं हैं। परन्तु
अन्य उपलब्ध नाम-माला की एक हस्त लिखित प्रति में
नानार्थ वर्ग के भी ५० श्लोक हैं।

नाम-माला नाम के ३ कोषों का उल्लेख मिलता है जिनमें
कात्यकी नाम-माला, धनञ्जय की नाम-माला और आर्यदे

थित नाममाला जिसका निर्देश सर्वानन्द ने कई बार
टीका में किया है।

पुरुषोत्तम देव (ई० ११५६ के पूर्व)

समय निर्धारण—इसके विरचित भाषावृत्ति के अतिरिक्त अन्य ५ —हारावलि, त्रिकाण्डशेष, वर्णदेशना, एकाक्षरकोष और द्विरूपकोष— ग्रन्थों की विषयविवेचना और टीकाएँ—अन्य कर्तृक एकाक्षर कोष द्विरूप कोष।

इसके विरचित 'हारावलि' 'त्रिकाण्डशेष' 'वर्णदेशना' क्षरकोष' और 'द्विरूपकोष' हैं। यह बौद्ध-धर्मावलम्बी करण था। इसके जीवन चरित्र के विषय में कहीं भी ख नहीं है। अमरकोष के टीकाकार सर्वानन्द ने ११५६) इसके चारों ग्रन्थों के वचन उद्धृत किये हैं। ये यह ई० (११५६) के बाद का नहीं हो सकता। इसी के करीब के गोईचन्द्र वैयाकरण ने भी इसका निर्देश है। ई० १२ वीं सदी के मंख वा हेमचन्द्र ने इसका वा के ग्रन्थों का कहीं भी निर्देश नहीं किया है। इसकी विर- भाषावृत्ति के प्रथम श्लोक की टीका करते हुवे सृष्टि- र्य ने कहा है कि भाषावृत्ति ग्रन्थ वंग के राजा लक्ष्मण[१] (ई० १११६—११६६) की आज्ञा से रचयिता ने लिखा कोई विद्वान् लक्ष्मण सेन का ई० ११६६ के बाद गद्दी

---

[१] वैदिकप्रयोगानर्थिनो राज्ञो लक्ष्मणसेनस्य आज्ञया प्रकृते कर्मणि वृत्ते लघुतायां हेतुमाह भाषायामित्यादि। भाषावृत्ति पृ० २।

पर आना मानते हैं। उनके मत में भाषावृत्ति की रचना लक्ष्मण-सेन की युवराजावस्था में हुई ऐसा मानना पड़ता है। पुरु-षोत्तम देव ने जनमेजय और धृतिसिंह को हारावलि में अपना समकालिक[1] कहा है और वाचस्पति के शब्दार्णव, व्याडि की उत्पलिनी और विक्रमादित्य के संसारावर्त को अपना आधार बताया है। उपर्युक्त छ ग्रन्थों के अतिरिक्त इसके विरचित अन्य कोष तथा व्याकरण के ६ ग्रन्थ आफ्रेक्ट ने सूची में दिये हैं। त्रिकाण्ड-शेष के टीकाकार शीलस्कन्ध यतिवर ने पुरुषोत्तम देव को ई० १४ श शतक का कलिङ्गराज पुरुषोत्तमदेव माना है। परन्तु यह बात प्रमादात्मक है प्रायः सर्वानन्द की टीका अवलोकन न करने ही से यह भ्रान्ति हुई है।

हारावलिः—इस कोष में २७० श्लोक हैं जो पर्याय-वाचक और नानार्थक इन दो विभागों में विभक्त हैं। पर्याय-वाचक के तीन अध्याय हैं वे क्रम से एक-श्लोकात्मक, अर्धश्लोका-त्मक और पादात्मक पर्यायों में हैं। नानार्थक विभाग के भी ३ अध्याय हैं जिनमें क्रम से अर्धश्लोक पाद और एक शब्द के अर्थ दिये हैं। इस कोष में प्रायः अप्रसिद्ध शब्द ही संगृहीत हैं। प्रसिद्ध शब्दों का संग्रह त्रिकाण्ड-शेष में है। इसके

---

१ सुधिया जनमेजयेन यत्नात् धृतिसिंहेन समं निरूपितेयम्।
विदितो बहुदृश्वभिः कवीन्द्रैर्भुवि कोषानुमतः श्रमो मदीयः।
हारावलि श्लोक [illegible]।

वा बारह वर्ष[1] में हुई ऐसा ग्रन्थकर्ता ने अन्त में कहा है। और बारह मास[2] का भी उल्लेख मिलता है। इसपर मथु-नाथ शुक्ल विरचित टीका है।

त्रिकाण्ड शेषः—इसके नाम से ही अनुमान होता है कि त्रिकाण्डकोष वा अमरकोष का परिशिष्ट ग्रन्थ है। इसमें अमरकोष की परिभाषाएँ, काण्ड और वर्ग विभाग ही प्रयुक्त। अमरकोष में न मिलने वाले प्रसिद्ध शब्दों का इसमें संग्रह। इसमें हलायुध की अभिधान रत्नमाला के समान अनेक शब्द हैं। इसपर श्री सीलस्कन्ध जैन स्थविर की ई० १६१५ में रचित 'सारार्थचन्द्रिका' नाम की टीका है।

वर्ण-देशनाः—यह गद्य कोष है। इसमें वर्णों का विचार किया है। देशभेद, रूढिभेद और भाषाभेद से जो ख, क्ष, वा ह, वा ह, घ, में भ्रान्ति होती है उसको अनेक ग्रन्थों के आधार पर दूर कर स्पष्ट रूप से उनकी प्रतीति कराने का इसमें प्रयत्न किया है ऐसा ग्रन्थारम्भ में ही कहा[3] है।

---

[1] हारावलिर्निर्मितेयं मया द्वादशवत्सरैः।

उपसंहार श्लोक ४।

[2] हारावलि द्वादशमासमानैर्विनिर्मितेयं पुरुषोत्तमेन।

उपसंहार श्लोक ५।

[3] अत्र हि प्रयोगेऽवहुदृश्वनां श्रुतिसाधारण्यमात्रेण गृह्णतां खुर क्षुरादौ खकारक्षकारयोः सिंहाशिंघानकादौ हकार घकारयोः...तथा गौडादि-श्रुतिसाधारण्यात् हिण्डीरगुडाकेशादौ हकार डकारयोः भ्रान्तयः उपजा-

एकाक्षर कोषः—यह द्वादशकोष-संग्रह बनारस और अभिधानसंग्रह १ म भाग में मुद्रित है। इसमें एक अक्षर के शब्दों का अर्थ है।

महाक्षपणक, महीधर और वररुचि के बनाये एकाक्षर कोष भी हैं।

द्विरूपकोषः—यह भी अभिधान संग्रह १ म भाग में मुद्रित है। इसमें ७५ श्लोक हैं।

नैषधकार श्री हर्ष का बनाया भी द्विरूपकोष है।

हेमचन्द्र (ई० १०८८–११७२)

इसके विरचित अभिधान चिन्तामणि, अनेकार्थ संग्रह, देशी नाम माला और निघण्टु शेष नाम के कोष ग्रन्थ—इन ग्रन्थों का विषय [illegible] और टीकाएँ।

इसके विरचित 'अभिधान-चिन्तामणि' अनेकार्थसंग्रह 'देशी-नाम-माला' और 'निघण्टु शेष' ये कोष ग्रन्थ हैं। इसके जीवन-चरित्र तथा समय के सम्बन्ध में महाकाव्य प्रकरण में लिखा गया है।

अभिधान चिन्तामणिः—इसमें पर्यायवाचक शब्दों का संग्रह है। इसको 'अभिधान-चिन्तामणि-नाममाला' भी

यन्ते। अतस्तद्विवेचनाय कश्चिद्धातुपारायणे धातुवृत्त्युणादिषु प्रकृति-लिखनेन प्रसिद्धयोपदेशेन धातुप्रत्ययोणादिव्याख्याविलिखनेन क्वचिद्वृत्त-वचनेन श्लेषादिदर्शनेन वर्णदेशनेयमारभ्यते।

India office calalogue पृ० २९५।

हैं। इसमें देवाधिदेव, देव, मर्त्य, भूमि वा तिर्यक्, नारक, सामान्य ये छ काण्ड हैं। प्रथम काण्ड में केवल जैन देव धार्मिक शब्दों का संग्रह है। इसमें भिन्न २ छन्दों के श्लोक हैं। लिङ्गानुशासन ग्रन्थ में शब्दों का लिङ्ग-लिखने के कारण इसमें लिङ्गानुशासन नहीं है। इसपर काएं है जिनमें हेमचन्द्र की विरचित टीका यशोविजय-ग्रन्थमाला में मुद्रित है। देवसागरगणि कि व्युत्पत्ति-कर (ई० १६३०) और वल्लभगणिका सारोद्धार नाम टीकाएं भी प्रसिद्ध हैं। यशोविजय-जैन-ग्रन्थ-माला में अभिधान-चिन्तामणि के साथ हेमचन्द्र का विरचित शिष्ट ग्रन्थ 'शेष संग्रह' नाम का भी है।

अनेकार्थ-संग्रहः—इसमें अनेक अर्थ वाले शब्दों का संग्रह अनुष्टुप् छन्दों के १८२६ श्लोक हैं जो छ काण्डों में विभक्त इन काण्डों की रचना एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षरादि क्रम हैं। इसके अन्त में एक अव्ययों का परिशिष्ट काण्ड भी है। और अन्तिम अक्षर के क्रमानुसार प्रत्येक काण्ड में दो का आयोजन है। इसपर महेन्द्र सूरि विरचित 'अनेकार्थ-कर कौमुदी' नाम की टीका है।

देशीनाममाला:—यह प्राकृत कोष है। धनपाल के पाइअलच्छी-नाम-माला' के आधार से इसकी रचना हुई है। गुजरात प्रान्त के उस समय के देशीय भाषा के शब्द हैं। इसमें संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द नहीं हैं

ऐसा कहा है। तथापि ऐसे भी शब्द इसमें अनेक हैं। इसमें
८ वर्ग हैं और शब्दों की रचना आरम्भ के वर्ण क्रम से
शब्दाक्षर क्रम से है। इसमें नानार्थक शब्द भी हैं। इस
ग्रन्थकार ने ही टीका लिखी है।

निघण्टुशेषः—यह अभिधान चिन्तामणि के वनौषधि
वर्ग का ही परिशिष्ट है। इसके ३९६ श्लोक हैं जो वृक्ष, गुल्म
लता, शाक, तृण और धान्य इन छ काण्डों में विभक्त हैं।

केशवस्वामी (ई० १२ श वा १३ श शतक)

जीवन चरित्र—समयनिर्धारण—चोलके राजा राजराज का
पण्डित—नानार्थार्णव संक्षेप वा राजराजीय कोष—इस ग्रन्थ का
परामर्श।

इसका विरचित 'नानार्थार्णव-संक्षेप' नाम का कोष है।
यह वत्सगोत्री था। यह द्रविड़ वात्स्यायन भट्ट कृष्णपुर
का पुत्र और भवस्कन्ध का शिष्य था। चोलप्रान्त में रा
चोल राजा ने जो राजेन्द्र चोल नाम का महा अग्रहार स्था
किया था उसी में यह रहता था। यह सामवेद-वेत्ताओं
श्रेष्ठ था। इसने चोल के राजा राजराज को अपना सं
बताया है। यह राजराज कुलोत्तुङ्ग नृपति का पुत्र था। चो
वंश में कुलोत्तुङ्ग राजराज नाम के दो पिता पुत्र ई० ११
वा १२ श शतक में हुवे हैं। इसलिये केशव स्वामी किस रा
का आश्रित था यह कहना कठिन है। मल्लिनाथ और उस
पूर्ववर्ती अरुणाचल नाथ ने अपनी रघुवंश और कुमार-सम्भव

टीकाओं में इस कोष का निर्देश किया है। इसी राजराज के आश्रय से कवि ने इस कोष की रचना की थी और इसलिये इस कोष का दूसरा नाम राजराजीय रक्खा है।

नानार्थार्णवसंक्षेपः—इसमें अनेक अर्थ वाले, एक ही शब्द के एकाक्षर से लेकर षडक्षर तक के शब्द क्रम से छ काण्डों में संगृहीत हैं। प्रत्येक काण्ड के स्त्रीलिङ्ग, पुंल्लिङ्ग, नपुंसकलिंग, वाच्यलिंग और नानालिंग ये पांच अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में अकारादि वर्ण क्रम से शब्दों की योजना की गई है। अमरकोष में न मिलने वाले अनेक शब्द इसमें हैं। इसकी श्लोक संख्या ५८०० है। इस कोष में वैदिक शब्द और ३० प्राचीन कोषकारों का नाम निर्देश है।

कल्याण मल्ल (ई० १२६५ के पूर्व)

समयनिर्धारण—शब्दरत्नदीप ही शब्दरत्नप्रदीप हो सकता है—

इसका विरचित 'शब्दरत्नदीप' नाम का कोष है। इस का दूसरा नाम शब्दरत्नप्रदीप है। रचयिता के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। इस कोष का उल्लेख सुमतिगणि विरचित ई० १२६५ के 'गणधरसार्द्धशतकवृत्ति' में मिलता है। इसलिये रचयिता ई० १२६५ के पूर्व का है।

शब्दरत्नप्रदीपः—यह ५ काण्डों का कोष है।

मेदिनि कर (ई० १४ श शतक के पूर्व)

जीवन चरित्र—समयनिर्धारण—नानार्थशब्दकोष का विषय विवरण।

इसका विरचित 'नानार्थशब्दकोष' है। इसके पिता का नाम प्राणकर था। ई० १४३१ के रायमुकुट ने कहा है कि यह कोष इसने विश्वप्रकाश के आधार से रचा था। रायमुकुट से बहुत पूर्व में यह हुवा था ऐसा विद्वानों का अनुमान है। इसके ग्रन्थ में निर्दिष्ट सभी ग्रन्थकार ई० ११५९ के सर्वानन्द से भी पूर्ववर्ती हैं। ई० १३७५ में पद्मनाभदत्त ने 'पृषोदरादि' लिखकर 'भूरिप्रयोग' नामक कोष में मेदिनि का निर्देश किया है। माघकाव्य के २ य सर्ग के ६५ वें श्लोक की टीका में मल्लिनाथ (ई० १३५०) ने मेदिनि का निर्देश किया है। "मंख टीका की एक पुस्तक में मेदिनि का उद्धृत वचन मिलता है और इस टीका का समय विद्वानों ने ई० ११७५ से पूर्व माना है" यह प्रमाण कल्पद्रुकोष की भूमिका में दिया है। परन्तु मेदिनिकोष में टिप्पणी में यह उल्लिखित वचन कहीं नहीं है। अतः यह प्रमाण सन्दिग्ध है। परन्तु मेदिनि ई० १३७५ के पद्मनाभ दत्त का पूर्ववर्ती था ऐसा मानना आवश्यक है।

नानार्थ-शब्दकोषः—इसको मेदिनि-कोष भी कहते हैं। इस कोष की रचना विश्वकोष की रचना के अनुसार है। विश्वकोष के कई श्लोक भी इसमें उद्धृत हैं। ग्रन्थारम्भ में परिभाषा के विषय में अमरकोष का अनुकरण ही नहीं है किन्तु उसके श्लोक भी शब्दशः गृहीत हैं।

---

१ कमिति प्रकृत्यमस्तके च सुखेऽपि चेति अव्ययप्रकरणे मेदिनिः।

वामनभट्ट बाण (ई० १४५०)

शब्दरत्नाकर कोष—इस कोष का विषयविचार।

इसका विरचित 'शब्दरत्नाकर कोष है। इसके जीवन-चरित तथा समय के विषय में खण्डकाव्य प्रकरण में लिखा गया है।

शब्दरत्नाकरः—यह कोष तीन काण्डों में विभक्त है। प्रत्येक काण्ड में अनेक अध्याय हैं। नानार्थक शब्द और इनके अन्त में दिये हैं। इस कोष का निर्देश अप्पयदीक्षित ने 'नाम-संग्रह-माला' नामक कोष में किया है।

केशव (ई० १६६०)

समयनिर्धारण—केशव नाम की तीन व्यक्तियाँ और उनके ग्रन्थ—कल्पद्रु कोष का विषय बिचार।

इसका विरचित 'कल्पद्रु कोष' है। इसके जीवन चरित्र के विषय में कुछ भी पता नहीं चलता। ग्रन्थ के आरम्भ में इसने त्रिमूर्ति और विश्वेश्वर का वन्दन किया है। इसके बाद इन्द्र, वाचस्पति, व्याडि भागुरि, अमर, मंगल, साहसाङ्क, महेश और जिनान्तिम का निर्देश किया है। यह जिनान्तिम हेमचन्द्र ही है। इसलिये यह साहसाङ्क, महेश और हेमचन्द्र के बाद का है। किरातार्जुनीय की टीका में मल्लिनाथ ने कोषकार केशव का निर्देश किया है। किन्तु वह वचन नानार्थक वर्ग का है। कल्पद्रु कोष में नानार्थ वर्ग नहीं है और मल्लिनाथ के उदाहरण में दिया हुवा वचन केशव स्वामी

के नानार्थार्णव-संक्षेप में भी नहीं मिलता है। इसलिये विद्वानों ने अनुमान किया है कि वह केशव कोई तीसरा होगा। अतः ई० १२ वा शतक के बाद कभी यह केशव हुवा ऐसा मानना पड़ता है। किन्तु, कल्पद्रु कोष में 'तस्याः[1] स्यात्साम्प्रतं कलि' 'तद्गताब्दाः कुतिथिभाः' कहकर ४७६१ संख्या दी है जो कि विक्रम संवत् १७१६ वा ई० १६६० के बराबर है और यही कल्पद्रु कोष का निर्माण-काल मानना आवश्यक है।

कल्पद्रु-कोष:—इसमें पर्याय वाचक शब्दों का संग्रह अन्य सब कोषों से अधिक है। इसकी श्लोक संख्या ४००० है। इसके भूः, भुवः और स्वः नाम के तीन स्कन्ध हैं। प्रत्येक स्कन्ध के अनेक प्रकाण्ड हैं। इसमें लिंग बताने के लिये अमरकोष के सदृश स्त्री, पुं आदि शब्दों का प्रयोग किया है। इसकी कोई टीका उपलब्ध नहीं है।

मथुरेश विद्यालङ्कार (ई० १६६६)

समयनिर्धारण—इसकी विरचित अमरकोष की टीका—शब्दरत्नावलि कोष का विषय विचार।

इसका विरचित 'शब्दरत्नावलि' नाम का कोष है। इसके जीवन चरित्र के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। इसने ई० १६६६ में अमरकोष की सारसुन्दरी नाम की टीका लिखी थी जिससे इसका समय निश्चित किया जा सकता है।

---

१ कल्पद्रुकोष—गायक वाडसीरीज्।
पृ० ४१४ श्लो० ८२।८३।

शब्दरत्नावलि:—यह कोष अमरकोष के सदृश है। इसका नानार्थवर्ग भी अक्षर संख्या के क्रम से रचा गया है।

कृष्ण कवि (ई० १७६८)

जीवन चरित्र—समय निर्धारण—वैभाषिक कोष का विषय परामर्श टीका।

इसका विरचित 'वैभाषिक कोष' है। यह कृष्ण कवि लक्ष्मण और मल्लिका का पुत्र माना गया है। इसने ग्रन्थ का समय गताब्द कलि ४८६६ अर्थात् ई० १७६८ दिया है। इसकी विरचित इसी कोष की टीका ई० १७८१ की है।

वैभाषिक कोष:—यह ११ सर्गों का कोष है। इसमें ११ श्लोक हैं। इसमें एक ही शब्द अनेक रूप में कैसे युक्त हो सकता है यह दिखाया है। इसपर कवि-विरचित टीका है।

राधाकान्त देव (ई० १८२२-१८५८)

जीवन चरित्र—समय निर्धारण—लार्ड डल्हौसी और केनिङ्ग का कालिक—शब्द कल्पद्रुम कोष का विषय विचार।

इसका विरचित 'शब्दकल्पद्रुम कोष' है। यह कायस्थकुल में उत्पन्न हुवा था। इसका निवासस्थान मुर्शीदाबाद के पास था। यह वहां का छोटा सा राजा था और इसकी 'सर्' और "के. सी. एस. आई" आदि उपाधियां थी। यह वङ्गविद्या, हिन्दी, फारसी, अरबी, अंग्रेजी और संस्कृत का पण्डित था। यह लार्ड डल्हौसी और लॉर्ड केनिंग के समय में राजकीय उच्चपद

पर था। इसके राजेन्द्र नारायण और देवेन्द्र नारायण नाम के दो पुत्र थे। इसने अपना कोष ई० १८२२ और १८५८ के मध्य में लिखकर प्रकाशित किया था।

शब्द कल्पद्रुमः—यह आधुनिक पद्धति से लिखे हुये कोषों में सर्व प्रथम है। इसमें अकारादि क्रम से शब्दों की योजना है और संस्कृत साहित्य के सब विभागों से अनेक वचन उद्धृत किये गये हैं। इसलिये यह संस्कृत साहित्य के विश्वकोष (Cyclopaedia) का काम देनेवाला है। इसमें पर्यायवाचक और नानार्थक शब्द हैं। इसकी अन्य कोषों से विशेषता यह है कि इसमें धातुओं का भी समावेश है। इसमें वैदिक शब्द बहुत कम हैं।

सुखानन्द नाथ (ई० १८६४—१८८५)

जीवन चरित्र—समय—शब्दार्थ चिन्तामणि कोष और इसके

इसका विरचित 'शब्दार्थ चिन्तामणि' नाम का कोष है। यह स्रुघ्न (कलसी) के गौड़ कुल में पुष्करराज के वंश में उत्पन्न हुवा था। इसके पितामह पुष्कर राज और पिता तुलादिराम थे। इसका ज्येष्ठ भ्राता भवानी-शङ्कर था। इसका नाम धनपतिराज था। परन्तु यह बाल्यावस्था से ही विरक्त था। तेरह वर्ष की अवस्था में यह परमतत्त्व को जानने की इच्छा से शिवपुरी (काशी) में प्रति-हरानन्द के पास शास्त्रों का अध्ययन करने को आया था। गुरु ने उसका वैराग्य देख कर उसका नाम सुखानन्द रक्खा। विद्या पढ़ने के बाद अनेक

में घूमते २ यह जलन्धर में जा बसा। इसकी विद्वत्ता के र भज्जी देश के राणा आदि-रुद्रपाल ने इसको अपने पुत्र ढ़ाने को नियुक्त किया। वहां थोड़े दिन रहकर यह इन्द्र- में जा बसा। आगरा के किसी सेठ ने इसके विरचित को ई० १८६४ में छपवाना प्रारम्भ किया और ई० १८८५ कोष ४ भागों में छपकर तयार हुवा।

शब्दार्थ चिन्तामणिः—यह भी 'शब्दकल्पद्रुम' के सदृश आधुनिक पद्धति का कोष है। इसके ४ भाग हैं।

तारानाथ तर्कवाचस्पति (ई० १८७३-१८८४)

जीवन चरित्र—समय—वाचस्पत्य कोष का विषय विचार और भाग।

इसका विरचित 'वाचस्पत्य' कोष है। यह कलकत्ता के मेण्ट संस्कृत कालेज में दर्शन और व्याकरण का अध्या- था। दक्षिण वङ्ग के किसी पाश्चात्य पाठशाला निरीक्षक इसको इस कोष के प्रकाशन में बड़ी सहायता दी थी।

वाचस्पत्यः—यह भी आधुनिक पद्धति का कोष है। इसके भाग ५ जिल्दों में हैं। इसमें उपर्युक्त दोनों कोषों से के शब्द अधिक हैं।

वैद्यक कोष।

धन्वन्तरि (ई० ४ थे शतक के पूर्व)

जीवन चरित्र—समयनिर्धारण—इसके विरचित वैद्यक के ९ ग्रन्थ— न्तरि निघण्टु का विषय विचार।

इसका विरचित 'धन्वन्तरि निघण्टु' है। परम्परा में अ
अवतार-पुरुष माना जाता है । विक्रमादित्य के नव रत्नो
इसका नाम आया है। क्षीर-स्वामी की अमरकोषके वनौषधि
वर्ग के ५०वें श्लोक की टीका से ज्ञात होता है कि धन्वन्तरि
अमरसिंह का पूर्ववर्ती[1] था। इसलिये इसका समय ई० ३
शतक के पूर्व मानना आवश्यक है। इसके विरचित वैद्यक
९ ग्रन्थ आफ्रेक्त की सूची में दिये हैं।

धन्वन्तरि-निघण्टुः—यह वैद्यक कोप है। इस
९ अध्याय हैं । इसमें पारिभाषिक शब्दों के अर्थ के सा
उनका गुण दोष भी कथित है। इसकी रचना श्लोकों में है
अनन्तर के सर्व वैद्यक निघण्टु इसी के आधार पर रचे गये हैं

माधव कर (ई० ८ म वा ९ म शतक)

जीवनी और समय—विरचित अन्य ग्रन्थ माधव निदान—पर्याय
माला का विषय विचार।

इसका विरचित 'पर्याय-रत्न-माला' नाम का कोष है
विन्टर्निट्स्[2] के मत से इसका समय ई० ८ म वा ९ म शतक
है। इसके पिता का नाम इन्दुकर था। इसका विरचित अ
ग्रन्थ 'रुग्विनिश्चय' वा 'माधवनिदान' है।

---

१ 'बालतनय' इस शब्द की टीका में—'बालपत्रो यवासः खदिरः
इ्त्यर्थेषु धन्वन्तरि पाठमदृष्ट्वा बालपुत्रभ्रान्त्या ग्रन्थकृद्बालतनयमाह'।
क्षीरस्वामी टीका वनौषधि वर्ग श्लो० ५०।

२ विण्टर्निट्स् का संस्कृतसाहित्य का इतिहास जिल्द ३ पृ० ५५।

पर्याय रत्नमाला :—इस कोष में करीब २०० श्लोक हैं। पर्यायवाचक शब्द दिये हैं।

हेमचन्द्र (ई० १०८८-११७२)

वैद्यककोष निघण्टु शेष का विचार।

इसका विरचित वैद्यककोष 'निघण्टु शेष' है। इसके चरित्र आदि के सम्बन्ध में महाकाव्य प्रकरण में कहा है।

निघण्टुशेष :—यह हेमचन्द्र के अभिधान-चिन्तामणि कोष के वन्नौषधिवर्ग का परिशिष्ट ही है। इसमें ३६६ हैं जो ६ काण्डों में विभक्त हैं। इसके विषय में इसी में लिखा गया है।

मदनपाल (ई० १३७३)

वंशचरित्र और समय—इसके नाम से अन्य विषय के १ ग्रन्थ—पाल निघण्टु का विषय विचार।

इसका विरचित वैद्यककोष 'मदनपाल निघण्टु' है। इस में इसका रचनाकाल ई० १३७३ दिया है। यह दिल्ली उत्तर में की काष्ठा (कठ) नामक नगरी में राज्य करता यह टाकवंशीय राजा था। इसके पिता का नाम साधारण इसका पुत्र मान्धात था। यह अनेक पण्डितों का आश्रय-था और स्वयं भी भारी विद्वान् था। इसकी अभिनव-, पण्डितपारिजात और महाराजाधिराज उपाधियां थीं। के दर्बार में प्रसिद्ध मीमांसक और धर्मशास्त्र का वेत्ता विश्वेश्वर भट्ट था जिसने अपने आश्रयदाता के नाम से धर्म-

शास्त्र, के ४ ग्रन्थ लिखे थे। इसके नाम से धर्मशास्त्र, ज्योतिष, संगीत, वैद्यक आदि विषयों के ६ ग्रन्थ हैं।

मदनपाल निघण्टुः—इसका दूसरा नाम मदनपाल विनोद निघण्टु भी है। इसमें २२५० श्लोक हैं जो १४ वर्गों में विभक्त हैं। ग्रन्थ के अन्त में क्षत्रिकुल प्रशस्ति है जिससे इसके कर्ता का ज्ञान होता है। यह कोष वैद्यक में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें औषधियों के नाम गुण हैं। इसमें मराठी भाषा के अनेक पर्याय वाचक शब्द मिलते हैं। इससे अनुमान होता है कि किसी दाक्षिणात्य वैद्यने इसकी रचनाकर अपने आश्रयदाता मदनपाल के नाम से इसको प्रसिद्ध किया था।

नरहरि (ई० १७७४ के बाद)

जीवनी-समय—राजनिघण्टु वा निघण्टु राज वा अभिधान चूडा-मणि का विषय परामर्श।

इसका विरचित 'राजनिघण्टु' है। यह काश्मीर का निवासी था। इसमें मदनपाल निघण्टु का निर्देश मिलने से यह ई० १७७३ के बाद का है। इसके पिता का नाम ईश्वर सूरि था।

राज निघण्टुः—इसके दूसरे नाम 'निघण्टु राज' और 'अभिधान चूड़ामणि' हैं। यह वैद्यक-कोष सब निघण्टुओं से बड़ा है। यह प्राचीन सब निघण्टुओं के आधार पर रचा गया है। वैद्यक में उपयोगी प्रायः सभी शब्द इसमें मिलते हैं।

बौद्ध वा पालीकोषः।

बौद्ध वा पालीकोषों का स्वरूप—महाव्युत्पत्ति कोष का विषयविचार।

बौद्ध धर्म ग्रन्थों के अर्थ ज्ञान के लिये बहुत से बौद्ध-कोष लिखे गये हैं। इनका सादृश्य लौकिक संस्कृत कोषों की वा वैदिक निघण्टुओं से अधिक है। ये कोष छन्दो- नहीं हैं। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध 'महाव्युत्पत्ति' का कोष है।

महाव्युत्पत्तिः—यह २८४ अध्यायों का बहुत विस्तृत कोष इसमें करीब करीब ९००० शब्द हैं। इसमें बौद्धों के पारिभा- षिक शब्दों के साथ अन्य पशु, वनस्पति वाचक शब्द भी हैं।

मोग्गल्लान (ई० १२ श शतक)

समय—अभिधानप्पदीपिका का विषय परामर्श।

इसका विरचित 'अभिधानप्पदीपिका' नामक पाली-कोष यह पुस्तक ई० १२ वीं सदी के अन्त में रची गयी है।

अभिधानप्पदीपिकाः—यह पाली कोष है। यह अमर- कोष के सदृश छन्दोबद्ध है। इसमें अमरकोष का बहुत अनु- करण है। यहां तक की इसमें अमरकोष के कई श्लोक पाली- भाषा में परिणत कर ज्यों के त्यों लिखे मिलते हैं।

प्राकृत कोष।

धनपाल (ई० ९७२)

समय लच्छी कोष का विषय विचार—हेमचन्द्र की देशीनाममाला का निर्देश।

३६

इसका विरचित 'पाइय लच्छी नाममाला' नाम का प्राकृत कोष सबसे प्राचीन है। इसके जीवन चरित्र के सम्बन्ध में गद्य-काव्य प्रकरण में लिखा गया है।

पाइअलच्छी नाममाला:—यह प्राकृत कोष है। इसमें २७६ श्लोक हैं। ग्रन्थकार के कथन से ही मालूम होता है कि यह ग्रन्थ उसने अपनी छोटी भगिनी सुन्दरी के लिये ई० ९७२ में लिखा था। इसमें अध्यायादि कोई विभाग नहीं है। इसकी रचना गाथा छन्द में है। इसमें क्रम से श्लोक, श्लोकार्द्ध, पाद और शब्द में पर्यायवाचक शब्द दिये हैं। हेमचन्द्र ने अपनी देशी नाम-माला में इस कोष का उपयोग किया है। हेमचन्द्र तथा देशी नाम-माला के विषय में इसी प्रकरण में पूर्व में कहा जा चुका है।

विजय राजेन्द्र सूरि (ई० १९१३-१९२५)

अभिधान राजेन्द्र कोष—इसका विषय परामर्श।

इसका विरचित 'अभिधान राजेन्द्र कोष' है।

अभिधान-राजेन्द्र-कोष:—यह जैन धर्म और जैन साहित्य का आधुनिक प्रणाली का कोष (Encycopaedia) है। यह बड़ी २ सात जिल्दों में मुद्रित है। इसके करीब १०००० पृष्ठ हैं।

उपर्युक्त कोषों के अतिरिक्त छोटे मोटे अनेक अन्य कोष हैं जिनका स्थला भाव से यहां विचार नहीं किया गया है।

प्रकरण १३

छन्द: शास्त्र ।

न्दः शास्त्र अन्य शास्त्रों से अधिक महत्व का है। दाङ्गों में एक वेदाङ्ग छन्द:शास्त्र भी है। जिस प्रकार ार के बिना आधेय नहीं रह सकता है उसी प्रकार छन्दों बिना वेद के मन्त्रों का अस्तित्व ही नहीं हो सकता है। सलिये 'छन्दः पादौ तु वेदस्य' ऐसा शिक्षा में निर्देश किया ा है। निरुक्त के भाष्यकार ने तो यहां तक कहा है कि दों के बिना कोई वाणि ही नहीं निकल सकती[1]। छान्दोग्य[2] निषिद् में छन्द का महत्त्व बताते हुवे कहा है कि देवता मृत्यु के भय से विह्वल होकर ऋक्, यजुः और सामवेदों विष्ट हुवे और छन्दों ने मृत्यु से बचाने के लिये उनका च्छादन किया इसीलिये इनका नाम छन्द पड़ा[2]। छन्दों की आल्हाद कारिता अन्यत्र कहीं नहीं है। ये अत्यन्त श्रवण-

---

1 नाऽछन्दसि वागुच्चरतीति—निरुक्त ७। १२। २

2 यदेभिरात्मानमाच्छादयन् देवा मृत्योर्बिभ्यतः तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्—छान्दोग्य उपनिषद् ४र्थ खण्ड, १ म अध्याय २ य श्लोक। छन्दांसि छादनात्—निरुक्त ७। १२। २

सुखद होते हैं और इनको कण्ठस्थ करने में भी विशेष कठि-
नाई नहीं पड़ती। धार्मिक दृष्टि से छन्दःशास्त्र का ज्ञान वेदाध्य-
यन के लिये तथा मन्त्रों के जपने के लिये अपरिहार्य है।
हरएक मन्त्र के जपने के पूर्व उस मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता
आदि का सज्ञान उल्लेख आवश्यक है। इसी लिये कहा है कि

"अविदित्व ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः"।

छन्दस् शब्द पाणिनि की अष्टाध्यायी में और अन्य प्राचीन
ग्रन्थों में वेदों का बोधक है। वेदों के मन्त्रों को छन्दोबद्ध
देखकर ही यह शब्द वेदों के लिये प्रयुक्त हुआ होगा। छन्दस्
शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की गई है। 'छदि संवरणे'
इस धातु से छन्दस् शब्द को व्युत्पन्न करने से उसका आच्छा-
दन अर्थ होता है। 'चदि आल्हादे' इस धातु से 'चन्देरादेश्च छः'
इस उणादि सूत्र के अनुसार जो छन्दस् शब्द बनता है उसका
आल्हादन अर्थ होता है। छन्दस् शब्द के ये दोनों अर्थ प्राचीन
काल से ही माने गये हैं। छन्दः शास्त्र में छन्दस् शब्द का
लक्षण 'अक्षरसंख्यावच्छन्दः'[1] ऐसा किया है।

वेद के मन्त्रों के साथ ही उनके छन्दों का भी प्रादुर्भाव
हुवा है। वेद में गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति,
त्रिष्टुप् और जगती ये सात प्रधान छन्द हैं। इन सात छन्दों
की संज्ञा इनके पादों की विशेषता से मानी गई है। कात्यायन

---

१ पिङ्गल सूत्र व पृ० १०।

ऋक्-सर्वानुक्रमणी में इन सात छन्दों के व्यतिरिक्त अति-
गती, शक्वरी, अतिशक्वरी, यष्टि, अत्यष्टि, धृति और अति-
ति ये सात अन्य वैदिक छन्द भी निर्दिष्ट हैं। गायत्री छन्द में
की २४ अक्षरों का होता है, चार २ अक्षर बढ़ाने से क्रम से
युक्त चौदहों छन्द बनते हैं। शुक्ल-यजुः-सर्वानुक्रम सूत्र में
युक्त १४ छन्दों के साथ कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति,
कृति, अभिकृति और उत्कृति, ये सात छन्द भी बताये हैं
नकी रचना भी अतिधृति छन्द से चार २ अक्षरों को जोड़ने
क्रम से होती है। इन २१ छन्दों की रचना अक्षर-गणना से ही
ती है। इन्हीं छन्दों से लौकिक अक्षर छन्दों की उत्पत्ति हुई।
लौकिक छन्द तीन[1] प्रकार के हैं—१ गणच्छन्द, २ मात्राछन्द
अक्षरच्छन्द। वैदिक काल में छन्द विषयक ह्रस्व, दीर्घ मात्रा
और गणों के नियम नहीं थे। 'मयरसतजभनलगसम्मितम्'
ह छन्दः शास्त्र का पहिला नियम लौकिक छन्दों ही में
चरितार्थ है।

वैदिक छन्दों का विचार आरण्यक, श्रौतसूत्र, प्रातिशाख्य
और सर्वानुक्रमणी आदि ग्रन्थों में मिलता है। किन्तु इन ग्रन्थों
छन्दों विचार के साथ २ अन्य विषय भी हैं। केवल छन्दः-
शास्त्र विषयक वैदिक और लौकिक दोनों छन्दों का सब से

---

१ आदौ तावद्गणच्छन्दो मात्राछन्दस्ततः परम्।
तृतीयमक्षरच्छन्दः छन्दस्त्रेधा तु लौकिकम्॥
पिङ्गल सूत्र पृ० ४२।

प्राचीन ग्रन्थ पिङ्गल सूत्र है। यद्यपि पिङ्गल सूत्र में वैदिक और लौकिक दोनों ही प्रकार के छन्द हैं तथापि वैदिक छन्दों का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध न होने से पिङ्गलसूत्र की ही वेदाङ्ग में गणना होती है।

लौकिक छन्दों के गणच्छन्द और मात्राछन्द लौकिक संस्कृत के स्वतन्त्र छन्द माने जा सकते हैं। आर्याछन्द के गीति और उपगीति आदि भेद गणच्छन्द के अन्तर्गत हैं। वैतालीय, औपच्छन्दसिक आदि मात्राछन्द हैं। लौकिक संस्कृत के अक्षर छन्द यद्यपि वैदिक अक्षरच्छन्दों के बहुत कुछ सदृश हैं तथापि वे गण और यति के नियमों से नियन्त्रित हैं। वैदिक अनुष्टुप्, लौकिक संस्कृत में भी अनुष्टुप् नाम से ही प्रसिद्ध हुवा। त्रिष्टुप् छन्द, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति आदि छन्दों में परिणत हुवा। इसी प्रकार जगती से वंशस्थ, द्रुत विलम्बित आदि, शक्वरी से वसन्ततिलका आदि, अतिशक्वरी से मालिनी आदि, अत्यष्टी से हरिणी, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी आदि, अतिधृति से शार्दूलविक्रीडित आदि, प्रकृति से स्रग्धरा आदि अनेक छन्द निकले हैं। इनका सविस्तर विवरण पिङ्गल सूत्र आदि छन्दः शास्त्र के ग्रन्थों से ज्ञात हो सकता है।

पिङ्गल (ई० पू० २००)

पिङ्गल के भिन्न २ नाम—समय निर्धारण—पाणिनि, पिङ्गल और पतञ्जलि—पिङ्गलसूत्र का विषय परामर्श व टीकाएँ।

इसका विरचित 'पिङ्गलछन्दःसूत्र' नाम का ग्रन्थ है।

नाम पिङ्गलनाग, पिङ्गलमुनि, और पिङ्गलाचार्य भी ता' है। शुक्ल यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण में पैङ्ग ऋषि का मिलता है। इसी ऋषि के कुल में यास्क पैङ्गी जन्मा था। का अनुमान है कि पिङ्गलाचार्य भी इसी वंश का हो[२]। पिङ्गलाचार्य वेदाङ्ग भूत छन्दः शास्त्र का कर्ता माना जाता अतएव इसका समय वैदिक काल के करीब २ पहुँचता है। सूत्र का अधिक भाग वैदिक छन्दों की अपेक्षा लौकिक के प्रतिपादन में प्रयुक्त है। विद्वानों का अनुमान है कि सूत्र का वैदिक छन्द प्रतिपादन बहुत प्राचीन है। इस छन्द प्रकरण में प्रतिपादित सभी छन्द ऋग्वेद तथा वेदों में विद्यमान हैं। लौकिक छन्द का भी विचार कर निर्णय निकल सकता है कि पिंगल-सूत्र में प्रतिपादित छन्द का भाग भी ई० पू० १ म शतक के पूर्व का है। कि ई० १ म २ य सदियों में विरचित काव्य नाटकों में का पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है। पतञ्जलि को शेष का तार मानागया है। पिंगल की उपाधि भी नाग होने के पिंगल, पतञ्जलि ही का दूसरा नाम परम्परा में माना है। कोलब्रूक (Colebrook) महाशय ने स्पष्ट कहा है इसी पिंगलाचार्य ने पतञ्जलि के नाम से पाणिनि के व्या-

१ हलायुध की पिंगलसूत्र की टीका प्रास्ताविक श्लोक और दामोदर का वाणी भूषण पृ० ३२, २ य परिच्छेद श्लो० ९७।

२ वेबर का भारतवाङ्मय इतिहास पृ० ४६।

करण पर भाष्य और योगानुशासन रचा है। षड्गुरु शिष्य ने अपनी अनुक्रमणी-भाष्य में पिंगलाचार्य को पाणिनि का अनुज बताया है। यह अनुमान किया जाय तो अनुचित न होगा कि यह पतञ्जलि से भिन्न उसका पूर्ववर्ति और पाणिनि के पश्चात् कोई आचार्य हो। इसलिये इसका समय ई० पू० ३५० से प्राचीन है। पिंगल-सूत्र भी सूत्र-ग्रन्थ होने के कारण श्रौत, गृह्य आदि सूत्रों के समान इसका भी प्राचीनत्व मानना उचित ही है। भरत-नाट्य-शास्त्र में १४ श व १५ श अध्यायों में प्रतिपादित छन्द वा विषय इस ग्रन्थ के विषय से अर्वाचीन है। भरत नाट्य शास्त्र का समय ई० पू० २ य शतक माना गया है। अग्नि पुराण का छन्द का विषय पिंगल सूत्र से ही उद्धृत है।

पिङ्गल-सूत्र:—इसमें पाणिनि के अष्टाध्यायी के सदृश आठ ही अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में मात्रा और गण का परिचय; द्वितीय, तृतीय में वैदिक छन्दों का प्रतिपादन, चतुर्थ में आर्या वैतालीय छन्द, पञ्चम और षष्ठ में विषम, अर्धसम वृत्तकथन; यति नियम, षडक्षरपाद से द्वादशाक्षर-पाद तक के छन्दों का लक्षण, सप्तम में त्रयोदशाक्षर पाद से छब्बीस अक्षर के पाद तक के छन्दों का लक्षण; अष्टम में गाथा प्रस्तारादि निरूपण है।

इस सूत्र ग्रन्थ पर १४ टीकाएँ हैं जिनमें हलायुध की मृत-संजीवनी नाम की टीका सब से प्राचीन और परम्परागत महत्व की प्रकाशित है। इस टीका में सूत्र ग्रन्थ में जो भाग

अत्यन्त गूढ़ है वह भी परम्परा के आधार से पूर्ण है। पाणिनि की अष्टाध्यायी के समान यह सूत्र-ग्रन्थ भी बिना टीका के नहीं लग सकता। अतएव इस टीका का अत्यन्त महत्व है। इन टीकाओं के अतिरिक्त इसपर पिङ्गल-वार्तिक भी लिखा गया है।

प्राकृत पिंगल।

इसका रचयिता पिङ्गलाचार्य नहीं है—ईसा के बाद की सदियों में किसी अज्ञात कवि द्वारा विरचित—याकोबी का मत।

प्राकृत भाषा के छन्दों के विषय में लिखा हुवा यह ग्रन्थ भी पिङ्गलाचार्य विरचित ही माना जाता है। किन्तु विद्वानों का मत है कि प्राकृत भाषा के व्याकरण तथा छन्द के विषय में शास्त्रीय प्रतिपादन ईसा के बाद की सदियों में होने के कारण यह ग्रन्थ पिंगलाचार्य का बनाया नहीं हो सकता। सम्भव है कि किसीने किसी ईसवीय सदी में इसको पिंगल सूत्र के ढंग पर रचना कर इसका नाम प्राकृत पिंगल रख दिया हो। याकोबी[1] का मत है कि यह ग्रन्थ ई० १४ श शतक का है। सम्भव है कि यह ग्रन्थ इतना अर्वाचीन न हो।

कालिदास (ई० पू० १ म शतक)

श्रुतबोध के रचयिता के विषय में मतभेद—महाकवि कालिदास को इसका रचयिता मानने में बाधक प्रमाण का अभाव—श्रुतबोध का विषय विचार व टीकाएँ।

---

[1] विण्टर्निट्स् का संस्कृत साहित्य का इतिहास Vol—३, पृ० २७।

इसका विरचित छन्दोग्रन्थ श्रुतबोध नाम का है। यह कालिदास, महाकवि कालिदास है वा अन्य इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। ग्रन्थ में कहीं भी रचयिता के नाम का उल्लेख नहीं है। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि महाकवि कालिदास के पश्चाद्वर्ती किसी कालिदास ने इसको रचा है। कोई इसको वररुचि विरचित मानते हैं। इस ग्रन्थ के महाकवि कालिदास विरचित होने में और न होने में भी कोई उपयुक्त प्रमाण नहीं मिलते हैं। भाषा सौष्ठव की दृष्टि से यह ग्रन्थ महाकवि विरचित माना जा सकता है।

श्रुतबोध :—इसमें ४३ श्लोक हैं। प्रत्येक छन्द का नियम व वर्णन उसी छन्द के श्लोक में किया गया है। यह ग्रन्थ बालकों के लिये अत्यन्त उपयुक्त है। इस छोटे से ग्रन्थ पर १० टीकाएँ हैं जिनमें मनोहर शर्मा की सुबोधिनी, प्रसिद्ध और प्रकाशित है।

क्षेमेन्द्र (ई० ११।श शतक)

सुवृत्त तिलक का विषय परामर्श।

इसका विरचित 'सुवृत्त-तिलक' नाम का छन्दो ग्रन्थ है। इसके जीवन चरित्र तथा समय के सम्बन्ध में खण्ड-काव्य प्रकरण में लिखा जा चुका है।

सुवृत्त-तिलक: —इसके ३ विन्यास हैं। प्रथम विन्यास में प्रायः सभी प्रसिद्धवृत्त, लक्षण सहित दिये हैं; द्वितीय में उन वृत्तों का उदाहरणों के साथ गुणदोष विवेचन है; तृतीय में

वृत्तों का शास्त्र और काव्य में किस प्रकार विनियोग करना चाहिये यह बताते हुये किस २ वृत्त के लिये कौन २ कवि प्रसिद्ध थे इसका भी उल्लेख है।

हेमचन्द्र (ई० १०८८-११७२)

छन्दोनुशासन का विषय विचार।

इसका विरचित 'छन्दोनुशासन' नाम का छन्दोग्रन्थ है। इसके जीवनचरित्र तथा समय के सम्बन्ध में महाकाव्य प्रकरण में लिखा गया है।

छन्दोनुशासन:—यह छन्दः शास्त्र का ग्रन्थ[1] है।

केदार भट्ट (ई० १२ श शतक)

कवि चरित्र वर्णन—समय निर्धारण—वृत्त रत्नाकर ग्रन्थ का विषय टीकाएँ।

इसका विरचित 'वृत्तरत्नाकर' नाम का ग्रन्थ है। यह काश्यप गोत्र का था। इसके पिता का नाम पव्वेक था। यह शैव शास्त्रों का विद्वान् था। इसने शिवकी उपासना की थी। इसका पिता पव्वेक शैवागम का भारी ज्ञाता तथा वैदिक था। वृत्तरत्नाकर के लक्षण मल्लिनाथ ने अपनी काव्यों की टीकाओं में उद्धृत किये हैं। इसलिये भट्ट केदार का समय ई० १३०० के बाद नहीं हो सकता। वृत्तरत्नाकर का टीकाकार भट्ट नारायण प्रस्तार भेद के निरूपण में 'लग' क्रिया के सम्बन्ध में भास्कराचार्य की लीलावती का कथन उद्धृत करता है। नारायणभट्ट

---

[1] द्रष्टव्य: हेमचन्द्र पृ० ६३-८२।

का ऐसा करने में यह आशय ज्ञात होता है कि उस प्रकरण में केदार भट्ट ने भास्कराचार्य का अवश्य अनुकरण किया है। यदि यह ठीक हो तो केदार भट्ट का समय ई० १२०० से पूर्व नहीं हो सकता। किसी अवस्था में इसका समय ई० १३ शतक के बाद का नहीं हो सकता। नारायण भट्ट[1] ने अपना समय ई० १५४५ दिया है।

वृत्त रत्नाकरः—इसके छः अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में संज्ञाओं का परिचय, द्वितीय में मात्रा-वृत्तों का प्रतिपादन, तृतीय में समवृत्त, चतुर्थ में अर्ध समवृत्त, पञ्चम में विषम-वृत्त और षष्ठ अध्याय में प्रस्तार का विचार है। इसके आरम्भ में पिंगलाचार्य को अभिवादन कर रचयिता ने पिंगल-सूत्र के आधार पर ही इस ग्रन्थ की नये ढंग से रचना की है। इसमें १३६ छन्द हैं। इसपर २५ से अधिक टीकाएँ हैं जिनमें नारायण भट्ट की टीका सर्वश्रेष्ठ और प्रकाशित है।

गंगादास (ई० अज्ञात समय)

गंगादास की जीवनी—समय निर्धारण—इसके विरचित ग्रन्थ ग्रन्थ १ अच्युत चरित, २ कृष्णस्तुति शतक, ३ सूर्य स्तुति शतक, छन्दोमञ्जरी ग्रन्थ का विषय व टीकाएँ।

इसकी विरचित 'छन्दोमञ्जरी' है। इसने अपने विषय में ग्रन्थ के आरम्भ और अन्त में जो कहा है। उससे मालूम होता

---

[1] याति विक्रमशके द्विखषड्भू (१६०२) सम्मिते सितपक्षकार्तिकदले। ग्रन्थपूर्तिसुकृतं किल कुर्मो रामचन्द्रपदपूजनपुष्पम् ॥

कि इसका पिता वैद्य गोपालदास और माता सन्तोषा थी।
वैष्णव था और गोपाल का भक्त था। इसने अपने इस ग्रन्थ
सब उदाहरण गोपाल की स्तुति के ही दिये हैं। इसके
थ की शैली वृत्त-रत्नाकर से बहुत मिलती है। वृत्त-रत्नाकर
व्यवहारोचित छन्द ही इसने लिये हैं और प्रस्तारादिक[1]
ड़ दिया है। इसलिये यह वृत-रत्नाकर के बाद का अवश्य
। कृष्णम्मा-चारि ने अपने इतिहास में इसका समय ई० १८श
उत्तरार्द्ध परम्परा के आधार पर माना है।

छन्दो-मञ्जरी:—इसमें वृत्त-रत्नाकर के सदृश छः ही
स्तवक हैं। प्रथम स्तवक में संज्ञाओं का प्रतिपादन है जिसको
न्थकार ने मुखबन्धाख्य स्तवक कहा है। द्वितीय समवृ-
त्ताख्य स्तवक है जिसमें समवृत्त का प्रतिपादन है। तृतीय
र्धसमाख्य स्तवक है जिसमें अर्धसमवृत्त का विषय है।
तुर्थ विषय वृत्ताख्य स्तवक है। पञ्चम मात्रावृत्ताख्य स्तवक
और षष्ठ में प्रस्ताराध्याय के स्थान पर गद्यकाव्य और उसके
द हैं जिसका नाम गद्यप्रद स्तवक है। इसकी ६ टीकाएँ हैं
जिनमें चन्द्रशेखर की छन्दोमञ्जरी-जीवन नाम की टीका
सिद्ध है।

दामोदर मिश्र (ई १६०० के पूर्व)

दामोदर मिश्र का चरित्र—समय निर्धारण—वाणीभूषण ग्रन्थ का विषय विचार।

---

[1] व्यवहारोचितं प्रायो मया छन्दोऽत्र कीर्तितम्।
प्रस्तारादि पुनर्नोक्तं केवलं कौतुकं हि तत्।

इसका विरचित 'वाणीभूषण' नाम का छन्दोग्रन्थ है। यह मिथिलावासी ब्राह्मण था। इसकी उत्पत्ति दीर्घघोष कुल में हुई थी ऐसा उपसंहार के श्लोकों से मालूम होता है। प्राकृत-पिङ्गल-व्याख्या के रचयिता लक्ष्मीनाथ ने ई० १६०० के करीब विरचित अपनी व्याख्या में इसका उल्लेख किया है। इसलिये यह ई० १६०० के पूर्व में था। परम्परा से यह कवि भोजराज का समकालिक माना जाता है यदि यह ठीक हो तो इसका समय ई० ११ श शतक का मध्य हो सकता है।

वाणीभूषण :—इसके दो परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में संज्ञा-प्रकरण और मात्रावृत्त प्रतिपादित हैं। द्वितीय में एका-क्षर छन्द से प्रारम्भ कर पचीस अक्षर के छन्द तक के प्रायः सभी छन्द भेद उदाहरण सहित प्रतिपादित हैं।

छन्दः शास्त्र के अर्वाचीन ग्रन्थों में प्रबन्धकल्पलतिका, रामचन्द्र शास्त्री का प्रस्ताव-प्रभाकर, चन्द्रमोहन घोष का छन्दःसार-संग्रह आदि भी हैं जिनका सविस्तर विचार स्थल-संकोच के कारण नहीं किया गया है।

॥ समाप्त ॥

परिशिष्ट (ख)

भारतवर्ष का प्राचीन राजकीय इतिहास।

ऐतिहासिक विद्वानों ने भारतवर्ष का प्राचीन राजकीय-इतिहास में जिन ग्रन्थों की सहायता ली है उनमें प्रधान भारतवर्ष के ग्रन्थ हैं। अठारह महापुराणों का विशिष्ट अध्ययन कर ऐति-संशोधन पर बहुत कुछ प्रकाश डालने योग्य दो पुस्तकें एफ० ई० महाशय ने लिखीं[1]। उन्हीं ग्रन्थों का आधार लेकर तथा बौद्धों ग्रन्थ, शिलालेख, सिक्के तथा विदेशीय प्राचीन यात्रियों के लेख को भी प्रमाण मान, ईसा के पूर्व ६ ष्ठ शतक तक का भारतवर्ष इतिहास अब प्रकाशित है, जो कि शैशुनागवंश से आरम्भ दिया गया हैं।

इसके पूर्व में पुराणों के द्वारा हम इतिहास विषय में क्या जानते हैं में यहां कहना उचित प्रतीत होता है। पुराणों के लक्षण के अनु-उनमें सर्ग तथा प्रतिसर्ग की चर्चा अवश्य पाई जाती है। इसी प्रकार चरित यह भी पुराणों का एक अङ्ग है। यह वंशानुचरित भी उनमें प्रतिसर्ग के आरम्भ से देने की चेष्टा की गई है। तदनुसार भारतवर्ष प्रधान वंश के राजाओं का वर्णन उनमें पाया जाता है। यह दोनों वंश तथा चन्द्रवंश हैं। सूर्यवंश के राजाओं की गद्दी अयोध्या और चन्द्रवंश के राजा गजसाव्हय अथवा हस्तिनापुर में—जो कल देहली के नाम से ज्ञात है—शासन करते थे। सूर्यवंश, इक्ष्वाकु-अथवा रघुवंश के नाम से भी संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध है। वंश के राजा पौरव कहाते थे और कुरु राजा के अनन्तर कुरुवंश

---

[1] Purana text of the Dynasties of the Kali Age and ancient Indian Historical Tradition.

के नाम से भी ज्ञात हैं। यदुवंश इसी की एक शाखा थी जिसके वंशज यादव, द्वारका में शासन करते थे। महाभारत का प्रसिद्ध कौरव-पाण्डव युद्ध होने के बाद परीक्षित तथा उसके पुत्र जनमेजय राजा तक का वर्णन प्रायः सभी पुराणों में और विशेष कर मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड, भागवत तथा महाभारत आदि में पाया जाता है। इसी समय से कलियुग का आरम्भ माना गया है। भविष्य-पुराण में और उसके अनुरोध से पूर्व निर्दिष्ट अन्य पुराणों में भी जनमेजय के बाद उस वंश में चौथा पुरुष जो अधिसोम कृष्ण अथवा असीम कृष्ण नाम का हुवा था उससे आरम्भ कर आगे अमुक २ राजा होंगे ऐसा कहा है।

यहाँ से अयोध्या राजधानी कायम रही है और वहां पर इक्ष्वाकु वंश के ही राजा राज्य करते आए हैं। नागसाह्वय अथवा राजसाह्वय नगरी जनमेजय के बाद शीघ्र ही नष्ट होने के कारण निचक्षु नाम के राजा ने अपनी राजधानी कौशाम्बी बनाई। तब से उसके वंशज कौशाम्बी में राज्य करने लगे। ई० पू० ६ ष्ठ, ७ म शतकों में वहां पर शासन करने वालों में वत्सराज उदयन की प्रसिद्धि संस्कृत साहित्य से ज्ञात है। कलियुग का प्रसिद्ध तीसरा वंश जरासंध का है जिसके वंशज बार्हद्रथ कहाते थे और उनका शासन मगध में था। पुराणों से ज्ञात है कि ये तीनों वंश एक हजार से अधिक वर्ष तक इन तीनों राजधानियों में अप्रतिहत राज्य करते आए थे[1]।

अवन्ती में वत्सराज उदयन के समकालिक प्रद्योत महासेन तथा उसके पुत्र, नूतन राज्य स्थापित कर शासन करने लगे थे और मगध में शैशुनागवंश के राजाओं का शासन प्रचलित हुवा था। उदयन का समकालिक शैशुनागवंश का ४ था राजा दर्शक माना गया है जिसकी भगिनी पद्मावती उदयन से ब्याही थी। इसी समय में अथवा इससे कुछ पूर्व गौतम बुद्ध तथा वर्धमान महावीर ने बौद्ध तथा जैन सम्प्रदाय की नींव डाल दी थी। इसीलिए इस समय से इतिहास का प्रामाण्य अनेक प्रमाणों से प्रस्थापित किया गया है और इसीलिए प्रमाणपूर्वक प्राचीन

---

१. पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति। ब्र० भा० तथा वायुपुराण।

राजकीय-इतिहास का आरम्भ ऐतिहासिकों ने यहीं से माना है। हमने भी उसी के आधार पर पाठकों को संस्कृत साहित्य का इतिहास समझने के लिए प्राचीन राजकीय-इतिहास का आवश्यक भाग ही यहाँ संक्षेप में देने की चेष्टा की है।

शैशुनागवंश और जैन तथा बौद्ध मत का प्रादुर्भाव।

ईसा के पूर्व ७ म शतक में भारत में मगध प्रान्त में शैशुनागवंश का शासन स्थापित हुवा यह बात पुराणों द्वारा पार्गीटर (Pargiter) प्रभृति ऐतिहासिकों ने सिद्ध की है[1]। ई० पू० ६४२ के लगभग इस वंश का संस्थापक शिशुनाग वा शिशुनाक था। इस राजा का शासन पाटलीपुत्र व गया के चारो ओर थोड़ी ही दूरी में था। इसकी राजधानी राजगृह वा राजगीर, गया की पहाड़ियों में थी। यह अपने पुत्र को काशी की गद्दी पर छोड़ कर स्वयं राजगीर के पास गिरिव्रज में रहता था। इस वंश के द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ पुरुष केवल नाम के लिये राजा थे। ई० पू० ५८२ में इस वंश में सब से पूर्व प्रतापी राजा बिम्बिसार हुवा। जैन ग्रन्थों में यह राजा श्रेणिक नाम से प्रसिद्ध है। यह इस वंश का पंचम राजा था। इसने प्राचीन राजगृह की पहाड़ियों के उत्तर भाग में नवीन राजगृह को बसाया। इसने अपने शासनकाल में अङ्ग राज्य को जिसमें आधुनिक भागलपूर तथा मुंगेर है, अपने राज्य में सम्मिलित किया और यहीं से मगध राज्य का विस्तार प्रारम्भ हुवा और इसी कारण बिम्बिसार मगध राज्य का संस्थापक माना जाता है। कोसल तथा वैशाली की राज-कन्याओं से इसका विवाह होने के कारण इस साम्राज्य की नींव और भी दृढ़ हो गई। वैशाली की राजकन्या से जो कि लिच्छवी वंश की थी इसका उत्तराधिकारी अजातशत्रु नाम का पुत्र उत्पन्न हुवा। इसका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में 'कुणिक' वा 'कुणिअ' नाम से है। बिम्बिसार ने २८ वर्ष तक राज्य कर अपने पुत्र अजातशत्रु को राज्य देकर संन्यास स्वीकार किया।

---

[1] वी० ए० स्मिथ का भारत का प्राचीन इतिहास पृ० ३२-३३।

इसी बिम्बिसार के शासनकाल में जैन धर्म का प्रवर्तक वर्द्धमान महावीर और बौद्ध धर्म का संस्थापक गौतम बुद्ध वा शाक्य मुनि मगध प्रान्त में अपने २ धर्मों का प्रचार करते थे। वर्द्धमान महावीर अजातशत्रु की माता का सम्बन्धी था। इसकी मृत्यु अजातशत्रु के शासनकाल के अन्त समय में हुई। अजातशत्रु करीब २ ई० पू० ५५४ में राजगद्दी पर बैठा और उसने २७ वर्ष के करीब शासन किया। ई० पू० ५२७ साल वद्धर्मान महावीर का निर्वाण काल माना गया है। गौतम बुद्ध के निर्वाण काल के सम्बन्ध में ऐतिहासिकों में बड़ा ही मतभेद है। हाल ही में खारवेल[१] (Kharavela) का शिलालेख फिर से पढ़ा गया है और उसके अनुसार गौतम बुद्ध का निर्वाण समय जो कि पहिले ई० पू० ४८७ वा ४७८ माना जाता था वह अब लगभग अर्द्ध शतक पीछे हटाकर ई० पू० ५४४ या ५४३ माना जाता है। बिम्बिसार और अजात-शत्रु ने गौतम बुद्ध से बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी।

यद्यपि अजातशत्रु ने कोसल की राजकन्या से विवाह किया तो भी कोसल राज्य को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। राज्य विकास की तृष्णा से प्रेरित होकर अजातशत्रु ने अपने नाना के वैशाली राज्य को भी जीतकर अपना साम्राज्य गङ्गा के उत्तर भाग में हिमालय पर्वत तक बढ़ाया। इसके बाद वैशाली के लिच्छवी वंशियों के आक्रमणों से अपने राज्य को सुरक्षित रखने की इच्छा से गङ्गा और सोन नदी के संगम पर इसने पाटलीपुत्र नाम का किला बनवाया। इसी किलेके चारो ओर इसके पौत्र उदायी (उदय ?) ने एक नगर बसाया। इस नगर का कई बार स्थान परिवर्तन हुवा और यह प्रथम कुसुमपुर वा पुष्पपुर कहा जाता था और बाद में यह पाटलीपुत्र नाम से प्रसिद्ध हुवा। पाटलीपुत्र केवल मगध-राज्य की ही नहीं किन्तु एक समय समस्त भारत की राजधानी थी।

जब ई० पू० ५२७ के लगभग अजात शत्रु की मृत्यु हुई तब पुराणों के अनुसार उसका पुत्र दर्शक मगध की राजगद्दी पर बैठा। बौद्ध ग्रन्थों में दर्शक का नाम नहीं दिया है। अजातशत्रु का उत्तराधिकारी उसका

१. व्ही० ए० स्मिथ का भारत का प्राचीन इतिहास पृ० ४९-५०।

...यी माना गया है। किन्तु यह असंगत है। क्योंकि हालही में ...कवि का 'स्वप्न-वासवदत्त'[1] नाम का नाटक उपलब्ध हुवा है, ...दर्शक मगध का राजा था और उसकी बहिन पद्मावती का विवाह ...से हुवा था और इसी वत्सराज की पूर्व महिषी, अवन्ती के राजा ...या महासेन की पुत्री वासवदत्ता थी और ये सब समकालीन थे ...स्पष्ट निर्देश है। दर्शक का शासन काल २४ वर्ष था। ई० पू० ५०३ ...लगभग दर्शक का पुत्र उदायी गद्दी पर आया। पुराणों में इस राजा ...उल्लेख कहीं उदय कहीं उदयन और कहीं उदयाश्व ऐसा भी ...ता है। बौद्ध ग्रन्थों में इस राजा का नाम उदायी भद्द (उदायी भद्रक) ...वायुपुराण से ज्ञात होता है कि इसके शासन के ४ थे वर्ष में कुसुम-...की रचना हुई।

...उदायी के उत्तराधिकारी दो हुवे जो कि नन्दिवर्धन और महानन्दी ...से प्रसिद्ध थे। कलकत्ता के भारतीय वस्तु संग्रहालय (Indian ...) में मौर्य्यवंश से प्राचीन काल के राजाओं की जो दो प्रति-...हैं वे शिशुनागवंश के उदायी और नन्दिवर्द्धन की हैं ऐसा पुराण ...संशोधक (Archæologists) विद्वान् काशीप्रसाद जयस्वाल और ...दास बैनर्जी का मत है। प्राचीन काल में नगर के बाहर देवकुल में ...राजाओं की प्रतिमाओं को स्थापन करने की प्रथा प्रचलित थी यह ...कवि के प्रतिमा[3] नाटक से विदित है। शैशुनाग वंश के ये दोनों ...राजा नन्दवंश के प्रवर्तक माने जाते हैं। महापद्मनन्दी के बाद ...मुरा[4] नामक स्त्री से उत्पन्न चन्द्रगुप्त नाम के पुत्र के ई० पू० ३२२ ...गद्दी पर आने के बाद मौर्य्यवंश का आरम्भ होता है।

---

[1] भासकृत स्वप्न-वासवदत्त नाटक.

[2] बिहार और उड़ीसा के रिसर्च सोसाइटी की मासिक पुस्तक सन् १९१९ पृष्ठ ८८ से १०६ और २१०-२१५

[3] त्रिवेन्द्रम सीरीज् में प्रकाशित भासकवि का प्रतिमा नाटक।

[4] वी० ए० स्मिथ का भारत का प्राचीन इतिहास पृष्ठ० १२३।

मौर्य्यवंश।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य एक वीर पुरुष था। सिकन्दर ने भारत के आक्रमण के समय में इसकी भूरि २ प्रशंसा की थी। मुद्राराक्षसादि ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त का मन्त्री आचार्य चाणक्य नाम का था जिसने अपने बुद्धि बल से नन्द राजाओं का उन्मूलन कर चन्द्रगुप्त को गद्दी पर स्थापित किया था। आचार्य चाणक्य अर्थशास्त्र का भारी विद्वान् था और इसका विरचित कौटिलीय अर्थशास्त्र हाल ही में प्रकाशित हुवा है। चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में ऐतिहासिक निर्णय सर्व प्रथम ग्रीसदेश के मेगेस्थनीज् (Megasthenes) के लेख से हुवा। मेगेस्थनीज्, सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस निकेतर (Selucus Nikator) की ओर से चन्द्रगुप्त की सभा में दूत बनकर आया था। उसने अपना भारत का अनुभव और इतिवृत्त अपनी ग्रीक भाषा में लिखा था जो अब अंग्रेजी अनुवाद के रूप में प्रकाशित हुवा है। चन्द्रगुप्त की मृत्यु ई० पू० २९८ में हुई और इसका पुत्र बिन्दुसार गद्दी पर आया। ग्रीक ऐतिहासिक इसका नाम नहीं जानते थे। उन्होंने इसका अमित्र-घात उपाधि से उल्लेख किया है। इसने २५ साल तक शासन किया था और अपनी उपाधि के अनुसार दक्षिण में मैसूर तक अपने राज्य की सीमा बढ़ाई थी।

बिन्दुसार के बाद उसका पुत्र अशोकवर्द्धन ई० पू० २७२ में गद्दी पर आया। इसके शासन के प्रथम १० वा १२ वर्ष राजकीय व्यवस्था तथा कलिङ्गप्रान्त के विजय में व्यतीत हुवे। कलिङ्ग के युद्धक्षेत्र में असंख्य सैनिकों का क्रूरवध देखकर यह अत्यन्त निर्विण्ण हुआ और युद्ध से घृणाकर शान्ति से साम्राज्य स्थापन की चेष्टा आरम्भ की और अहिंसा-प्रिय बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर भारतवर्ष के प्रायः सर्व प्रान्तों में सत्य, अहिंसा का उपदेश करने के लिये स्थान २ पर शिलालेख तथा स्तम्भलेख खुदवाये जो आजतक विद्यमान हैं। ये सब लेख उस समय की प्रचलित भाषा प्राकृत में लिखे गये हैं। मैसूर के ब्रह्मगिरी वाले शिलालेख में अशोक की उपाधि 'अय्यउत्तपियदस्सी' ऐसा मिलता है। इससे मालूम होता है

...स समय भृत्यगण राजाओं को आर्यपुत्र[1] शब्द से सम्बोधित करते थे। ...न्दगुप्त ने ४० वर्ष शासन कर ई० पू० २३२ में मर गया। इसके ...इस वंश के ६ राजा गद्दी पर आये जिनका संस्कृत साहित्य से कोई ...सम्बन्ध नहीं है। इस वंश का अन्तिम राजा वृहद्रथ मौर्य्य. बौद्ध ...हुवे भी विलासी था इसलिये उसकी प्रजा उससे अप्रसन्न थी। ...पू० १८५ में इसके सेनापति पुष्पमित्र शुंग ने इसका वध किया और ...मगधराज की गद्दी पर बैठकर शुंगवंश की स्थापना की।

शुंगवंश

पुष्यमित्र शुंग के शासन के प्रथम १०-२० वर्ष राज्य की सुव्यवस्था ...में बीत गये। ई० पू० १६५ के लगभग कलिङ्ग के खारवेल राजा ने ...की अव्यवस्था देखकर आक्रमण किया था। दस वर्ष के बाद ...और पंजाब के शासक मेनान्दर नामक यवनराजा ने साकेत (अयोध्या) और माध्यमिका (चित्तौर के आस पास का प्रान्त) पर ...क्रमण किया था। किन्तु पुष्य मित्र ने उसे हटाकर ये स्थान उससे फिर ...लिये। यह मेनान्दर यवन, बौद्धों से शास्त्रार्थ कर अन्त में बौद्ध धर्मानु-...यी हो गया। बौद्धों के ग्रन्थ में इसका नाम मिलिन्द है। इसके सम्ब-...न्ध में "मिलिन्द[2] पह्ना" नामक पाली का ग्रन्थ है। पतञ्जलि के महा-...भाष्य में भी इसके साकेत और माध्यमिका आक्रमण सूचक वचन[3] ...पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ किया था यह बात कालिदास के मालवि-...काग्निमित्र[4] तथा पतञ्जलि के महाभाष्य से सिद्ध होती है। महाभाष्य ...के वचन[5] से ज्ञात होता है कि स्वयं पतञ्जलि इस याग में प्रधान

---

[1] भास के प्रतिमा और स्वप्न-वासवदत्त नाटक और अशोक के शिलालेखों का हिन्दी अनुवाद।

[2] मिलिन्द प्रश्न।

[3] 'यवनस्साकेतमवरुणत्' 'यवनोऽवरुणन्माध्यमिकाम्"। पा० ३।२।१११।

[4] मालविकाग्निमित्र ५ वां अंक।

[5] 'इह पुष्यमित्रं याजयामः'। पा० ३।२।२३।

ऋत्विज् थे। इस यज्ञ के बाद केवल २ या ३ वर्ष में पुष्यमित्र की मृत्यु[1] हुई।

इसके बाद इसका पुत्र अग्निमित्र जो विदिशा का युवराज था गद्दी पर आया। इसीके उपलक्ष्य में कालिदास ने अपना "मालविकाग्निमित्र" नाटक रचा है। इसने बहुत थोड़े समय तक राज्य किया। इसके पश्चात् इसके बड़े भाई 'वसुज्येष्ठ' ने ७ वर्ष तक राज्य किया और अपना उत्तराधिकारी 'अग्निमित्र' के पुत्र 'वसुमित्र' को बनाया। यह वसुमित्र अपने पितामह के अश्वमेध याग के समय अश्व का संरक्षक था। इसके अनन्तर इस वंश में ६ राजा हुवे जिनका संस्कृत साहित्य से विशेष सम्बन्ध नहीं है। 'बाणभट्ट' के 'हर्षचरित' में इनका कुछ वर्णन मिलता है। इस वंश के अन्तिम राजा देवभूति वा देवभूमि का वध कर इसका मन्त्री वासुदेव काण्व ई० पू० ७३ में स्वयं राजा बन बैठा और इसीसे काण्ववंशीय राजाओं का प्रादुर्भाव हुवा। इस वंश के राजाओं ने ई० पू० ७३ से २८ तक राज्य किया। आन्ध्रवंश के किसी राजा ने उस वंश के अन्तिम राजा का वध कर राजगद्दी छीन ली।

आन्ध्रवंश

यद्यपि इतिहास में आन्ध्रवंश का आरम्भ ई० पू० २४० या २३० के लगभग माना गया है तथापि आन्ध्रकुल का निर्देश ऐतरेय[2] ब्राह्मण में आने के कारण यह वंश बहुत प्राचीन मालूम पड़ता है। पुराणों के अनुसार इस वंश का प्रथम राजा सिमुक वा शिप्रक था जिसने काण्व वंश के अन्तिम राजा का वध कर आन्ध्रवंश का राज्य स्थापन किया। किन्तु ऐतिहासिक इसको स्वीकार न कर काण्ववंश का अन्त करने वाला आन्ध्रवंश का ११ वा १२ वा[3] राजा था ऐसा मानते हैं। इस वंश का शासन उस समय ऐतिहासिकों के मतानुसार कम से कम ४६० वर्ष तक रहा। इस वंश में ३० राजा हुवे। इनमें केवल ३ या ४ राजा प्रसिद्ध हैं।

---

१ व्ही० ए० स्मिथ का भारत का प्राचीन इतिहास पृ० २१४।

२ ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय ३३ षष्ठ खण्ड।

३ व्ही० ए० स्मिथ का भारत का प्राचीन इतिहास पृ० ।२१७

वंश के द्वितीय राजा "कृष्ण" और तृतीय राजा 'श्रीशातकर्णी' ने
राज्य का विस्तार दक्षिण भारत में कलिङ्ग को छोड़कर पूर्व समुद्र से
समुद्र तक किया था। हाल, शालिवाहन वा शातवाहन का जो की
वंश का १७ वां राजा माना जाता है, संस्कृत साहित्य से विशेष
है। हाल का महाराष्ट्री प्राकृत में विरचित 'सत्तसई'[1] नाम का
ग्रन्थ है। इस वंश के २३ वें राजा 'गौतमीपुत्र श्रीशातकर्णी' ने
राज्य का विस्तार उत्तर में उज्जयिनी के क्षहरात कुल के राजा का परा-
उज्जयिनी को अपने राज्य में संमिलित कर किया। इस वंश के
प्रायः शातवाहन कहलाते थे। ई० २५५ के लगभग इस वंश का
हुवा। इस वंश के सभी राजा सनातनधर्मी होते हुवे भी बौद्धों
सहानुभूति रखते थे। शिव की उपासना तथा पञ्चरात्र धर्म इस
में प्रचलित थे।

कुशानवंश

भारत में आन्ध्र साम्राज्य के विस्तार के पूर्व ई० प्रथम शतक में
वंश का राज्य विस्तृत हो रहा था। इस वंश का दूसरा राजा
'कडफ़ीसो' ई० ७७ या ७८ में गद्दी पर आया। इसके समय
राज्य का विस्तार काबुल से पूर्व में गाजीपूर व बनारस तक और
में कच्छ और काठियावाड़ तक हुवा। यही शालिवाहन[2] शक का
माना गया है। इसने ३२ वर्ष राज्य किया। ई० १२० में कनिष्क
पर आया। पाटलीपुत्र पर आक्रमण कर वहाँ के दार्शनिक तथा
अश्वघोष को यह अपनी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) में लाया।
साम्राज्य उत्तर भारत में सर्वत्र था। भारत के बाहर उत्तरी तुर्कि-
तक इसका राज्य था। यह भी अशोकवर्द्धन के सदृश कट्टर बौद्ध-
वलम्बी माना जाता है। इसने ५०० पण्डितों की एक सभा[3] काश्मीर

१ काव्यमाला सीरीज की 'सत्तसई' सन् १८८९।
२ वि० ए० स्मिथ का भारत का प्राचीन इतिहास पृ० २७१ की नो-
की टिप्पणी।
३ " " " पृ० २८३ और २८४।

में की थी जिसके सभापति वसुमित्र और उपसभापति अश्वघोष थे। यहीं 'त्रिपिटकों' पर ५०० टीकायें लिखी गई थीं जो कि ताम्रपत्रों पर खुदवाकर एक स्तूप में रक्खी थीं। इसी में 'महा विभाषा' नामक बौद्ध दर्शन के कोष का अन्तर्भाव है जो कि सम्प्रति चीनभाषा में उपलब्ध है। इस राजा के अनन्तर चतुर्थ राजा वासुदेव कुशन के समय में इस सम्राज्य का ह्रास होने लगा। ई० २२० से २६० तक उत्तर में कुशन तथा दक्षिण में आन्ध्र साम्राज्यों की बुरी दशा थी और सर्वत्र छोटे २ स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये थे। इस समय से ई० ३१५ तक के इतिहास का ठीक २ पता चलना अत्यन्त कठिन है।

गुप्तवंश

ई० ३२० में इस वंश के प्रथम राजा चन्द्रगुप्त ने लिच्छवी राजकन्या के साथ विवाह करके पाटलीपुत्र में इस वंश की स्थापना की। इसके राज्याभिषेक के दिन २६ फर्वरी ३२० से गुप्त शक प्रारम्भ हुवा। इसके पुत्र समुद्रगुप्त ने गद्दी पर आते ही दिग्विजय करना आरम्भ किया और मालवा और गुजरात को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में मगध साम्राज्य पुनः स्थापित्त किया। इसके प्रथम ३० वर्ष उत्तर और दक्षिण भारत के दिग्विजय में व्यतीत हुवे। रघुवंश में रघुराजा के दिग्विजय के ठीक समान ही ऐतिहासिकों ने इसके दिग्विजय[1] का वर्णन किया है। दिग्विजय के पश्चात् रघुराजा के विश्वजित् यज्ञ के समान इसने भी अश्वमेध यज्ञ किया था। सीलोन के मेघवर्ण ने इसका आधिपत्य स्वीकृति-सूचक अपना दूत इसके दरबार में भेजा था। इसकी गायनवाद्यनिपुणता उसके सिक्कों से जिसपर उसकी प्रतिमा वंशी बजाती हुई दिखाती है, प्रगट होती है। इसकी "कविराज[2]" उपाधि थी। उस समय के "हरिषेण कवि' विरचित इसकी प्रशस्ति अशोक के शिलालेख[3] के साथ प्रयाग के स्तम्भ पर

१ व्ही० ए० स्मिथ का भारत का प्राचीन इतिहास पृ० २९९।

२ विद्वज्जनोपजीव्यानेककाव्यक्रियाभि.प्रतिष्ठितकविराजशब्दस्य A peep into Early History of India page 59 by R. G. Bhandarkar.

३ कीथ का संस्कृत साहित्य का इतिहास। ९२८ पृ० ७६

...है। हरिषेण ने अपने संरक्षक समुद्रगुप्त को विलक्षण-कविता ...ी, धर्मशास्त्र-प्रेमी तथा वाद्यकला-निपुण बताया है।

...३८० में इसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय गद्दी पर आया। इसने ...आते ही 'विक्रमादित्य' इस उपाधि को ग्रहण किया और ...और गुजरात के प्रान्तों को भी मगधसाम्राज्यान्तर्गत किया और ...ी को अपनी राजधानी बनाई। यद्यपि समुद्रगुप्त के समय में ...का प्राबल्य था और बौद्ध दार्शनिक वसुबन्धु समुद्रगुप्त तथा ...ता का भी मित्र माना जाता था तथापि समुद्रगुप्त ने अश्वमेध ...वर्णाश्रम धर्म को ही प्रधानता दी थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय भी वैदिक ...ही पक्षपाती था तो भी बौद्ध धर्म से कभी विरोध न रखता था। ...समय में ई० ४०५ से ४११ तक चीनयात्री फाहियन (Fa Hien) ...यात्रा करने आया था। उसने अपने भारत के प्रवास वर्णन में ...बातें लिखी हैं जिससे चन्द्रगुप्त द्वितीय के विषय में कुछ कल्पना ...ती है। ऐतिहासिकों का मत है कि इसीके दरबार के नवरत्नों[१] में ...कालिदास था और यही राजा उज्जयिनी-पति विक्रमादित्य था ...नाम से अभीतक विक्रम संवत् जारी है। परन्तु अन्य कुछ ऐति-...इसमें सहमत नहीं हैं। कालिदास के विषय में कहा जाता है कि ...पुस्तक-लेखन चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्य में प्रारम्भ किया था ...के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम तथा पौत्र स्कन्दगुप्त के शासनकाल तक ...। इस समय के बहुत से शिलालेख और सिक्के भी मिलते हैं ...उपयोग भारत के इतिहास निर्धारण में किया गया है।

...गुप्त प्रथम ई० ४१५ में राजगद्दी पर बैठा। कालिदास ने ...सम्भव' काव्य इसीके उपलक्ष्य में रचा ऐसा कहते हैं। गुप्तवंश के ...इन तीन राजाओं के शासनकाल में संस्कृत साहित्य[२] तथा

---

[१] ...न्वन्तरिक्षपणकामरसिंह-शङ्कुवेतालभट्टघटकर्पर-कालिदासाः। ...ख्यातो वराह-मिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव-विक्रमस्य।

[२] A peep into the Early History of India By R. G. ...darkar page 63-74.

कलाओं की अत्यधिक उन्नति हुई। पुराणों ने भी अपना नवीन रूप इन्हीं के शासनकाल में ग्रहण किया है। धर्मशास्त्र के ग्रन्थ जो पूर्व में सूत्र रूप में विशिष्ट शाखाओं में प्रचलित थे, इसी समय में स्मृतिरूप में परिणत किये गये और सर्व शाखाओं के लिये प्रमाण भूत माने गये। श्रौत और गृह्य सूत्र के ग्रन्थों पर इसी समय टीका टिप्पणी होने लगी। भारतीय ज्योतिषशास्त्र के प्रधान प्रवर्तक आर्यभट (लगभग ५०० ई०) व वराह मिहिर (लगभग ५५० ई०) इसी समय के थे। मीमांसकों ने यज्ञ यागादि से वैदिक धर्म की श्रेष्ठता प्रस्थापित कर बौद्ध धर्म के ह्रास का बीजारोपण किया। न्याय. वैशेषिक, सांख्य, योग और अलङ्कार आदि शास्त्रों की भी उन्नति इसी समय से होने लगी। इसीलिये ई० ३३० से ४४५ तक का गुप्तवंश का शासनकाल अत्यन्त महत्त्व का माना जाता है। कुमारगुप्त के शासन के अन्तकाल के समय इस साम्राज्य के ह्रास के अनेक कारण उपस्थित होने लगे थे। कुमारगुप्त के पुत्र स्कन्दगुप्त ने अपनी वीरता व पराक्रम से इन सकटों को दूर किया। हूणों के आक्रमणों[1] को अपने पराक्रम से रोक कर करीब १०—१२ वर्ष इसने अपने साम्राज्य को सुरक्षित रक्खा। परन्तु हूणों के अन्तिम आक्रमणों से वह घबड़ा गया था और इसे अनेक कठिनाइयां झेलनी पड़ीं। स्कन्दगुप्त के बाद इसका सौतेला भाई पुरगुप्त गद्दी पर आया। इसने अपने शासन के एक ही वर्ष की अवधि में सुवर्ण के सिक्के जो हूण युद्धों के कारण कम मूल्य के बनाये गये थे उनको नष्ट कर पुनः नवीन ठीक मूल्य के बनाये।

ई० ४६७ में इसका पुत्र नरसिंहगुप्त गद्दी पर आया। यह बौद्धों का पक्ष पाती था। इसीने नालन्द का बौद्धों का विद्यापीठ स्थापन किया। नालन्द बिहार में बारगांव के पास है। इस विद्यापीठ का वर्णन हुएन् साङ्ग (Hiuen Tsang) नामक चीन यात्री ने अपने भारत के प्रवास वर्णन में किया है। ई० ४७३ में इसका पुत्र 'कुमार गुप्त द्वितीय', गद्दी पर आया। इसने केवल २-३ वर्ष तक शासन किया। स्कन्दगुप्त के बाद

---

१ भितारी शिलालेख (J. R.A. S. 1907 page 976) and Gupta inscriptions NO 13 and 16.

गुप्त राजाओं का शासन आर्यावर्त के केवल पूर्व भाग में ही था। भाग में के स्कन्दगुप्त के प्रतिनिधि अपने २ प्रान्त में स्वतन्त्र थे। कुमारगुप्त द्वितीय के अनन्तर जो ग्यारह राजा गुप्त वंश के केवल नाम मात्र के लिये राजा थे। उनका शासन केवल मगध के पास थोड़ी दूरी तक ही रहा। इस प्रकार इस वंश का अन्त ६९० के करीब हुवा।

वलभी वंश।

ईसवी पांचवी शताब्दि के अन्त में मैत्रक कुलके भट्टार्क ने सुराष्ट्र (काठियावाड़) प्रायद्वीप के पूर्व भाग में वलभी में जो राज्य स्थापन किया ई० ७७० तक जारी रहा। अरबों के आक्रमणों से यह राज्य नष्ट हो। इस वंश के आरम्भ के राजा हूणों के आधीन थे परन्तु हूणों के पतन के बाद ये स्वतन्त्र हो गये। हुएन्त् साङ्ग (HiuenTsang) से ज्ञात होता है कि इस वंश के राजा बौद्ध मतावलम्बी थे और स्थिरमति और गुणमति इन दो बौद्ध आचार्यों के आधिपत्य में वलभी विद्यापीठ स्थापित किया गया था। इत्सिङ्ग (Itsing) के लेख से मालूम होता है कि उस समय वलभी और नालन्दके विद्यापीठ अत्यन्त प्रसिद्ध थे। इस वंश का ध्रुव भट्ट नाम का राजा जिसका उल्लेख लेखों में ध्रुवसेन बालादित्य के नाम से मिलता है, कन्नौज के हर्षवर्धन शिलादित्य का जामाता था और उसका सामन्त था। श्रीधर सेन के चार राजा इस वंश में हुवे। अन्तिम श्रीधर सेन के समय में, जो मृत्यु ई० ६४१ में हुई, रावण वध (भट्टि) काव्य का रचयिता कवि था जो इसका सभापण्डित था। वलभीवंश के अन्त होने के पश्चिम में प्रधान शहर अणहिलवाड [पाटण] था जिसका महत्व १५ वीं शताब्दि में नष्ट होकर आमदाबाद की वृद्धि का कारण हुवा।

हर्षवर्द्धन।

ई० ६०६ के करीब कन्नौज और थानेश्वर में जो कुरुक्षेत्र के नाम से है प्रभाकरवर्द्धन नाम का राजा राज्य करता था। इसका शासन चारों ओर फैल रहा था। इसके दो पुत्र राज्यवर्द्धन और हर्ष-

वर्द्धन नाम के थे। जब युवराज राज्यवर्द्धन हूणों से युद्ध करने गया था तब प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु हुई। ग्रहवर्मा मौखारी की, जो राज्यवर्द्धन के राज्यश्री नाम की भगिनी का पति था, मृत्यु का समाचार पाकर उसके हत्यारे मालवा के राजा को हराकर लौटते समय शशाङ्क नामक बंग के राजा ने राजवर्द्धन को अपने यहां बुलाकर धोखे से मार डाला। इसके बाद ई० ६२० के करीब जनता के अत्यन्त आग्रह करने पर हर्षवर्द्धन गद्दी पर आया। हर्षवर्द्धन के सम्बन्ध की ऐसी २ बातें तथा उसके शासन का वर्णन उसके सभापण्डित बाणभट्ट के हर्षचरित से विदित होता है। हर्षचरित की ऐतिहासिक घटनाओं का पुष्टिकरण हुएन्त्सा‌ङ्ग (Hiuen Tsang) की भारतयात्रा वर्णन से होता है। यह सिद्ध[1] हो चुका है कि हर्षवर्द्धन आर्यावर्त का सम्राट् था। इसका राज्य पूर्व में आसाम तक, उत्तर में नेपाल काश्मीर, पश्चिम में मालवा और दक्षिण में नर्मदा तक प्रसृत था। नर्मदा के दक्षिण में चालुक्य वंशीय पुलकेशी द्वितीय के घोर विरोध के कारण इसका वहां प्रवेश न हो सका। जिस प्रकार इस समय हर्षवर्द्धन आर्यावर्त का सम्राट् था उसी प्रकार पुलकेशी द्वितीय दक्षिण का सम्राट् था। वलभी के राजा ने भी हर्षवर्द्धन के साथ सम्बन्ध कर इसका सामन्त होना स्वीकार कर लिया था। ई० ६४० तक हर्षवर्द्धन दिग्विजय करता रहा। इसके समय में वैदिक धर्म तथा बौद्धधर्म दोनों ही साथ २ उन्नत हो रहे थे। हर्षवर्द्धन स्वयं विद्वान् था और इसकी राज-सभा में मयूर, मातङ्ग दिवाकर, धावक आदि अनेक विद्वान्[2] थे उन सब विद्वानों में बाणभट्ट श्रेष्ठ माना जाता था। हर्षवर्द्धन के विरचित तीन संस्कृत के नाटक रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द बहुत प्रसिद्ध हैं। नागानन्द का कथानक बौद्ध ग्रन्थों से लिया गया है और अन्य दोनों में वत्सराज की कथा है। ये तीनों नाटक संस्कृत साहित्य में ऊंचे दर्जे के माने जाते हैं। चीन यात्री हुएन्त्साङ्ग को यह सदैव अपने साथ रखता था।

---

१ विं० ए० स्मिथ का भारत का प्राचीन इतिहास। पृ० ३५२,३५३।

२ अहो प्रभावो वाग्देव्याः यन्मातङ्ग दिवाकरः।
श्रीहर्षस्याऽभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः॥

इसकी सहायता से उसने बौद्धधर्म की केवल उन्नति ही नहीं को स्वयं बौद्धधर्म के अनुसार ही आचरण[1] करता था। इसके समय धर्म की उन्नति वैशाली और पूर्व बंगाल के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं थी। इसने चीन के राजा के पास अपना दूत भेजकर उससे सम्बन्ध जोड़ा था। ई० ६४७ में इसकी मृत्यु हुई और इस वंश का अन्त होकर अनेक छोटे २ राज्य अस्तित्व में आये। इसके अनन्तर ८० तक आर्यावर्त में कोई सम्राट् न हुवा।

काश्मीर का इतिहास।

कल्हण की राजतरंगिणी में, जो कि भारत का ऐतिहासिक संस्कृत है, काश्मीर के प्राचीन राजाओं का वर्णन यथार्थ मिलता है। काश्मीर में कल्हण के पूर्व और बाद भी ऐतिहासिक कवि हुए हैं परन्तु कल्हण का इतिहास सबसे अधिक प्रमाणित माना जाता है। काश्मीर में मौर्य और कुशानवंश का साम्राज्य था किन्तु हर्षवर्द्धन के समय में वंश के दुर्लभवर्धन ने अपना शासन प्रस्थापित किया और हर्षवर्धन का आधिपत्य स्वीकार किया। दुर्लभवर्धन और इसके पुत्र दुर्लभक का शासन ई० ७२० तक जारी रहा। ई० ७२० के बाद दुर्लभक के पुत्र गद्दी पर आये। उनमें से तृतीय ललितादित्य जिसका नाम मुक्तापीड़ था ई० ७३३ में गद्दी पर आया और उसने ३६ वर्ष तक काश्मीर का शासन किया। ई० ७४० के करीब कन्नौज के राजा यशोवर्मन् से इसका युद्ध हुवा था जिसमें यशोवर्मन् मारा गया। इस युद्ध में भवभूति यशोवर्मन् के साथ रणक्षेत्र में आया था ऐसा वर्णन मिलता है। यशोवर्मन् के दर्बार का दूसरा पण्डित वाक्पतिराज था जिसने अपनी गौड़वहो नामक पुस्तक में यशोवर्मन् के एक युद्ध विजय का वर्णन किया है। मुक्तापीड़ ललितादित्य का अपना विजय-सूचक बनवाया हुवा मार्तण्ड मन्दर अभीतक काश्मीर में विद्यमान है।

अष्टम शतक के अन्त में इसका पौत्र जयापीड़ अथवा विनयादित्य

---

[1] वि० ए० स्मिथ का भारत का प्राचीन इतिहास पृ० ३५७-५८।
[2] कीथ का "संस्कृत नाटक" पृ० १८६।

(७७९-८१३) गद्दी पर था जो मुक्तापीड़ ललितादित्य से अधिक प्रतापी था। इसने कन्नौज के राजा वज्रायुध को परास्त किया था। कहा जाता है कि बंगाल के राजा को भी इसने परास्त किया था। इसने चिर-काल तक शासन किया। यह संस्कृत का भारी प्रेमी था। इसके दर्बार में अनेक पण्डित थे और इन पण्डितों की सभा का सभापति प्रसिद्ध अलङ्कारशास्त्र का वेत्ता भट्टोद्भट था जिसके विरचित अलङ्कार शास्त्र के अनेक ग्रन्थ हैं। कल्हण ने इस कवि की प्रशंसा में लिखा है -

"विद्वान्दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः।
भट्टोऽभूदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः॥"

सम्भावतः रुद्रट और वामन—आलङ्कारिक इसी राजा के समय के थे। कुट्टनी-मतकार दामोदर गुप्त जयापीड़ का मंत्री था। जयापीड़ के बाद अजितापीड़ और अनंगापीड़ गद्दी पर थे। अजितापीड़ के समय में शङ्कुक कवि ने भुवनाभ्युदय काव्य की रचना की। इसके बाद अवन्ति-वर्मा करीब ई० ८५५ में गद्दी पर आया। इसके तथा इसके पूर्व के राजा के समय से काश्मीर में संस्कृत साहित्य की उन्नति दीख पड़ती है। राजानक अथवा वागीश्वर रत्नाकर का हरविजय महाकाव्य इसी समय का है। शिवस्वामी का 'कफ्फणाभ्युदय' बौद्ध काव्य जो कि बौद्ध 'अवदान शतक' के आधार पर रचा गया था, इसी समय का है। ध्वनि मार्ग प्रवर्तक 'आनन्दवर्द्धनाचार्य' इसी समय के थे। इस अवन्तिवर्मा के सभा-पण्डितों के सम्बन्ध में कल्हण कहता है:—

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्द्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात्साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः॥

प्रसिद्ध जरन्नैयायिक न्याय-मञ्जरीकार जयन्त भट्ट तथा उनके पुत्र 'कादम्बरि कथासार' तथा 'योगवासिष्ठसार' के रचयिता 'अभिनन्द' इसी शतक के उत्तरार्ध के थे। कलश का पिता अनन्त ई० १०२८ से १०६३ तक राज्य करता था। इसके समय प्रसिद्ध व्यासदास अथवा क्षेमेन्द्र ने अपने कई ग्रन्थ लिखे थे। कथा सरित्सागरकार सोमदेव इसी समय में था। ई० एकादश शताब्दि में कलश (१०६३-१०८९) और हर्ष

…-११०१) काश्मीर में राज्य करते थे। इस शताब्दि में भी साहित्य का अपूर्व विद्वान् क्षेमेन्द्र था जिसने काव्य, अलङ्कार … के ४० ग्रन्थ लिखे थे। कल्हण का पिता चम्पक हर्ष राजा का …राजनिष्ठ सेवक था। हर्ष ने युद्ध में मारे जाने के समय इसी के …गुप्त सन्देश काश्मीर में भेजा था। इस हर्ष की प्रशंसा में उस …के कवि शम्भु ने 'राजेन्द्र-कर्णपूर' नामक काव्य रचा था। इसी …का विरचित 'अन्योक्ति-मुक्ता-लता-शतक' नाम का दूसरा भी …है। मंखकवि के श्रीकण्ठ-चरित काव्य से विदित होता है कि कल्हण …राजतरंगिणी लिखने में उस समय के सरदार अलकदत्त ने बहुत …ता दी थी। हर्ष के पौत्र भिक्षाचार ने ई० ११२०—२१ तक शासन …था। ई० ११२९ से ११५० तक काश्मीर में जयसिंह का शासन था। …का मन्त्री 'अलङ्कार' मंख कवि का भ्राता था। इस "अलङ्कार" ने …के चारों ओर के संस्कृत विद्वानों को एकत्र कर जो विद्वत्परिषद् की थी …का यथार्थ वर्णन मंखकवि ने अपने 'श्रीकण्ठ-चरित' काव्य के अन्तिम …में किया है। 'अलङ्कार-सर्वस्वकार' 'राजानक रुय्यक' मंख कवि का …था अतएव वह भी इसी समय का था। काश्मीर राज्य का शासन जो …शतकों से स्वतन्त्र रीति से चल रहा था उसमें १३ शतक में मुसल-…मानों ने बाधा डाली और १६ शतक में अकबर ने इसको अपने आधीन …लिया।

कन्नौज (पाञ्चाल) का इतिहास।

यद्यपि इसका वर्णन महाभारत में और पतञ्जलि के महाभाष्य में …ने के कारण इसका इतिहास बहुत प्राचीन है तथापि इसका ठीक २ …हास फाहियन (Fa Hian) के प्रवास वर्णन से ज्ञात होता है। इस …यात्री के लेख के अनुसार ई० ४०५ के करीब यहां बौद्धों का एक …तथा दो विहार थे जिनको उसने प्रत्यक्ष किया था। सप्तम शताब्दि में …हर्षवर्द्धन की राजधानी थी। इस शहर में हुएन्त्सेङ्ग (Hiuen Tsang) …६३६ से ६४३ तक था। उसके वर्णन से विदित होता है कि यहां …के समय में सैकड़ों विहार तथा स्तूप थे और यह नगर गङ्गा के तट पर

४ मील में विस्तृत था। इस नगर को ई० १०१८ में महमूद गज़नी ने लूटा। ई० ११९४ में शहाबुद्दीन महम्मद गोरी ने जयचन्द को कैद कर इस नगर को नष्ट भ्रष्ट कर दिया जो कि आज संयुक्तप्रान्त के फर्रुखा- बाद में एक छोटे से गांव के रूप में अवशिष्ट रह गया है।

इतिहास में कन्नौज का महत्व ७ म शतक में हर्षवर्द्धन के समय तथा ९ म व १० म शतक में मिहिरभोज तथा महेन्द्रपाल के शासनकाल में विशेष कर था। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के अनन्तर का ५० वर्ष का इस राज्य का इतिहास लुप्तप्राय है। ई० ७३१ में यशोवर्मा का यहां राज्य था। यशोवर्मा संस्कृत का भारी विद्वान् था। इसके दर्बार में अनेक विद्वान् थे। इसने अनेक नाटक रचे थे जिनमें 'रामाभ्युदय' नामक नाटक का निर्देश आनन्दवर्द्धन के ध्वन्यालोक में, धनिक के दशरूपक में और विश्वनाथ के साहित्य दर्पण में मिलता है। ई० ७४० में काश्मीर के मुक्तापीड़ ललिता- दित्य से यह मारा गया था। यशोवर्मा के पुत्र वज्रायुध को मुक्तापीड़ के पुत्र जयापीड़ ने गद्दी से उतार दिया। वज्रायुध के बाद इन्द्रायुध गद्दी पर आया जिसको ई० ८१० में बंग और विहार के धर्मपाल राजा ने गद्दी से उतार दिया। इसका सम्बन्धि चक्रायुध गद्दी पर आया परन्तु ई०८१६ में उसकी भी वही दशा हुई।

राजपूताने के गुर्जर प्रतिहार राज्य के शासक नागभट्ट ने जिसकी राजधानी भिलमाल थी, इसकी गद्दी छीनकर कन्नौज को अपनी राज- धानी बनाया। इस शतक में प्रायः इसी वंश के राजा यहां राज्य करते थे। नागभट्ट का उत्तराधिकारी रामभद्र ई० ८३४—४० तक शासन करता था। इसका पुत्र मिहिर भोज था जो ई० ८४० से ८९० तक सम्राट् था। इसने कन्नौज का साम्राज्य पुनः स्थापित किया। इसने अपने को विष्णु का अव- तार मानकर आदिवराह उपाधि ग्रहण की थी। मिहिर भोज का पुत्र महेन्द्रपाल था जिसने ई० ८९० से ९०८ तक राज्य किया। इसका भी शासन पंजाब को छोड़कर सम्पूर्ण आर्यावर्त में था। इसका गुरु प्रसिद्ध राजशेखर कवि था जिसके विरचित बालरामायण, बालभारत, कर्पूर- मञ्जरी, बिद्धशालभञ्जिका आदि पुस्तकें हैं। यही राजशेखर महेन्द्रपाल के

पोगाळ के समय में भी विद्यमान था। महेन्द्रपाल के बाद उसका पुत्र द्वितीय भोज केवल २ वर्ष गद्दी पर था। उसके मृत्यु के बाद कनिष्ठ भ्राता महीपाल ई० ९१०-४० तक गद्दी पर था। इस के सभा में क्षेमीश्वर नाम का नाटककार था। जिसने महीपाल ता का वर्णन अपने 'चण्डकौशिक' नाम के नाटक में किया है। बनाया हुवा 'नैषधानन्द' नाम का दूसरा भी नाटक है। राष्ट्रकूट राजा इन्द्र ने कन्नौज पर आक्रमण कर उस साम्राज्य का बहुत बड़ा अपने साम्राज्य में मिलाया। इसका पुत्र देवपाल ई० ९४०—५५ खण्ड के यशोवर्मा का सामन्त था। देवपाल के बाद विजयपाल ९६०- तक गद्दी पर था। इसके बाद राज्यपाल आदि अनेक राजा हुवे ने मुसलमानों के आधिपत्य में राज्य किया। एकादश शतक के अन्त हवार वा राठोर वंश के चन्द्रदेव नामक राजा ने मुसलमानों से मोर्चा भारत को थोड़े समय के लिये स्वतन्त्र किया था। इस राजा के एक शतक ही दिल्ली शहर फिर से बस गया था। इसके पौत्र गोविन्द चन्द्र १०४—११५५ तक अप्रतिहत राज्य कर सका था। मालूम होता है समय नैषध महाकाव्य तथा खंडन-खंड-खाद्य आदि ग्रन्थों का कवि तथा दार्शनिक श्रीहर्ष हुवा था। राजा जयचन्द जिसकी को राठोर के राय पृथ्वीराज ने हरण किया था तथा जिसके कारण का स्वातन्त्र्य चिरकाल के लिये नष्ट हो गया, राजा गोविन्द चन्द्र का था। ई० ११९४ में शहाबुद्दीन गोरी ने युद्ध में जयचन्द्र का वध । इसके पश्चात् कन्नौज में चन्देल वंशोय आठ राजाओं ने किया।

चौहान (चाहुमान) वंश।

इस वंश का सम्बन्ध पंजाब के अनङ्गपाल से था। एकादश शतक न्त में इसी अनङ्गपाल ने दिल्ली शहर की उन्नति की। द्वादश के मध्य में चौहान वंश का चतुर्थ विग्रह राज नामक राजा साम्हर म्भरी) और अजमेर प्रान्त का अधिपति था। यह बड़ा विद्वान् वर्ष हुवे इसके बनाये हुवे दो नाटकों के कथनक का भाग

अजमेर में मसजिद की मरम्मत के समय छ काले संगमर्मर के पत्थरों पर खुदा हुवा मिला है। इनमें से ललितविग्रहराज नाम का नाटक इस राजा के सम्मानार्थ किसी ने रचा था और दूसरा हरकेली नाम का नाटक इसी का रचा हुवा था। इसीका भतीजा पृथ्वीराज रायपिठोर था। इसके पराक्रम का वर्णन हिन्दी के चन्द कवी ने अपने 'पृथ्वीराज रासो' में किया है। पृथ्वीराज के वंश का ऐतिहासिक वर्णन काश्मीर में उपलब्ध 'पृथ्वीराज विजय' नामक काव्य से प्रतीत होता है। यह काव्य ई० ११९१-१२०० के मध्य में लिखा गया है। शहाबुद्दीन गोरी ने इसको कैद कर इसका वध किया। इसकी मृत्यु के बाद इसके वंश के लोग मारवाड़ वा जोधपुर में जा बसे।

बुन्देलखण्ड (जेजक भुक्ति) के चन्देल और चेदी के कलचूरी राजा।

यमुना और नर्मदा के बीच में बुन्देलखंड का प्रान्त प्राचीन काल में जेजक भुक्ति के नाम से प्रसिद्ध था। इसके दक्षिण के आज कल के मध्य प्रान्त के भाग को प्राचीन काल में चेदी प्रान्त कहते थे। चन्देल तथा कलचूरी राजाओं में परस्पर विवाह सम्बन्ध होता था। इतिहास में चन्देलों की प्रसिद्धि नवम शतक के आरम्भ से है। ई० ८३१ के लगभग नन्नुक चन्देल ने परिहार के सर्दारों को हटाकर उनकी जमीन छीन ली। इसने बुन्देलखंड में अनेक किले बनवाये थे। ई० ९१६ के लगभग हर्ष चन्देल ने अन्य राजाओं के साथ कन्नौज के महीपाल को राष्ट्रकूट के तृतीय इन्द्र के अधिकार से अपनी गद्दी वापस लेने में सहायता की थी। ऐसा कहा जाता है कि इस हर्ष का सम्बन्धी भीमट नाम का नाटककार कलिंजर-पति कहलाता था। राजशेखर कवि के कथनानुसार इसके विरचित पांच नाटक थे जिनमें 'स्वप्नदशानन' बहुत प्रसिद्ध था। हर्ष के पुत्र यशोवर्मा ने कन्नौज के देवपाल को १० म शतक में परास्त किया था। यशोवर्मा के बाद २,३ राजा हुवे थे जिन्होंने पंजाब के राजाओं की मुसल्मानों के विरुद्ध सहायता की थी। ई० १०२३ में मुसल्मानों ने इस राज्य पर आक्रमण किया था। ई० १०४९ से ११०० तक चन्देल वंश का कीर्तिवर्मा राज्य करता था।

...में कृष्ण मिश्र ने प्रबोध चन्द्रोदय नाटक रचा था जो ई० १०६५ ...दर्बार में खेला गया था। ई० १२०३ में मुसल्मानों ने यह राज्य ...॥

मालवा का परमार (परवार) वंश।

...का यह राज्य प्राचीन काल में अवन्ती वा उज्जयिनी के नाम से ...। इस वंश का प्रवर्तक उपेन्द्र अथवा कृष्णराज नवम शतक के ...में विद्यमान था। लगभग ४ शतक तक यह वंश राज्य करता था। ...का सप्तम राजा मुंज था। संस्कृत साहित्य में विद्वत्ता तथा ...के लिये यह बहुत प्रसिद्ध है। यह केवल कवियों का आश्रय दाता ...था किन्तु स्वयं एक अच्छा कवि था। सुभाषित ग्रन्थों में प्राप्त, ...से निर्दिष्ट अनेक श्लोकों से ज्ञात होता है कि इसके विरचित ...थे। ई० ९७४ से ९९५ तक इसने राज्य किया। प्रसिद्ध ...तथा उसके टीकाकार धनञ्जय और उसका कनिष्ठ भ्राता ...इसके प्रधान सभा पण्डित थे। कवि रहस्यकार हलायुध भी तृतीय ...राज के दर्बार से यहां आ गया था। धनपाल और सुभाषित-...दिका कर्ता अमित गति भी इसीके दर्बार में थे। इसके समय में ...साहित्य की बहुत उन्नति हुई। इसने चालुक्य वंशीय द्वितीय 'तैल' ...वार लड़ाई की और अन्तिम लड़ाई में मारा गया। इसका ...'वाक्पति द्वितीय,' 'उत्पलराज' 'अमोघवर्ष' 'पृथ्वीवल्लभ' ...' आदि अनेक नामों से मिलता है। इसके बाद मुंज का भाई ..., नवसाहसाङ्क भोज राजा के गद्दी पर बैठने के पहिले कुछ ...शासन करता था। इसके सभापण्डित पद्मगुप्त वा परिमल ...राजा का चरित्र वर्णन करने के लिये नवसाहसाङ्क-चरित नामक ...रचना की।

...का भतीजा धारानगरी का प्रसिद्ध भोज राजा था। धारानगरी इस ...राजाओं की राजधानी थी। ई० १०१८ के करीब भोज गद्दी पर ...और चालीस वर्ष तक शान से राज्य किया। यद्यपि इसने कई बार ...से युद्ध किया तो भी यह संस्कृत साहित्य की उन्नति करने में

६

ही विशेष विख्यात है। इसके स्वयं विरचित ज्योतिष का 'राजमृगाङ्क', अलङ्कार का 'सरस्वती कण्ठाभरण, शृङ्गार प्रकाश', योग दर्शन का 'राज मार्तण्ड', धर्म शासन का 'धारेश्वर', शैवागम का तत्व-प्रकाश और शिल्प के भी ग्रन्थ विद्यमान हैं। ऐतिहासिकों ने इसकी विद्वत्ता तथा वीरता की समुद्रगुप्त से तुलना की है। धारा में इसने सरस्वती का मन्दिर स्थापित कर एक संस्कृत विद्यालय खोला था जहां आज एक मसजिद बनी हुई है। भोपाल के आग्नेय दिशा में २५० वर्गमील का भोजपुर का तालाव इसका बनाया हुवा था जिसको मुसलमानों ने नष्ट कर दिया और आज वह स्थान उर्वरा भूमि के रूप में विद्यमान है जिसमें से मध्य प्रान्तीय रेल की शाखा गई है। भोज के बाद यह राज्य नाम के लिये था। ई० १५६२ में अकबर ने उसे भी नष्ट कर इसको अपने राज्य में मिला लिया। मम्मट भट्ट ने अपने काव्य प्रकाश के एक श्लोक[1] में भोज राजा का वर्णन किया है इससे मालूम होता है कि मम्मटभट्ट इसी के समय के थे।

वंगाल और विहार के 'पाल' तथा 'सेन' वंश।

हर्षवर्द्धन की मृत्यु के वाद वंग और विहार के सामन्त स्वतन्त्र हो गये। ई० ७०० के करीव आदिसूर नामक राजा ने वंग में प्रसृत बौद्ध धर्म को कम करने के लिये कन्नौज से पांच ब्राह्मणों को बुलाया और उनकी सहायता से वैदिक धर्म की स्थापना की। इन पांच ब्राह्मणों में वेणी संहार नाटक के रचयिता भट्ट नारायण (मृगराजलक्ष्मन्) भी एक थे ऐसा तागोर कुल की परम्परा में माना गया[2] है। इस आदिसूर के अस्तित्व के विषय में ऐतिहासिकों में मतभेद है। अष्टम शतक के द्वितीय पाद में (करीव ई० ७३०-४०) गोपाल वंग का राजा बनाया गया। यह बौद्ध धर्मावलम्बी था। इसने अपने राज्य की अराजकता दूर कर अपना राज्य मगध तक फैलाया था। इसी के नाम के कारण इस वंश के राजा 'पाल' कहलाते हैं। इसने ४५ वर्ष तक राज्य किया। इस वंश का द्वितीय राजा

---

१ मम्मभट्ट का काव्य प्रकाश झलकीकर संपादित पृ० ६४४ ४ आवृत्ति १९२१।

२ कीथका 'संस्कृत नाटक' पृ० २१२।

था जिसने ३२ वर्ष तक राज्य किया। तिब्बत के ऐतिहासिक
के लेख से मालूम होता है कि इसका राज्य बंगाल की खाड़ी से
उत्तर में दिल्ली और जलंधर तक था। तारानाथ का यह कथन ठीक
होता है क्योंकि ई० ८०० के लगभग इसने कन्नौज के राजा इन्द्रा-
को गद्दी से उतार कर चक्रायुध को गद्दी पर बैठाया था। उस समय के
मत्स्य, मद्र, कुरु, यदु, यवन अवन्ती, गन्धार व कीर के राजा इस कार्य
सम्मत थे। भागलपुर के ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि इसने पाटली-
का नष्ट वैभव फिर से उज्जीवित किया। विक्रमशिला के विद्यापीठ को
में १०७ विहार तथा ६ विद्यालय थे, धर्मपाल ने ही स्थापित किया था।
इस वंश का तृतीय राजा देवपाल था। यह पाल वंश के सब राजाओं
धिक पराक्रमी था। इसके सेनापति तत्थसेन ने कलिङ्ग तथा कामरूप
जीता था। यह भी राजा बौद्ध मतावलम्बी था। इसका शासन नवम
में ४८ वर्ष तक था। इस वंश के नवम राजा महीपाल ने काम्बोजों
अपने राज्य से निकाल कर अपने वंश का राज्य पुनः स्थापित किया।
तथा इसके पुत्र नयपाल ने तीवत में विक्रमशिला के विद्यापीठ से
रिपदु को भेजकर बौद्ध धर्म के प्रचार का श्लाघ्य प्रयत्न किया था।
के पुत्र विग्रहपाल तृतीय के, जो कि ई० १०८० में मरा था, तीन
द्वितीय महीपाल, द्वितीय सूरपाल तथा रामपाल थे। तिब्बत के ऐति-
क तारानाथ के लेख से मालूम होता है कि रामपाल का शासन
क यशस्वी था। इसके शासनकाल में वंग के राज्य में मिथिला,
और चेदि सम्मिलित थे। राजा रामपाल के बहादुरी का वर्णन
समय के संस्कृत कवि सन्ध्याकर नन्दी के रामपाल चरित नामक काव्य
मिलता है। इसका शासनकाल ई० १०८४ से ११३० तक माना गया है।
के समय में मगध के विहारों में हजारों भिक्षु रहते थे। ई० ११९७ में
मानों ने इस राज्य में से मगध को अपने राज्य में अन्तर्गत कर
। इस वंश ने भी आन्ध्रवंश के समान ४-५ शतक तक राज्य किया।

सेनवंश।

इस वंश का संस्थापक सामन्तदेव था जो कि दक्षिण से वंग में

आया था। ई० एकादश शतक के मध्य में इसने तथा इसके पुत्र हेमन्त-सेन ने मयूरभंज की रियासत के कसियारी (काशीपुरी) में छोटा सा राज्य स्थापित किया। सामन्तसेन के पौत्र विजयसेन ने एकादश शतक के अन्त तथा द्वादश शतक के आरम्भ में पाल राजाओं से वंग प्रान्त का बहुत अंश छीन कर सेनवंश का राज्य स्थापन किया। इसने ४२ वर्ष राज्य किया। ई० ११०८ के करीब इसका पुत्र बल्लालसेन गद्दी पर आया। ऐसा कहते हैं कि इसने बंगाल में वर्णाश्रम धर्म की अच्छी तरह स्थापना की। सेनवंशीय राजा ब्राह्मण थे और बौद्धों से विरोध रखते थे। बल्लालसेन तान्त्रिक था और इसने ब्राह्मण उपदेशकों को मगध, भूतान, चितगांग, आराकान, उडीसा और नैपाल में भेजा था। ई० १११९ में इसका पुत्र लक्ष्मणसेन गद्दी पर आया। इसने ८० वर्ष तक शासन किया। इसका दरबार भागीरथी के तट पर नवद्वीप में लगता था। यह बड़ा प्रतापी और कीर्तिशाली राजा था। नवद्वीप के विद्यापीठ की जिसको इसके पिता बल्लालसेन ने स्थापित किया था, इसने बड़ी उन्नति की। ये पिता पुत्र बड़े विद्वान् थे। इसके दर्बार को पञ्चरत्न (पण्डित) प्रसिद्ध हैं। आर्य्या सप्तशतीकार 'गोवर्द्धन,' दुर्घट-वृत्तिकार 'शरणदेव', गीत-गोविन्दकार 'जयदेव', पवन दूतकार 'कविराज धोई' तथा शृङ्गार कवि उमापतिधर ये इसके दर्बार के पञ्चरत्नों में थे। इसी लक्ष्मणसेन के भृत्य श्रीधर दास का विरचित सुभाषित ग्रन्थ 'सदुक्ति-कर्णामृत' (सूक्ति कर्णामृत) प्रसिद्ध है जिसमें इस समय के पूर्व के विशेषकर वंगदेश के ४४६ कवियों का वर्णन है। बख्तियार के पुत्र मुहम्मद ने नवद्वीप पर आक्रमण कर सेन वंश का अन्त कर वह राज्य अपने हाथ में कर लिया।

दक्षिण भारत के प्राचीन राज्य।

दक्षिण वा दक्षिण भारत यह निर्देश प्रायः नर्मदा व कृष्णा नदियों के बीच के भाग के लिये रूढ़ हैं। मैसूर प्रान्त तामिल नाडू और मलबार का तट इसके बाहर माने जाते हैं। किन्तु यहां दक्षिण भारत से नर्मदा के दक्षिण का सम्पूर्ण भारत का भाग अभिप्रेत है।

ले यह बात कही गई है कि ई० २२५ तक दक्षिण में आन्ध्र
विद्यमान था। इस अवधि तक इस वंश को शासन करते हुवे
तक बीत गये थे। सर भाण्डारकर लिखते हैं कि इस साम्राज्य
होने के बाद करीब ३ शतक तक दक्षिण भारत के शासन का
नहीं चलता है। तथापि कनारा तथा मैसूर के कुछ उत्तर भाग में
तथा षष्ठ शतक के मध्य में कदम्ब वंशीय राजा शासन करते थे
चीन वस्तु संशोधक ऐतिहासिकों ने (Archæologists) पता
है। परन्तु कहांतक यह ठीक है यह नहीं कहा जा सकता। महा-
भी इसी समय से राष्ट्रकूट अथवा रट्टवंश के राजा राज करते होंगे
स्थापन अष्टम शतक के मध्य में प्रबल हुआ था ऐसा अनुमान है।

चालुक्य वंश।

लुक्य वंशीय राजा अपना सम्बन्ध उत्तर से आये हुवे राजपूतों से
थे। इस वंश के प्रथम राजा प्रथम पुलकेशी ने ई० ५५० के
वातापी (बदामी) में जो आजकल बीजापुर जिले में है. चालुक्य
स्थापना की थी। इसने अश्वमेध यज्ञ किया था। इससे
होता है कि उस समय इसने दक्षिण में अपना साम्राज्य स्थापित
था। इसके पुत्र कीर्तिवर्मा और मङ्गलेश ने यह साम्राज्य पूर्व और
में और अधिक विस्तृत किया। ई० ६०८ में कीर्तिवर्मा का पुत्र
पुलकेशी गद्दी पर आया। यह बड़ा प्रतापी था। इसने हर्षवर्द्धन
को दक्षिण में घुसने नहीं दिया था। इसने पूर्व में नर्मदा और
के मध्य में पिष्टक (पिष्ठपुर) तक अपना राज्य विस्तृत किया
इसका भाई कुब्ज विष्णुवर्द्धन इसके प्रतिनिधि की हैसियत से
करता था जिसने कुछ वर्ष के बाद स्वतन्त्र होकर पूर्वीय चालुक्य
स्थापना की थी। यह वंश ई० १०७० तक अस्तित्व में था और
चोलवंश में मिल गया। द्वितीय पुलकेशी का पारसीकों (पारसी)
सम्बन्ध था क्योंकि ग्रीक तथा पारसीक शिल्पियों के हाथों से
पत्थर की मूर्तियां अजन्ता तथा एलोराकी गुफाओं में अभीतक
हैं। ई० ६४१ में हुएन्तसाङ्ग (Hieun Tsang) पुलकेशी द्वितीय

के दरबार में आया था और इसने इन गुफाओं की मूर्तियों को देखा था। ई० ६०९ से जिन पल्लवों को द्वितीय पुलकेशी ने दबा रक्खा था उस वंश के नरसिंह राजा ने इसकी राजधानी पर आक्रमण कर ई० ६४२ में इसका वध किया। पल्लव और चालुक्य वंश में एक शतक तक सतत युद्ध चलता रहा। ई० ७४० में चालुक्यवंश के द्वितीय विक्रमादित्य ने अपना राज्य पुनः इस वंश से लिया था। राष्ट्रकूट वंश के दन्तिदुर्ग राजा ने ई० ७५३ के लगभग इसके पुत्र द्वितीय कीर्तिवर्मा का पराभव कर चालुक्य वंश का राज्य छीनकर राष्ट्रकूट (रट्ट) वंश की स्थापना की और इस वंश का साम्राज्य ढाई सौ वर्ष तक प्रचलित था।

राष्ट्रकूट वंश।

वातापी की गद्दी पर बैठने के बाद दन्तिदुर्ग ने और भी प्रान्तों पर कब्जा किया। ई० ७६० के लगभग इसका चाचा प्रथम कृष्ण गद्दी पर आया। इसके समय का देवगिरी के पास एलापुर के पहाड़ों में खुदा हुआ कैलास मन्दिर प्रसिद्ध है। इसके बाद दूसरा गोविन्द गद्दी पर आया। इसका शासन बहुत अल्पकाल तक रहा। इसके अनन्तर इसका भाई ध्रुव गद्दी पर आया। इस ध्रुव (धी ने भिनमाल के गुर्जर राजा वत्सराज को परास्त किया था। इसका पुत्र तृतीय गोविन्द ई० ७९३ से ८१५ के मध्य शासन करता था। इसके समय में राज्य का विस्तार विन्ध्य और मालवा से लेकर काञ्ची तक था। इसने अपने भाई इन्द्रराज को लाट (दक्षिण गुर्जर) का प्रतिनिधी नियुक्त किया था। यह बड़ा प्रतापी था। इसके बाद प्रसिद्ध अमोघवर्ष का ६२ वर्ष तक शासन था (ई० ८१५—७७)। इसके समय में दक्षिण में जैनधर्म की अत्यन्त उन्नति हुई। इसने अपनी राजधानी नासिक को छोड़कर मान्यखेट (मलखेट—निज़ाम की रियासत) में बनाई। उस समय इस राजा की गणना संसार के चार पराक्रमी राजाओं में थी। उन चारों में इसके अतिरिक्त बगदाद का खलीफ़, तथा चीन और कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) के बादशाह थे। इसके समय में विशेष कर दिगम्बर जैनधर्म की उन्नति हुई। जैनों के आदि पुराण तथा पार्श्वाभ्युदय काव्य का कर्ता जिनसेन, उत्तर पुराण का कर्ता गुणभद्र, प्रसिद्ध

ज्योतिषी 'गणितसार संग्रह' कार महावीराचार्य और जैन वैयाकरण ...न इसी समय के थे। जैन वैयाकरण शाकटायन ने अपनी शब्दा-...वृत्ति का नाम राजा के आदर में अमोघवृत्ति रक्खा। अमोघवर्ष ...कवि था। इसके विरचित प्रश्नोत्तर रत्नमाला और कनड़ी भाषा में ...कविराज-मार्ग नाम के अलङ्कार शास्त्र ये दोनों ग्रन्थ हैं। अमोघ-...ने अपनी वृद्धावस्था में संन्यास लेकर अपने पुत्र द्वितीय कृष्ण को ...गद्दी पर बैठाया। अमोघवर्ष का दूसरा नाम नृपतुङ्ग भी था।

द्वितीय कृष्ण ने ई० ८८० से ९११ तक राज्य किया। इसके बाद ...इन्द्र ई० ९१२ में गद्दी पर आया। यद्यपि इसका शासन बहुत ...दिन तक रहा तथापि ई० ९१५ के करीब इसने कन्नौज में आक्रमण ...था और वहां के पाञ्चाल राजा महीपाल को गद्दी से उतार कर ...प्रान्त को अपने राज्य में जोड़ा था। ई० ९१६ से ९४० तक तीन ...हुवे थे जिनका इतिहास में कोई महत्व नहीं है। ई० ९४० के ...राष्ट्रकूट का प्रतापी राजा तृतीय कृष्ण गद्दी पर आया। इसने ...वर्ष तक शासन किया। ई० ९४९ में इसने चौल राजा राजादित्य का ...किया था। इसके समय में ब्राह्मण और जैनों में झगड़े चल रहे थे। ...दरबार में कवि-रहस्यकार हलायुध और यशस्तिलक-चम्पुकार जैन ...सोमदेव विद्यमान थे। ये दोनों काव्य, व्याकरण के ग्रन्थ होते हुवे भी ...के गुण वर्णन के लिये लिखे गये थे। इस वंश के अन्तिम राजा ...कक्क वा कर्क को प्राचीन चालुक्य वंश के द्वितीय तैल (तैलप) ने ...कर कल्याणी चालुक्य वंश की स्थापना की जिसका राज्य २२५ ...तक प्रचलित था।

कल्याणी चालुक्य वंश।

निजाम की रियासत में गुलबर्गा के पास कल्याण नामक शहर विद्य-...मान है। यही कल्याणी चालुक्य वंश की राजधानी थी। यहां पर द्वितीय ...ने २४ वर्ष तक राज्य किया। इसी ने धारा के मुंजराजा का वध किया ...। ई० ९९७ के करीब इसका पुत्र सत्याश्रम गद्दी पर आया था। इसके ...में चोल के राजराज ने इस राज्य पर आक्रमण कर इस राज्य का

विध्वंस किया था। ई० १०५२ के करीब इस वंश के प्रथम सोमेश्वर आहवमल्ल ने कोप्पम नामक ग्राम के पास चोल के राजराज से युद्ध कर उसे मार डाला। इसने मालवा, काञ्ची व चेदी के राजाओं को भी पराजित किया था। ई०१०६८ के करीब इसने ज्वर से पीड़ित होकर तुङ्गभद्रा में कूद कर आत्महत्या की थी। इसके बाद द्वितीय सोमेश्वर गद्दी पर आया परन्तु इसका भाई विक्रमाङ्क (विक्रमादित्य षष्ठ) ने उसको गद्दी से उतार कर ई० १०७६ में अपने राजा बन बैठा। यही विक्रमाङ्क, बिल्हण कवि के 'विक्रमाङ्क देव चरित' का नायक हैं। इस वंश का ऐतिहासिक वृतान्त इसी काव्य से ज्ञात है। प्रसिद्ध धर्मशास्त्र, ग्रन्थ मिताक्षरा का रचयिता विज्ञानेश्वर इसीके दरबार का पण्डित था। विज्ञानेश्वर ने इस राजा की भूरि प्रशंसा[1] की है। विक्रमाङ्क की मृत्यु के बाद इस वंश का ह्रास प्रारम्भ हुवा। इसके पुत्र तृतीय सोमेश्वर ने ई० ११२७ से ११३८ तक राज्य किया। यह संस्कृत साहित्य का विद्वान् था। इसका बनाया हुवा 'अभिलषितार्थ-चिन्तामणि' अथवा 'मानसोल्लास' नाम का ग्रन्थ है। तृतीय तैल राजा के मन्त्री विज्जल (बिज्जन) बागी होकर उस राज्य के बड़े हिस्से का मालिक हो गया। यह राज्य २०-२१ वर्ष तक इसके वंश में रहा। ई० ११८३ में चालुक्य वंश के चतुर्थ सोमेश्वर ने विज्जल के वंशीयों से अपना पैतृक राज्य छीन लिया। परन्तु इसमें राज्यरक्षण की शक्ति न होने के कारण देवगिरि के यादवों ने और द्वार-समुद्र (मैसूर) के होयसलों ने (Hoysal) इस राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया। यद्यपि नाम के लिये इस वंश में इसके बाद २-३ राजा और हुवे थे तथापि इसका अन्त ई० ११९० में हो गया।

ई० ११६२ के पश्चात् बिज्जल के शासनकाल में वीर शैव अथवा लिङ्गायत मत स्थापित हुवा था जो की आजतक विद्यमान हैं। विज्जल

---

१ नासीदस्ति भविष्यति क्षितितले कल्याण कल्पं पुरम्।
नो दृष्टः श्रुत एव वा क्षितपतिः श्रीविक्रमाङ्कोपमः॥
विज्ञानेश्वरपण्डितो न भजते किञ्चान्यदन्योपमः।
आकल्पं स्थिरमस्तु कल्पलपतिकाकल्पं तदेतत् यम्॥

धर्मावलम्बी था। इसलिये इसने क्रुद्ध होकर दो लिङ्गायत धर्म- ...ओं की आँखें निकलवा लीं। जिसके कारण यह ई० ११६७ में मार डाला ...। इन दोनों गुरुओं के रक्तस्राव ने लिङ्गायत मत की जड़ को सींच- ...से सुदृढ़ कर दिया। इस मत का प्रवर्तक विज्जल का ब्राह्मण मन्त्री ...था। कथानक में मतभेद होने पर भी इस पन्थ की उत्पत्ति विज्जल ...समय में हुई यह बात सर्व-सम्मत है। इस पंथ के लोग विशेष कर ...टक में पाये जाते हैं। शिव लिङ्ग की पूजा करना, वेद व पुनर्जन्म न ...ना, बाल विवाह निषेध, पुनर्विवाह करना, अपने पन्थ का प्रवर्तक ...ण होने पर भी ब्राह्मणों से द्वेष करना इत्यादि इस पन्थ का ...न्तव्य है।

गुजरात का इतिहास।

गुजरात अथवा गुर्जरराष्ट्र जिसको गुर्जर मण्डल और गुर्जर देश भी ...ते हैं, आजकल के बम्बई प्रान्त का एक भाग है। प्राचीन काल में ...में आनर्त, सुराष्ट्र या काठियावाड़ और लाट ये तीन विभाग माने गये हैं। ...र्त इसका उत्तर भाग है। इसकी राजधानी आनर्तपुर वा आनन्दपुर ...जो कि आजकल वडनगर के नाम से प्रसिद्ध है। सुराष्ट्र या सौराष्ट्र ..., काठियावाड़ के सुरथ नामक ग्राम में अवशिष्ट है। सुराष्ट्र की राज- ...नी भावनगर थी। सुराष्ट्र प्रान्त गुर्जर देश का मध्य भाग था। लाटदेश ...रात का दक्षिण भाग था।

पुराणों से ज्ञात होता है कि मनु के पौत्र, शर्याती के पुत्र आनर्त ...ने आनर्त देश पर शासन किया था। इसके पुत्र रेवत की राजधानी ...ा या कुशस्थली थी। यादव वंश के ये सम्बन्धी थे। यादव वंश का ...पुरुष यदु नाम का था। पुराणों में यदुवंश का विस्तृत वर्णन ...ा है। कृष्ण भगवान के समय यादव मथुरा को छोड़ कर द्वारिका में ...आये थे।

यादवों का नाश होने के बाद ई० पू० ४ थे शतक तक गुजरात के

इतिहास का ठीक २ पता नहीं चलता। सम्भव है कि गुजरात प्रान्त समुद्र के किनारे होने के कारण विदेशी यहां जलयान से आकर बस गये हों। इन विदेशियों के निवास के कारण इस देश को म्लेच्छ देश मानकर यहां यात्रा के व्यतिरिक्त जाना धर्मशास्त्रों में निषिद्ध माना गया है। ई० पू० ३ य शतक में अशोक वर्द्धन के साम्राज्य में बौद्ध धर्म का विस्तार करने के लिये बौद्ध थेरों (स्थविरों) को साम्राज्य की चारों दिशाओं में भेजा गया था। उनमें से धम्मरक्षितो नाम का यवन थेर गुजरात में आया था। इससे गुजरात में यवनों के प्राबल्य का अनुमान होता है। इसी समय से गुजरात का इतिहास सप्रमाण उपलब्ध है। अशोक वर्द्धन के पूर्व इसके पितामह चन्द्रगुप्त ने भी अपना साम्राज्य गुजरात में स्थापित किया था। चन्द्रगुप्त के श्यालक पुष्पगुप्त ने सुदर्शन नाम का तालाब बनवाया था।

मौर्यों के शासन के बाद इस प्रान्त में कुछ काल तक बेक्ट्रिया के यवनों का शासन था। इनका नेता मिनान्दर वा मिलिन्द था जिसका पराभव शुंग वंश के पुष्पमित्र ने किया था। इन यवनों के बाद ई० पू० ७० के लगभग क्षत्रप वंश के राजाओं ने इस प्रान्त पर अपना प्रभुत्व जमाया था।

क्षत्रप शब्द फारसी के 'सत्रप' शब्द से बना है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में क्षत्रपशब्द कहीं नहीं मिलता है। इससे मानना पड़ता है कि इस वंश के शासक विदेशी थे। इस वंश का प्रथम राजा मेनस् शक जाति का था। औदीच्य क्षत्रप का शासन ई० पू० ७० से ई० ७८ तक था। पाश्चात्य क्षत्रपों का शासन ई० ३८८ तक जारी था। क्षत्रपों का प्रसिद्ध राजा रुद्र-दमन था। इसने पुष्पगुप्त के सुदर्शन तालाब का बांध बनवाया था। इसके गिरिनार शिला लेखों से इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ा है। ई० २५० के लगभग दक्षिण के आभीर वंश के त्रैकूटकों ने काठियावाड़ में अपना शासन जमाना शुरू किया था। इस वंश का धरसेन नाम

ड़ा प्रतापी राजा दक्षिण में उत्तर कोंकण और गुजरात के पश्चिम पर शासन करता था जिसका अश्वमेध यज्ञ प्रसिद्ध है। इस वंश के पुरुष के विषय में विशेष कुछ ज्ञात नहीं है। पुराणों में आभीर ओं की शाखा ही इस वंश में थी ऐसा माना है। इस वंश के पुरुषों ने मूल-उत्पत्ति को भूलकर हैहयों के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ा ई० ३०० के लगभग क्षत्रपों का ह्रास प्रारम्भ हुआ था तब से त्रैकू- की उन्नति हुई और ई० पांचवी सदी में इन्होंने अपना साम्राज्य त किया था। पांचवी सदी के मध्य के बाद से इस वंश का ह्रास हुआ और अन्त में गुप्तों ने ई० ४९५ के करीब इस प्रान्त को अपने ज्य में मिला लिया ।

गुजरात प्रान्त पर गुप्तों का शासन ई० ४१० से ई० ४७० तक था। गुप्त की मृत्यु के बाद इस प्रान्त पर हूणों का आक्रमण हुआ था। का अन्त ई० ५६० के लगभग हुआ था। ई० ४७० से गुप्त वंशीय ओं का हूणों के साथ युद्ध ई० ५६० तक जारी था। इसलिये इस पर गुप्तों का शासन रहने पर भी प्रभावशाली नहीं था।

गुप्तवंश के बाद गुजरात प्रान्त पर वलभी राजाओं का शासन स्था- हुआ था। यह शासन ई० ७७० तक जारी रहा। वलभी ओं का इतिहास पहिले दिया जा चुका है। इस वंश में कुल १५ हुवे थे।

काठियावाड़ में जब वलभी राजाओं का शासन था उसी समय ६३४ से ७४० तक दक्षिण गुजरात में वातापी के चालुक्य राजाओं ने का साम्राज्य जमाया था। चालुक्य वंश के द्वितीय पुलकेशी के शासन (ई० ६१०—६४०) उसके सेनापति चण्डदण्ड ने कोंकण को कर गुजरात के दक्षिण भाग में (लाट) और मालवा में भी अपना जमाया था। इसी साम्राज्य को इसके पुत्र जयसिंह वर्मा ने दृढ़ था। इस समय मध्य गुजरात में ब्रोच या भरुकच्छ के आस पास में

गुर्जर उपाधि के राजा शासन करते थे। वलभी राजाओं के साथ इन गुर्जर राजाओं का सख्य था। उनकी सहायता से गुर्जरों ने चालुक्य राजाओं को आगे बढ़ने नहीं दिया था। जयसिंह वर्मा के पुत्र पुलकेशी जनाश्रय (ई० ७२४-७४३) के समय में सिंध प्रान्त के अरब सर्दार ने गुजरात, मालवा और अन्य प्रान्तों पर आक्रमण कर चालुक्य वंश के राजाओं की सत्ता कम कर दी थी। अन्त में ई० ७५० के लगभग राष्ट्रकूट वंश के राजाओं ने लाट देश पर अपना शासन स्थापित किया।

पश्चिम में वलभी और दक्षिण में चालुक्य वंश के राजाओं ने जब अपना राज्य स्थापित किया था तब ब्रोच या भरुकच्छ के आसपास के स्थानों पर गुर्जर राजा शासन करते थे यह कहा गया है। ये गुर्जर राजाओं के पूर्वज पहिले पश्चिम से आर्यावर्त में मथुरा के निकट आ बसे थे और वहां से धीरे २ यहां आकर राज्य करने लगे थे। यद्यपि ये राजा लोग गुजरात के विस्तृत भाग पर राज्य करते थे तथापि ये सदैव सामन्त ही रहे। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि ये किसके सामन्त थे। अन्त में इन्होंने चालुक्यों का आधिपत्य स्वीकार किया था। इस वंश में छः राजा हुवे थे। प्रथम राजा दक्ष ई० ५८० के लगभग गद्दी पर आया था। अन्तिम राजा तृतीय जयभट्ट ई० ७०६-७३४ तक शासन करता था। इसीके शासनकाल में भारत पर अरबों का आक्रमण हुवा था। किन्तु पुलकेशी जनाश्रय ने नौसारी के पास अरबों को परास्त कर पीछे हटाया था। इस वंश का नाश अरबों ने किया वा राष्ट्रकूटों ने यह ठीक २ नहीं कहा जा सकता। राष्ट्रकूटों के समय भरुकच्छ वा ब्रोच के गुर्जरों का कहीं निर्देश नहीं मिलता किन्तु भिनमाल के गुर्जरों का मिलता है।

राष्ट्रकूट राजाओं का गुजरात से सम्बन्ध ई० ७४३ से ई० ९७४ तक था। ई० ७४३ से ८०८ तक गुर्जर राजा दक्षिण के राष्ट्रकूटों के सामन्त थे। ई० ८०८ से ८८८ तक गुर्जर राजा स्वतन्त्र हो गये थे। ई ८८८

९७४ तक पुनः राष्ट्रकूटों का साम्राज्य गुजरात पर स्थापित हुवा था। वंश का सविस्तर इतिहास पहिले दिया जा चुका है।

गुप्तवंश के अन्तिम राजा बुधगुप्त के गुजरात के प्रतिनिधि को हटा- मैत्रकों ने अपना साम्राज्य या मण्डल काठियावाड़ में जमाया था। क ही मिहिर वा मेर्ह (मेढ़) कहलाते थे। संस्कृत में मित्र और मिहिर नों शब्द सूर्य के पर्यायवाचक हैं। काठियावाड़ में इस उपाधि के लोग भी तक पाये जाते हैं। इनका राज्य ई० ४७० से ई० ९०० तक था। ये सूर्य के उपासक थे। श्वेत हूणों के साथ मिलकर इन्होंने वलभी के राजाओं के साथ युद्ध किया था। श्वेत हूण भी सूर्य के उपासक थे। ७०० के लगभग गुजरात में छावड़ा वंश के राजाओं ने अपना राज्य फैलाना प्रारम्भ किया था। किन्तु काठियावाड़ में मैत्रक ९०० तक प्रबल थे। अन्त में काठियावाड़ को भी छावड़ा वंश जाओं ने ले लिया।

ई० ७२० के लगभग अनहिलवाड़ पट्टन गुजरात की राजधानी ई। यहां छावड़ा वा चापोत्कट या चाप वंश के राजा राज्य करते थे। राजाओं की पहिली राजधानी पञ्चसर थी। इस वंश का और लुक्य वंश का इतिहास अनेक संस्कृत ग्रन्थों * में लिखा है जिनमें तुङ्ग की प्रबन्ध चिन्तामणि और विचारश्रेणी, अरि-सिंह का सुकृत-कीर्तन और कृष्णभट्ट की रत्नमाला प्रधान हैं।

रत्नमाला के आरम्भ में लिखा है कि पंचसर के छावड़ा राजा शेखर पर कल्याण कटक के चालुक्य राजा भुवड़ ने ई० ६९६ में क्रमण कर उसका बध किया था। जयशेखर ने मरने के पहिले

---

* हेमचन्द्र का द्व्याश्रय महाकाव्य, जिन प्रभसूरि का तीर्थकल्प, समण्डन उपाध्याय का कुमार-पाल-प्रबन्ध, कृष्ण ऋषि का कुमार-ल चरित, सोमेश्वर की कीर्तिकौमुदी; राजशेखर का चतुर्विंशति बन्ध और वस्तु-पाल-चरित।

अपनी पत्नी रूपसुन्दरी को उसके भाई सुश्याल के साथ जंगल में भेज दिया था। वहां अनहिलवाड़ पट्टन का संस्थापक वनराज उत्पन्न हुवा था। मेरुतुङ्ग की प्रबन्ध चिन्तामणि से ज्ञात होता है कि वनराज ई० ७४६ में गद्दी पर आया था और विचारश्रेणी से ज्ञात होता है कि अनहिलवाड़ की स्थापना ई० ७६५ में हुई थी। इसने पहिले अपना राज्य जंगलों में ही स्थापित किया था। वनराज का जम्ब नाम का प्रधान अमात्य तीरन्दाजी में प्रसिद्ध था। पंचसर-पार्श्वनाथ का इसका बनवाया हुवा मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध था। वनराज ने अपनी मूर्ति पार्श्वनाथ के चरण पर गिरती हुई बनवाई थी जो अभी सिद्धपुर में विराजमान है। वनराज के बाद के राजाओं की नामावलि भिन्न २ ग्रन्थों में भिन्न २ रूप से मिलती है। इसलिये ऐतिहासिक दृष्टि से कोई भी विश्वसनीय नहीं हैं। वनराज के बाद योगराज गद्दी पर आया था यह सर्वसम्मत है। ई० ८४१ में क्षेमराज गद्दी पर आया। इसके अनन्तर तीन राजा हुवे। अन्तिम राजा का नाम नहीं ज्ञात है। इस वंश का अन्त ई० ९६१ में हुवा।

छावड़ा वंश के बाद अनहिलवाड़ का शासन ई० ९६१ से १२४२ तक चालुक्य वंश के राजाओं ने किया। इस वंश के प्राय: सभी राजा जैन धर्मियों के आश्रयदाता थे। इसलिये जैन कवि के काव्यों में इनका वर्णन अच्छी तरह से मिलता है। इन जैन कवियों में सबसे प्राचीन हेमचन्द्र था। इसने द्व्याश्रय काव्य लिखकर इस वंश का ठीक वर्णन किया है। यह वर्णन ई० ११४३ के जयसिंह सिद्धराज के समय तक है। इस काव्य को लिखना कवि ने ई० ११६० में शुरू किया था। हेमचन्द्र की मृत्यु के समय यह ग्रन्थ पूर्ण न हो सका। इसको अभय-तिलकगणि ने ई० १२५५ में समाप्त किया। इस काव्य का अन्तिम सर्ग प्राकृत में है और उसमें कुमार पाल का वर्णन है। इस वंश का यथार्थ वर्णन मेरुतुंग की ई० १३१४ में विरचित विचार श्रेणी में भी है।

विचार श्रेणी के अनुसार ई० ९६१ में छावड़ा वंश के अन्त होने [इ]स वंश के अन्तिम राजा के दौहित्र मूलराज ने अनहिलवाड़ में [क]ा शासन स्थापित किया। इस वंश का संस्कृत नाम चौलुक्य [क्य]ोंकि पौराणिकी परम्परा में इस वंश की उत्पत्ति ब्रह्मा के चुलुक से [मा]नी गई है। गुजराती में इस वंश को सोलकी वा सोलंकी कहते हैं। [सुकृ]त संकीर्तन के अनुसार छावड़ा वंश के अन्तिम राजा भूभट की [मृत्]यु होने पर उसका भागिनेय मूलराज गद्दी पर आया ऐसा लिखा [है]। मूलराज ने गद्दी पर आने पर पश्चिम में काठियावाड़ और कच्छ, [दक्षि]ण में लाट, उत्तर में अजमेर पर आक्रमण कर वहां के राजाओं को [पराज]ित किया और अपना साम्राज्य चारो तरफ़ फैलाया। अन्य गन्थों [के अ]नुसार मूलराज अजमेर के राजा को परास्त न कर सका था। [मूलर]ाज ने सिद्धपुर में रुद्र महालय नाम का भारी मन्दिर बनवाया [था]। यह मन्दिर सिद्धराज के समय में पूर्ण हुवा था। मूलराज के बाद [उस]का पुत्र चामुण्ड गद्दी पर आया था। जिसके विषय में बहुत कम [ज्ञात] है। इसने अपने तीन पुत्रों में ज्येष्ठ वल्लभ को अपना [उत्तर]ाधिकारी बनाया था। वल्लभ थोड़े ही समय तक शासन कर [सका]। इसके बाद उसका भाई दुर्लभ गद्दी पर आया। इसका [बन]वाया दुर्लभ सरोवर अभी तक प्रसिद्ध है। इसके बाद भीम गद्दी पर [आय]ा। इसका शासन ई० १०२२ से १०६४ तक था। यह पराक्रमी [था]। इसी ने सोमनाथ की छात बनवायी थी।

प्रबन्ध चिन्तामणि और विचार श्रेणी के अनुसार भीम का उत्त- [राधि]कारी कर्ण ही माना गया है। कर्ण के मूलराज और क्षेमराज [सौते]ले सापत्न भ्राता थे। इसने ई० १०६४ से १०९४ तक राज्य किया। [इस]के शासन काल में राज्य में पूर्ण शान्ति थी। इसने अनेक मन्दिर [तला]व आदि सर्व साधारण के उपयोग के लिये बनवाये थे। जिनमें [अन]हिलवाड़ का कर्ण मेरु नाम का मन्दिर और कर्णावती (Ahmedabad)

का कर्ण सागर तालाब प्रसिद्ध हैं। इसने कर्नाटक के कदम्ब राजा जय-केशी की कन्या से विवाह किया था जिससे जयसिंह-सिद्धराज उत्पन्न हुवा।

कर्णदेव की मृत्यु के समय सिद्धराज नाबालिग़ था। इसलिये राज्य सूत्र इसकी माता के हाथ ही में थे। सिद्धराज के बड़े होने पर इसकी माता ने आग्रह पूर्वक सोमनाथ के मन्दिर का कर माफ़ करवा दिया था। सिद्धराज का शासन अत्यन्त यशस्वी, धार्मिक और औदार्य पूर्वक था। गुजरात का प्राचीन शिल्प कार्य इसी के समय का माना जाता है। इसकी त्रैलोक्य मल्ल, राज-राज आदि अनेक उपाधियां थी। प्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्र, इसके दर्बार का प्रधान पण्डित था। वाग्भटालङ्कार का कर्ता वाग्भट इसका महा आमात्य था। श्वेताम्बर जैन आचार्य भट्टारक देवसूरि और कर्नाटक के दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदचन्द्र का इसके दर्बार में शास्त्रार्थ हुवा था जिसमें हेमचन्द्र मध्यस्थ था। सिद्धराज का शासन ई० १०९४ से ११४३ तक था। यह शैव था। इसके बाद इसका भतीजा कुमारपाल गद्दी पर आया।

कुमारपाल ५० वर्ष की अवस्था में गद्दी पर आया था। वाग्भट इसके समय भी महा आमात्य था। यह बड़ा पराक्रमी था। इसने अनेक युद्ध किये थे। इसका शासन ई० ११४३ से ११७४ तक था। इसके दर्बार में अनेक विद्वान् थे जिनमें प्रबन्धशत का कर्ता रामचन्द्र और उदयचन्द्र ये जैन पण्डित थे। कपर्दी और वाग्भट दोनों आमात्य कवि थे। कुमारपाल का प्रधान उपदेशक हेमचन्द्र था। ई० ११७४ में कुमारपाल का भतीजा अजयपाल गद्दी पर आया। अजयपाल जैन धर्मानुयायी नहीं था। इसीलिये इसका नाम जैन ग्रन्थों में नहीं है। इसने जैनों को बहुत तंग किया था। इसने ३ वर्ष शासन किया। इसके बाद इसका पुत्र द्वितीय मूलराज गद्दी पर आया था। यह बड़ा वीर था। इसने २ वर्ष शासन किया था। ई० ११७९ में द्वितीय भीम गद्दी पर आया। इसने ई० १२४२ तक शासन किया। इसका दूसरा नाम

था। इसके समय इसके आमात्य अपने २ मण्डलों में स्वतन्त्र हो
थे। इसीके समय में वाघेला लोग प्रसिद्ध हुवे। सुकृत संकीर्तन के
सार भीम ने अपनी गद्दी पर वाघेला वंश के लवणप्रसाद के पुत्र वीर-
को स्थापित किया था।

गुजरात के उत्तर में जब द्वितीय भीमदेव अपना शासन स्थिर कर
था तब साबरमती और नर्मदा के बीच में धोलका प्रान्त पर चालुक्य
की एक शाखा जो वाघेला नाम से प्रसिद्ध हुई, अपना शासन
रही थी। कुमारपाल की मौसी का पुत्र अर्णोराज वा आनन्द,
वेला वंश का मूल पुरुष था। कुमारपाल ने इसको व्याघ्रपल्ली वा
ला ग्राम दिया था। इसी ग्राम के कारण इस वंश का नाम वाघेला
। अर्णोराज का पुत्र लवणप्रसाद भीमदेव का मंत्री था। लवणप्रसाद
पुत्र वीर धवल वा वीर वाघेला था जो इसके बाद गद्दी पर बैठा था।

वीर धवल (१२३३ से १२३८) के पुत्र वीसल देव के समय
ला स्वतंत्र हो गये थे। कीर्तिकौमुदी और वस्तुपाल चरित का कर्ता
श्वर लवणप्रसाद का गुरु था। वाघेलाओं को स्वतंत्र करने में उनके
वस्तुपाल और तेजपाल ने बड़ी सहायता की थी। वाघेलाओं
शासनकाल ई० १२१९ से १३०४ तक माना गया है। मंत्री वस्तुपाल
तेजपाल ने आबू, गिरनार और शत्रुञ्जय इन तीन स्थानों में नेमी-
के प्रसिद्ध जैन मंदिर बनवाये थे। वीसलदेव ई० १२४३ में
हिलवाड़ की गद्दी पर स्वयं बैठा। इसकी मृत्यु ई० १२६१ में हुई।
के भतीजे अर्जुन देव का शासन ई० १२६२ से १२७४ तक था।
लालेखों में इसकी उपाधि चक्रवर्ती मिलती है। इसके बाद शार्ङ्ग देव
पर आया। इसका शासन ई० १२७४ से १२९६ तक था। इसके
कर्णदेव ८ वर्ष तक राज्य करता था। इसीके समय अलाउद्दीन
खिलजी के अलफ खाँ ने इसका राज्य छीन कर मुसलमानों का राज्य
स्थापित किया।

द्वार समुद्र (हलेबीड) का होयल वंश.

ईसवी ११ श तथा १२ श शतक में मैसूर (महीशूर) प्रान्त में इस वंश के राजा शासन करते थे। इस वंश का प्रथम राजा विट्टि देव वा विट्टिग् नामका था जिसने द्वार समुद्र को अपनी राजधानी बनाया। इसका शासन ई० ११११ से ११४१ तक था। इसके मन्त्री गङ्गराज ने जैन धर्म को आश्रय दिया था और चोल आक्रमिकों ने जिन जैन मन्दिरों को नष्ट कर दिया था उनको इसने पुनः बनवा दिया। बिट्टिग् राजा ने रामानुजाचार्य से वैष्णव धर्म की दीक्षा लेकर वैष्णवमत स्वीकार कर लिया। वैष्णव होने के बाद यह राजा विष्णु वर्द्धन वा विष्णु के नाम से प्रसिद्ध हुवा। इसके पौत्र बीर बल्लाल ने ई० ११७३ से १२२० तक राज्य किया। इसने उत्तरमें मैसूर का राज्य बहुत विस्तृत किया था और ११९१–९२ के लगभग देवगिरि के यादवों को परास्त किया था। कृष्णा नदी के दक्षिण का सम्पूर्ण भाग इसके राज्य में था। १२२३ के करीब द्वितीय नरसिंह गद्दी पर था। यह वंश १३२७ तक प्रचलित था और अन्त में मुसलमानों ने इसका अन्त किया।

यादव वंश।

इस वंश की राजधानी देवगिरि (दौलताबाद) थी जो की निज़ाम की रियासत में है। इस वंश के राजा प्रथम चालुक्य वंशीय राजाओं के सामन्त थे। यह राज प्रायः दौलताबाद से नासिक तक विस्तृत था। 'भिल्लम' नाम के प्रथम राजा को ई० ११९१ में मैसूर के होय सल राजा बीर बल्लाल ने युद्ध में मार डाला। इस वंश का प्रतापी राजा शिंघण (सिंहण) था जो ई० १२१० में गद्दी पर आया था। इसने गुजरात और अन्य देशों पर आक्रमण कर थोड़े ही समय में चालुक्य और राष्ट्रकूट राज्यों के समान राज्य का विस्तार बढ़ाया था। इसके गुर्जर प्रान्त के आक्रमण का वर्णन ई० १२१९-१२२९ के मध्यके जयसिंह सूरि के 'हम्मीर मद मर्दन नाटक' में मिलता है। ई० १२९४ के लगभग इस

का नाश होयसलों की तरह मुसलमानों ने किया। इस समय में ली के बादशाह अलाउद्दीन ने नर्मदा पार करके इस राज्य पर आक्रमण किया और इस वंश के राजा रामचन्द्र ने बहुत सा द्रव्य नज़र देकर की शरण ली। ई० १३०९ में मलिककाफूर के आक्रमण के समय भी रामचन्द्र ने ऐसा ही किया था। यह इस वंश का अन्तिम स्वतन्त्र था। इसके समय में प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार हेमाद्री (हेमाडपंत) यह रामचन्द्र राजा का तथा इसके चाचा महादेव राजा (१२६०-७१) का प्रधान मन्त्री था। इसका धर्मशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' है। इसी हेमाद्रि का आश्रित प्रसिद्ध वैयाकरण बोपदेव था जिससे हेमाद्रि ने अनेक ग्रन्थ * बनवाये थे। ई० १३१८ में का जामाता हरपाल मारा गया और इस वंश का अन्त हुवा।

पाण्ड्य और चोल वंश।

कृष्णा और तुङ्ग-भद्रा के दक्षिण में, जो आजकल के मद्रास में अन्तर्गत है, प्राचीन काल से तीन राज्य प्रचलित थे। इनका पाण्ड्य, केरल और सती पुत्र था। पाण्ड्य राज्य मदुरा और तिन्नेवेली प्रान्तों के चारो ओर उत्तर में त्रिचनापाली तक और पश्चिम ट्रावंकोर तक प्रसृत था। इसका प्रथम निर्देश 'कात्यायन' के वार्तिक में मिलता है। कात्यायन का समय ऐतिहासिकों ने ई० पू० ४ थे शतक माना है। इस पाण्ड्य वंश का निर्देश मेगेस्थानीस (Megasthenes) प्लिनी (Pliny) और टालेमी (Ptolemy) ने अपने २ ग्रन्थों

---

* विद्वद्धनेश-शिष्येण भिषक्केशव-सूनुना।
हेमाद्रि वोपदेवेन मुक्ताफल-मची-करत् ॥
श्रीमद्भागवतस्कन्धाध्याया-र्थादि निरूप्यते।
विदुषा वोपदेवेन मन्त्रि-हेमाद्रि-तुष्टये ॥
(हरि लीला विवरण)

में किया है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में ※पाण्ड्य वंश का उल्लेख किया है। ई० पू० प्रथम शतक में पाण्ड्य राजा ने रोमके सम्राट आगस्तस् सिज़र के दरबार में उपदेशक मण्डल (Mission) भेजा था। उस समय रोम ईजिप्त और दक्षिण भारत के बीच में व्यापार सम्बन्ध था। यह व्यापार ई० २१५ के लगभग बन्द हो गया। इस राज्य में तामिल (द्रविड़ भाषा) साहित्य की उन्नति हुई। ई० ६४०के लगभग हुएन्तसाङ्ग दक्षिण में पल्लवों की राजाधानी कांची में गया था। उसके कथन से मालूम होता है कि उस समय पाण्ड्य राज्य पर पल्लव वंश के नरसिंह वर्मांका प्रभुत्व था। ई० अष्टम व दशम शतक के पाण्ड्य राजाओं का कुछ इतिहास शिलालेखों से ज्ञात होता है। ई० १० म शतक के आरम्भ में चोल वंशीय राजाओं ने इस राज्य पर २०० वर्ष तक प्रभुत्व जमाया था। पाण्ड्य राज्य में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय की बहुत उन्नति हुई। कीलहार्न (Kiel Horn) के मतानुसार सोलहवीं शताब्दि तक के पाण्ड्य राजाओं के ११ नाम उपलब्ध हुवे हैं।

पाण्ड्य वंश के समान केरल वंश का निर्देश भी बहुत प्राचीन काल से अशोक के शिलालेखों में मिलता है। सती-पुत्र का भी उल्लेख उन शिला लेखों में हैं। प्लीनी ने भी अपने ग्रन्थों में केरल-पुत्र का नामोल्लेख किया है। ई० त्रयोदश-शतक का इस राज्य का इतिहास उपलब्ध है। इस वंश का रविवर्मा नामक राजा १३१८ तक के अन्त में पाण्ड्य और चोल राजाओंको जीत कर १३१२ में गद्दी पर बैठा था। मल्लिककाफूर के प्रतिकार करने वाले राजाओं में यही प्रधान था।

चोल मण्डल में आज कल का मद्रास शहर, उसके उत्तर के कुछ जिले और मैसूर रियासत का बहुत कुछ भाग सम्मिलित है। प्राचीन त्रिचनापाली (उराई यूर) इस राज्य की राजधानी थी। इस चोल मण्डल का पाण्ड्य राज्य की तरह पाणिनि की अष्टाध्यायी में निर्देश

※ रघुवंश ४ र्थ सर्ग श्लोक ४९-५० और षष्ठ सर्ग श्लोक ६०-६५

है। कात्यायन के वार्तिक में इसका भी उल्लेख मिलता है। अशोक
समय यह राज्य स्वतन्त्र था। इस वंश का प्रथम राजा करिकाल था।
ने सिलोन पर आक्रमण किया था। इसने कावेरी नदी का १००
लम्बा बांध बनवाया था। ई० प्रथम शतक के उत्तरार्ध में और
शतक के पूर्वार्ध में यह शासन करता था। ३य शतक से इस राज्य
पल्लवों का शासन बहुत काल तक था। हुएन्तसेंग के समय उसके
अनुसार यह राज्य केवल ३०० या ४०० मील में था। अष्टम
में चालुक्य वंशीय विक्रमादित्य के पल्लवों को परास्त करने पर
ों की पुनः उन्नति होने लगी। ई० ८८० से ९०७ के बीच में इस
के आदित्य राजा ने अपराजित-पल्लव को जीत कर पल्लवों की
सत्ता नष्ट की। आदित्य का पुत्र तथा उत्तराधिकारी पहिला परान्तक
९०७ से ९५३ तक राज्य करता था। इसके बाद प्रसिद्ध राजराजदेव
गद्दी पर आया (ई० ९८५)। इसने २८ वर्ष राज्य किया। इसके
काल के अन्तिम समय में यह दक्षिण का सम्राट् हो गया था।
के राज्य में कृष्णा और तुंगभद्रा के दक्षिण का भाग तथा सिलोन
। इसने केरल, चोल और पाण्ड्य राज्यों को जीत लिया था। ई० १००५
१०११ तक इसने शान्ति से राज्य किया था। इसके पास जल सेना भी
सी थी। टेंजोर का भव्य शिव-मन्दिर इसी का बनवाया हुवा अभी
मान है। शैव होने पर भी इसने अनेक बौद्ध मन्दिर बनवाये
। इसके पुत्र प्रथम राजेन्द्र-चोल-देवने जल सेना की सहायता से
पर आक्रमण कर उसे अपने आधीन कर लिया। ई० १०२३ में इसने
के महीपाल से युद्ध किया था। इसका पुत्र राजाधिराज ई० १०३५
गद्दी पर आया। इसका बध कुप्पम के चालुक्य वंशीय राजा से
करने में हुआ था। इस वंश के वीर राजेन्द्र चोल ने कृष्णा और
तुंगा के संगम पर चालुक्यों को हराया था। ई० १०७० में इसकी
मृत्यु हुई। इसके भाई अधिराजेन्द्र के समय (ई० १०७४) में इस

राज्य का अन्त हुआ। अधिराजेन्द्र के समय में प्रसिद्ध विशिष्टाद्वैत-मत के प्रवर्तक रामानुजाचार्य हुवे थे। इनका अध्ययन काञ्ची में हुवा था और आप ट्रिचनापाली के पास श्रीरंगम् में रहते थे। परन्तु राजा अधिराजेन्द्र के शैवमतावलम्बि होने के कारण राजा की जीवितावस्था तक इनको मैसूर में रहना पड़ा था। ई० १३७० के करीब यह राज्य विजयानगर के राज्य में मिल गया।

पल्लव वंश।

कांची के पल्लव ईरान के पहलवों के वंशज समझे जाते थे। परन्तु तामिल ग्रन्थों से अब ज्ञात हुवा है कि इनका संबन्ध सीलोन से था। इसलिये यह वंश भी पाण्ड्य तथा चोल वंश की तरह प्राचीन है ऐसा माना जाता है। समुद्रगुप्त ने ई० ३५० के लगभग कांचो के पल्लव-राजा विष्णु-गोप को परास्त कर दिया था। वेंगी का राजा हस्तिवर्मा भी इसी वंश का था। ई० ४३७ के लगभग कांची का बौद्ध राजा सिंह-वर्मा भी इसी वंश का था। षष्ठ शतक के उत्तरार्ध से अष्टम शतक के उत्तरार्ध तक पल्लव और चालुक्य वंशों में बराबर युद्ध होता था। सिंह बिष्णु वर्मा का पुत्र 'महेन्द्र वर्मा प्रथम' ई० ६०० से ६२५ तक कांची में राज्य करता था। इसने दक्षिण में अनेक शहरों में पहाड़ काट कर मन्दिर बनवाये थे। यह संस्कृत साहित्य का भारी विद्वान् था। इसका विरचित 'मत्त विलास प्रहसन' हाल ही में प्रकाशित हुवा है। यह पहिले जैन था परन्तु बाद में शैव हो गया था। इसका उत्तराधिकारी नरसिंह वर्मा ई० ६२५ से ६४५ तक गद्दी पर था। इसीने ई० ६४२ में पुलकेशी द्वितीय को मार कर वातापी पर कब्जा किया था। इसी के समय ई० ६४० में हुएन्तसेङ्ग् कांची में गया था। इसका बनवाया हुवा मामल्ल पुर का धर्मराज रथ नाम का मन्दिर अभी तक विद्यमान है। नरसिंह वर्मा द्वितीय अथवा राजसिंह ने कांचो में कैलासनाथ का मंदिर और सप्तपगोड़ा में समुद्र तट का मन्दिर बनवाया था।

[illegible]म शतक में कांचि के पल्लव राजा के साथ मैसूर के गंगवाड़ी [illegible]ा का घोर युद्ध हुवा था। कलिंग के गंग राजा पूर्व गंग राजा [illegible]े थे। इनमें अनन्तवर्मा चोड़गंग प्रसिद्ध था। इसने ई० १०७६ [illegible]४७ तक ७१ वर्ष तक राज्य किया था। इसका राज्य गंगा नदी [illegible]वरी तक प्रसृत था। इसीके समय पुरी में जगन्नाथ का [illegible] बना था। द्वादश शताब्दि में पल्लव राजा ने विक्रम चोल [illegible] आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार का पल्लव [illegible]१७ वीं शताब्दि तक विद्यमान था। इस वंश के दो राजा कट्टर [illegible] और बाक़ी के प्राय: बौद्ध ही थे।

[illegible]हां पर भारत का इतिहास मुसलमानों का राज्य स्थापित होने [illegible] ही दिया गया है, क्योंकि स्कूलों में और पाठशालाओं में [illegible]तिहास पढ़ाने की प्रथा बहुत कम है। यद्यपि मुसलमानों के [illegible]में भी दक्षिण में स्वतन्त्र हिन्दू राज्य थे और उनके सभा-[illegible] बहुत से संस्कृत विद्वान भी थे तथापि उस समय का केवल [illegible] से ही कार्य निर्वाह होने का सम्भव देख कर ई० १२०० के बाद [illegible]ई इतिहास स्थल-संकोच के कारण यहां नहीं दिया गया है।

परिशिष्ट (ग)

भूगोल।

पृथ्वी गोलाकार है। इसमें एक हिस्सा जमीन और तीन हिस्सा जल है। इसके पूर्व गोलार्ध में एशिया, यूरप, अफ्रिका और आष्ट्रेलिया महाद्वीप हैं। पश्चिम गोलार्ध में अमेरिका महाद्वीप उत्तर और दक्षिण विभागों में विभक्त है।

इन पांच महाद्वीपों में एशिया महाद्वीप सबसे बड़ा है। इसके दक्षिण में अरेबिया, इण्डिया और इण्डोचाइनीज़ प्रायद्वीप हैं। इण्डिया प्रायद्वीप इन तीनों के मध्य में है और इसीको भारतवर्ष कहते हैं। संस्कृत में इसको भारत वा भरत खण्ड भी कहते हैं।

भारतवर्ष के उत्तर में हिमालय पर्वत, पूर्व में ब्रह्मदेश (भर्मदेश) और वङ्गमहा-समुद्र, दक्षिण में दक्षिण महार्णव (भारत महासागर) और पश्चिम में पश्चिम समुद्र (अरब महासागर) गान्धार (अफगानिस्तान) बाल्हीक (बलुचिस्तान) आदि देश हैं।

भारतवर्ष की लम्बाई (दैर्घ्य) उत्तर में काश्मीर देश से ले कर दक्षिण में कन्या कुमारी तक १९०० कोस है। इसका पूर्व पश्चिम विस्तार सिन्धुनद से कामरूप (आसाम) तक १८०० कोस है।

भारतवर्ष को उत्तर और दक्षिण विभागों में विभक्त करनेवाला विन्ध्य पर्वत भारतवर्ष के मध्य में पश्चिम से पूर्व और उत्तर की ओर प्रसृत है। इस विन्ध्यपर्वत और हिमालय पर्वत के मध्यप्रदेश को आर्यावर्त कहते हैं। विन्ध्यपर्वत के दक्षिण का भाग दक्षिणापथ (दक्षिण-भारत) कहाता है। विन्ध्य के दक्षिण में रेवा अथवा नर्मदा नदी के तट के प्रदेश नर्मदा तट के नाम से प्रसिद्ध हैं। नर्मदा के दक्षिण में ऋक्ष पर्वत (सतपुरा) है। ऋक्ष पर्वत के दक्षिण में तपती (तापती) नदी है। तापती नदी के दक्षिण में दक्षिणापथ के पश्चिमी पूर्वी समुद्र

समान्तर में पर्वत श्रेणियाँ हैं जिनको सह्याद्रि (पश्चिमी घाट)
पूर्वगिरिश्रेणी (पूर्वी घाट) कहते हैं। इन दोनों पर्वतों के मध्य
नीलगिरि पर्वत तक उन्नत है इसलिये इसको दक्षिणापथ का
देश (पठार) कहते हैं।

आर्यावर्त के सीमा प्रदेश में विद्यमान गुर्जर, (गुजरात) बङ्ग
) कामरूप (आसाम) आदि देश आर्यावर्त के ही अन्तर्भूत हैं।
भारतवर्ष को भूमि में सर्व प्रकार के स्थल हैं जैसे उच्च पर्वत,
वन, विस्तीर्ण उर्वरा प्रदेश, समथल और बालुकामय प्रदेश,
प्रदेश (पठार)। यहां अनेक छोटी बड़ी नदियां और सरोवर हैं।

पर्वत।

हिमालय पर्वत भारतवर्ष के उत्तर में लगभग १६०० कोस तक
हुवा है। इसका अत्युन्नत शिखर गौरी शंकर (माउण्ट एवरेस्ट)
० पद (फ़ीट) ऊंचा है। इतना ऊंचा शिखर पृथ्वी पर अन्यत्र
नहीं है। काञ्चनगंगा, धवलगिरि आदि शिखर भी २३०००
फ़ीट) ऊंचे हैं। हिमालय पर्वत के १६००० या १७००० पद के
भाग सदैव बरफ़ से ढका रहता है। गर्मी में इस बरफ के
से आर्यावर्त की नदियों को यथेष्ट जल प्राप्त होता है। इस
की अत्युच्चता, विस्तार तथा वृक्ष, वनस्पति की सम्पत्ति के कारण
पर्वतराज कहते हैं।

कश्मीर के उत्तर में हिमालय की पश्चिमी शाखा को कार्तस्वराकर
कोरम) कहते हैं। गान्धार और पञ्चाप (पञ्जाब) के बीच में
के वायव्य प्रान्त की सीमाभूत पर्वतश्रेणी को सुमाली (सुलेमान)
हैं। पञ्चनद (पञ्जाब) में सिंधुनद के उत्तर में लवणवान्
रेंज) वा रौमक नाम का पर्वत है जहां सैंधव लवण होता है।
और गंगा नदी के बीच में विन्ध्य पर्वत की पश्चिमी शाखा जो
अजमेर से होती हुई इन्द्रप्रस्थ दिल्ली तक पहुंची है उसको

अर्बुद (आरावली हिल) पर्वत कहते हैं। इसका अत्युन्नत शिखर आबू हैं। स्वास्थ्य सुख की इच्छा से अनेक जन यहां निवास करने जाते हैं। यहां जैनों के अनेक देवालय हैं।

विन्ध्य पर्वत, गुर्जर देश के समीप के बालुकामय प्रदेश से पूर्व में गगा तट तक ६०० कोस विस्तृत है। इसकी ऊंचाई समुद्र परितल से २५०० पद है। इस पर्वत पर अनेक घने जंगल हैं।

विंध्य पर्वत के दक्षिण में ५० कोस की दूरी पर नर्मदा और ताप्ती नदी के बीच में ऋक्ष (सातपुरा) पर्वत का विस्तार है। इसके शिखर केवल २०० पद ऊंचे हैं। इसीलिये इसको विन्ध्यपाद कहते हैं।

पश्चिम-पर्वत-श्रेणी पश्चिम-समुद्र-तट के समान्तर ऋक्ष पर्वत से नीलगिरि पर्वत तक लगभग ४३० कोस में विस्तृत है। इसके शिखर दक्षिण की ओर ऊंचे होते गये हैं। इसकी परमोच्चता ७००० पद है। इसीमें सह्य, नीलगिरि, मलय, महेन्द्र आदि पर्वत हैं। नीलगिरि प्रदेश आरोग्य सुख के लिये प्रसिद्ध है। पश्चिम-पर्वत-श्रेणी, वृक्ष वनस्पति आदि प्राकृतिक दृश्यों के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह दक्षिणापथ-माल (पठार) की पश्चिमी सीमा है।

पूर्व पर्वत श्रेणी भारत के पूर्व समुद्र तट के समान्तर रेखा में है। यह भी पश्चिम-पर्वत-श्रेणी से उच्चता, दैर्घ्य, वृक्ष-सम्पत्ति आदि सब विषयों में न्यून है। इसके उत्तर में महेन्द्रमाली और दक्षिण में दर्दर पर्वत हैं।

इन पर्वतों के अतिरिक्त अनेक छोटे छोटे पर्वत भारतवर्ष में हैं। भारत की पश्चिमी सीमा पर निषध अथवा सिन्धुकोष (हिन्दू कुश) पर्वत है। हिमालय के उत्तर में अति रमणीय और आकर्षक कैलाश नाम का पर्वत है। इसके दक्षिण में पवित्र मानस सरोवर है। पुराणों में इनको देव-भूमि कहा है।

नदी।

भारतवर्ष में प्राय: सभी नदियां पवित्र मानी गयी हैं। इनमें सबसे गंगा नदी है। यह हिमालय में गंगावतार (गंगोत्री) के पास से निकल भागीरथी के नाम से प्रसिद्ध हो अलकनन्दा नदी से मिलकर सेवाली (शिवालिक) पर्वतके शिखर से नीचे गिरकर हरिद्वार से थोड़े दूर दक्षिण की चलकर पूर्व की ओर बहती है। उत्तर से रामगंगा और दक्षिण से ना नदी अपनी सहायक नदियों के साथ इसमें मिलती हैं। यमुना भी गंगावतार के पास में यमुनावतार से निकलकर प्रयाग में गंगा से मिलती है। इसकी सहायक नदियां चर्मण्वती (चम्बल) सिंधु ध) वेत्रवती (बेतवा) और कर्णावती (केन) हैं। प्रयाग से नदी पूर्वाभिमुख होकर गोमती, तमसा, सरयू, गण्डकी व कौशिकी यों के जल को उत्तर की ओर से और शोण (सोन) व फल्गुनी गु) के जल को दक्षिण से ग्रहण करती हुई बंगाल में दक्षिण पूर्व दिशा ओर ब्रह्मपुत्र नद से मिलकर सहस्रमुख से वङ्ग महोदधि (बंगाल खाड़ी) में गिरती है। इसकी लंबाई १५०० कोस के लगभग है।

लौहित्य नद (ब्रह्मपुत्र)—कैलास पर्वत के पूर्व लोहित नाम के वर से इसका उद्गम होने से इसको लौहित्य नद कहते हैं। इसका रा नाम ब्रह्मपुत्र है। यह हिमालय के उत्तर में तिब्बत की सीमा हज़ारों कोस पूर्व की ओर बहकर हिमालय की परिक्रमा कर दक्षिण ओर आसाम से होती हुई बंगाल में आ गंगानदी से मिल सहस्रों से बंगाल की खाड़ी में गिरती है। इसकी सहायक नदियों में तोया (Kartoya) प्रसिद्ध है। इसकी लम्बाई १८०० कोस है।

सिंधु नद (सिंधु)—इसका भी उद्गम कैलास ही में है। यह स से उत्तर पश्चिम की ओर कुछ दूर बहकर काश्मीर से दक्षिण पश्चिम ओर चल कर पञ्जाब व सिंध प्रान्त को सींचता हुई करांची के पास महासागर में गिरती है। इसके दाहिनी ओर से काम्बोज

(कुभा) वा काबुल और सुवास्तु (स्वात) नामक नदियां मिलती हैं और बाएँ ओर से हिमालय से निकलने वाली वितस्ता (झेलम) चंद्रभागा (चेनाब) इरावदी (रावी) बियाशा (व्यास) और शुतुद्रि (सतलज) ये पांच नदियां एकत्रित होकर मिलती हैं। शुतुद्रि (सतलज) का उद्गम-स्थान मानसरोवर है। सिंधु नद भारतीय नदियों में सबसे बड़ी है। इसकी लम्बाई २००० कोस है।

सरस्वती—यह शुतुद्रि और यमुना के बीच के प्लक्ष प्रस्रवण नामक पहाड़ से निकल कर कुरुक्षेत्र की उत्तर सीमा पर बहती हुई प्रयाग में गंगा से मिलती है। वर्षा ऋतु में ही इसका प्रवाह दीख पड़ता है। दृषद्वती (सागर)नाम की इसकी सहायक नदी हस्तिनापुर के पश्चिमोत्तर बह कर अम्बाला के पास इसमें मिलती है। सरस्वती नाम की दूसरी नदी अर्बुद (आबू) पहाड़ से निकलकर गुजरात में होती हुई पश्चिम (अरब) आगर में गिरती है।

लवणी (लूनी)—यह अर्बुद (आबू) पहाड़ के पश्चिम से निकल कर अन्य छोटी छोटी नदियों से मिलती हुई कच्छ के पास अरब सागर में गिरती है। वर्षाऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में इसका जल खारा रहता है।

नर्मदा (नर्बदा)—यह विन्ध्य पर्वत के पूर्व में विद्यमान मेकलगिरि (अमर कण्टक) से निकल, विन्ध्य के दक्षिण के अनेक झरनों से परिपुष्ट होकर पश्चिम की ओर बहती हुई जाबालपुर (जबलपुर) के संगमर्मर की चट्टानों को सुशोभित करती हुई भरुकच्छ (ब्रोच) के पास अरब सागर में गिरती है। यह ८०० कोस लम्बी है।

तापी वा तपती(ताप्ती)—यह ऋक्ष पर्वत (सातपुरा रेंज) से निकल कर सुराष्ट्र (सूरत) के पास पश्चिम (अरब) समुद्र में गिरती है। इसकी लम्बाई ४६० कोस है।

महानदी—यह रायपुर के पास से निकल कर कुछ दूर उत्तर पूर्व की

बह कर पूर्व और दक्षिण की ओर बहती हुई उत्कल प्रान्त को
त कर पूर्व समुद्र (बंगाल की खाड़ी) में गिरती है।

गोदावरी—यह सह्य पर्वत (पश्चिमी घाट) के पूर्व शिखर
बकेश्वर से निकल कर नासिका पञ्चवटी (नासिक) होती हुई
भिमुख होकर राज महेन्द्री के पास पूर्व समुद्र (बंगाल की खाड़ी)
गिरती है। यह ९०० कोस लम्बी है।

कृष्णवेणी (कृष्णा)—यह सह्य पर्वत (पश्चिमी घाट) के
महाबलेश्वर शिखर के पास से निकल कर पूर्वाभिमुख मत्स्यपत्तन
(मछली पट्टन) के पास पूर्व समुद्र (बंगाल की खाड़ी) में गिरती
इसमें बाएँ से भीमरथी (भीमा) और दहिने से तुङ्गभद्रा मिलती
इसकी लम्बाई ७५० कोस हैं।

पिनाकिनी (पेनार)—यह महिषपुर (मैसूर) के पूर्व में नन्दि-
पर्वत से निकल कर पुर्वाभिमुख बङ्ग समुद्र में गिरती है।

क्षीरनदी (पालार)—यह भी नन्दि-दुर्ग के पास से निकल
चेन्नपुर (मद्रास) के पश्चिम में पूर्व पर्वत श्रेणी (पूर्वी घाट) से
आने वाली नदियों का जल लेकर बंग सागर में गिरती है।

कावेरी—यह सह्य पर्वत से पूर्व की ओर कुछ दूर बह कर
दक्षिणाभिमुख हो पुनः पूर्व की ओर बहती हुई बंग समुद्र में
गिरती है। यह ४७५ कोस लम्बी है।

ताम्रपर्णी—यह मलय पर्वत से निकल कर पुर्वाभिमुख हो बंग
समुद्र में गिरती है। इसके मुखस्थल में मोती मिलता है।

प्रान्त और नगर।

कश्मीर (काश्मीर)—यह प्रान्त भारत की उत्तर सीमा पर है।
केशर विशेष होने से ही इसका नाम कश्मीर पड़ा। इसकी
राजधानी श्रीनगर है। यह रियासत है और यहाँ का राजा
है।

गन्धार (कन्धहार)—यही आधुनिक अफगानिस्तान देश है। यह सिन्धु नदी और कश्मीर के पश्चिम में है। यहां की प्राचीन राजधानियाँ पुरुषपुर (पेशावर) और पुष्करावत (हस्त नगर) थीं। महाभारत में प्रसिद्ध दुर्योधन का मातुल शकुनी यहीं का राजा था। पाणिनि की जन्मभूमि शालातुर (लहोर) इसी प्रांत में थी। इसके उत्तर में सुवास्तुदेश है।

पञ्चनद (पञ्जाब)—यह काश्मीर के दक्षिण में है। इसमें वितस्ता आदि पांच नदियां हैं इसीलिये इसका नाम पञ्जाब वा पञ्चनद पड़ा। इसकी पांच नदियों के मध्य में कुलूत (कुलू), मद्र, आरट्ट, यौधेय नाम के अनेक आयुध-जीवि प्रदेश थे। सम्प्रति इसमें लवपुर (लाहोर) कुशपुर (कुशावर) तक्षशिला (टेक्सिला) और मूल स्थान (मुल्तान) आदि नगर विद्यमान हैं।

ब्रह्मावर्त--दृषद्वती और सरस्वती नदियों के बीच का प्रदेश ब्रह्मावर्त कहाता है। इसीमें ऋग्वेद काल के ऋषि पंजाब से निकल कर आ बसे थे। इसके पूर्व के देश को इसी लिये ब्रह्मर्षि-देश कहते हैं। ब्रह्मर्षि देश में कुरुक्षेत्र, पंचाल, शूरसेन (मथुरा) और मत्स्य प्रदेशों का अन्तर्भाव है।

कुरुक्षेत्र--यह सरस्वती के बायें ओर अनेक कोसों का मैदान है। इसको कुरु-जांगल भी कहते हैं। इसी मैदान में महाभारत का युद्ध हुवा था। प्रसिद्ध पानीपत की ३ लड़ाइयां भी इसी स्थान में हुई थीं। कुरुक्षेत्र में एक मन्दिर है और उसके चारो ओर झीलें हैं जिसको समन्त पञ्चक कहते हैं। यह समन्त पञ्चक तीर्थ परशुराम निर्मित माना जाता है। द्वैपायन ह्रद और भद्रकाली क्षेत्र भी इसीमें हैं। कुरुक्षेत्र के चारो ओर का प्रान्त कुरुदेश है। यहीं कौरव पाण्डवों ने राज्य किया था। स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) हास्तिनपुर (हस्तिनापुर) और प्राणिप्रस्थ (पानिपत) ये इस प्रदेश के प्रसिद्ध नगर हैं।

ञ्चाल—यह कुरुक्षेत्र के पूर्व में है। यह दक्षिण पञ्चाल और ञ्चाल इन दो विभागों में था। इसका विस्तार चर्मण्वती नदी । कान्यकुब्ज (कन्नौज) इसी में है। यहां द्रुपद राजा राज्य था। उत्तर पञ्चाल की अहिच्छत्रा और दक्षिण पञ्चाल म्पिल्य राजधानियां थीं।

रसेन (मथुरा)—यह श्री कृष्ण का जन्मस्थान है। गोकुल न, मथुरा और अग्रवण (आगरा) इसी प्रदेश में हैं।

त्स्य—यहां राजा विराट् का शासन था। इसी में पाण्डवों का वास हुआ था।

त्तर कोसल (अवध)—इसी प्रांत में अयोध्या, शरावती स्ती), लक्ष्मणपुरी (लखनऊ) आदि नगर प्रसिद्ध हैं। यहां ी, सरयू और तमसा नदियाँ बहती हैं। सूर्यवंशी राजाओं का शासन था। रामचन्द्र ने शरावती (श्रावस्ती) का राज्य लव को था और दक्षिण कोसल के कुशावती का राज्य कुश को दिया था। कोसल को ही विदर्भ देश कहते हैं।

नेपाल—यह हिमालय के पठार में है। यहां गण्डकी नदी बहती गौतम बुद्ध की जन्म भूमि कपिलवस्तु नेपाल की तराई में है।

विदेह (मिथिला)—यहां जनक राजा का राज्य था। यह प्रान्त के दक्षिण में है। इस देश की वर्तमान राजधानी द्वारबंग (दर-) है।

त्सदेश—प्रयाग के उत्तर का मैदान ही यह प्रदेश है। राजा उदयन राज्य करता था। इसकी राजधानी कौशम्बी सम) थी।

काशी (बनारस)—वाराणसी के चारो ओर का प्रान्त इस देश न्तर्गत था। इस देश की राजधानी वाराणसी संस्कृत विद्या के बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है।

मगध (बिहार)—बिहार प्रान्त का गंगा के दक्षिण का भाग मगध कहाता था। इस प्रान्त के प्राचीन नगर गिरिव्रज और पाटलीपुत्र (पटना) थे। गया और उरुविल्व (बुद्ध गया) इसी प्रान्त में थे।

अङ्ग—यह मगध देश के पूर्व भाग में था। इसकी प्रधान नगरी चम्पा थी जो भागलपुर के पास है। यहां रामायण के रोमपाद और महाभारत के कर्ण राजा राज्य करते थे।

सुह्म—यह वह देश है जिसमें से कपिशा (कोसिया) नदी बहती है। इसकी राजधानी ताम्रलिप्ती (तामलूक) थी।

वंग (बंगाल)—यह सुम्हदेश के पूर्व है। इसकी प्राचीन राजधानी कर्णसुवर्ण (बन-सोना) थी। सम्प्रति इसकी राजधानी कालीघट्टपुरी (कलकत्ता) है जिसका दूसरा नाम समतट है। गंगा सागर संङ्गम इसी प्रान्त में है।

पुण्ड्र—यह आज कल के वंग देश का उत्तर भाग है। इसीको गौड़ देश कहते हैं।

कामरूप (आसाम)—यह देश बङ्गके ईशान्य कोण में है। यहां महाभारत का भगदत्त राजा राज्य करता था। इस राजा का राज्य चीन देश तक विस्तृत था। हर्षवर्धन के समय उसका मित्र भास्कर वर्मा यहाँ राज्य करता था। इसकी राजधानी प्राग्ज्यौतिप थी।

निषध—यह देश सिन्ध नदी के तट पर पञ्जाब के दक्षिण पश्चिम में था। इसकी राजधानी नलपुर (नरवार) थी। महाभारत का नल यहां राज्य करता था।

चेदी—आधुनिक मालवा का चन्दरी नगर प्राचीन काल में चेदी पुरी के नाम से प्रसिद्ध था। इस नगर के चारो ओर का प्रान्त चेदी देश कहाता था। यहां शिशुपाल राज्य करता था।

मालव (मालवा)—इस प्रान्त में आजकल के उज्जैनी, दशपुर (...पुर) और धारानगरी (धार) नगर समाविष्ट थे। इसको ...भी कहते थे। उज्जैनी का प्राचीन नाम अवन्ती नगरी है। ...काल में इसी नगर को ज्योतिषियों ने खमध्यस्थान माना था। ...के महाकाल, द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से हैं।

दशार्ण—यह प्रदेश मालवा का पूर्व भाग है। इस प्रदेश में ...ती (बेतवा) नदी बहती है। इस नदी के तट पर की विदिशा ...(भिलसा) इसकी राजधानी थी।

सौराष्ट्र—मालवा देश के पश्चिम का प्रदेश सौराष्ट्र कहलाता था। ...कल इसको गुजरात कहते हैं। यहां यादव वंशीय राजा राज्य ...थे। द्वारिका नगरी (द्वारवती) इसी प्रान्त में है। सौराष्ट्र के ...भाग में द्वारवती है उसको आनर्त कहते थे। इसी लिये द्वारिका आनर्त भी कहते थे। रैवतक गिरि, प्रभास तीर्थ व सोमनाथ क्षेत्र ...में हैं। यहां हर्षवर्धन के समय बलभी राजा राज्य करते थे।

लाट—नर्मदा के पश्चिम का गुजरात का भाग लाट कहाता था। ...कल का वटोदरपुर (बड़ोदां) का राज्य इसीमें है।

राजस्थान (राजपूताना)—गुर्जर देश के वायव्य दिशा के मरुवार (...रवाड़) प्रान्त से लेकर अर्बुद (आबू) पर्वत तक का प्रदेश ...स्थान नाम से प्रसिद्ध था। जैयपुर, अजमेर आदि राज्य इसीमें थे।

सिन्धु देश (सिन्ध)—यह देश सिन्धुदेश के मुखके चारो ओर ...हुआ था। यहां महाभारत का राजा जयद्रथ राज्य करता था। ...की राजधानी पाटलपुर (हैदराबाद) थी। इसी देश के घोड़ों से घोड़ों ...नाम सैन्धव हुवा।

हैहय देश—यह देश नर्बदा नदी के दोनों तट में मालव देश के ...में था। यहां कार्तवीर्य अर्जुन का शासन था। इसकी राजधानी ...ष्मती (महेश्वर) थीं।

विदर्भ (बरार)—यह देश कृष्णानदी से नर्मदा नदी तक विस्तृत था। इसी विस्तार के कारण इसको महाराष्ट्र कहते थे। यहां राजा नल के श्वसुर भीम का राज्य था। इसकी राजधानी कुंडिनपुर वा विदर्भपुर (विदर) थी।

उत्कल (ओड़ीसा)—ताम्रलिप्ती (तामलूक) नदी के दक्षिण में कपिशा (कोसिया) नदी तक इस प्रदेश का विस्तार था। इसी में जगन्नाथ पुरी समुद्र तट पर विद्यमान है। भुवनेश्वर नामक शिवक्षेत्र जगन्नाथ पुरी के पास है।

कलिंग (मद्रास प्रान्त का उत्तर भाग)—यह प्रान्त उत्कल के दक्षिण में है। इसकी राजधानी समुद्र तट पर कलिंग नगर (राजमहेन्द्री) थी। इसमें महेन्द्रमाली नामक गिरि है।

आंध्र देश (तैलंगाना)—यह गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के बीच में था। इसकी राजधानी अन्ध्रनगर (वेंगी) थी। इसका अधिकांश भाग भाग्यपुर (हैदराबाद) राज्य में अन्तभू त है। इसी को त्रैलिंग देश भी कहते हैं।

कुंतल—यह प्रदेश गोदावरी के तट पर हैदराबाद रियासत के वायव्य में विस्तृत था। इसकी राजधानी प्रतिष्ठान थी। यहाँ शात-वाहन वा शालिवाहन का साम्राज्य था।

कर्नाट (कर्नाटक)—यह आंध्रदेश के दक्षिण व पश्चिम का प्रान्त था। वनावासि देश वा महिषग देश वा महीशूर (मैसूर) इसी में अन्तर्गत है। इसकी राजधानियां महिषपुर और श्रीरंगपत्तन थीं। यहां अभी भी शातवाहन वंश के राजा का शासन है। महिषासुर मर्दिनी क्षेत्र मैसूर के पास में है।

द्रमिल (द्रविड़)—यह प्रदेश कर्नाट देश के दक्षिण पूर्व में है। यह नेगापट्टन तक चोलमंडल वेल्ल (कारोमंडल कोस्ट) के तट पर

है। इसकी राजधानी कांचीपुर (कांची) थी। इस प्रांत में चेन्नपुर
ड्रास) व नागपुर अंतर्भूत हैं।

चेर (ट्रावङ्कोर)—यह प्रांत कोयंपुत्तूर (कोयंतूर) के चारो ओर
देश तक विस्तृत था।

पांड्य—द्रमिल देश का दक्षिण पश्चिम भाग ही पांड्य देश
ता था। इसकी प्राचीन राजधानी मणलूर पुर थी। मदुरा भी
राजधानी थी। आजकल के द्रविड़ प्रान्त में चेर, चोल और पांड्य
में ही अन्तर्भूत हैं।

कोङ्कण (कोकण)—पश्चिम समुद्र के तट पर यह प्रदेश सूर्य-
(सूरत) से रत्नागिरि तक विस्तृत है। महाम्बापुर (बम्बई)
कल्याण इसी में हैं।

केरल—कोङ्कण के दक्षिण भाग में गोकर्ण क्षेत्र से कन्याकुमारी
कमोरिन) तक का प्रदेश इस नाम से ख्यात है। कोङ्कण व केरल
को परशुराम क्षेत्र कहते हैं। दक्षिण केरल में ट्रावंकोर के राज्य
वह्निमण्डल संज्ञा है। यहां क्षत्रियों का राज्य है। इसकी राजधानी
न्द्रम वा अनंत-शयन है।

रामेश्वर द्वीप—भारत और लंका के बीच में यह द्वीप है। इसपर
श्वर का मंदिर है।

सिंहलद्वीप (सीलोन)—कन्याकुमारी-(केप कामोरिन) के पूर्व में
द्वीप है। इसको लंकाद्वीप भी कहते हैं। इसमें रोहिणाद्रि (अडम्स-
) है जहां रत्न मिलते हैं। इसकी राजधानी निकुम्बिला
कोलम्बो) है।

प्राचीन भारतवासियों को भारत के बाहर के भी अनेक देश ज्ञात
। जैसे—यवद्वीप (जावा) बनायव (अरेबिया) काम्बोज (बलू-
स्तान), पारसीक (पर्शिया), शकस्थान (बेक्ट्रिया), तुरुष्क
न (तर्किस्थान), चीनदेश (चाइना) इत्यादि।

(यह भारतीय प्राचीन भूगोल संस्कृत के विद्यार्थियों को भारत के पर्वत, नदी, समुद्र, देश, प्रदेश, नगर आदि के प्राचीन नामों के परिज्ञानार्थ ही लिखा गया है। भूगोल के अन्तर्गत अनेक विषय यहां विस्तार भय से नहीं दिये गये हैं।)

परिशिष्ट (घ)

महाकाव्य ।

...लक्रम से ग्रन्थकार, व उनके ग्रन्थ और समय की सूची :

...कार	ग्रन्थ	समय
...दास	१ रघुवंश, २ कुमार संभव	ई० पू० प्रथम शतक
...घोष	१ बुद्धचरित्र, २ सौंदरनंद	ई० द्वितीय शतक
...वि	किरातार्जुनीय	ई० षष्ठ शतक
...सेन	सेतुबंध (प्राकृत)	ई० ५५० – ६००
...वर सूरि	शत्रुञ्जय महाकाव्य	ई० ६१०
...	रावणवध वा भट्टिकाव्य	ई० सप्तम शतक
...	शिशुपालवध वा माघकाव्य	ई० ६६० – ६७५.
...दास	जानकी हरण	ई० ६७५ – ७५०.
...भट्ट	रावणार्जुनीय वा अर्जुन रावणीय ।	ई० सप्तम शतक
...तिराज	गौडवहो (प्राकृत)	ई० अष्टम शतक
...र	हरविजय	ई० ८१३ – ८५०
...स्वामी	कफ्फणाभ्युदय	ई० नवम शतक
...न्द	कादम्बरी कथासार ।	ई० ९ म शतक का अंत
...चन्द्र	धर्मशर्माभ्युदय ।	ई० ९०० के बाद
...सेन वादिराज	यशोधर चरित	ई० ९२५
...त्र	कविरहस्य	ई० ९०० – ९५०
...वा परिमल	नव साहसाङ्क चरित	ई० १००० के ल.भ.
...े	शशिवंश महाकाव्य	ई० १०२५-१०८०

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
बिल्हण	विक्रमांकदेव चरित	ई० एकादश शतक
लोलिम्बराज	हरि विलास महाकाव्य	ई० १०५०
हेमचंद्राचार्य	(१)त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित (२)द्वयाश्रय महा-काव्य वा कुमारपालचरित	ई० १०८८-११७
वाग्भट	नेमिनिर्माण काव्य	ई० ११००-११४
धनञ्जय	द्विसंधान काव्य	ई० द्वादश शतक
जल्हण	सोमपालविलास	ई० ,, ,,
मंख वा मंखक	श्रीकंठ चरित	ई० द्वादश शतक
वासुदेव	(१)युधिष्ठिर विजय(२) वासुदेव विजय	ई० ,, ,,
कविराज	राघवपांडवीय	ई० ,, ,,
जयदेव	गीतगोविन्द	ई० ११८०
श्रीहर्ष	नैषध चरित	ई० द्वादश शतक
सोमेश्वर	(१)सुरथोत्सव(२)कीर्ति कौमुदी	ई० ११७९-१२६२
जयद्रथ	हरचरित चिंतामणि	ई० त्रयोदश शतक
अभयदेव	जयंत विजय	ई० १२२१
अमरचंद्रसूरि	बालभारत	ई० १२४३-१२६०
वीरनंदी	चंद्रप्रभ चरित	ई० त्रयोदश शतक
कृष्णानंद	सहृदयानंद	ई० ,, ,,
वेदांतदेशिक वा व्यंकटनाथ	यादवाभ्युदय	ई० ,, ,,
त्रिविक्रमाचार्य	उषा हरण	ई० ,, ,,
मलधारिदेवप्रभसूरि	पांडवचरित	ई० १२५०

न्थकार	ग्रन्थ	समय
तुपाल	नरनारायणानन्द	ई० त्रयोदश शतक
चंद्रसूरि	वसन्त विलास	,, ,, ,,
नुदत्त	गीतगौरीपति काव्य	,, १४शशतकका आरंभ
कुनाथ	रघुवीर चरित	,, ,, ,,
मनभट्टबाण	नलाभ्युदय	ई० १४५०
ल्लूड़	कार्तवीर्य विजय	ई० पंचदश शतक
जनाथ	अच्युतरामाभ्युदय	ई० १५४०
चिंद्रमखी	हरिवंश सार चरित	ई० षोडश शतक
कवि	राष्ट्रौढवंश महाकाव्य	ई० १५९६
नन्ददीक्षित	पतंजलि चरित	ई० सप्तदश शतक
तसूरि	राघवनैषधीय	ई० १६५०के ल.भ.
विमलगणि	हीर सौभाग्य	ई० सप्तदश शतक
श्वेर	रामचन्द्रोदय	ई० ,, ,,
कंठ दीक्षित	(१) शिवलीलार्णव (२) गंगावतरण	ई० ,, ,,

खण्डकाव्य ।

लिदास	(१)मेघदूत(२)ऋतुसंहार	ई० पू० १ म शतक
ा वा शातवाहन	सत्तसई (प्राकृत)	,, २००से ४५०
खर्पर	घटखर्पर काव्य	,, ५०० के लगभग
मेण्ठ	हयग्रीव वध	,, षष्ठ शतक
र	मयूर वा सूर्य शतक	,, ६२५
हरि	(१)नीतिशतक(२)शृंगार शतक (३) वैराग्य शतक	,, ६५०

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
अमरुक वा अमरू	अमरु शतक	,, ६५० – ७५०
दामोदरगुप्त	कुट्टनीमत	,, ७७९ – ८१३
शंकुक	भुवनाभ्युदय	,, ८५० के लगभग
क्षेमेन्द्र	(१) दशावतार चरित (२) भारतमंजरी (३) रामायण कथासार (४) बृहत्कथामंजरी(५)बौद्धावदानकल्पलता(६)मुक्तावली (७) लावण्यवती।	,, १०२५–१०८०
बिल्हण	चौरीपंचाशिका वा चौरी सुरत पंचाशिका	,, एकादश शतक
माणिक्यसूरि	यशोधर चरित	,, ,, ,,
शम्भु	(१) राजेन्द्रकर्णपूर (२) अन्योक्ति मुक्तालता शतक	,, ,, ,,
कल्हण	राजतरंगिणी	,, द्वादश शतक
गोवर्धन	आर्यासप्तशती	,, ,, ,,
श्रीहर्ष	(१) अर्णववर्णन (२)नव साहसांक चरित(३)गौडी वींराकुलप्रशस्ति (४) विजयप्रशस्ति	,, ,, ,,
सन्ध्याकरनन्दी	रामपाल चरित	,, ,, ,,
अमरचन्द्रसूरि	(१) काव्यकल्पलता (२) जिनेन्द्रचरित (३) मुक्तावली	,, १२४३–१२६०
मलधारि देवप्रभसूरि	मृगावती चरित	,, १२५०

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
...न्तदेशिक वा व्यङ्कटनाथ	हंस सन्देश	ई० १३ श शतक
...राज	(१) भाव शतक (२) शृंगार शतक	,, १३००
...न-भट्ट वाण	रघुनाथ चरित	,, १४५०
...कंठदीक्षित	(१) लघुकाव्य (२) कलि-विडम्बन (३) सभारंजन (४) अन्यापदेश शतक (५) शान्त विलास (६) वैराग्य शतक।	,, १६२७
...न्नाथ पण्डितराज	(१) भामिनी विलास (२) जगदाभरण (३) आसफ़ विलास (४) प्राणाभरण।	,, १६५०

स्तोत्रकाव्य।

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
...सेन दिवाकर	कल्याण मन्दिरस्तव	ई० ४८० – ५५०
...	मयूर वा सूर्य शतक	,, ६३०
...तुंग	भक्तामर स्तोत्र	,, ६३५
...भट्ट	चण्डी शतक	,, ६४०
...र्धन	अष्टमहाश्रीचैत्य स्तोत्र	,, ६०६ – ६४७
...दन्त	महिम्न स्तोत्र	,, ८०० के पूर्व
...कवि	मूक वा देवी पंचशती	,, ८०० के करीब
...राचार्य	दक्षिणा मूर्ति स्तोत्र और अन्य असंख्य स्तोत्र	,, ८००
...र	वक्रोक्ति पंचाशिका	,, ८५०

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
आनन्दवर्धनाचार्य	देवी शतक	,, ८५०
उत्पलदेव	परमेश स्तोत्रावलि	,, ९२५
कुलशेखर	मुकुन्दमाला	,, ११श शतक
श्रीसाम्बकवि	साम्बपंचाशिका	अज्ञात समय
विल्वमंगल वा लीलाशुक	कृष्णकर्णामृत वा कृष्ण लीलामृत	,, ११०० के करीब
जगद्धर भट्ट	स्तुति कुसुमाञ्जलि	,, १३०० के करीब
रूप गोस्वामी	पद्यावलि	,, १५२०
वेङ्कटाध्वरी	लक्ष्मी सहस्र स्तोत्र	,, १६४०
जगन्नाथ पण्डित राज	(१) गङ्गा लहरी	,, १६५०
	(२) सुधा लहरी	
	(३) अमृत लहरी	
	(४) पीयूष लहरी	
	(५) लक्ष्मी लहरी	
लक्ष्मणाचार्य	चण्डी कुच पंचाशिका	,, अज्ञात समय
युवराज	सुधानन्द लहरी	,, १८श शतक
मोरो पंत	मन्त्र रामायण आदि	,, १७२९–१७९४

सुभाषित काव्य ।

अमित गति	सुभाषित रत्न संदोह	ई० ९९४
कोई बौद्ध विद्वान्	कवीन्द्र वचन समुच्चय	ई० १२श शतककेपूर्व
जल्हण	सुभाषित वा सूक्ति मुक्तावली	ई० ११४७
श्रीधर दास	सदुक्ति वा सूक्ति कर्णामृत	ई० १२०५
शङ्करानन्द यति	प्रश्नोत्तर रत्न माला	ई० १३००के करीब
शार्ङ्गधर	शार्ङ्गधर पद्धति	ई० १३६३के करीब

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
...लभ देव	सुभाषितावलि	ई० १५श शतक
...वर	सुमाषितावलि	ई० १५श शतक
...कराठ दीक्षित	कलि विडम्बन, सभारंजन शान्ति विलास, वैराग्य शतक और अन्यापदेश शतक	,, १६३७
...हर	हरिहर सुभाषित	,, अज्ञात समय

गद्य काव्य ।

...डी	दशकुमार चरित	ई० ६०० के लगभग
...न्धु	वासवदत्ता	ई० ६००
...ण भट्ट	१ कादम्बरी २ हर्षचरित	ई० ६४०
...पाल	तिलक मञ्जरी	ई० १००० के लगभग
...भसिंह	गद्यचिन्तामणि	ई० १००० के लगभग
...न भट्ट बाण	वेमभूपाल चरित	ई० १५ श शतक

कथा च आख्यायिका

...ज्ञात	ललितविस्तर	ई० ७० के पूर्व
...ढ्य	बृहत्कथा	ई० ७८
...तृचेट		ई० २ य शतक
...ष्णुशर्मा	पञ्चतन्त्र	ई० २ य शतक
...र्यशूर	जातकमाला	ई० ३ य शतक
...डी	अवन्ति सुन्दरी कथा	ई० ६०० के लगभग
...र्षि	उपमितिभवप्रपंच कथा	ई० ९०५
...रायण	हितोपदेश	ई० १० म शतक

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
धनपाल वा धणवाल	भविसयत्त कहा	ई० १० मशतक
सोढ्ढल	उदय सुन्दरी कथा	ई० १०२६-१०५०
क्षेमेन्द्र	बृहत्कथा मञ्जरी	ई० १०५०के लगभग
सोमदेव	कथा सरित्सागर	ई० १०६३के लगभग
अज्ञात जैन कवि	शुकसप्तति	ई० १२ श शतक
पूर्णभद्र	जैनतन्त्राख्यायिका	ई० ११९९
शिवदास	१ शालिवाहनकथा २ वेताल पञ्चविंशति ३ कथार्णव	ई० १२श शतककेवाद
मेरुतुङ्ग	प्रबंधचिंतामणि	ई० १३०६
माधवाचाय	शङ्कर दिग्विजय	ई९ १४ श शतक मध्य
राजशेखर सूरि	प्रबंधकोष वा चतु- र्विंशतिप्रबन्ध	ई० १३४८
विद्यापति	पुरुष परीक्षा	ई० १५ श शतक
जिनकीर्ति	१ चम्पक श्रेष्ठि कथानक २ पालगोपाल कथानक	ई० १५श शतक का पूर्वार्द्ध
अज्ञात	द्वात्रिंशत्पुत्तलिका वा सिंहासन द्वात्रिंशिका	ई० १५ श शतक
बल्लालकवि	भोज प्रबन्ध	ई० १६ श शतक

चम्पू काव्य—

त्रिविक्रम भट्ट	१ नल चम्पू २ मदालसा चम्पू	ई० ९१५
सोमदेव सूरि	१ यशस्तिलक चम्पू २ नीति वाक्यामृत	ई० ९५९

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
राज	चम्पू रामायण	ई० १०५०
व कालिदास	१ भागवत चम्पू २ अभिनव भारत चम्पू	ई० १३४०
कर्णपूर	आनंद वृन्दावन चम्पू	ई० १६ श शतक
गोस्वामी	गोपाल चम्पू	ई० १६ श शतक
कृष्ण	पारिजात हरण चम्पू	ई० १५९०
कण्ठ दीक्षित	नीलकण्ठ चम्पू	ई० १६३७
ध्वरी	विश्वगुणादर्श चम्पू	१६४०
कवि	चम्पू भारत	अज्ञात समय
भट्ट	नृसिंह चम्पू	,, ,,
त्य	चन्द्रशेखर चम्पू	,, ,,
कवि	मन्दार मरन्द चम्पू	ई० १७ श शतक
विट्ठल	गजेन्द्र चम्पू	ई०१८५०

नाटक

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
	१ स्वप्नवासवदत्त, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, ३ प्रतिमा ४ अभिषेक ५ पञ्चरात्र ६ बालचरित, ७ मध्यम व्यायोग ८ दूत वाक्य ९ दूत घटोत्कच १० कर्णभार ११ ऊरुभंग १२ चारुदत्त १३ अविमारक	ई०पू० ४ र्थ शतक
दास	१ मालविकाग्निमित्र, २ विक्रमोर्वशी ३ अभिज्ञान शाकुन्तल	ई०पू०१ म शतक
	मृच्छकटिक	ई० २ य शतक

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
महेन्द्र विक्रम वर्मा	मत्तविलास प्रहसन	ई० ६००
हर्षवर्धन	१ रत्नावली २ प्रिय दर्शिका ३ नागानन्द	ई० ६०६-६४५
भट्ट नारायण	वेणी संहार	ई० ६७५
भवभूति	१ मालती माधव २ महावीर चरित ३ उत्तर राम चरित	ई० ७४०
अनङ्गहर्ष मात्रराज	तापस वत्सराज चरित्र	ई० ८०० के पूर्व
मुरारि	अनर्घराघव	ई० ८५० के पूर्व
विशाखदत्त	मुद्रा राक्षस	ई० ८५०
राजशेखर	१ कर्पूर मञ्जरी २ बाल रामायण ३ बालभारत ४ विद्धशाल भञ्जिका	ई० ९००
क्षेमीश्वर	१ चण्डकौशिक २ नैषधानन्द	ई० ९१४
कृष्णमिश्र	प्रबोध चन्द्रोदय	ई० १०४२
कुल शेखर	१. तपती संवरण २ सुभद्रा धनंजय	ई० १०००-११५० के बीच में
दामोदर मिश्र / मधुसूदनमिश्र	हनूमन्नाटक	ई० ११ श शतक
रामचन्द्र	१ निर्भय भीम व्यायोग २ सत्य हरिश्चन्द्र ३ कौमुदी मित्रानन्द ४ रघुविलास ५ नल विलास	ई० १२ श शतक का मध्य
वत्सराज	१ रुक्मिणी हरण २ त्रिपुरदाह ३ समुद्र मथन ४ कर्पूर चरित्र ५ हास्य चूणामणि ६ किरातार्जुनीय व्यायोग।	ई० ११५०-१२२५

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
ल्ह	कर्ण सुन्दरी	ई० ११६३-१२१३
ह्लादन देव	पार्थ पराक्रम	ई० १२०८
सिंह सूरि	हम्मीर मद मर्दन	ई० १२१९
पाल	मोहराज पराजय	ई० १२२९
वर्म देव	प्रद्युम्नाभ्युदय	ई० १२६६ के बाद
देव	प्रसन्न राघव	ई० १२०० व १३०० का मध्य
पूर्व देशिक वा वेंकटनाथ	संकल्प सूर्योदय	ई० १२६८-१३७६
नाथ	प्रताप रुद्र कल्याण	ई० १४ श शतक का प्रारम्भ
न भट्ट बाण	१ पार्वती परिणय २ श्रृंगार भूषण भाण	ई० १४१५
कर्णपूर	चैतन्य चंद्रोदय	ई० १५४२
ल्लनाथउपाध्याय	अमृतोदय	ई० १६ श शतक
कृष्ण	कंसवध	ई० १५९०
नाचार्य	धनंजय विजय	अज्ञात
ङनाथ वा उद्दण्डी	मल्लिका मारुत	ई० १६५०
देव	अद्भुत दर्पण	ई० १७ श शतक का अन्त
नन्द राय मखी	विद्यापरिणय	ई० १७२९-१७३६

॥ अलङ्कार-शास्त्र ॥

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
	अग्निपुराण	
मुनि	नाट्य शास्त्र	ई० पू० २ य शतक

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
भामह	काव्यालङ्कार	ई० ५०० के करीब
दण्डी	काव्यादर्श	ई० ६०० के करीब
उद्भट भट्ट	अलङ्कार सार संग्रह वा काव्यालङ्कार संग्रह	ई० ८०० के करीब
वामन	काव्यालङ्कार सूत्र और उसकी कविप्रिया वृत्ति	ई० ८०० के करीब
रुद्रट	काव्यालङ्कार	ई० ८५० के करीब
आनन्दवर्धनाचार्य	ध्वन्यालोक	ई० ८५० के करीब
राजशेखर	काव्य मीमांसा	ई० ९१० के करीब
मुकुल भट्ट	अभिधावृत्ति मातृका	ई० ९२०
भट्ट तौत	काव्य कौतुक	ई० ९६०-९९०
अभिनव गुप्त पाद	ध्वन्यालोक लोचन	ई० १००० के करीब
धनञ्जय और धनिक	दश रूपक और अवलोक	ई० १००० के करीब
कुन्तक वा कुन्तल	वक्रोक्ति जीवित	ई० १०२५
महिम भट्ट	व्यक्ति विवेक	ई० १०२५
भोजराज	१ सरस्वती कण्ठाभरण २ शृङ्गार प्रकाश	ई० १०१८-१०५६
क्षेमेन्द्र	१ औचित्य विचार चर्चा २ कवि कण्ठाभरण	ई० १०२५-१०८०
मम्मट भट्ट	१ काव्य प्रकाश २ शब्द व्यापार विचार	ई० १०५०-११०० के मध्य में।
राजानक रुय्यक	१ अलंकार सर्वस्व २ अलङ्कारानुसारिणी ३ अलंकार मञ्जरी ४ साहित्य मीमांसा	ई० ११४० के करीब

...कार	ग्रन्थ	समय
...ट्ट	वाग्भटालंकार	ई० ११४०
...न्द्र	काव्यानुशासन और अलङ्कार चूड़ामणि वृत्ति	ई० १०८८–११७२
...चन्द्र और गुणचन्द्र	नाट्य दर्पण	ई० ११००–११७५
...सिंह	कविता रहस्य वा काव्य कल्पलता	ई० १२४२
...चन्द्र	अलंकार प्रबोध	ई० १२५०
...तनय	भाव प्रकाशिका वा भाव प्रकाशन	ई० १३ श शतक
...देव	चन्द्रालोक	ई० १३ श शतक
...दत्त	१ रसमञ्जरी २ रसतरङ्गिणी	ई० १४ श शतक का आरंभ
...धर	एकावली	ई० १४ श शतक का आरं
...नाथ	प्रताप रुद्र यशोभूषण	ई० १४ श शतक का आरंभ
...वा सिंह भूपाल	रसार्णव सुधाकार	ई० १३३०
...नाथ कविराज	साहित्य दर्पण	ई० १४ श शतक
...गोस्वामी	१ उज्वल नील मणि २ नाटक चन्द्रिका	ई० १६ श शतक का पूर्वार्द्ध
...कर्णपूर	अलंकार कौस्तुभ	ई० १५२४ के बाद
...य्यदीक्षित	१ कुवलयानन्द २ वृत्तिवार्तिक ३ चित्र मीमांसा	ई० १५२०–१५९३
...व मिश्र	अलंकार शेखर	ई० १६ श शतक का उत्तरार्द्ध
...नाथ पण्डितराज	रस गङ्गाधर	ई० १६२०
...सिंह कवि	नञ्जराज यशो भूषण	ई० १८ श शतक का पूर्वार्द्ध

कोष।

वैदिक कोष।

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
अज्ञात	वैदिक निघंटु	अज्ञात
यास्क	निरुक्त	ई० पू० ७००
भास्कर राय	बैदिक कोष	ई० १७३० के करीब
अमरसिंह	अमरकोष वा नामलिंगा-नुशासन	,, ६०० के पूर्व
शाश्वत	अनेकार्थ समुच्चय	,, ६०० के करीब
भट्टहलायुध	अभिधानरत्नमाला	,, १०म शतक
यादव प्रकाश	बैजयंती कोष	,, १०५५-११३७
महेश्वर	१ विश्व प्रकाश २ शब्दभेद प्रकाश	,, ११११
मंख	अनेकार्थ कोष	,, १२ शा शतक
अजयपाल	नानार्थ संग्रह कोष	,, ११४० के पूर्व
धनञ्जय	नाममाला कोष	,, १२ शा शतक
पुरुषोत्तम देव	१ हारावलि २ त्रिकांडशेष ३ वर्णदेशना ४ एकाक्षर कोष ५ द्विरूपकोष	,, ११५८ के पूर्व
हेमचंद्र	१ अभिधान चिन्तामणि २ अनेकार्थ संग्रह ३ देशी नाम माला ४ निघंटुशेष	,, १०८८-११७२
केशव स्वामी	नानार्थार्णव संक्षेप	,, १२शा, वा १३शा शतक
कल्याणमल्ल	शब्दरत्न प्रदीप	,, १२९५ के पूर्व
मेदिनीकर	नानार्थ शब्दकोष	,, १४शा शतक के पूर्व

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
प्रभट्टबाण	शब्द रत्नाकर कोष	,, १४५०
व	कल्पद्रुकोष	,, १६६०
शेश विद्यालंकार	शब्दरत्नावलि	,, १६६६
कवि	वैभाषिक कोष	,, १७६८
कांत देव	शब्दकल्पद्रुम	,, १८२२-१८५८
नंद नाथ	शब्दार्थ चिंतामणि	,, १८६४-१८८५
नाथ तर्कवाचस्पति	वाचस्पत्य कोष, वैद्यक कोष	,, १८७३-१८८४
न्तरि	धन्वन्तरि निघंटु	,, ४र्थ शतक के पूर्व
करकर	पर्याय रत्नमाला	,, ८म वा ९म शतक
न्द्र	निघंटुशेष	,, १०८८-११७२
नपाल	मदनपाल निघंटु	,, १७७४
रि	राज निघंटु बौद्ध वा पाली कोष	,, १७७४ के बाद
त	महाव्युत्पत्ति कोष	अज्ञात
गल्लान(मौद्गलायन)	अभिधानप्पदीपिका प्राकृत कोष	,, १२श शतक
ाल	पाइयलच्छी (प्राकृतलक्ष्मी) नाम माला	,, ९७२
राजेन्द्र सूरि	अभिधान राजेन्द्रकोष	,, १८१३-१९२१

छन्दः शास्त्र ।

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
ल	पिंगल छन्दः सूत्र	ई० पू० २००
त	प्राकृत पिंगल	अज्ञात
दास	श्रुतबोध	,, ५ म शतक
न्द्र	सुवृत्त तिलक	,, ११ श शतक

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	समय
हेमचन्द्र	छन्दोनुशासन	,, १०८८–११७२
केदारभट्ट	वृत्तरत्नाकर	,, १२श शतक
गंगादास	छन्दोमंजरी	,, अज्ञात
दामोदरमिश्र	वाणीभूषण	,, १६०० के पूर्व

अनुक्रमणिका।

-आ-

-इ-

-ई-

-उ-

—कि—

—की—

—कु—

—ल—

—क्ष—

—ज्ञ—

सम्मतियाँ ।

Benares Hindu University
College of Oriental Learning

Dated 3-3-1933.

पण्डित सीताराम जयराम जोशी एम० ए० साहित्य-शास्त्राचार्य, तथा पण्डित विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज एम० ए० काव्यतीर्थ रचित "संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास" आदि से अन्त तक पढ़कर मुझे बड़ा ही सन्तोष हुआ। हिन्दी भाषा में प्रचलित संस्कृत-साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में यह नवप्रकाशित ग्रन्थ सर्वथा अनुपम और श्लाघनीय है, क्योंकि इस ग्रन्थ से युरोपीय और भारतीय संस्कृत साहित्य के बड़े बड़े विख्यात ऐतिहासिक विद्वानों के अवश्य ज्ञातव्य सिद्धान्तों की पूरी खबर अनायास से विद्यार्थियों को मिल जाती है। अथच अनावश्यक विचारों की विस्तृत आलोचना का क्लेश भी उन्हें उठाना नहीं पड़ेगा। भाषा इसकी सरल और प्रसादपूर्ण है। बिना संकोच मैं कह सकता हूँ कि इस अत्यावश्यक और अनुपम ग्रंथ के प्रकाशन से हिन्दी साहित्य का विशेष गौरव बढ़ जायगा।

श्री प्रमथनाथ तर्कभूषण
(महामहोपाध्याय)

Mithila.
George Town
Allahabad.

I have seen Pt. S. J. Joshi's Book on the History of Sanskrit Literature in Hindi. It is a well-written book and supplies a real need. I hope it will wider and also deepen the outlook of our Pandit community,— specially, of the rising generation, who lack the depth

of the olden Pandits as well as the wideness of a modern scholar. I wish the author every success.

Ganganath Jha.

12—2—33

Benares Hindu University

College of Oriental Learning

Dated 8-4-1933.

पण्डित-श्री सीताराम शास्त्रिणा एम्० ए० साहित्याचार्येण पण्डित विश्वनाथ शास्त्रिणा एम्० ए० काव्यतीर्थेन च विरचितमेतत् पुस्तकं समस्तं परीक्षणस्पृशा दृशा क्रमादवलोकमानः परमानन्दमविन्दम् । यतः पौरस्त्यजनुषां विदुषां जनपद–निबन्ध-समय-विषयप्रभृतेः प्रतिपादनेन साकमेतत्कालोचिता समालोचनाऽपि समीचीनतया कृता प्राचीन समाचारविपश्चितामप्यचिरेण चेतांसि समाकर्षति । प्रसादपदपदकदम्बतया निशमनसमनन्तरमेव प्रशमयति शाब्दसंविदः समीहामर्थान्वयप्रत्यायनेन । आवश्यकांश्च वाच्यान् विनिर्दिशता परिहृतं तावदकाण्डताण्डवम् । एकमेवैतदैतिहासिक-विषयविविदिषां वारयितुमीष्टे । सुदृढमहं तस्माद्वि-श्वसिमि यत् प्रत्येकं पाठकानामन्तः सन्तोषं सद्यः समुत्पादयन् लेखक-महाशययोः प्रशंसनीयं श्रमातिशयमवसाययन् पठनपाठनयोर्न चिराय गोचरतामेतदायास्यतीति ।

बालकृष्ण मिश्रः ।

I have a very great pleasure in recommending 'Sanskrit Sahitya ka Itihasa to the Hindi-Knowing public. Its authors Pt. Sitaram Joshi, M. A, and Pt. Visvanatha Sastri Bharadvaja M. A., well-versed not only in traditional Sanskrit Learning of the old type but are also well-acquainted with the modern methods of critical scholarship. The book is based upon a study of the original sources and is amply

documented. The treatment of controversial points by the authors is fair and impartial, and the reader is enabled to get a fair idea of what the other side has got to say. It will be difficult to point out a book which gives so much of useful, correct and upto date information in so small a compass. The book will prove of immense value in spreading a correct knowledge of Sanskrit Literature and culture in the Hindi world.

26—2—33

A. S. Altekar,
Manindra Chandra Nandi Professor
of Ancient Indian History and Culture,
Benares Hindu University.

पंडित सीताराम शास्त्री जोशी एम्० ए० साहित्याचार्य प्रोफेसर हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस, तथा पंडित विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज एम्० ए० काव्यतीर्थ, प्रोफेसर हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस, इन दो महाशयों ने हाल ही में 'संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' नामक एक अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ हिन्दी भाषा में लिखकर हिन्दी साहित्य की अपूर्व सेवा की है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से संस्कृत काव्य नाटकादिकों की मूलकथा, उनका निर्माणकाल तथा उनके विषय में अनेक विद्वानों के स्वतन्त्र विचार प्रभृति आवश्यक ज्ञान बड़ी सुलभता से मिल सकता है।

उक्त दोनों विद्वानों ने प्रमाण-भूत अनेक युरोपियन् ग्रन्थों का सूक्ष्म निरीक्षण कर इसके निर्माण में कठिन परिश्रम उठाया है। आशा है कि सुयोग्य छात्रगण इसके अध्ययन से अपेक्षित लाभ पाकर इनके परिश्रम को सफल करते हुवे इतर उपयुक्त ग्रन्थों के निर्माण-कार्य में इनको अधिक प्रोत्साहित करेंगे।

प्रत्यक्षदर्शी—
विद्वद्गण शुभाकांक्षी,
भालचन्द्र शास्त्री मानवल्ली
प्रो० ग० सं० कालेज, बनारस।

१९—३—३३
काशी।

सहायक पुस्तकों की सूची।

1. Macdonell's History of Sanskrit Literature.
2. A. B. Keith—History of Sanskrit Literature & Sanskrit Drama.
3. Winternitz—History of Sanskrit Literature Vol. 1.
   Geschichte der Indischen Literatur Von Dr. M. Winternitz Dritte Band.
4. C. V. Vaidya—History of Sanskrit Literature Vol. I., Mahabharat a criticism and History of Mediaeval Hindu India Vol. I.
5. C. V. Vaidya—संस्कृत वाङ्मयाचा त्रोटक इतिहास
6. S. K. Dey—Sanskrit Poetics Vols I & II.
7. P. V. Kane—Introduction to Sahityadarpan.
8. " " —History of Dharmashastra.
9. G. R. Nandargikar--Introduction to Raghuvansha.
10. M. M. Pt. Ramavatar Sharma—Introduction to Kalpadru Kosh.
11. Prof. Ghate's Lectures on Rigveda by V. S. Sukhtanker.
12. Krishnammachari—History of Sanskrit Literature.
13. महावीर प्रसाद द्विवेदी—कालिदास
14. शंकर बालकृष्ण दीक्षित—भारतीय ज्योतिषशास्त्र
15. शिवराम महादेव परांजपे—साहित्यसंग्रह
16. S. Ray's—Introduction to Abhidnyan Shakuntala.
17. M. M. T. Ganpati Shastri—Introductions to Svapna Vasavadutta, Pratima Natak & भारतानुवर्णन।

18. K. T. Tailang—Introduction to Mudrarakshasa.
19. { Pt. Batuknath Sharma-Introduction to Bhamah's काव्यालङ्कार।
Pt. B. D. Upadhyaya.
20. A. B Dhruva – Wilson's Phylological Lectures.
21. Dr. Gune—Comparative Phylology.
22. Gold Stucker—Panini.
23. Dr. S. K. Belvelkar—Systems of Sanskrit Grammar
24. Lokamanya Tilak – गीतारहस्य
25. V. A. Smith—The Early History of India.
26. Kalhana—Rajatarangini.

Periodicals.

Indian Antiquary.

Journal of the Royal Asiatic Society.

J. B. B. R. A. S.

J. B. S. A.

J. A. O. S.

J. R. S. M.

Historical Quarterly.

J. B. O. R. S.

J. M. S.

Modern Review.

Nagari Pracharini Patrika.

Vidnyan Vistar.